



परम पूज्य तपश्चर्या-चक्रवर्ती पट्टाधीशाचार्यश्री
सुविधिसागर जी महाराज

के

50 वें जन्मदिवस के पावन अवसर पर
सुविधि-परिवार के द्वारा आयोजित

जिनवाणी-महोत्सव



सहस्रग्रन्थसंग्रह

* जन्मदिवस 19-03-1971

* मुनिदीक्षा-11-05-1989

* आचार्यपद- 20-06-2004

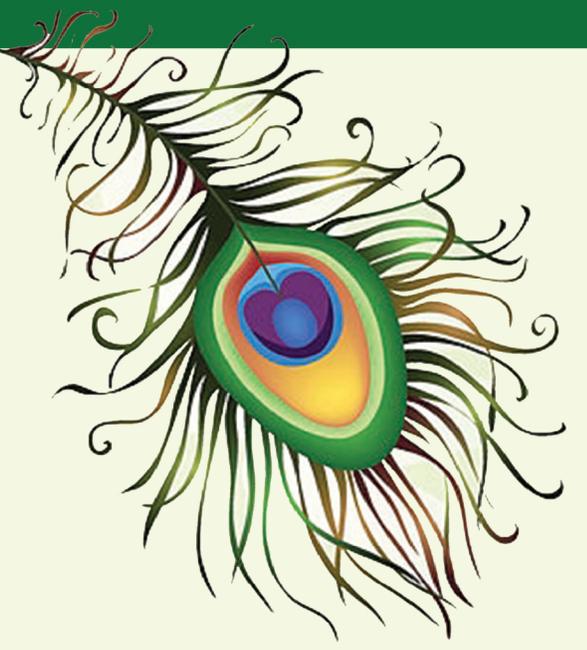
पट्टाधीशपद- 24-12-2010 (20-06-2004 को की गई उद्घोषणा के अनुसार)

परम पूज्य आचार्यश्री सन्मत्तिसागर जी महाराज के द्वारा की गई उद्घोषणा:-

हमारी समाधि के पश्चात् आपको इस संघ के संचालकपद पर नियुक्त करते हैं।

(अंकलीकर वाणी-जुलाई 2004) (अक्षयज्योति-अक्तूबर 2004)





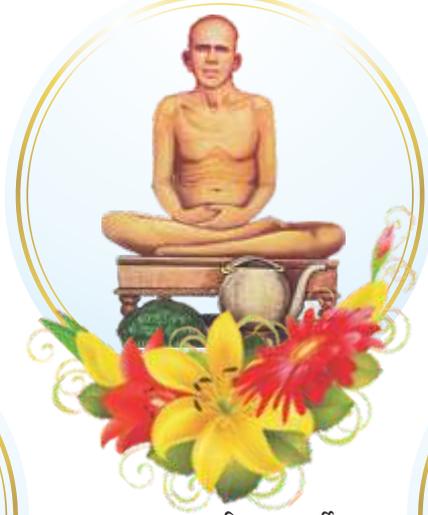
यशस्तिलक का सांस्कृतिक अध्ययन



लेखक
डॉक्टर गोकुलचन्द्र जी जैन

प्रकाशक
सोहनलाल जैनधर्म प्रचारक समिति
अमृतसर (पंजाब)

(परम्परानायक)



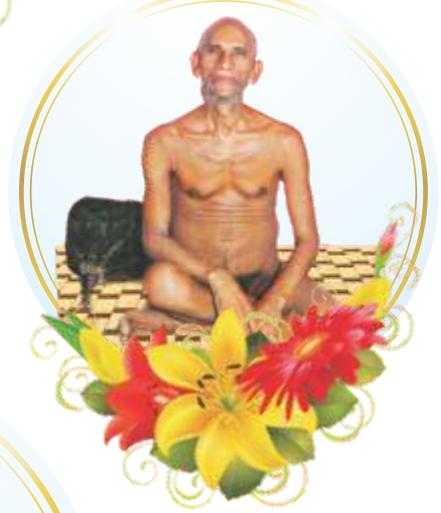
(द्वितीय पट्टाधीश)



परम पूज्य तीर्थभक्त-शिरोमणि,
आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी महाराज

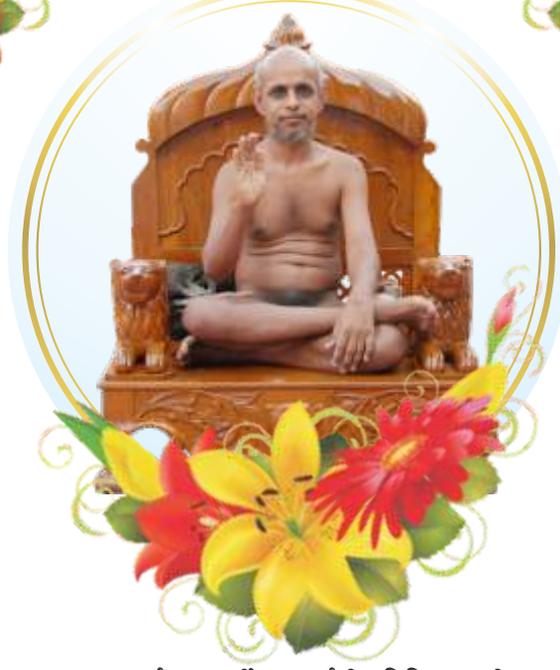
परम पूज्य चारित्र-चक्रवर्ती,
आचार्यश्री आदिसागर जी महाराज
(अंकलीकर)

(तृतीय पट्टाधीश)



परम पूज्य सिद्धान्त-चक्रवर्ती,
आचार्यश्री सन्मत्तिसागर जी महाराज

(चतुर्थ पट्टाधीश)



परम पूज्य तपश्चर्या-चक्रवर्ती, आचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज

दिगम्बर साधु निरन्तर पगविहार करते रहते हैं। ग्रन्थभण्डार को साथ में रख कर विहार करना अशक्यप्रायः होता है। फलतः उनको ग्रन्थों के सन्दर्भ देखने में असुविधा होती है। उनकी सुविधा के लिये इस कोश का निर्माण किया गया है। इस कोश के निर्माण में किसी भी प्रकार का व्यापारिक हेतु नहीं है।

आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न श्रावकबन्धुओं से निवेदन है कि वे ग्रन्थ का विक्रय कर अध्ययन करने की परम्परा को कायम रखें। मुखपृष्ठ पर हमने ग्रन्थकर्ता, अनुवादक, सम्पादक, प्रकाशक आदि के नाम दिये हैं। किसी संस्थान का कर्तृत्व हमने लुप्त नहीं किया है।

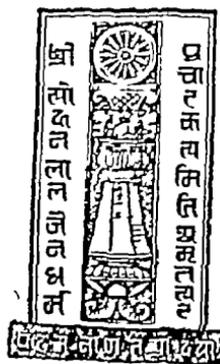
इस कोश के लिये आवश्यक ग्रन्थ हमें अनेक स्रोतों से प्राप्त हुये हैं। हम उन सभी का आभार मानते हैं।

सुविधि-परिवार

यशस्विलक का सांस्कृतिक अध्ययन

डॉ० गोकुलचन्द्र जैन

न्यायतीर्थ, काव्यतीर्थ, माहित्याचार्य,
जैनदर्शनाचार्य, एम ए., पी-एच डी.



सचचं लोगम्मि सारभूय

सोहनलाल जैनधर्म प्रचारक समिति

अमृतसर

बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी द्वारा पी-एच० डी० को उपाधि के लिए स्वीकृत

YAŚASTILAKA KĀ SĀMSKRITIKA ADHYAYANA

(A Cultural Study of the Yaśastilaka)

by

Dr Gokul Chandra Jan, M A , Ph D

प्रकाशक :

सोहनलाल जैनधर्म प्रचारक समिति,
गुरु बाजार,
अमृतसर

प्राप्ति-स्थान

पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध सस्थान,
जैनाश्रम,
हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-५

प्रकाशन-वर्ष

सन् १९६७

मूल्य

बीस रुपये

मुद्रक

सन्मति मुद्रणालय,
दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी

प्रकाशकीय

डॉ० गोकुलचन्द्र जैन पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध सस्थान, वाराणसी के छोटालाल केशवजी शाह शोधछात्र रहे हैं। प्रस्तुत प्रबन्ध 'यशस्तिलक का सांस्कृतिक अध्ययन' सोहनलाल जैनधर्म प्रचारक समिति द्वारा प्रकाशित चौथा शोध-प्रबन्ध है। डॉ० जैन समिति के चौथे सफल शोधछात्र हैं।

इस शोध-छात्रवृत्ति का कुछ लम्बा इतिहास हो गया है। बम्बई में स्व० सेठ छोटालाल केशवजी शाह से १९४८ में पाँच हजार रुपये शोधकार्य के लिए मिले थे। पहले एक अन्य शोधछात्र को यह कार्य दिया गया। दुर्भाग्यवश तीन बार के परिश्रम के बाद भी उनका प्रबन्ध विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत नहीं हुआ। तदनन्तर यह छात्रवृत्ति श्री गोकुलचन्द्र जैन को दी गयी। सन् १९६० में कार्य आरम्भ हुआ और प्रबन्ध तैयार होकर दिसम्बर १९६४ में बनारस हिन्दू विश्व-विद्यालय को परीक्षार्थ प्रस्तुत कर दिया गया। प्रबन्ध स्वीकृत हुआ तथा उसके उपलक्ष में श्री जैन को पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त हुई।

'यशस्तिलक' एक महान् ग्रन्थ है। उसकी अनेक विशेषताएँ हैं। यह ग्रन्थ अपने काल में और बाद में भी आदरणीय रहा है। यह प्रबन्ध यशस्तिलक की सांस्कृतिक सामग्री का विवेचन प्रस्तुत करता है। इससे पूर्व भी विद्वानों ने इस ग्रन्थ की ओर ध्यान दिया है। डॉ० हन्दिकी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। डॉ० जैन ने अपने प्रबन्ध में एक स्थान पर लिखा है कि यशस्तिलक के अध्ययन का यह श्रीगणेश मात्र है। डॉ० हन्दिकी जैसे अनेक विद्वान् जब यशस्तिलक के परिशीलन में प्रवृत्त होंगे, तभी उसकी बहुमूल्य सामग्री का ज्ञान-विज्ञान की विभिन्न शाखा-प्रशाखाओं में उपयोग किया जा सकेगा।

यशस्तिलककार सोमदेव सूरि की आस्था जैन है, परन्तु उनके लेखन का दृष्टिकोण विस्तृत है। सन्यस्त व्यक्तियों के लिए अनेक शब्दों का प्रयोग किया है। इनमें जैन नाम भी हैं।

साग-सब्जी के उल्लेखों में आलू जैसे जनप्रिय साग का अभाव है। इससे इस बात की पुष्टि होती है कि आलू भारतीय नहीं है। विदेश से आकर यहाँ भी फूला-फला है।

समिति स्व० सेठ छोटालाल केशवजी शाह के परिवार का आभार मानती है कि उन्होंने अपने प्रियजन की स्मृति में प्रस्तुत ग्रन्थ को प्रकाशित करवाने का खर्च अपने पास से दिया है। स्व० डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी, जो समिति की जैन साहित्य निर्माण-योजना के प्रेरक थे और डॉ० जैन के निर्देशक भी, के प्रति भी यह समिति हार्दिक आभार प्रकट करती है। पा० वि० शोध सस्थान के अध्यक्ष को भी समिति धन्यवाद देती है कि उनके निर्देशन में सस्थान उन्नतिशील हो रहा है।

फरीदाबाद

२४ ७. १९६७

}

- हरजसराय जैन
मन्त्री

प्राथमिक

सन् १९५६ मे एक धार्मिक परीक्षा के निमित्त मैने पहली बार यशस्तिलक पढा था, और तभी लगा था कि इस में बहुत कुछ ऐसा है, जो अबूझा बच जाता है। तब से वह बहुत कुछ जानने की साध मन मे बनी रही।

काशी आने के बाद प्रो० हृन्दिकी की 'यशस्तिलक एण्ड इडियन कल्चर' पुस्तक सामने आयी तथा डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल का सम्पर्क मिला तो वह साध और भी जगी।

जुलाई १९६० मे डॉ० अग्रवाल के निर्देशन में प्रस्तुत प्रबन्ध की रूपरेखा बनी और दिसम्बर १९६४ मे प्रबन्ध प्रस्तुत रूप में तैयार होकर हिन्दू विश्व-विद्यालय को परीक्षार्थ प्रस्तुत कर दिया गया। पुस्तक रूप मे प्रकाशित होते समय भी मैने इसमे आशिक परिवर्तन ही किये हैं। इससे यह भी ज्ञात होगा कि शोध-प्रबन्ध को अनावश्यक विस्तार और मोटापा देना अनिवार्य नहीं है।

मैने यशस्तिलक की अधिकतम सामग्री को निकाल कर उसके विषय मे भरसक पूर्ण जानकारी देने का प्रयत्न किया है। सोमदेव के लेखन की यह विशेषता है कि आगे-पीछे वह अपने शब्द-प्रयोग आदि के विषय में जानकारी देते चलते हैं, फिर भी जिस विषय का सोमदेव ने केवल उल्लेख मात्र किया है उसके विषय में सोमदेव के पूर्ववर्ती, समकालीन तथा उत्तरवर्ती मनीषियोंके ग्रन्थो से जानकारी प्राप्त की गयी है और उन सबको प्राचीन साहित्य, कला एव पुरा-तत्त्व की साक्षी पूर्वक जाँचा-परखा है।

प्रस्तुत प्रबन्ध में संगृहीत सपूर्ण सामग्री तथा उसकी प्रमाणक सामग्री मैने मूल स्रोतो से स्वय ही संगृहीत की है। आधुनिक अनुसंधाताओ के ग्रन्थो से जो सामग्री ली है, उसका यथास्थान उल्लेख किया है। मै पूर्णतया सचेष्ट रहा हूँ कि प्राचीन ग्रन्थो के किसी भी अप्रामाणिक सस्करण या किसी भी अमान्य नयी कृति का उपयोग सदर्थ ग्रन्थ के रूप मे न किया जाये। इस प्रकार प्रस्तुत प्रबन्ध की प्रत्येक सामग्री, उसके प्रस्तुतीकरण और विवेचन के लिए मै अपने को उत्तरदायी अनुभव करता हूँ। यदि कही कोई भूल-चूक भी हुई हो तो वह भी मेरी ही कहना चाहिये।

अपनी कृति के विषय में स्वयं कुछ कहना उचित नहीं लगता। यदि मनीषी विद्वान् यह अनुभव करेंगे कि प्रस्तुत प्रबन्ध आधुनिक साहित्यिक अनुसंधान की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है और इसके माध्यम से यशस्तिलक की महनीय सामग्री का भविष्य के शोध-प्रबन्धों, इतिहास-ग्रन्थों तथा शब्द-कोशों में उपयोग किया जा सकेगा, तो मैं अपने प्रयत्न को सार्थक समझूँगा। इस प्रबन्ध में मैंने उन्हीं विषयों को लिया है, जो प्रो० हन्दिकी के ग्रन्थ में नहीं आ पाये। इस दृष्टि से यह प्रबन्ध तथा प्रो० हन्दिकी का ग्रन्थ दोनों मिलकर यशस्तिलक के साहित्यिक, दार्शनिक तथा सांस्कृतिक अध्ययन को पूर्णता देंगे।

एक शोध-प्रबन्ध सोमदेव के राजनीतिक विचारों पर प्रो० पुष्यमित्र जैन ने आगरा विश्वविद्यालय को प्रस्तुत किया है। इस में विशेष रूप से सोमदेव के द्वितीय ग्रन्थ नीतिवाक्यामृत का अध्ययन किया गया है। यशस्तिलक की भी राजनीतिक सामग्री का उपयोग किया गया है। सोमदेव के समग्र अध्ययन की दिशा में यह एक पूरक इकाई का काम करेगा।

इन अध्ययन ग्रन्थों के बाद भी यह कहना उचित नहीं होगा कि सोमदेव का पूर्ण अध्ययन हो चुका। मैं तो इसे श्रीगणेश मात्र कहता हूँ। वास्तव में विभिन्न दृष्टिकोणों से सोमदेव की सामग्री का पृथक्-पृथक् अध्ययन-विवेचन आवश्यक है।

सोमदेव के समग्र अध्ययन के लिए इस समय जो सर्वप्रथम महत्त्वपूर्ण कार्य अपेक्षित है, वह है सोमदेव के दोनों उपलब्ध ग्रन्थों के प्रामाणिक संस्करण तैयार करने का। ऐसे संस्करण जिनमें इन ग्रन्थों से सम्बन्धित सम्पूर्ण प्रकाशित और अप्रकाशित सामग्री का उपयोग किया गया हो। अपने अनुसंधान काल में मुझे निरन्तर इस की तीव्र अनुभूति होती रही है। अभी तक दोनों ग्रन्थों के जो पूर्ण संस्करण निकले हैं, वे अशुद्धि-पुज तो हैं ही, अनेक दृष्टियों से अपूर्ण और अवैज्ञानिक भी हैं। इस के अतिरिक्त उन को प्रकाशित हुये भी इतना समय बीत गया कि बाजार में एक भी प्रति उपलब्ध नहीं होती।

यशस्तिलक का एक ऐसा संस्करण मैं स्वयं तैयार कर रहा हूँ, जिसमें श्रीदेव-के प्राचीन टिप्पण, श्रुतसागर की संस्कृत टीका तथा आधुनिक अनुसंधानों का तो पूर्ण उपयोग किया ही जायेगा, हिन्दी अनुवाद और सांस्कृतिक भाष्य भी साथ में रहेगा।

नीतिवाक्यामृत के संपादन का कार्य पटना के श्री श्रीधर वासुदेव सोहानी ने करने की रूचि दिखायी है। आशा है वे इसे अवश्य करेंगे। यदि किन्हीं कारणों वश न कर पाये, तो यशस्तिलक के बाद इसे भी मैं पूरा करने का प्रयत्न करूँगा।

सोमदेव को उपलब्धियों का अधिकाधिक उपयोग हो, यह मेरी भावना है। उन के शास्त्र में मेरी महती निष्ठा है। लगभग पाँच वर्षों तक उस में डूबे रहने पर भी मुझे सोमदेव से कही भी असहमत नहीं होना पडा। मेरी आस्था कभी तनिक भी नहीं डिगी। अपने सस्करण में मैं यह वताना चाहता हूँ कि सोमदेव ने एक भी शब्द का व्यर्थ प्रयोग नहीं किया, और उनके हर प्रयोग का एक विशेष अर्थ है।

अन्त में सोमदेव के ही पुण्यस्मरण पूर्वक श्रद्धेय डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल के प्रति श्रद्धा से अभिभूत हूँ, जिनके स्नेह, निर्देशन और प्रेरणा से प्रम्नुत प्रवन्ध का प्रणयन सम्भव हुआ। खेद है कि प्रकाशित रूप में देखने के लिए वे हमारे बीच नहीं हैं। उन्हें इस रूप में इसे देखकर हार्दिक प्रसन्नता होती।

श्री सोहनलाल जैनधर्म प्रचारक समिति के श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, वाराणसी ने दो वर्ष तक फेलोशिप और पुस्तकालय आदि की सुविधाएँ प्रदान की, उस के लिए सस्था के मन्त्री लाला हरजमराय जैन तथा प० कृष्णचन्द्राचार्य का हृदय से कृतज्ञ हूँ। डॉ० राय कृष्णदास, वाराणसी, डॉ० वी० राघवन्, मद्रास, डॉ० वी० एस० पाठक, वाराणसी, डॉ० आनन्दकृष्ण, वाराणसी, डॉ० ई० डी० कुलकर्णी, पूना, डॉ० कुमारी प्रेमलता शर्मा, वाराणसी आदि अनेक विद्वानों और भिन्नो का सहयोग उपलब्ध हुआ, उन सबका कृतज्ञ हूँ। प्रवन्ध में सदर्थ रूप से जिन प्राचीन और नवीन कृतियों का उपयोग किया गया है उन सभी के कृतिकारों का भी हृदय से कृतज्ञ हूँ। प्रवन्ध को प्रकाशित करने में पार्श्वनाथ विद्याश्रम के निदेशक डॉ० मोहनलाल मेहता ने पूर्ण सचि ली तथा शोच-सहायक पं० कपिलदेव गिरि ने पुस्तक की विस्तृत शब्दानुक्रमणिका तैयार की, इसके लिए दोनों का आभारी हूँ। इनके अतिरिक्त भी जाने-अनजाने जिनसे सहयोग प्राप्त हुआ उन सब के प्रति आभारी हूँ।

सत्यशासनपरीक्षा के वाद पुस्तक रूप में प्रकाशित यह मेरी द्वितीय कृति है। आशा है, विज्ञ-जन इसमें रही त्रुटियों की ओर ध्यान दिलाते हुए इसका समुचित मूल्यांकन करेंगे।

दिमम्बर १९६७ }



छोटालाल केशवजी शाह

श्री छोटालाल भाई का जन्म वि० स० १९३५ की आपाढ कृष्णा १३ गुरुवार के दिन सोनगढ के समीप दाठा ग्राम मे हुआ था । दो वर्ष के बालक को छोडकर इन के पिता श्री केशवजी भाई स्वर्गवासी हो गये । माता श्री पुरीवाई ने इन को तथा इन के छोटे भाई छगनलाल भाई को पालियाद मे प्रारम्भिक शिक्षण हेतु शाला मे प्रविष्ट कराया । सातवी गुजराती उत्तीर्ण करके श्री छोटालाल भाई स० १९५० में व्यवसाय के लिए बम्बई आ गये । पहले-पहल नौकरी की । इसके पश्चात् ई० सन् १९१३ में मुकादमी तथा क्लियरिंग एजेण्ट का धन्धा शुरू किया । व्यवसाय मे आप को कई वार आर्थिक कठिनाइयाँ भी आयी परन्तु उद्यम, लगन और प्रामाणिकता के कारण आप ने अच्छी सफलता प्राप्त की । सन् १९१७ में करनाक बन्दर, बम्बई मे लोहे की दुकान की और लोहे के प्रमुख व्यापारी के रूप में प्रख्यात हुए ।

सेठ श्री छोटालाल भाई बडे धर्म-प्रेमी और श्रद्धालु थे । साधु-मुनिराजो के प्रति आप की बहुत भक्ति थी । धार्मिक समारोहो के अवसर पर आप मुक्त हस्त से धन का सदुपयोग करते थे । उस समय बम्बई क्षेत्र में चीचपोकली के सिवाय अन्य कोई उपाश्रय नहीं था । इतनी दूर जाने मे नगर-निवासियो को असुविधा होती थी अत आपने और कतिपय अग्रगण्य बन्धुओ ने सवत् १९६१ में हनुमान गली में मेठ मगलदास नाथुभाई की वाडी में पूज्य श्री अमोलक ऋषिजी म० सा० का चातुर्मास करवाया । उस समय रत्न चिन्तामणि स्था० जैन मित्र मण्डल तथा जैन शाला की स्थापना में सेठ श्री का प्रमुख हाथ रहा । आप इन के प्रारम्भिक मत्री रहे । कादावाडी मे स्थानक निर्माणार्थ आप की ओर से रु० ५०००) प्रदान किये गये । ५० श्री रत्नचन्द्रजी ज्ञानमन्दिर को ५०००), बढवाण केम्प वोटिंग को ३०००), पार्श्वनाथ विद्याश्रम, बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी को ५०००), वोटोद गवर्नमेन्ट अस्पताल के बाल विभाग को २०००), व्यावर साहित्य प्रचारक समिति को ५००), आम्बिल ओली, बढवाण केम्प को ५००)—इस प्रकार अनेक सस्थाओ को आपने मुक्त हस्त से दान दिया । दीक्षा प्रसंग पर बरघोडा आदि में तथा अन्य समारोहो पर आपने हजारो रुपयो का सदुपयोग किया । आप की उदारता अनुकरणीय रही । आप के पास आशा लेकर आया हुआ कोई व्यक्ति खाली हाथ नहीं लौटा ।

सन् १९४७ मे भारत-पाकिस्तान के विभाजन के समय पाकिस्तान से जैन मुनियो को लाने के वास्ते आप ने खास तौर से चार्टर्ड वायुयान भेजा था ।

सेठ श्री की धर्मपत्नी श्रीमती कस्तूरबाई धार्मिक कार्यों मे सेठ सा० को सहयोग देती थी । तीन पुत्र और दो पुत्रियो को छोडकर स० १९८० में कस्तूरबाई का स्वर्गवास हो गया । सेठ साहव ने नई शादी की । नई धर्मपत्नी भी धार्मिक वृत्ति वाली थी । सन् १९४२ मे इनका भी स्वर्गवास हो गया ।

सन् १९४८ में सेठ सा० को लकवा हो गया । अनेक उपायो के बावजूद भी विशेष सुधार नही हो सका । सन् १९५९ में सेठ सा० देवलाली वायु-परिवर्तन हेतु गये थे । वही ६ जनवरी १९५९ को सेठ सा० का स्वर्गवास हो गया ।

सेठ सा० के व्यवसाय को उनके पुत्रो मे से तीसरे सुपुत्र श्री धीरजलाल भाई सँभाल रहे हैं । सेठ सा० के तीनो पुत्र भी अपनी धार्मिक वृत्ति से सेठ छोटालाल भाई की स्मृति-सौरभ मे वृद्धि कर रहे हैं ।

विषय-सूची

परिचय

.. .

१-२७

अध्याय एक : यशस्तिलक के परिशीलन की पृष्ठभूमि

परिच्छेद १ : यशस्तिलक और सोमदेव सूरी

....

२७-४१

यशस्तिलक का बाह्य स्वरूप, यशस्तिलक का रचनाकाल, कृष्णराज तृतीय का दानपत्र, दक्षिण के महाप्रतापी राष्ट्रकूट, यशस्तिलक का साहित्यिक स्वरूप, चम्पू की परिभाषा, यशस्तिलक काव्य की एक स्वतन्त्र विधा, यशस्तिलक का सांस्कृतिक स्वरूप, श्रीदेवकृत यशस्तिलक पत्रिका में उल्लिखित सत्ताईस विषय, श्रीदेव की सूची में और विषय जोड़ने की आवश्यकता, यशस्तिलक का प्रसार, यशस्तिलक के सस्करण तथा यशस्तिलक पर अब तक हुआ कार्य, निर्णयसागर प्रेस के सस्करण, प्रो० जे० एन० क्षीरसागर द्वारा सम्पादित प्रथम आश्वास, प्रो० के० के० हन्दिनी का यशस्तिलक एण्ड इडियन कल्चर, प० सुन्दरलाल शास्त्री द्वारा सम्पादित-अनुवादित-प्रकाशित यशस्तिलक पूर्वार्ध, प० कैलाशचन्द्र शास्त्री द्वारा सम्पादित-अनुवादित उपासकाध्ययन, विभिन्न पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित शोध-निबन्ध, सोमदेव का व्यक्तिगत जीवन, सोमदेव और चालुक्य सामन्त, अरिकेसरिन् तृतीय का दानपत्र, सोमदेव के उपलब्ध ग्रन्थ, अनुपलब्ध ग्रन्थ षण्णवतिप्रकरण, महेन्द्रमातलिसजल्प, युक्तिचिन्तामणिस्तव, स्याद्वादोपनिषत्, सोमदेव और कन्नौज से गुर्जर प्रतिहार नरेश, महेन्द्रमातलिसजल्प का संकेत, सोमदेव और महेन्द्रदेव के सबन्धों का ऐतिहासिक मूल्यांकन, महेन्द्रपालदेव प्रथम, महेन्द्रपालदेव द्वितीय, इन्द्र तृतीय, नीतिवाक्यामृत का रचनाकाल, देवसघ या गौडसघ, यशस्तिलक राष्ट्रकूट संस्कृति का दर्पण ।

परिच्छेद २ यशस्तिलक की कथावस्तु और उसकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

....

४२-४९

यशस्तिलक की संक्षिप्त कथा, कथा के माध्यम से नीति के उपदेश की प्राचीन परम्परा, मम्मट का काव्य प्रयोजन, सौन्दरनन्द और बुद्धचरित

का उद्देश्य, यशस्तिलक की मूल प्रेरणा, हिंसा और अहिंसा के द्वन्द्व का निदर्शन, गृहस्थ की चार प्रकार की हिंसा, सकल्पपूर्वक की गयी हिंसा के दुष्परिणाम और जनमानस की अहिंसा की ओर अभिरुचि ।

परिच्छेद ३ : यशोधरचरित्र को लोकप्रियता

५०-५६

उद्योतन सूरि की कुवलयमाला कहा में प्रभजन के यशोधरचरित्र का उल्लेख, हरिभद्र सूरि की समराञ्च कहा मे यशोधर की कथा, सोमदेव का संस्कृत यशस्तिलक, पुष्पदन्त का अपभ्रंश जसहर चरित, वादिराजकृत यशोधरचरित्र, वासवसेन का यशोधरचरित्र, वत्सराज का कथा-ग्रन्थ, वासवसेन द्वारा उल्लिखित हरिषेण का काव्य, सकल-कीर्ति, सोमकीर्ति, माणिक्य सूरि, पद्मनाभ, पूर्णभद्र तथा धर्मकल्याण के संस्कृत यशोधरचरित, अज्ञात कवि का यशोधरचरित्र, मल्लिभूषण, ब्रह्म नेमिदत्त तथा पद्मनाथ के ग्रन्थ, श्रुतसागर का संस्कृत यशोधरचरित्र, हेमकुजर की यशोधर कथा, जन्म कवि का कन्नड यशोधरचरित्र, पूर्णदेव, विजयकीर्ति तथा ज्ञानकीर्ति के यशोधरचरित्र, यशोधर चरित्र की चार और पाण्डुलिपियाँ, देवसूरि का यशोधरचरित्र, सोमकीर्ति का हिन्दी यशोधररास, परिहरानन्द, साह लौहट तथा खुशालचन्द्र के यशोधरचरित्र, अजयराज की यशोधर चौपई, गारवदास तथा पन्नालाल का यशोधरचरित्र, अज्ञात कवियों के यशोधर चरित्र, यशोधर जयमाल और यशोधर भाषा, सोमदत्त सूरि तथा लक्ष्मीदास का हिन्दी यशोधरचरित्र, जिनचन्द्र सूरि, देवेन्द्र, लावण्यरत्न तथा मनोहरदास के गुजराती यशोधरचरित्र, ब्रह्मजिनदास, जिनदास तथा विवेकराज का यशोधरदास, अज्ञात कवि की गुजराती यशोधर कथा चतुष्पदी, एक अज्ञात कवि का तमिल यशोधरचरित्र, चन्द्रन वर्णी तथा कवि चन्द्रम का कन्नड यशोधरचरित्र, कन्नड यशोधरचरित्र की दो और पाण्डुलिपियाँ ।

अध्याय दो : यशस्तिलककालीन सामाजिक जीवन

परिच्छेद १ . वर्ण-व्यवस्था और समाज-गठन

...

६०-६६

विभिन्न वर्गों में वर्गीकृत समाज, वर्णव्यवस्था की श्रौत-स्मार्त मान्यताएँ और उनका समाज तथा साहित्य पर प्रभाव, चतुर्वर्ण-ब्राह्मण, ब्राह्मण के लिए प्रयुक्त होने वाले विभिन्न शब्द—ब्राह्मण, द्विज, विप्र, भूदेव,

श्रोत्रिय, वाडव, उपाध्याय, मीहूर्तिक, देवभोगी, पुरोहित, त्रिवेदी । ब्राह्मणों की सामाजिक मान्यता, क्षत्रिय, क्षत्रियोकी सामाजिक मान्यता, वैश्य, वणिक, श्रेष्ठी, सार्थवाह, देशी तथा विदेशी व्यापार करने वाले वणिक, राज्यश्रेष्ठी, शूद्र, अन्त्यज, पामर, शूद्रों की सामाजिक मान्यता, अन्य सामाजिक व्यक्ति—हलायुवजीवि, गोप, ब्रजपाल, गोपाल, गोघ, तक्षक, मालाकार, कौलिक, ध्वज, निपाजीव, रजक, दिवाकीर्ति, आस्तरक, सवाहक, धीवर, धीवर के उपकरण—लगुड, गल, जाल, तरी, तर्प, तुवरतरग, तरण्ड, वेडिका, उडुप, चर्मकार, नट या शैलूप, चाण्डाल, शबर, किरात, वनेचर, मातंग ।

परिच्छेद २ · सोमदेवसूरि और जैनाभिमत वर्ण-व्यवस्था · ६७-७२

गृहस्थों के दो धर्म—लौकिक और पारलौकिक, लौकिक धर्म लोकाश्रित, पारलौकिक आगमाश्रित, जैन दृष्टि से मान्य विधि, वर्ण-व्यवस्था और नीतिवाक्यामृत, प्राचीन जैन साहित्य और वर्ण-व्यवस्था, सैद्धान्तिक ग्रन्थों में वर्ण और जाति का अर्थ, जटासिंहनन्दि (७ वीं शती) और वर्णव्यवस्था, रविपेणाचार्य (६७६ ई०) और वर्ण-व्यवस्था, जिनसेन (७८३ ई०) और वर्ण-व्यवस्था, श्रौत-स्मार्त मान्यताओं का जैनीकरण, सोमदेव के चिन्तन का निष्कर्ष, सोमदेव के चिन्तन का जैन दृष्टि से सामजस्य ।

परिच्छेद ३ : आश्रम-व्यवस्था और सन्यस्त व्यक्ति ··· ७३-८४

आश्रम-व्यवस्था की प्रचलित वैदिक मान्यताएँ, यशस्तिलक में आश्रम-व्यवस्था के उल्लेख, वाल्यावस्था और विद्याध्ययन, गुरु और गुरुकुलोपासना, विद्याध्ययन समाप्ति पर गोदान और गृहास्थाश्रम प्रवेश, वृद्धावस्था और सन्यास, अल्पावस्था में सन्यस्त होने का निषेध, आश्रम-व्यवस्था के अपवाद, जैनागम और बाल-दीक्षा, आश्रम-व्यवस्था की जैन मान्यताएँ । परिव्रजित व्यक्तियों के अनेक उल्लेख — आजीवक, आजीवक सम्प्रदाय के प्रणेता मखलिपुत्र गोशाल, गोशाल की मान्यताएँ, कर्मन्दी, पाणिनी में कर्मन्दी भिक्षुओं के उल्लेख, कर्मन्दी की ऐकान्तिक मोक्ष साधना, कापालिक, प्रबोधचन्द्रोदय में कापालिकों का उल्लेख, कुलाचार्य या कौल, कौल सम्प्रदाय की मान्यताएँ, कुमारश्रमण, चित्रशिखण्डि, जटिल, देशयति, देशक, नास्तिक, परिव्राजक, परिव्राट, पारासर, ब्रह्मचारी, भविल, महाव्रती, महाव्रतियों की भयकर साधनाएँ

महासाहसिक, महासाहसिको का आत्म-रुधिरपान, मुनि, मुमुक्षु, यति, यागज्ञ, योगी, वैखानस, शसितव्रत, श्रमण, साधक, साधु, सूरि, जितेन्द्रिय, क्षपण, श्रमण, आशाम्बर, नग्न, ऋषि, मुनि, यति, अनगार, शुचि, निर्मम, मुमुक्षु, शसितव्रत, वाचयम, अनूचान्, अनाश्वान्, योगी, पचाग्नि-साधक, ब्रह्मचारी, शिखोच्छेदी, परमहंस, तपस्वी ।

परिच्छेद ४ पारिवारिक जीवन और विवाह " ८५-९०

सयुक्त परिवार प्रणाली, वयोवृद्धो का आदर सम्मान, छोटे की मर्यादा, चिरपरिचित पारिवारिक सम्बन्ध, पति, पत्नी, पुत्र, बालक्रीडाओ का हृदयग्राही वर्णन, स्त्री के विभिन्न रूप— भगिनी, जननी, दूतिका, सहचरी, महानसकी, धातृ, भार्या । कन्यादान और विवाह—स्वयवर, स्वयवर आयोजन की विधि, स्वयवर की परपरा, माता-पिता द्वारा विवाह का आयोजन, विवाह की आयु, बाल-विवाह, सोमदेव के पूर्व बाल-विवाह की परम्परा, स्मृति-ग्रन्थो के उल्लेख, अलवरुनी की सूचना, बाल-विवाह के दुष्परिणाम ।

परिच्छेद ५ पाक-विज्ञान और खान-पान ९१-१०७

यशस्तिलक में प्राप्त खान-पान विषयक सामग्री की त्रिविध उपयोगिता, खाद्य और पेय वस्तुओ की लम्बी सूची, दशमी शती में भारतीय परिवारो की खान-पान व्यवस्था, ऋतुओ के अनुसार सतुलित एव स्वास्थ्यकर भोजन । पाकविद्या, त्रेसठ प्रकार के व्यजन, सूपशास्त्र विशेषज्ञ पोरोगव । विना पकाई गयी सामग्री—गोधूम, यव, दीदिवि, श्यामाक, शालि, कलम, यवनाल, चिपिट, सक्तू, मुद्ग, माप, विरसाल, द्विदल । घृत, दधि, दुग्ध, मट्टा आदि के गुण-दोष तथा उपयोग-विधि, भोजन के साथ जल पीने के गुण-दोष । जल अमृत या विष, ऋतुओ के अनुसार जल, ससिद्धजल, जल ससिद्ध करने की प्रक्रिया । मसाले—लवण, दरद, क्षपारस, मरिच, पिप्पली, राजिका । स्निग्ध पदार्थ, गोरस तथा अन्य पेय—घृत, आज्य, पृषदाज्य, तैल, दधि, दुग्ध, नवनीत, तक्र, कलि या अवन्तिसोम, नारिकेल फलाभ, पानक, शर्कराढ्य पय । मधुर पदार्थ—शर्करा, सिता, गुड, मधु, इक्षु । साग-सब्जी तथा फल—पटोल, कोहल, कारवेल, वृन्ताक, बाल, कदल, जीवन्ती, कन्द, किसलय, विप, वास्तूल तण्डुलीय, चिल्ली, चिर्भटिका, मूलक, आर्द्रक, धात्रीफल, एवीर, अलावू, कर्कारु, मालूर, चक्रक, अग्निदमन, रिगणीफल, अगस्ति, आम्र,

धाम्रातक, पिचुमन्द, सोभाजन, बृहतीवार्ताक, एरण्ड, पलाण्डु, वल्लक, रालक, कोकुन्द, काकमाची, नागरग, ताल, मन्दर, नागवल्ली, वाण, असन, पूग, अक्षोल, खर्जूर, लवली, जम्बीर, अश्वत्थ, कपित्थ, नमेरु, राजादन, पारिजात, पनस, ककुभ, वट, कुरवक, जम्बू, दर्दरीक पुण्ड्रेक्षु, मृद्वीका, नारिकेल, उदुम्बर, प्लक्ष । तैयार की गयी सामग्री— भक्त, सूप, शङ्कुली, समिव, यवागू, मोदक, परमान्न, खाण्डव, रसाल, आमिक्षा, पक्वान्न, अवदश, उपदश, सर्पिपिस्तात, अगारपाचित, दध्नापरिप्लुत, पयसा विशुष्क, पर्पट । मासाहार और मासाहार निषेध—जैनधर्म में मासाहार का विरोध, कौल, कापालिक आदि सम्प्रदायो में मासाहार की धार्मिक अनुमति, वध्य पशु-पक्षी—मेप, महिप, मय, मातंग, मितद्रु, कुभीर, मकर, सालूर, कुलीर, कमठ, पाठीन, भेरुण्ड, क्रीच, कोक, कुर्कुट, कुरर, कलहस, चमर, चमूर, हरिण, हरि, वृक, वराह, वानर, गोखुर । क्षत्रिय तथा ब्राह्मण परिवारो में मास का व्यवहार, यज्ञ और श्राद्ध में मास प्रयोग, मनुस्मृति की साक्षी, छोटी जातियो में मास प्रयोग, मासाहार-निषेध ।

परिच्छेद ६ : स्वास्थ्य, रोग और उनकी परिचर्या

१०८-१२०

खान-पान और स्वास्थ्य का अनन्य सम्बन्ध, मनुष्यो की विभिन्न प्रकार की प्रकृति, जठराग्नि, ऋतुओ के अनुसार प्रकृति परिवर्तन, ऋतु-चर्या, ऋतुओ के अनुसार खाद्य और पेय । भोजन-पान के विषय में अन्य जानकारी—भोजन का समय, सह भोजन, भोजन के समय वर्जनीय व्यक्ति, अभोज्य पदार्थ, भोज्य पदार्थ, विषयुक्त भोजन, भोजन के विषय में अन्य नियम, भोजन करने की विधि । रात्रिशयन या निद्रा । नीहार या मलमूत्र विसर्जन, तैल मालिश, उवटन, स्नान, स्नानोपरान्त भोजन, व्यायाम । रोग और उनकी परिचर्या—अजीर्ण—विदाहि और दुर्जर, अजीर्ण के कारण, अजीर्ण के प्रकार, अजीर्ण की परिचर्या, दृग्मान्द्य, वमन, ज्वर, भगन्दर, उसका पूर्वरूप, लक्षण, प्रकार और उसकी परिचर्या, गुल्म, सितशिवत । औषधिया—मागधी, अमृता, सोम, विजया, जम्बूक, सुदर्शना, मरुद्भव, अर्जुन, अभीरु, लक्ष्मी, वृती, तपस्विनी, चन्द्रलेखा, कलि, अर्क, अरिभेद, शिवप्रिय, गायत्री, ग्रन्थिपर्ण, पारदरस । आयुर्वेद विशेषज्ञ आचार्य—काशिराज, निमि, चारायण, धिपण, चरक ।

तीन प्रकार के वस्त्र—(१) सामान्य वस्त्र, (२) पोशाकें या पहनने के वस्त्र, (३) अन्य गृहोपयोगी वस्त्र ।

सामान्य वस्त्र—नेत्र—नेत्र के प्राचीनतम उल्लेख, डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल द्वारा नेत्र वस्त्र पर प्रकाश, कालिदास का उल्लेख, वाणभट्ट के साहित्य में नेत्र, उद्योत्तनसूरि (७७९ ई०) कृत कुवलयमाला में नेत्र-वस्त्र, चौदह प्रकार के नेत्र, चौदहवीं शती तक बगाल में नेत्र का उपयोग, नेत्र की पाचूड़ी, जायसी के पदमावत में नेत्र, भोजपुरी लोक-गीतो में नेत्र । चीन—चीन देश से आने वाला वस्त्र, भारत में चीनी वस्त्र आने के प्राचीनतम प्रमाण, बृहत्कल्पसूत्र में चीनाशुक की व्याख्या, चीन और बाल्हीक से आने वाले अन्य वस्त्र । चित्रपटो—वाणभट्ट की साक्षी, चित्रपट के तकिए । पटोल, गुजरात की पटोला साडी, पटोल की बिनावट का विशेष प्रकार । रल्लिका, रल्लक मृग या एक प्रकार का जगली बकरा, रल्लक की ऊन से बने वेशकीमती गरम वस्त्र, युवाग च्वाग के उल्लेख । दुकूल, दुकूल की पहचान, आचाराग, निशीथचूर्णि तथा अर्थशात्र में दुकूल के उल्लेख, बगाल पौडू तथा सुवर्ण-कुड्या के दुकूल वस्त्र, दुकूल की विनाई का विशेष प्रकार, डॉ० अग्रवाल की व्याख्या, दुकूल का जोडा पहिनने का रिवाज, हस मिथुन लिखित दुकूल के जोडे, दुकूल का जोडा पहनने की अन्य साहित्यिक साक्षी, दुकूल की साडियाँ, पलगपोश, तकियो के गिलाफ आदि, दुकूल और क्षीम वस्त्रों में पारस्परिक अन्तर और समानता, कोशकारो की साक्षी । अशुक—कई प्रकार के अशुक, भारतीय तथा चीनी अशुक, रगीन अशुक, अशुक की विशेषताएँ । कौशेय—कौशेय के कीडे, कौशेय की पहचान, कौशेय की चार योनियाँ । पोशाकें या पहनने के वस्त्र—कचुक, वारवाण, वारबाण की पहचान, वारबाण एक विदेशी वेश-भूषा, भारतीय साहित्य में वारबाण के उल्लेख, चोलक, चोलक एक सम्भ्रान्त पहनावा, नौशे के अवसर पर चोलक का उपयोग, चोलक एक विदेशी पहनावा, चोलक के विषय में अब तक प्राप्त अन्य जानकारी । चण्डातक, उष्णीष, कौपीन, उत्तरीय, चीवर, आवान, परिधान, उपसव्यान, परिधान और उपसव्यान में अन्तर, गुह्या, हसतूलिका, उपघान, कन्था, नमत, निचोल, या चन्दोवा, सिचयोल्लोच और वितान ।

परिच्छेद ८ : आभूषण

...

१४०-१५१

शिरोभूषण—क्रिरीट, मौलि, पट्ट, मुकुट । कर्णभूषण—अवतंस, पल्ल-
वावतंस, पृष्ठावतंस, कर्णपू, ऋणिका, कर्णोत्पल, कुण्डल । गले के
आभूषण—एकावली, कण्ठिका, हार, हार्यष्टि, नोक्तिसदाम । मुँहा के
आभूषण—अंगद, केयूर । कलाई के आभूषण—अंगूठ, इलय । अंगुलियों
के आभूषण—उर्मिका, अंगुलीयक । कटि के आभूषण—कांची, मेन्वला,
रसना, सारसना, वर्धरमालिका । पैर के आभूषण—सजीर, हिंजीरक,
नूपुर, तुलाकोटि, हस्तक ।

परिच्छेद ९ : केन-विन्यास, प्रसावन-सामग्री तथा पृष्य

प्रसावन

...

..

१५२-१६०

केय वृषाना, आच्यानित केय, अलकजाल, कुन्तलकलाप, केयपाद्य,
त्रिकुरांग, शम्भिलविन्यास, मौली, सीमन्त-सन्तति, वेणुदण्ड, जूट,
कवरी । प्रसावन-सामग्री—अंजन, कज्जल, अगूर, अलक्तक, कुकुम,
कपूर, चन्द्रकवल, तमालदलवूलि, ताम्बूल, पदमास, पिष्टातक, मन-
सिन्धु, मृगमद, यक्षचर्म, हरिरोहण, सिन्दूर । पृष्य प्रसावन—अवतंस-
कुवलय, कमलकेयूर, कदलीप्रवालमेखला, कर्णोत्पल, कर्णपूर, मृणाल-
वलय, पृष्ठागमाला, बन्धूकनूपुर, शिरीषजंवालाङ्कार, शिरीषकुमुदाम,
विचञ्चिलहार्यष्टि, कुरवकमुकुलतक ।

परिच्छेद १० : शिक्षा और साहित्य

..

१६१-१८८

शिक्षा का काल, गुरुकुल प्रणाली शिक्षा का आदर्श, शिक्षा समाप्ति के
उपरान्त गोदान । शिक्षा के विषय, इन्द्र, जैनेन्द्र, चन्द्र, व्यापिशाल,
पाणिनि तथा पतञ्जलि के व्याकरणों का अध्येतन, गणितशास्त्र, गणित-
शास्त्र के आचार्य, मिश्रमुत्र और पारिश्कक, प्रमाणशास्त्र और उस के
प्रतिष्ठापक आचार्य मट्ट अकलंक, राजनीति और नीतिशास्त्र के
आचार्य गुरु, शूक्र, विशालाक्ष परीक्षित, पाराशर, भीम, भीष्म तथा
भारद्वाज । गज-विद्या, गज-विद्या विशेषज्ञ आचार्य—रोमपाद, उभचारो
वाजवल्क्य, वाद्वलि या वाहलि, नर, नारद, राजपुत्र तथा गौतम, अश्व-
विद्या, अश्व-विद्या विशेषज्ञ रैवत, शालिहोत्र, शालिहोत्रकृत रैवत स्तोत्र,
रत्नपरीक्षा, शूकनास और अगस्त्य, बुद्धमद्वृत रत्नपरीक्षा और
उसका उद्धरण । आयुर्वेद और काशिराज बन्धन्तरि, आयुर्वेद विशेषज्ञ
आचार्य—वाराहण, निमि, विष्णु और चरक । ससर्ग-विद्या या नाट्य

शास्त्र । चित्रकला और शिल्पशास्त्र । कामशास्त्र और दत्तक, वात्स्यायन का कामसूत्र, रतिरहस्य, चौसठ कलायें, भोगावलि या राजस्तुति । काव्य और कवि—उर्व, भारवि, भवभूति, भर्तृहरि, भर्तृमेष्ठ, कण्ठ, गुडादय, व्यास, भास, बोस, कालिदास, बाण, मयूर, नारायण, कुमार, राजशेखर, ग्रहिल, नीलपट, वररुचि, त्रिदश, कोहल, गणपति, शंकर, कुमुद, तथा कैकट । दार्शनिक और पौराणिक साहित्य । गज-विद्या—गज शास्त्र सम्बन्धी पारिभाषिक शब्द, यशोधर के पट्ट वन्वोत्सव के हाथी का वर्णन, गज के अन्तरग-ब्राह्मणुणो का विचार-उत्पत्तिस्थान, कुल, प्रचार, देश, जाति, सस्थान, उत्सेध, आयाम, परिणाह, आयु, छवि, वर्ण, प्रभा, छाया, आचार, शील, शोभा आवेदिता, लक्षण-व्यजन, बल, धर्म, वय और जव, अश, गति, रूप, सत्त्व, स्वर, अनूक, तालु, अन्तरास्य, उरोमणि, विक्षोभकटक, कपोल, सूक्व, कुम्भ, कन्धरा, केश, मस्तक, आसनावकाश, अनुवश, कुक्षि, पेचक, वालधि, पुष्कर, अपर, कोश । गजोत्पत्ति-पौराणिक तथ्य, गज के भेद-भद्र, मन्द, मृग, सकीर्ण, यागनाग । मदावस्थाएँ तथा उनका चौदह प्रकार का उपचार । गजशास्त्र विशेषज्ञ आचार्य, गजपरिचारक, गज शिक्षा, गजदर्शन और उसका फल, गजशास्त्र के कतिपय विशिष्ट शब्द । अश्व-विद्या—अश्व के ४३ गुण, अन्य गुणो की तुलनात्मक जानकारी, अश्व के पर्यायवाची शब्द, अश्व-विद्याविद् ।

परिच्छेद ११ कृषि तथा वाणिज्य आदि

१८९-१९९

कृषि, कृषि योग्य जमीन, सिंचाई के साधन, सहज प्राप्य श्रमिक, उचित कर । बीज वपन, लुनाई तथा दौनी । ऊसर जमीन । वाणिज्य-स्थानीय व्यापार, हर सामग्री की अलग-अलग हाटें, व्यापार के केन्द्र-पैण्ठास्थान, पैण्ठास्थानो की व्यवस्था । सार्थवाह और विदेशी व्यापार, सुवर्णद्वीप और ताम्रलिप्ति का व्यापार । विनिमय, वस्तु-विनिमय, विनिमय के साधन, निष्क, कार्षापण, सुवर्ण । न्यास, न्यास रखने का आधार, न्यास धरने वाले की दुर्बलताएँ । भूति या नौकरी तथा नौकरी के प्रति जन साधारण की धारणाएँ ।

परिच्छेद १२ शस्त्रास्त्र

२००-२१९

छत्तीस प्रकार के आयुध और उनका परिचय-धनुष, धनुर्वेद, शराम्यासभूमि, धनुष चलाने की प्रक्रिया, धनुर्वेद विशेषज्ञ, धनुर्वेद की

विशिष्ट शब्दावली । असिधेनुका या शस्त्री, असिधेनुका के प्रहार का तरीका, असिधेनुकाधारकी सैनिक । कर्तरी, कटार, कृपाण, खड्ग, कौक्षेयक या करवाल, तरवारि, भुसुडि, मण्डलाग्र, असिपत्र, अशनि, शिल्प और चित्रो में अशनि का अंकन, साहित्य में अशनि के उल्लेख, अशनिधारी सैनिक, अकुश, अकुश का अपरिवर्तित स्वरूप, शिल्प और चित्रो में अकुश का अंकन, कणय, कणय की पहचान, परशु या कुठार, प्रास, कुन्त, भिन्दिपाल, करपत्र, गदा, दुस्फोट, मुद्गर, परिघ, दण्ड, पट्टिस, चक्र, भ्रमिल, यष्टि, लागल, शक्ति, त्रिशूल, शकु, पाश, वागुरा, क्षेपणिहस्त और गोलघर ।

अध्याय तीन : ललित कलाएँ और शिल्प-विज्ञान

परिच्छेद १ गीत, वाद्य और नृत्य

... २२३-२४०

तौर्यंत्रिक, भरतमुनि और उनका नाट्यशास्त्र, संगीत का महत्त्व और प्रसार, गीत और स्वर का अनन्य संबध, सप्त स्वर, वाद्यो के लिए सामान्य शब्द आतोद्य, वाद्यो के चार भेद, घन, सुषिर, तत और अवनद्ध वाद्य, यशस्तिलक में उल्लिखित तेईस प्रकार के वाद्ययन्त्र, शंख, शख की सर्वश्रेष्ठ जाति पाचजन्य, शख एक सुषिर वाद्य, शख के प्राप्ति स्थान, शख प्रकृति-द्वारा प्रदत्त वाद्य, वाद्योपयोगी शख, शख से राग-रागनिर्याँ निकालना । काहला, काहला की पहचान, उडीसा में अब भी काहला का प्रयोग । दुदुभि, दुदुभि एक अवनद्ध वाद्य, प्राचीन काल से दुदुभि का प्रचार । पुष्कर, पुष्कर का अर्थ, अवनद्ध वाद्यो के लिए पुष्कर सामान्य शब्द, महाभारत और मेघदूत में पुष्कर के उल्लेख । ढक्का, ढक्का की पहचान, ढक्का और ढोल । आनक, आनक एक मुँह वाला अवनद्ध वाद्य, नौवत या नगाडा और आनक । भम्भा, भम्भा एक अप्रसिद्ध वाद्य, साहित्य में भम्भा के उल्लेख, भम्भा एक अवनद्ध वाद्य । ताल, ताल एक प्रमुख घन वाद्य, ताल बजाने का तरीका, करटा एक अवनद्ध वाद्य, त्रिविला या त्रिविली, डमरुक, रुजा, रुजा की पहचान, घटा, वेणु, वीणा, झल्लरी, बल्लकी, पणव, मृदग, भेरी, तूर्य या तूर, पटह और डिण्डिम । नृत्य, नाट्यशास्त्र, नाट्यशाला नाट्यमंडप के तीन प्रकार, अभिनय और अभिनेता, रगपूजा, नृत्य के भेद, नृत्य, नाट्य और नृत्त में पारस्परिक अन्तर, नृत्त के भेद, लास्य और ताण्डव ।

भित्तिचित्र, भित्तिचित्र बनाने की विशेष प्रक्रिया, भीत का पलस्तर तैयार करना और उस पर आकार टीपना । सोमदेव द्वारा उल्लिखित जिनालय के भित्तिचित्र, बाहुबलि, प्रद्युम्न, सुपार्व्व, अशोक राजा और रोहिणी रानी तथा यक्ष-मिथुन के भित्तिचित्र । तीर्थंकर की माता के सोलह स्वप्नी का चित्राकन—ऐरावत हाथी, वृषभ, सिंह, लक्ष्मी, पुष्पमालाएँ, चन्द्र और सूर्य, मत्स्ययुगल, पूर्णकुम्भ, पद्म सरोवर, सिंहासन, समुद्र, फणयुक्त सर्प, प्रज्वलित अग्नि, रत्नों का ढेर और देवविमान । रगावलि या घूलि-चित्र, घूलिचित्रके दो भेद, घूलिचित्र बनाने का तरीका । प्रजापतिप्रोक्त चित्रकर्म और उसका उद्धरण, तीर्थंकर के समवशरण का चित्र बनाने वाला कलाकार । चित्रकला के अन्य उल्लेख, केतुकाण्डचित्र, चित्रार्पित द्विप, झरोखो से झाँकती हुई कामिनियाँ ।

चैत्यालय, चैत्यालयो के उन्नत शिखर, शिखर-निर्माण का विशेष शिल्प-विधान, अटनि पर सिंह निर्माण की प्रक्रिया, आमलासार कलश तथा स्वर्णकलश, ध्वजस्तम्भ, स्तम्भिकाएँ और ध्वजदण्ड, चन्द्रकान्त के प्रणाल, किंपिरि, विटक, पालिध्वज, स्तूप । त्रिभुवनतिलकप्रासाद, उत्तुगतरगतोरण, रत्नमयस्तम्भ । त्रिभुवनतिलकप्रासाद के वर्णन में आयी महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ—पुरदरागार, चित्रभानुभवन, धर्मधाम, पुण्य-जनावास, प्रचेत पस्त्य, वातोदवसित, घनदधिष्ण्य, ब्रध्नसौध, चन्द्र-मन्दिर, हरिरोह, नागेशनिवास तथा तण्डुमवन । आस्थानमण्डप का विस्तृत वर्णन, आस्थानमण्डप के निकट गज और अश्वशाला, सरस्वती-विलासकमलाकर नामक राजमन्दिर, दिग्बलयविलोकनविलास नामक भवन, करिविनोदविलोकनदोहन नामक क्रीडाप्रासाद, मनसिज-विलासहसनवासतामरस नामक अन्त पुर, दीर्घिका का विस्तृत वर्णन, पुष्करणी, गधोदक कूपक्रीडावापी, हर्षचरित और कादम्बरी मे दीर्घिका वर्णन, मुगलकालीन महलो की नहरे विहिस्त, खुसर परवेज के महल की नहर, हेम्टन कोर्ट का लाग वाटर केनाल । प्रमदवन, प्रमदवन के विभिन्न अग ।

परिच्छेद ४ : यन्त्रशिल्प

२५८-२६४

यन्त्रधारागृह का विस्तृत वर्णन, यन्त्रजलधर या मायामेघ, पांच प्रकार के वारिगृह, यन्त्रव्याल और उनके मुँह से झरता हुआ जल, यन्त्रहंस, यन्त्रगज, यन्त्रमकर, यन्त्रवानर, यन्त्रदेवता, यन्त्रवृक्ष, यन्त्र पुतलिकायें, यन्त्रधारागृह का प्रमुख आकर्षण यन्त्रस्त्री, यन्त्र-पर्यंक, यान्त्रिक-शिल्प की उपयोगिता ।

अध्याय चार : सोमदेवकालोन भूगोल

परिच्छेद १ : जनपद

....

२६७-२८१

अवन्ति, अवन्ति की राजधानी उज्जयिनी, अंग और उसकी राजधानी चम्पा, वसुवर्धन नृप और लक्ष्मीमति रानी, अश्मक-अश्मन्तक, सपाद-लक्ष-वर्वर, राजधानी पोदनपुर, पाली साहित्य का अस्सक, अन्ध्र की पुष्प-प्रसाधन परम्परा, इन्द्रकच्छ रोस्कपुर, वीद्ध ग्रन्थो का रोस्क, औद्दयन राजा, कम्बोज-बाल्हीक, कर्णाट, करहाट, कर्लिंग, कर्लिंग के विशिष्ट हाथी, महेन्द्रपर्वत, समुद्रगुप्त प्रशस्ति का उल्लेख, क्रथकैशिक, कांची, काशी, कीर, कुरुजागल, कुन्तल, केरल, कौंग, कौशल, गिरि-कूटपत्तन, चेदि, चेरम, चोल, जनपद, डहाल, दशार्ण, प्रयाग, पल्लव, पाचाल, पाण्डु या पाण्ड्य, भोज, वर्वर, मद्र, मलय, मगध, यौधेय, लम्पाक, लाट, वनवासी, वग या वगाल, वगी, श्रीचन्द्र, श्रीमाल, सिन्धु, सूरसेन, सौराष्ट्र, यवन, हिमालय ।

परिच्छेद २ : नगर और ग्राम

....

२८२-२९१

अहिच्छत्र, अयोध्या, उज्जयिनी, एकचक्रपुर, एकानसी, कनकगिरि, ककाहि, काकन्दी, काम्पिल्य, कुशाग्रपुर, किन्नरगीत, कुसुमपुर, कौशाम्बी, चम्पा, चुकार, ताम्रलिप्ति, पद्मावतीपुर, पद्मनीखेट, पाटलि-पुत्र, पोदनपुर, पौरव, बलवाहनपुर, भावपुर, भूमितिलकपुर, उत्तर मथुरा, दक्षिण मथुरा या मद्दुरा, मायापुरी, मिथिलापुर, माहिष्मती, राजपुर, राजगृह, बलभी, वाराणसी, विजयपुर, हस्तिनापुर, हेमपुर, स्वस्तिमति, सोपारपुर, श्रीसागरम् या सिरीसागरम्, सिंहपुर, शखपुर ।

परिच्छेद ३ : बृहत्तर भारत

....

२९२-२९३

नेपाल, सिंहल, सुवर्ण द्वीप, विजयार्ध तथा कुलूत ।

परिच्छेद ४ वन और पर्वत

... २९४-२९६

कालिदासकानन, कैलास, गन्धमादन, नाभिगिरि, नेपाल शैल, प्रागद्रि, भीमवत, मन्दर, मलय, मुनिमनोहरमेखला, विन्ध्य, शिखण्डिताण्डव, सुवेला, सेतुबन्ध और हिमालय ।

परिच्छेद ५ सरोवर और नदियाँ

.... २९७-२९९

मानसरोवर, गगा, जलवाहिनी, यमुना, नर्मदा, गोदावरी, चन्द्रभागा, सरस्वती, सरयू, शोण, सिन्धु और सिप्रा नदी ।

अध्याय पाँच : यशस्तिलक की शब्द-सम्पत्ति

.... ३०३

इस अध्याय में यशस्तिलक के विशिष्ट शब्दों पर अकारादि क्रम से विचार किया गया है ।

चित्रफलक

सहायक ग्रन्थ-सूची

शब्दानुक्रमणिका



मतिरुखेरभवदिद सूक्तिपयः सुकृतिनां पुण्यै ।

—यशस्तिलक

सोमदेव दशमी शती के एक बहुप्रज्ञ विद्वान् थे। उनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा और प्रकाण्ड पाण्डित्य का पता उनके प्राप्त साहित्य तथा ऐतिहासिक तथ्यों से लगता है। वे एक उद्भूट तार्किक, सरस साहित्यकार, कुशल राजनीतिज्ञ, प्रबुद्ध तत्त्वचिन्तक, सफन समाजशास्त्री, समान्य जन-नेता और क्रान्तदृष्टा धर्माचार्य थे। उनकी निर्मल प्रज्ञा नवनवोन्मेषशालिनी थी। वे बिम्बग्राहिणी प्रतिभा के धनी थे। ज्ञान-विज्ञान की विभिन्न शाखाओं के तलस्पर्शी अध्ययन में उनकी दृढ निष्ठा थी। बड़े-बड़े राजतन्त्रों के निकट सपर्क से उनके ज्ञान-कोष में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति और विभिन्न सस्कृतियों की प्रभूत जानकारी सगृहीत हुई थी। जैन साधु की प्रवास-प्रवृत्ति के कारण सहज ही उन्हें लोका-नुवीक्षण का सुयोग प्राप्त हुआ। विद्या-गोष्ठियों तथा वाग्युद्धों ने उनकी विद्वत्ता को और अधिक विस्तार और निखार दिया। धार्मिक क्रान्ति ने उन्हें समान्य जन-नेता और सफन समाजशास्त्री बनाया। शास्त्रों के निरन्तर स्वाध्याय और विद्वान् मनीषियों के अर्हनिश सान्निध्य से उनकी व्युत्पत्ति अजस्र रूप से वृद्धिगत होती रही।

इस प्रकार सोमदेव की प्रज्ञा के अथाह सागर में ज्ञान की अनेक सरितायें व्युत्पत्ति की अपार जलराशि ला-लाकर उडेलती रही। और तब उनके प्रज्ञा-पुरुष ने एक ऐसे शास्त्र-सर्जन का शुभ सकल्प किया जो समस्त विषयों की व्युत्पत्ति का साधन हो (यद्व्युत्पत्त्यै सकलविषये, पृ० ५।८)। यशस्तिलक उनके इसी पुनीत सकल्प का मधुर फल है। जीवनभर तर्क की सूखी घास खानेवाली उनकी प्रज्ञा-सुरभि ने जो यह काव्य का मधुर दुग्ध दिया, उसे उन्होंने सुकृति-जनो के पुण्य का फल माना है (पृ० ६)।

इस विशिष्ट कृति के लिए उन्होंने महाराज यशोधर के लोकप्रिय चरित्र को पृष्ठभूमि के रूप में चुना। केवल गद्य या केवल पद्य इसके लिए उन्हें पर्याप्त नहीं लगा। इसलिए उन्होंने यशस्तिलक में दोनों का समावेश किया है। कही-कही कथनोपकथन भी आये हैं। पूरे ग्रन्थ में दो हजार तीन सौ ग्यारह पद्य तथा शेष भाग गद्य है। स्वयं सोमदेव ने गद्य और पद्य दोनों को मिलाकर आठ हजार श्लोकप्रमाण बताया है (एतामष्टसहस्रीम्, पृ० ४१८ उक्त०)। पूरा ग्रन्थ प्रौढ सस्कृत में रचा गया है और आठ आश्वासो में विभक्त

है। प्रथम आश्वास कथावतार या कथा की पृष्ठभूमि के रूप में है। और अन्त के तीन आश्वासों में उपासकाध्ययन अर्थात् जैन गृहस्थ के आचार का विस्तृत वर्णन है। यशोधर की वास्तविक कथा बीच के चार आश्वासों में स्वयं यशोधर के मुँह से कहलायी गयी है। बाण की कादम्बरी की तरह कथा जहाँ से प्रारंभ होती है, उसकी परिसमाप्ति भी वही आकर होती है। महाराज शूद्रक की सभा में लाया गया वैशम्पायन शुक कादम्बरी की कथा कहना प्रारंभ करता है और कथावस्तु तीन जन्मों में लहरिया गति से घूमकर फिर यथास्थान पहुँच जाती है। सम्राट मारिदत्त द्वारा आयोजित महानवमी के अनुष्ठान में अपार जनसमूह के बीच बलि के लिए लाया गया परिव्रजित राजकुमार यशस्तिलक की कथा का प्रारंभ करता है और रथ के चक्र की तरह एक ही फेरे में आठ जन्मों की कहानी पूरी होकर अपने मूल सूत्र से फिर जुड़ जाती है।

साहित्यिक दृष्टि से यशस्तिलक एक महनीय कृति है। यशस्तिलक के पूर्व लगभग एक सहस्र वर्षों में संस्कृत साहित्यरचना का जो क्रमिक विकास हुआ, उसका और अधिक परिष्कृत रूप यशस्तिलक में दृष्टिगोचर होता है।

एक उत्कृष्ट काव्य के विशेष गुणों के अतिरिक्त यशस्तिलक में ऐसी प्रचुर सामग्री है, जो इसे प्राचीन भारत के सांस्कृतिक इतिहास तथा ज्ञान-विज्ञान की अनेक विधाओं से जोड़ती है। पुरातत्त्व, इतिहास, कला और साहित्य के साथ तुलना करने पर इसकी प्रामाणिकता और उपयोगिता भी परिपुष्ट होती है। इस दृष्टि से भी यशस्तिलक कालिदास और बाण की परंपरा में महत्वपूर्ण नवीन कड़ी जोड़ता है। कालिदास और बाणभट्ट ने अपने महत्वपूर्ण ग्रन्थों में भारतीय संस्कृति के सग्रथन का जो कार्य प्रारंभ किया था, सोमदेव ने उसे और अधिक आगे बढ़ाया। एक बड़ी विशेषता यह भी है कि सोमदेव ने जिस विषय का स्पर्श भी किया उसके विषयमें पर्याप्त जानकारी दी। इतनी जानकारी कि यदि उसका विस्तार से विश्लेषण किया जाये तो प्रत्येक विषय का एक लघुकाव्य स्वतंत्र ग्रन्थ बन सकता है। निःसंदेह सोमदेव को अपने इस सकल्प की पूर्ति में पूर्ण सफलता मिली कि उनका शास्त्र समस्त विषयों की व्युत्पत्ति का साधन बने। दशमी शताब्दी तक की अनेक साहित्यिक और सांस्कृतिक उपलब्धियों का मूल्यांकन तथा उस युग का एक सम्पूर्ण चित्र यशस्तिलक में उतारा गया है। वास्तव में यशस्तिलक जैसे महनीय ग्रन्थ की रचना दशमी शती की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। स्वयं सोमदेव के शब्दों में यह एक महान् अभिधानकौश है (अभिधाननिघानेऽस्मिन्, पृ० ४१८ उक्ता०)।

यशस्तिलक में सामग्री की जितनी विविधता और प्रचुरता है, उतनी ही उसकी विवेचन-शैली और शब्द-सम्पत्ति की दुरूहता भी । इसलिए जिस वैदुष्य और यत्न पूर्वक सोमदेव ने यशस्तिलक की रचना की, शायद ही उससे कम वैदुष्य और प्रयत्न उसके हार्द को समझने में लगे । संभवतया इसी दुरूहता के कारण यशस्तिलक साधारण पाठको की पहुँच से दूर बना आया, फिर भी दक्षिण भारत से लेकर उत्तर भारत, राजस्थान और गुजरात के शास्त्र भण्डारों में उपलब्ध यशस्तिलक की हस्तलिखित पाण्डुलिपियाँ और बाद के साहित्यकारों पर यशस्तिलक का प्रभाव इसके प्रमाण हैं कि पिछली शताब्दियों में यशस्तिलक का संपूर्ण भारतवर्ष में मूल्यांकन हुआ, किन्तु वास्तव में लगभग सहस्र वर्षों में जितना प्रसार होना चाहिए था, उतना नहीं हुआ । और इसका बहुत बड़ा कारण इसकी दुरूहता ही लगता है ।

इस शताब्दी में पीटरसन, विन्टरनिट्ज और कीथ जैसे पाश्चात्य विद्वानों का ध्यान यशस्तिलक की महत्ता और उपयोगिता की ओर आकर्षित हुआ है । भारतीय विद्वानों ने भी अपनी इस निधि की ओर अब दृष्टि डाली है ।

सम्पूर्णा यशस्तिलक श्रुतसागर की अपूर्णा संस्कृत टीका के साथ अभी तक केवल एक ही बार लगभग पैंसठ वर्ष पूर्व (सन् १९०१, १९०३) प्रकाशित हुआ था जो अब अप्राप्य है । प्रो० कृष्णकान्त हन्दि की का अध्ययन ग्रन्थ शोलापुर से सन् १९४९ में 'यशस्तिलक एण्ड इंडियन कल्चर' नाम से प्रकाशित हुआ था । इसमें प्रो० हन्दि ने विशेष रूप से यशस्तिलक की धार्मिक और दार्शनिक सामग्री का विद्वत्तापूर्ण अध्ययन और विश्लेषण प्रस्तुत किया है । उन्होंने जिस-जिस विषय को लिया है, उसके विषय में निःसन्देह सोमदेव के प्रति पूरी निष्ठा, विद्वत्ता और श्रम पूर्वक पर्याप्त और प्रामाणिक जानकारी दी है ।

यशस्तिलक के जो और आशिक संस्करण निकले हैं तथा सोमदेव और यशस्तिलक पर जो फुटकर कार्य हुआ है, उस सबका लेखा जोखा लगाकर देखने पर भी मेरी समझ से यशस्तिलक के सही अध्ययन का यह श्रीगणेश मात्र है । श्रीगणेश मंगलमय हुआ यह परम शुभ एव आनन्द का विषय है । वास्तव में प्रो० हन्दि की जैसे अनेक विद्वान् जब यशस्तिलक के परिशीलन में प्रवृत्त होंगे तभी उसकी बहुमूल्य सामग्री का ज्ञान-विज्ञान की विभिन्न शाखा-प्रशाखाओं में उपयोग किया जा सकेगा । यशस्तिलक तो विविध प्रकार की बहुमूल्य सामग्री का अक्षय भंडार है । अध्येता ज्यो-ज्यो इसके तल में पैठता है, उसे और-और सामग्री उपलब्ध होती जाती है । इसी कारण स्वयं सोमदेव ने विद्वानों को निरन्तर

आनुपूर्वों से इसका विमर्श करते रहने की मन्त्रणा दी है (अत्रसमनुपूर्वंग कृती विमृशन्, उक्त० पृ० ४१८) ।

काशी विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० के लिए स्वीकृत अपने शोध प्रबन्ध में मैंने यशस्ति तक की सांस्कृतिक सामग्री को वर्गीकृत रूप में पांच अध्यायों में निम्नप्रकार प्रस्तुत किया है—

- १ यशस्तिलक के परिशीलन की पृष्ठभूमि
- २ यशस्तिलककालीन सामाजिक जीवन
- ३ ललितकलायें और शिल्पविज्ञान
- ४ यशस्तिलककालीन भूगोल
- ५ यशस्तिलक की शब्द-सम्पत्ति

प्रथम अध्याय में वह सामग्री दी गयी है जो यशस्तिलक के परिशीलन की पृष्ठभूमि के रूप में अनिवार्य है। इस अध्याय में तीन परिच्छेद हैं। परिच्छेद एक में यशस्तिलक का रचनाकाल, यशस्तिलक का साहित्यिक और सांस्कृतिक स्वरूप, यशस्तिलक पर अब तक हुये कार्य का लेखा-जोखा, सोमदेव का जीवन और साहित्य, सोमदेव और कन्नौज के गुर्जर प्रतिहार तथा देवसंघ के विषय में संचेप में आवश्यक जानकारी दी गयी है।

यशस्तिलक का रचनाकाल स्वयं सोमदेव ने चैत्र शुक्ल त्रयोदशी शक सवत् ८८१ अर्थात् सन् ९५९ ई० दे दिया है। इससे यशस्तिलक के परिशीलन की वे सभी कठिनाइयाँ दूर हो जाती हैं, जो समय की अनिश्चितता के कारण साधारणतः भारतीय वाङ्मय के अनुशीलन में उपस्थित होती है।

साहित्यिक स्वरूप का विश्लेषण करते हुये मैंने लिखा है कि यशस्तिलक की रचना गद्य और पद्य में हुई है और साहित्य की इस सम्मिलित विधा को समीक्षकों ने चम्पू कहा है। स्वयं सोमदेव ने यशस्तिलक को महाकाव्य कहा है। वास्तव में यह अपने प्रकार की एक विशिष्ट कृति है और अपने ही प्रकार की एक स्वतंत्र विधा। एक उत्कृष्ट काव्य के सभी गुण इसमें विद्यमान हैं।

यशस्तिलक का सांस्कृतिक स्वरूप और भी विराट है। श्रीदेव ने यशस्तिलक-पत्रिका में यशस्तिलक में आये सत्ताइस विषय गिनाये हैं। मैंने लिखा है कि यदि श्रीदेव के अनुसार ही यशस्तिलक के विषयों का वर्गीकरण किया जाये तो उनकी सूची में भूगोल आदि कई विषय और भी जोड़ने होंगे। इस सामग्री की सबसे बड़ी विशेषता इसकी पूर्णता और प्रामाणिकता है।

यशस्तिलक और सोमदेव पर अब तक हुये कार्य का लेखा-जोखा प्रस्तुत करते हुये यशस्तिलक और नीतिवाक्यामृत के अब तक प्रकाशित संस्करण, विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित शोध-निबंध तथा प्रो० हृन्दिनी के समीक्षा ग्रन्थ की जानकारी दी गयी है।

सोमदेव के जीवन और साहित्य का जो परिचय उपलब्ध होता है, उससे उनके उज्ज्वल पक्ष का ही पता चलता है। नीतिवाक्यामृत और यशस्तिलक उनकी उपलब्ध रचनायें हैं। पण्णवतिप्रकरण आदि, चार अन्य ग्रन्थ अनुपलब्ध हैं।

नीतिवाक्यामृत के संस्कृत टीकाकार ने सोमदेव को कन्नौज के गुर्जर प्रतिहार नरेश महेन्द्रदेव का अनुज बताया है। यशस्तिलक के दो पद्य भी महेन्द्रदेव और सोमदेव के सम्बन्धों की ओर संकेत करते हैं। उनका अनुपलब्ध ग्रन्थ महेन्द्रमातलिसजल्प और सोमदेव का देवान्त नाम भी शायद इस ओर इंगित है। महेन्द्रपालदेव द्वितीय तथा सोमदेव के सम्बन्धों में कालिक कठिनाई भी नहीं आती। यशस्तिलक में राजनीति और शासन का जो विशद वर्णन है, उससे सोमदेव का विशाल राज्यतन्त्र और शासन से परिचय स्पष्ट है। इतनी सब सामग्री होते हुये भी मेरी समझ से सोमदेव को प्रतिहार नरेश महेन्द्रपालदेव का अनुज मानने के लिए अभी और अधिक ठोस साक्ष्यों की अपेक्षा बनी रहती है।

यशस्तिलक चालुक्यवंशीय अरिकेसरी के प्रथम पुत्र वद्यग की राजधानी गगाधारा में रचा गया था। अरिकेसरिन् तृतीय के एक दानपत्र से सोमदेव और चालुक्यों के सम्बन्धों का और भी दृढ़ निश्चय हो जाता है। चालुक्य वंश दक्षिण के महाप्रतापी राष्ट्रकूटों के अधीन सामन्त पदवी धारी था। यशस्तिलक राष्ट्रकूट संस्कृति को एक विशाल दर्पण की तरह प्रतिबिम्बित करता है। जिस तरह वाणभट्ट ने हर्षचरित और कादम्बरी में गुप्त युग का चित्र उतारने का प्रयत्न किया, उसी तरह सोमदेव ने यशस्तिलक में राष्ट्रकूट युग का।

सोमदेव देव सघ के साधु थे। अरिकेसरी के दानपत्र में उन्हें गौड सघ का कहा गया है। वास्तव में ये दोनों एक ही सघ के नाम थे। देव सघ अपने युग का एक विशिष्ट जैन साधुसघ था। सोमदेव के गुरु, नेमिदेव ने सैकड़ों महावादियों को वाग्युद्ध में पराजित किया था। सोमदेव को यह सब विरासत

में मिला । यही कारण है कि उनके लिए भी वादीभपचानन, तार्किकचक्रवर्ती आदि विशेषण प्रयुक्त किये गये हैं ।

इस सम्पूर्ण समाग्री को प्रमाणक साक्ष्यों के साथ पहले परिच्छेद में दिया गया है ।

परिच्छेद दो में यशस्तिलक की संचिप्त कथा दी गयी है तथा उसकी सास्कृतिक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डाला गया है । महाराज यशोधर के आठ जन्मों की कहानी का सूत्र यशस्तिलक के प्रासंगिक विस्तृत वर्णनों में कही खो न जाये, इसलिए सक्षिप्त कथा का जान लेना आवश्यक है ।

कथा के माध्यम से सिद्धान्त और नीति की शिक्षा की परम्परा प्राचीन है । यशस्तिलक की कथा का उद्देश्य हिंसा के दुष्प्रभाव को दिखाकर जनमानस में अहिंसा के उच्च आदर्श की प्रतिष्ठा करना था । यशोधर को आटे के मुर्गे की बलि देने के कारण छह जन्मों तक पशुयोनि में भटकना पडा तो पशुबलि या अन्य प्रकार की हिंसा का तो और भी दुष्परिणाम हो सकता है । सोमदेव ने बड़ी कुशलता के साथ यह भी दिखाया है कि सकल्पपूर्वक हिंसा करने का त्याग गृहस्थ को विशेष रूप से करना चाहिए । कथावस्तु की यही सास्कृतिक पृष्ठभूमि है ।

परिच्छेद तीन में यशोधरचरित्र की लोकप्रियता का सर्वेक्षण है । यशोधर की कथा मध्ययुग से लेकर बहुत बाद तक के साहित्यकारों के लिए एक प्रिय और प्रेरक विषय रहा है । कालिदास ने अवन्ति जनपद के उदयन कथा कोविद ग्रामवृद्धों की बात कही थी, यशोधर कथा के विशेषज्ञ मनीषी आठवीं शती के भी बहुत पहले से लेकर लगभग आजतक यशोधर की कथा कहते आये । उद्योतन सूरि (७७९ ई०) ने प्रभञ्जन के यशोधरचरित्र का उल्लेख किया है । हरिभद्र की समराइच्चकहा में यशोधर की कथा आयी है । बाद के साहित्यकारों ने प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, पुरानी हिन्दी गुजराती, राजस्थानी, तमिल और कन्नड भाषाओं में यशोधरचरित्र पर अनेक ग्रन्थों की रचना की । प्रो० पी० एल० वैद्य ने जसहृचरित्र की प्रस्तावना में उन्तीस ग्रन्थों की जानकारी दी थी । मेरे सर्वेक्षण से यह सख्वा चौवन तक पहुँची है । अनेक शास्त्र-भण्डारों की सूचियाँ अभी भी नहीं बन पायी । इसलिए सम्भव है अभी और भी कई ग्रन्थ यशोधर कथा पर उपलब्ध हो ।

द्वितीय अध्याय में यशस्तिलककालीन सामाजिक जीवन का विवेचन है । इसमें बारह परिच्छेद हैं ।

परिच्छेद एक में समाज गठन और यशस्तिलक में उल्लिखित

सामाजिक व्यक्तियों के विषय में जानकारी दी गयी है। सोमदेवकालीन समाज अनेक वर्गों में विभक्त था। वर्ण-व्यवस्था की प्राचीन श्रौत-स्मार्त मान्यतायें प्रचलित थी। समाज और साहित्य दोनों पर इन मान्यताओं का प्रभाव था। ब्राह्मण के लिए यशस्तिलक में ब्राह्मण, द्विज, विप्र, भूदेव, श्रौत्रिय, वाडव, उपाध्याय, मौहूर्तिक, देवभोगी, पुरोहित और त्रिवेदी शब्द आये हैं। ये नाम प्रायः उनके कार्यों के आधार पर थे।

क्षत्रिय के लिए क्षत्र और क्षत्रिय शब्द आये हैं। पौरुष मापेक्ष्य और राज्य संचालन आदि कार्य क्षत्रियोचित माने जाते थे।

वैश्य के लिए वैश्य, वणिक, श्रेष्ठ और मार्यवाह शब्द आये हैं। ये देशी व्यापार के अतिरिक्त टांडा बाँधकर विदेशी व्यापार के लिए जाते थे। श्रेष्ठ व्यापारी को राज्य की ओर से राज्यश्रेष्ठी पद दिया जाता था।

शूद्र के लिए यशस्तिलक में शूद्र, अन्त्यज और पामर शब्द आये हैं। प्राचीन मान्यताओं की तरह सोमदेव के समय भी अन्त्यजों का स्पर्श वर्जनीय माना जाता था और वे राज्य संचालन आदि के अयोग्य समझे जाते थे।

अन्य सामाजिक व्यक्तियों में सोमदेव ने हलायुधजीवि, गोप, व्रजपाल, गोपाल, गोव, तक्षक, मालाकार, कौलिक, ध्वजिन्, निपाजीव, रजक, दिवा-कीर्ति, आस्तरक, सवाहक, वीवर, चर्मकार, नट या शैलूप, चाण्डाल, शबर, किरात, वनेचर और मातंग का उल्लेख किया है। इन परिच्छेद में इन सब पर प्रकाश डाला गया है।

परिच्छेद दो में जैनाभिमत वर्णव्यवस्था और सोमदेव की मान्यताओं पर विचार किया गया है। सिद्धान्त रूप से जैन धर्म में वर्णव्यवस्था की श्रौत-स्मार्त मान्यतायें स्वीकृत नहीं हैं। कर्मग्रन्थों में वर्ण, जाति और गोत्र की व्याख्या प्रचलित व्याख्याओं से सर्वथा भिन्न है। इसी प्रकार जैन ग्रन्थों में चतुर्वर्ण की व्याख्या भी कर्मणा की गयी है। सिद्धान्त रूप से मान्यताओं का यह रूप होते हुए भी व्यवहार में भी समाज में भी श्रौत-स्मार्त मान्यतायें प्रचलित थी। इसलिए सोमदेव ने चिन्तन दिया कि गृहस्थ के लौकिक और पारलौकिक दो धर्म हैं। लोकधर्म लौकिक मान्यताओं के अनुसार तथा पारलौकिक धर्म आगमों के अनुसार मानना चाहिए। प्राचीन कर्मग्रन्थों से लेकर सोमदेव तक के जैन साहित्य के परिप्रेक्ष्य में इस विषय पर विचार किया गया है।

परिच्छेद तीन में आश्रम-व्यवस्था और संन्यस्त व्यक्तियों का विवेचन है। आश्रम-व्यवस्था की प्राचीन मान्यतायें प्रचलित थी। ब्रह्मचर्य आश्रम

की समाप्ति पर सोमदेव ने गोदान का उल्लेख किया है। बाल्यावस्था में सन्यस्त होने का निषेध किया जाता रहा है, पर इसके भी पर्याप्त अपवाद रहे हैं। यशस्तिलक के प्रमुख पात्र अभयर्षि और अभयमति भी छोटी अवस्था में प्रव्रजित हो गये थे। सन्यस्त व्यक्तियों के लिए आजीवक, कर्मन्दी, कापालिक, कौल, कुमारश्रमण, चित्रशिखडि, ब्रह्मचारी, जटिल, देशयति, देशक, नास्तिक, परिव्राजक, पाराशर, ब्रह्मचारी, भविल, महाव्रती, महासाहसिक, मुनि, मुमुक्षु, यति, यागज्ञ, योगी, वैखानस, शसितन्नत, श्रमण, साधक, साधु और सूरि शब्दों का प्रयोग हुआ है। इनके अतिरिक्त सोमदेव ने कुछ और नामों की व्युत्पत्तियाँ दी हैं। इनमें से अधिकांश अपने अपने सम्प्रदाय विशेष को व्यक्त करते हैं। इनके विषय में संक्षेप में जानकारी दी गयी है।

परिच्छेद चार से पारिवारिक जीवन और विवाह की प्रचलित मान्यताओं पर प्रकाश डाला गया है। सोमदेवकालीन भारत में संयुक्त परिवार प्रणाली का प्रचलन था। सोमदेव ने चिरपरिचित पारिवारिक सम्बन्ध पति, पत्नी, पुत्र आदि का सुन्दर वर्णन किया है। बालक्रीडाओं का जैसा हृदयग्राही वर्णन यशस्तिलक में है, वैसा अन्यत्र कम मिलता है। स्त्री के भगिनी, जननी, दूतिका, सहचरी, महानसकी, धातृ, भार्या आदि रूपों पर प्रकाश डाला गया है।

यशस्तिलक में विवाह के दो प्रकारों का उल्लेख है। प्राचीन राजे-महाराजे तथा बहुत बड़े लोगों में स्वयंवर की प्रथा थी। स्वयंवर के आयोजन की एक विशेष विधि थी। माता-पिता द्वारा जो विवाह आयोजित होते थे, उनमें भी अनेक बातों का ध्यान रखा जाता था। सोमदेव ने बारह वर्ष की कन्या तथा सोलह वर्ष के युवक को विवाह योग्य बताया है। बाल विवाह की परम्परा स्मृतिकाल से चली आयी थी। स्मृति ग्रन्थों में अरजस्वला कन्या के ग्रहण का उल्लेख है। अलवरूनी ने भी लिखा है कि भारतवर्ष में बाल विवाह की प्रथा थी। इस परिच्छेद में इस सम्पूर्ण सामग्री का विवेचन किया गया है।

परिच्छेद पाँच से यशस्तिलक से आयी खान-पान विषयक सामग्री का विवेचन है। सोमदेव की इस सामग्री की त्रिविध उपयोगिता है। एक तो इससे खाद्य और पेय वस्तुओं की लम्बी सूची प्राप्त होती है, दूसरे दशमी शती में भारतीय परिवारों, विशेषकर दक्षिण भारत के परिवारों की खान-पान व्यवस्था का पता चलता है। तीसरे ऋतुओं के अनुसार सतुलित और स्वास्थ्यकर भोजन की व्यवस्थित जानकारी प्राप्त होती है। पाक विद्या के विषय में भी सोमदेव ने पर्याप्त जानकारी दी है। शुद्ध और ससर्ग भेद से त्रेसठ प्रकार के व्यंजन बनाये

जा सकते हैं। सूपशास्त्र विशेषज्ञ पौरोगव का भी उल्लेख है। बिना पकायी खाद्य सामग्री में गोधूम, यव, दीदिवि, श्यामाक, शालि, कलम, यवनाल, चिपिट, सवतू, मुद्ग, माष, विरसाल तथा द्विदल का उल्लेख है। भोजन के साथ जल किस अनुपात में पीना चाहिए, जल को अमृत और विष बयो कहा जाता है, ऋतुओं के अनुसार वापी, कूप, तडाग, वहाँ का जल पीना उपयुक्त है, जल को संसिद्ध कैसे किया जाता है, इसकी जानकारी विस्तार से दी गयी है।

मसालों में दरद, क्षपारस, मरिच, पिप्पली, राजिका तथा लवण का उल्लेख है। स्निग्ध पदार्थ, गोरस तथा अन्य पेय सामग्री में घृत, आज्य, तेल, दधि, दुग्ध, नवनीत, तक्र, कलि या अवनति-सोम, नारिकेलफलाभ, पानक तथा शर्कराद्यपय का उल्लेख है। घृत, दुग्ध, दधि तथा तक्र के गुणों को सोमदेव ने विस्तार से बताया है। मधुर पदार्थों में शर्करा, शिता, गुड तथा मधु का उल्लेख है। साग-सब्जी और फलों की तो एक लम्बी सूची आयी है—पटोल, कोहल, कारवेल, वृन्ताक, बाल, कदल, जीवन्ती, कन्द, किसलय, विस, वास्तूल, तण्डुलीय, चिल्ली, चिर्भटिका, मूलक, आर्द्रक, धात्रीफल, एवारि, अलावू, कर्कारु, मालूर, चक्रक, अग्निदमन, रिंगणीफल, आम्र, आम्रातक, पिचुमन्द, सोभाजन, वृहतीवार्ताक, एरण्ड, पलाण्डु, वल्लक, रालक, कोकुन्द, काकमाची, नागरग, ताल, मन्दर, नागवल्ली, वाण, आसन, पूग, अक्षोल, खर्जूर, लवली, जम्बीर, अश्वत्थ, कपित्थ, नमेरु, पारिजात, पनस, ककुभ, वट, कुरवक, जम्बू, दर्दरीक, पुण्ड्रेक्षु, मृद्वीका, नारिकेल, उदम्बर तथा प्लक्ष।

तैयार की गयी सामग्री में भक्त, सूप, शष्कुली, समिध या समिता, यवागू, मोदक, परमान्न, खाण्डव, रसाल, आमिक्षा, पक्वान्न, अवदश, उपदेश, सर्पिषिस्तात, अगारपाचित, दध्नापरिप्लुत, पयषा-विशुष्क तथा पर्पट के उल्लेख हैं।

मासाहार तथा मासाहार निषेध का भी पर्याप्त वर्णन है। जैन मासाहार के तीव्र विरोधी थे, किन्तु कौल कापालिक आदि सम्प्रदायों में मासाहार धार्मिक रूप से अनुमत था। बध्य पशु, पक्षी तथा जलजन्तुओं में मेष, महिष, मय, मातग, मितद्रु, कुभीर, मकर, मालूर, कुलीर, कमठ, पाठीन, भेरुण्ड, क्रोच, कौक, कुकुट कुरुर, कलहंस, चमर, चमूर, हरिण, हरि, वृक, वराह, वानर तथा गोखुर के उल्लेख हैं। मासाहार का ब्राह्मण परिवारों में भी प्रचलन था। यज्ञ और श्राद्ध के नाम पर मासाहार की धार्मिक स्वीकृति मान ली गयी थी। इस परिच्छेद में इस सम्पूर्ण सामग्री का विवेचन किया गया है।

परिच्छेद छह में स्वास्थ्य, रोग और उनकी परिचर्या विषयक सामग्री का विवेचन है। खान-पान और स्वास्थ्य का अनन्य सवध है। जठराग्नि पर भोजनपान निर्भर करता है। मनुष्यों की प्रकृति भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है। ऋतु के अनुसार प्रकृति में परिवर्तन होता रहता है। इसलिए भोजन-पान आदि की व्यवस्था ऋतुओं के अनुसार करना चाहिए। भोजन का समय, सहभोजन, भोजन के समय वर्जनीय व्यक्ति, भोज्य और अभोज्य पदार्थ, विषयुक्त भोजन, भोजन करने की विधि। नोहार या मलमूत्रविसर्जन, अभ्यग, उद्वर्तन, व्यायाम तथा स्नान इत्यादि के विषय में यशस्तिलक में पर्याप्त सामग्री आयी है। इस सबका इस परिच्छेद में विवेचन किया गया है।

रोगों में अजीर्ण, अजीर्ण के दो भेद विदाहि और दृजर, दृग्मान्द्य, वमन, उत्रर, भगन्दर, गुल्म तथा सितशिवत के उल्लेख हैं। इनके कारणों तथा परिचर्या के विषय में भी प्रकाश डाला गया है।

गोपधियों में मागधी, अमृता, सोम, विजया, जम्बूक, मुदर्शना, मरुद्भव, अर्जुन, अभीरु, लक्ष्मी, वृती तपस्विनि, चन्द्रलेखा, कलि, अर्क, अरिभेद, शिवप्रिय, गायत्री, ग्रन्थिपर्ण तथा पारदरम की जानकारी आयी है। सोमदेव ने आयुर्वेद के अनेक पारिभाषिक शब्दों का भी प्रयोग किया है। इस सब पर इस परिच्छेद में प्रकाश डाला गया है।

परिच्छेद सात में यशस्तिलक में उल्लिखित वस्त्रों तथा वेशभूषा का विवेचन है। सोमदेव ने बिना सिले वस्त्रों में नेत्र, चीन, चित्रपटी, पटोल, रत्निका, दुकूल, अशुक तथा कौशिय का उल्लेख किया है। नेत्र के विषय में सर्वप्रथम डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने हर्षचरित के सांस्कृतिक अध्ययन में विस्तार से जानकारी दी थी। नेत्र का प्राचीनतम उल्लेख कालिदास के रघुवश का है। बाण ने भी नेत्र का उल्लेख किया है। उद्योतनमूरि कृत कुवलयमाला (७७९ ई०) में चीन से आने वाले वस्त्रों में नेत्र का भी उल्लेख है। वर्णरत्नाकर में इसके चौदह प्रकार बताये हैं। चौदहवीं शती तक बंगाल में नेत्र का प्रचलन था। नेत्र की पाचूड़ी ओढी सौर विछायी जाती थी। जायसी ने पदमावत में कई बार नेत्र का उल्लेख किया है। गोरखनाथ के गीतों तथा भोजपुरी लोक गीतों में नेत्र का उल्लेख मिलता है। चीन देश से आने वाले वस्त्र को चीन कहा जाता था। भारत में चीनी वस्त्र आने के प्राचीनतम प्रमाण ईसा पूर्व पहली शताब्दी के मिलते हैं। डॉ० मोतीचन्द्र ने इस विषय पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। कालिदास ने शाकुन्तल में चीनाशुक का उल्लेख

किया है। वृहत्कल्पसूत्र की वृत्ति में इसकी व्याख्या आयी है। चीन और वाहीक से और भी कई प्रकार के वस्त्र आते थे। चित्रपट संभवतया वे जामदानी वस्त्र थे, जिनकी बिनावट में ही पशु-पक्षियों या फूल-पत्तियों की भाँत डाल दी जाती थी। बाण ने चित्रपट के तकियों का उल्लेख किया है। पटोल गुजरात का एक विशिष्ट वस्त्र था। आज भी वहाँ पटोला साडी का प्रचलन है। रल्लिका रल्लक नामक जगली बकरे के ऊन से बना वेशकीमती वस्त्र था। युवागच्याग ने भी इसका उल्लेख किया है। वस्त्रों में सबसे अधिक उल्लेख दुकूल के हैं। आचारण-चूर्णि तथा निशीथ-चूर्णि में दुकूल की व्याख्या आयी है। पीण्ड तथा सुवरां-कुड्या के दुकूल विशिष्ट होते थे। दुकूल की बिनाई, दुकूल का जोडा पहनने का रिवाज, हंसमिथुन लिखित दुकूल के जोडे, दुकूल के जोडे पहनने की अन्य साहित्यिक साक्षी, दुकूल की साडियाँ, पलगपोश, तत्रियों के गिलाफ, दुकूल और क्षौम वस्त्रों में अन्तर और समानता इत्यादि का इस परिच्छेद में पर्याप्त विवेचन किया गया है। अशुक एक प्रकार का महीन वस्त्र था। यह कई प्रकार का होता था। सफेद तथा रंगीन सभी प्रकार का अशुक बनता था। भारतीय और चीनी अशुक की अपनी-अपनी विशेषतायें थी। कौशेय कोशकार कीडो से उत्पन्न रेशम से बनता था। इन कीडो की चार योनियाँ बतायी गयी हैं। उन्ही के अनुसार कौशेय भी कई प्रकार का होता था।

पहनने के वस्त्रों में सोमदेव ने कचुक, वारवाण, चोलक, चण्डातक, उष्णीप, कौपीन, उत्तरीय, चीवर, आवान, परिधान, उपसव्यान और गुह्या का उल्लेख किया है। कचुक एक प्रकार के लम्बे कोट को कहा जाता था और स्त्रियों की चोली को भी। सोमदेव ने चोली के अर्थ में कचुक का उल्लेख किया है। वारवाण घुटनो तत्र पहुँचने वाला एक शाही कोट था। भारतीय वेशभूषा में यह सासानी ईरान की वेशभूषा से आया। वारवाण पहलवी भाषा का संस्कृत रूप है। शिल्प तथा मृण्मूर्तियों में वारवाण के अङ्कन मिलते हैं। स्त्री और पुरुष दोनों वारवाण पहनते थे। वारवाण जिरहवस्त्र को भी कहते थे, किन्तु सोमदेव ने कोट के अर्थ में ही प्रयोग किया है। भारतीय साहित्य में वारवाण के उल्लेख कम ही मिलते हैं। चोलक भी एक प्रकार का कोट था। यह और कोटो की अपेक्षा सबसे अधिक लम्बा और ढीला बनता था। इसे मव वस्त्रों के ऊपर पहनते थे। उत्तर-पश्चिम भारत में नौशे के समय चोला या चोलक पहनने का रिवाज अब भी है। भारत में चोलक संभवतया मध्य एशिया से शक लोगों के साथ आया और यहाँ की वेशभूषा में ममा गया। भारतीय शिल्प में इस

प्रकार के कोट पहने मूर्तियाँ मिलती हैं। चण्डातक एक प्रकार का घंघरीनुमा वस्त्र था। इसे स्त्री और पुरुष दोनों पहनते थे। उज्ज्वलीय पगडी को ऋते थे। भारत में विभिन्न प्रकार की पगडियाँ बाँधने का रिवाज प्राचीनकाल से चला आया है। छोटे चादर या दुपट्टा को कौपीन कहते थे। उत्तरीय आँढनेवाला चादर था। चीवर बौद्ध भिक्षुओं के वस्त्र कहलाते थे। आश्रमवासी साधुओं के वस्त्रों के लिए सोमदेव ने आवान कहा है। परिधान पुरुष की धोती को कहते थे। बुन्देलखण्ड की लोकभाषा में इसका परदनिया रूप अब भी सुरक्षित है। उपसव्यान छोटे अगौछे को कहते थे। गुह्या कछुटिया या लगोट था। हस्ततुलिका रुई भरे गद्दे को कहा जाता था। उपधान तकिया के लिए बहु-प्रचलित शब्द था। कन्या पुराने कपडों को एक साथ सिलकर बनायी गयी रजाई या गदरी थी। नमत ऊनी नमदे थे। निचोल विस्तर पर विछाने का चादर कहलाता था। सिचयोल्लोच चन्द्रातप या चदोवा को कहते थे। इस परिच्छेद में इन समस्त वस्त्रों के विषय में प्रमाणक सामग्री के साथ पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

परिच्छेद आठ में यशस्तिलक में उल्लिखित आभूषणों का परिचय दिया गया है। भारतीय अलंकारशास्त्र की दृष्टि से यह सामग्री महत्त्वपूर्ण है। सोमदेव ने सिर के आभूषणों में किरोट, मौलि, पट्ट और मुकुट का उल्लेख किया है। किरोट, मौलि और मुकुट भिन्न भिन्न प्रकार के मुकुट थे। किरोट प्रायः इन्द्र तथा अन्य देवी-देवताओं के मुकुट को कहा जाता था। मौलि प्रायः राजे पहनते थे तथा मुकुट महासामन्त। पट्ट सिर पर बाँधने का एक विशेष आभूषण था, जो प्रायः सोने का बनता था। बृहत्सहिता में पाँच प्रकार के पट्ट बताये हैं।

कर्णभूषणों में सोमदेव ने अवतस, कर्णपूर, कर्णिका, कर्णोत्पल तथा कुडल का उल्लेख किया है। अवतस प्रायः पल्लव या पुष्पों के बनते थे। सोमदेव ने पल्लव, चम्पक, कचनार, उत्पल तथा कौरव के बने अवतसों के उल्लेख किये हैं। एक स्थान पर रत्नावतसों का भी उल्लेख है। कर्णपूर पुष्प के आकार का बनता था। देशी भाषा में अभी इसे कनफूल कहा जाता है। कर्णिका तालपत्र के आकार का कर्णभूषण था। आजकल इसे तिकोना कहते हैं। उत्पल के आकार का बना कर्ण का आभूषण कर्णोत्पल कहलाता था। कुडल कुडमल तथा गोल वाली के आकार के बनते थे। इसमें कानों को लपेटने के लिए एक पतली जजीर भी लगी रहती थी। बुन्देलखण्ड में इस प्रकार के कुण्डलों का देहातो में अब भी रिवाज है।

गले में पहनने के आभूषणों में एकावली, कठिका, मौलिकदाम, हार तथा हारयष्टि का उल्लेख है। एकावली मोतियों की इकहरी माला को कहते थे। सोमदेव ने इसे समस्त पृथ्वीमंडल को वश में करने के लिए आदेशमाला के समान कहा है। गुप्त युग से ही विशिष्ट आभूषणों के विषय में अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हो गयी थी। एकावली के विषय में वाण ने एक रोचक किंवदन्ती का उल्लेख किया है। कठिका कंठी को कहते थे। हार अनेक प्रकार के वनते थे। सोमदेव ने आठ वार हार का उल्लेख किया है। हारयष्टि सभवतया आगुल्फ लम्बा हार कहलाता था। मौलिकदाम मोतियों की माला को कहते थे।

भुजा के आभूषणों में अगद और केयूर का उल्लेख है। केयूर भुजा के शीर्ष भाग में पहना जाता था। अगद बहुत चुस्त होने के कारण ही सभवतया अगद कहलाता था। स्त्री और पुरुष दोनों अगद पहनते थे। कलाई के आभूषणों में ककरा और वलय का उल्लेख है। ककरा प्रायः सोने आदि के वनते थे और वलय सींग, हाथीदाँत या काँच के। हाथ की अंगुली में पहना जाने वाला गोल छला उर्मिका कहलाता था। अंगुलीयक भी अंगुली में पहना जानेवाला आभूषण था। कटि के आभूषणों में काँची, मेखला, रसना, सारसना तथा घर्घरमालिका का उल्लेख है। ये सब करधनी के ही भिन्न-भिन्न प्रकार थे। मजीर, हिजीरक, तूपुर, तुलोकोटि और हसक पैरो में पहनने के आभूषण थे। इस परिच्छेद में इन सब आभूषणों के विषय में विरतार से जानकारी दी गई है।

परिच्छेद नव में केश विन्यास, प्रसाधन सामग्री तथा पुष्प प्रसाधन की सुकुमार कला का विवेचन है। शिर धोने के बाद स्त्रियाँ सुगन्धित घूप के धुये से केशों को घूपायित करती थी। इसमें केश भभरे हो जाते थे। भभरे केशों को अपनी रुचि के अनुसार अलकजाल, कुन्तलकलाप, केशपाश, चिकुरभग, धम्मिलविन्यास, मौली, सीमन्तसन्तति, वेणीदड, जटाजूट या कवरी की तरह सँवार लिया जाता था। केश सँवारने के ये विभिन्न प्रकार थे। कला, शिल्प और मृण्मूर्तियों में इनका अकन मिलता है। इस परिच्छेद में इन सबका परिचय दिया गया है।

प्रसाधन सामग्री में अजन, अलक्तक, कज्जल, अगुरु, ककोल, कुकुम, कर्पूर, चन्द्रकवल, तमालदलघूलि, ताम्बूल, पटवास, मनःसिल, मृगमद, यक्षकर्म, हरिरोहण, तथा सिन्दूर का उल्लेख है। पुष्पप्रसाधन में पुष्पों के वने विभिन्न प्रकार के अलकारों के नाम आये हैं। जैसे— अश्वत्थकुवलय, कमलकेयूर,

कदलीप्रवालमेखला, कर्णोत्पल, कर्णपूर या कर्णफूल, मृणालबलय, पुत्रागमाला, बधूकनूपुर, शिरीषजघालकार, शिरीषकुसुमदाम, विचक्लिहारयष्टि तथा कुरवक-मुकुलस्रक । इन सबके विषय में प्रस्तुत परिच्छेद में जानकारी दी गयी है ।

परिच्छेद दश में शिक्षा और साहित्य विषयक सामग्री का विवेचन है । बाल्यावस्था शिक्षा का उपयुक्त समय माना जाता था । गुरुकुल प्रणाली शिक्षा का आदर्श थी । शिक्षा समाप्ति के बाद गोदान दिया जाता था । शिक्षा के अनेक विषयों का सोमदेव ने उल्लेख किया है । अमृतमति महारानी की द्वारपालिका को समस्त देशों की भाषा और वेश की जानकार कहा गया है । तर्कशास्त्र, पुराण, काव्य, व्याकरण, गणित, शब्दशास्त्र, घर्माख्यान, प्रमाणशास्त्र, राजनीति गज और अश्व शिक्षा, रथ, वाहन और शस्त्रविद्या, रत्नपरीक्षा, संगीत, नाटक, चित्रकला, आयुर्वेद, युद्धविद्या तथा कामशास्त्र शिक्षा के प्रमुख विषय थे । इन्द्र, जैनेन्द्र, चन्द्र, अपिशल, पाणिनी तथा पतञ्जलि के व्याकरणों का अध्ययन अध्यापन होता था । पाणिनी के विषय में सोमदेव ने एक महत्वपूर्ण जानकारी दी है । इनके पिता का नाम पाणि या पाण्डि था । इसीलिए इन्हें पाणिपुत्र भी कहा जाता था । गणित को सोमदेव ने प्रसरयान शास्त्र कहा है । सोमदेव के समय प्रमाणशास्त्र के रूप में अकलक-न्याय की प्रतिष्ठा हो चुकी थी । राजनीति में गुरु, शुक्र, विशालाक्ष, परीक्षित, पाराशर, भीम, भीष्म तथा भारद्वाज रचित नीतिशास्त्रों का उल्लेख है । सोमदेव ने गजविद्या में यशोधर को रोमपाद की तरह कहा है । रोमपाद के अतिरिक्त गजविद्या विशेषज्ञों में इभचारी, याज्ञवल्क्य, वाहलि (वाहलि), नर, नारद, राजपुत्र तथा गौतम का उल्लेख है । कुल मिलाकर यशस्तिलक में गजविद्या विषयक प्रभूत सामग्री है । गजोत्पत्ति की पौराणिक अनुश्रुति, उत्तम गज के गुण, गजों के भद्र, मन्द, मृग और सकीर्ण भेद, गजों की मदावस्था, उसके गुण दोष और चिकित्सा, गज-परिचारक, गजशिक्षा इत्यादि के विषय में सोमदेव ने विस्तार से लिखा है । मैंने उपलब्ध गजशास्त्रों से इसकी तुलना करके देखा है कि यह सामग्री एक स्वतन्त्र गजशास्त्र के लिए पर्याप्त है । गजशास्त्र की तरह अश्वशास्त्र पर भी सोमदेव ने विस्तार से प्रकाश डाला है । राजाश्व के वर्णन में केवल एक प्रसंग में ही पर्याप्त जानकारी दे दी है । रैवत और शालिहोत्र अश्वशास्त्र विशेषज्ञ माने जाते थे । सोमदेव ने अश्व के इकतालीस गुणों की परीक्षा करना अपेक्षित बताया है । यशस्तिलक में इन सभी गुणों के विषय में पर्याप्त जानकारी दी गयी है । अश्वशास्त्र के साथ तुलना करने पर यह

सामग्री और भी महत्वपूर्ण और उपयोगी सिद्ध होती है। रत्नपरीक्षा में शुकनास का उल्लेख है। वैद्यक या आयुर्वेद में काशिराज घन्वन्तरि, चारायण, निमि, विषण तथा चरक का उल्लेख है। रोग और उनकी परिचर्या नामक परिच्छेद में इनके विषय में विशेष जानकारी दी है। ससर्गविद्या या नाट्यशास्त्र, चित्रकला, तथा शिल्पशास्त्र विषयक सामग्री भी यशस्तिलक में पर्याप्त और महत्वपूर्ण है। ललित-कलायें और शिल्प विज्ञान नामक तीसरे अध्याय में इस सामग्री का विवेचन किया गया है। कामशास्त्र को सोमदेव ने कन्तुसिद्धान्त कहा है। यशस्तिलक में इसकी सामग्री विखरी पड़ी है। भोगावलि राजस्तुति को कहते थे। काव्य और कवियों में सोमदेव ने अपने पूर्ववर्ती अनेक महाकवियों का उल्लेख किया है। उर्व, भारवि, भवभूति, भर्तृहरि, भर्तृमेष्ठ, कण्ठ, गुणाढ्य, व्यास, भास, वीस, कालिदास, बाण, मयूर, नारायण, कुमार, माघ तथा राजशेखर का एक साथ एक ही प्रसङ्ग में उल्लेख है। सोमदेव द्वारा उल्लिखित ग्रहिल, नीलपट, त्रिदश, कोहल, गरुपति, शकर, कुमुद तथा केकट के विषय में अभी हमें विशेष जानकारी नहीं उपलब्ध होती। वररुचि का भी एक पद्य उद्धृत किया गया है। दार्शनिक और पौराणिक शिक्षा और साहित्य की तो यशस्तिलक खान है। प्रो० हन्दिनी ने इस सामग्री का विस्तार से विवेचन किया है, हमने उसकी पुनरावृत्ति नहीं की।

परिच्छेद ग्यारह में आर्थिक स्थिति पर प्रकाश डाला गया है। सोमदेव ने कृषि, वाणिज्य, सायंवाह, नौ सन्तरण और विदेशी व्यापार, विनिमय के साधन, न्यास आदि के विषय में पर्याप्त सामग्री दी है। काली जमीन विशेष उपजाऊ होती है। सुलभ जल, सहज प्राप्य श्रमिक, कृषि के उपयोगी उपकरण, कृषि की विशेष जानकारी तथा उचित कर कृषि की समृद्धि में वारण होते हैं। तभी वसुन्वरा पृथ्वी चिन्तामणि की तरह शस्य सम्पत्ति लुटाती है।

वाणिज्य में सोमदेव ने स्थानीय तथा विदेशी व्यापार का उल्लेख किया है। स्थानीय व्यापार के लिए प्रायः प्रत्येक चीज का अलग-अलग बाजार या हाट होता था। बड़े बड़े व्यापारिक केन्द्र पेण्ठास्थान कहलाते थे। देश-देश के व्यापारी आकर इन पेण्ठास्थानों में अपना रोजगार करते थे। पेण्ठास्थानों का संचालन राज्य की ओर से होता था या किसी विशेष व्यक्ति द्वारा। इनमें व्यापारियों को हर तरह की सुविधा दी जाती थी। मध्य युग में जो व्यापारिक प्रगति हुई उममें इन व्यापारिक मंडियों का विशेष हाथ था।

भारतवर्ष में व्यापार करने के लिए जिन प्रकार विदेशी भाष्य आते थे उन्हीं

प्रकार भारतीय सार्थ टाडा बांधकर विदेशी व्यापार के लिए निकलते थे। सोमदेव ने ताम्रलिप्ति तथा सुवर्णद्वीप के व्यापार को जानेवाले मार्गों का उल्लेख किया है।

सोमदेव के युग में वस्तु विनिमय तथा मुद्रा के माध्यम से विनिमय की प्रणाली थी। पिछड़े क्षेत्रों में वस्तु विनिमय चलता था। मुद्राओं में सोमदेव ने निष्क, कार्षापण तथा सुवर्ण का उल्लेख किया है। निष्क वैदिक युग में एक स्वर्णभूषण था, किन्तु बाद में एक नियत स्वर्ण मुद्रा बन गया। मनुस्मृति में निष्क को चार स्वर्ण या तीन सौ बीस रत्ती के बराबर कहा गया है। कार्षापण चादी का सिक्का था। मनुस्मृति में इसे राजतपुराण और घरण कहा है। पुराण का वजन बत्तीस रत्ती होता था। कार्षापण की फुटकर खरीद भी होती थी। सुवर्ण निष्क की तरह एक सोने का सिक्का था। अनगढ़ सोने को हिरण्य कहते थे, और जब उसी के सिक्के ढाल लिए जाते तो वे सुवर्ण कहलाते थे। मनुस्मृति के अनुसार स्वर्ण का वजन अस्सी रत्ती या सोलह मापा होता था।

सोमदेव ने न्यास या धरोहर रखने का भी उल्लेख किया है। आचार, व्यवहार तथा विश्वास के लिए विश्रुत व्यक्ति के यहाँ न्यास रखा जाता था। यदि न्यास रखने वाले की नियत खराब हो जाये और वह समझ ले कि न्यास रखनेवाले के पास ऐसा कोई प्रमाण नहीं, जिसके आधार पर वह कह सके कि उसने अमुक वस्तु उसके पास न्यास रखी है, तो वह न्यास को हड़प जाता था।

भृति या सेवावृत्ति के विषय में लोगों की भावना अच्छी नहीं थी। विवश होकर आजीविका के लिए सेवावृत्ति स्वीकार भले ही कर ली जाये, किन्तु उसे अच्छा नहीं माना जाता था। ग्यारहवें परिच्छेद में इस सम्पूर्ण सामग्री का विवेचन है।

परिच्छेद बारह में यशस्तिलक में उल्लिखित शास्त्रांशों का विवेचन है। सोमदेव ने छत्तीस प्रकार के शास्त्रांशों का उल्लेख किया है। इन उल्लेखों की एक बड़ी विशेषता यह है कि इनसे अधिकांश शास्त्रांशों का स्वरूप, उनके प्रयोग करने के तरीके तथा कतिपय अन्य बातों पर भी प्रकाश पड़ता है। धनुष, असिधेनुका, कर्तरी, कटार, कृपाण, खड्ग, कौक्षेयक या करवाल, तरवारि, भुसुण्डी, मडलाग्र, असिपत्र, अशनि, अकुश, कणाय, परशु, या कुठार, प्रास, कुन्त, भिन्दिपाल, करपत्र, गदा, दुस्फोट या मुसल, मुद्गर, परिघ, दण्ड, पट्टिस, चक्र, भ्रमिल, यष्टि, लागल, शक्ति, त्रिशूल, शकु, पाश, वागुरा, क्षेपणहस्त तथा गोलधर के विषय में इस परिच्छेद में पर्याप्त जानकारी दी गयी है।

तृतीय अध्याय में ललित कलाओं तथा शिल्प-विज्ञान विषयक सामग्री का विवेचन है। इसमें सब चार परिच्छेद हैं।

परिच्छेद एक में संगीत, वाद्य-यन्त्र तथा नृत्यकला का विवेचन है। सोमदेव ने यशोधर को गीतगन्धर्वचक्रवर्ती कहा है। यशोधर का हस्तिपत्र, जिसकी ओर महारानी आदृष्ट हुई संगीत में साहिर था। संगीत और स्वरलहरी का अनन्य सम्बन्ध है। सोमदेव ने सप्त स्वरो का उल्लेख किया है।

वाद्य-यन्त्रों में यशस्तिलक के उल्लेख विशेष महत्त्व के हैं। वाद्यों के लिए सम्मिलित शब्द आलोच्य था। संगीतशास्त्र की तरह सोमदेव ने भी वाद्यों के घन, सुपिर, तब और अवनट, ये चार भेद बताये हैं। सोमदेव ने तेईस वाद्य-यन्त्रों की जानकारी दी है। गज, काहला, दुन्दुभि, पुष्कर, टक्का, आनक, भम्भा, ताल, करटा, त्रिविना, डमरक, रज्जा, घण्टा, वेणु, वीणा, झल्लरी, बल्लकी, पणव, मृदंग, भेरी, तूर, पटह, और छिण्डिम, इन सभी के विषय में यशस्तिलक की सामग्री से पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। संगीतशास्त्र के अन्य ग्रन्थों के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर इन वाद्य-यन्त्रों का इस परिच्छेद में पूरा परिचय दिया गया है।

नृत्यकला विषयक सामग्री भी यशस्तिलक में पर्याप्त है। सोमदेव ने लिखा है कि सत्राट यशोधर नाट्यशाला में जाकर कुशल अभिनेताओं के साथ अभिनय देखते थे। नाट्य प्रारम्भ होने के पूर्व रंगपूजा की जाती थी। सोमदेव ने इसका विस्तार से वर्णन किया है।

यशस्तिलक में नृत्य के लिए नृत्य, नृत्त, नाट्य, लास्य, ताण्डव, तथा विवि शब्द आये हैं। नृत्य, नृत्त और नाट्य देखने में समानार्थक शब्द लगते हैं, किन्तु वास्तव में इनमें पर्याप्त अन्तर था। दशरूपक में घनंजय ने इनके पारम्परिक भेदों को स्पष्ट किया है। नाट्य दृश्य होता है, इसलिए इसे 'रूप' भी कहते हैं और रूपक अलंकार की तरह आरोप होने के कारण रूपक भी। काव्यों में वर्णित धीरोद्धत आदि प्रकृति के नायकों, नायिकाओं तथा अन्य पात्रों का आंगिक, वाचिक, आहार्य तथा सात्त्विक अभिनयो द्वारा अवस्थानुकरण नाट्य कहलाता है। यह रसाश्रित होता है। नृत्य भावाश्रित और केवल दृश्य होता है। ताल और लय के आश्रित किये जानेवाले नर्तन को नृत्त कहते हैं। इसमें अभिनय का सर्वथा अभाव रहता है। लास्य और ताण्डव नृत्त के ही भेद हैं। इस परिच्छेद में इस सम्पूर्ण सामग्री का विशद विवेचन किया गया है।

परिच्छेद दो में यशस्तिलक की चित्रकला विषयक सामग्री का विवेचन है। सोमदेव ने विभिन्न प्रकार के भित्तिचित्रों तथा घूलिचित्रों का उल्लेख किया है। प्रजापतिप्रोक्त चित्रकर्म का सन्दर्भ विशेष महत्त्व का है। उसका एक पद्य उद्धृत किया गया है।

भित्तिचित्र बनाने की एक विशेष प्रक्रिया थी। भित्तिचित्र बनाने के लिए भीत का लेप कैसा होना चाहिए, उसे कैसे बनाना चाहिए, उस पर लिखाई करने के लिए जमीन कैसे तैयार करना चाहिए—इत्यादि का मानसोल्लास में विस्तृत वर्णन है। सोमदेव ने दो प्रकार के भित्तिचित्रों का उल्लेख किया है—व्यक्तिचित्र और प्रतीकचित्र। एक जिनालय में बाहुवलि, प्रद्युम्न, सुपाश्वर् अशोक राजा और रोहिणी रानी तथा यक्ष मिथुन के चित्र बनाये गये थे। प्रतीक चित्रों में तीर्थंकर की माता के सोलह स्वप्नों के चित्र थे। श्वेताम्बर साहित्य में इनकी सख्या चौदह बतायी है। ऐरावत हाथी, वृषभ, सिंह, लक्ष्मी, लटवती हुई पुष्पमालायें, चन्द्र, सूर्य, मत्स्ययुगल, पूर्ण कुम्भ, पद्मसरोवर, सिंहासन, समुद्र, फणयुक्त सर्प, प्रज्वलित अग्नि, रत्नों का ढेर और देवविमान ये सोलह स्वप्न तीर्थंकर की माता बालक के गर्भ में आने के पहले देखती है। प्राचीन पाण्डुलिपियों में भी इनका चित्राकन मिलता है।

रगावली या घूलिचित्रों का सोमदेव ने छह बार उल्लेख किया है। चित्रकला में रंगावली को क्षणिक चित्र कहते हैं। इसके घूलिचित्र और रसचित्र, ये दो भेद हैं। आजकल इसे रंगोली या अल्पना कहा जाता है। प्रत्येक मांगलिक अवसर पर रंगोली बनाने का प्रचलन भारतवर्ष में अभी भी है।

प्रजापतिप्रोक्त चित्रकर्म का एक विशेष प्रसंग में उल्लेख है। पद्य का तात्पर्य है कि जो कलाकार प्रभामण्डल युक्त तथा नव भक्तियों सहित तीर्थंकर अर्थात् तीर्थंकर सभा या समवसरण का चित्र बना सकता है, वह सम्पूर्ण पृथ्वी का भी चित्र बना सकता है।

चित्रकला के अन्य उल्लेखों में ध्वजाग्रो पर बने चित्र, दीवालो पर बने सिंह तथा गवाक्षो से झाकती हुई कामिनियों के उल्लेख हैं। इस परिच्छेद में इस सम्पूर्ण सामग्री का विवेचन किया गया है।

परिच्छेद तीन में यशस्तिलक की वास्तु-शिल्प विषयक सामग्री का विवेचन किया गया है। सोमदेव ने विभिन्न प्रकार के शिखर युक्त चैत्यालय गगनचुम्बी महाभागभवन, त्रिभुवनतिलक नामक राजप्रासाद, लक्ष्मीविलासतामरस नामक आस्थानमहप, श्रीसरस्वतीविलासकमलाकर नामक राजमंदिर, दिग्व-

लयविलोकनविलास नामक श्रीडाप्रासाद, करिविनोदविलोकनदोहद नामक वासु-भवन, गृहदीर्घिका, पमदवन तथा यन्त्रधारागृह का विस्तृत वर्णन किया है।

चैत्यालयों के शिखरों ने सोमदेव का विशेष ध्यान आकृष्ट किया। सोमदेव ने लिखा है कि शिखर क्या थे मानो निर्माण कला के प्रतीक थे। शिखरों की अटनि पर सिंह निर्माण किया जाता था। मणिमुकुर युक्त ध्वजस्तम्भ और स्तम्भिकायें, सचित्र ध्वजदण्ड, रत्नजटित काचन कलश, चद्रकान्त के बने प्रणाल, उज्ज्वल आमलासार कलश और उन पर खेलती हुई कलहम श्रेणी, विटको पर बैठे शुकशावक, इन सबके कारण शिखर और अधिक आकर्षण का केन्द्र बन रहे थे। सोमदेव की इस सामग्री को वास्तुसार, प्रासादमण्डन तथा अपराजितपृच्छ की तुलना पूर्वक स्पष्ट किया गया है।

त्रिभुवनतिलक प्रासाद के वर्णन में सोमदेव ने प्राचीन वास्तु-शिल्प की अनेक महत्त्वपूर्ण सूचनायें दी हैं। इससे ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में सूर्य और अग्निमन्दिर की तरह इन्द्र, कुबेर, यम, वरुण, चन्द्र आदि के भी मन्दिरों का निर्माण किया जाता था।

आस्थानमण्डप को सोमदेव ने लक्ष्मीविलास नाम दिया है। गुजरात के बडौदा आदि स्थानों में विलास नामान्तक भवनों की परम्परा अब तक सुरक्षित है। मुगल वास्तु में जिसे दरवारे आम कहा जाता था, उसी के लिए प्राचीन नाम आस्थानमण्डप था। सोमदेव ने इसका विस्तृत वर्णन किया है।

आस्थानमण्डप के ही निकट गज और अश्वशालायें बनायी जाती थी। राजभवन के निकट इन शालायों के बनाने की परम्परा भी प्राचीन थी। राजा को प्रातः गजदर्शन शुभ बताया गया है, यह इसका एक बड़ा कारण प्रतीत होता है। फतेहपुर सीकरी के प्राचीन महलों में इस प्रकार की वास्तु का दर्शन अब भी देखा जाता है।

सरस्वतीविलासकमलाकर सम्राट का निजी वासभवन था। श्रीडा पर्वतक की तलहटी में बनाये गये दिग्बलयविलोकन प्रासाद में सम्राट अवकाश के क्षणों को आनन्दपूर्वक बिताते थे। करिविनोदविलोकनदोहद आजकल के स्पोर्ट्स-स्टेडियम के सदृश था। मनसिजविलासहसनिवासतानरस नामक भवन पटरानी का अन्त पुर था। यह सप्ततलप्रासाद का सबसे ऊपरी भाग था। इसके वर्णन में सोमदेव ने बहुमूल्य और प्रचुर सामग्री की जानकारी दी है। रजत-वातायन, अमलक-देहली, जातरूप-भित्तियाँ, मरकतपराग निर्मित रगावलि, सचरणशील

हेमवन्धकार्य, तुहिनतर के वलीक, कूर्चस्थान इत्यादि का विश्लेषण किया गया है ।

दीर्घिका और प्रमदवन के विषय में भी सोमदेव ने पर्याप्त जानकारी दी है । दीर्घिका राजभवन में एक और से दूसरी और दौड़ती हुई वह लवी नहर थी, जिसे बीच-बीच में रोककर, पुष्करणी, गधोदककूप, क्रीडावापि आदि मनोरंजन के साधन बना लिए जाते थे और अन्त में जाकर दीर्घिका प्रमदवन को सींचती थी । दीर्घिका तथा प्रमदवन दोनों के प्राचीन वास्तु-शिल्प की यह विशेषता बहुत समय तक जारी रही और भारत के बाहर भी इसके उल्लेख मिलते हैं । इस परिच्छेद में इस सबके विषय में विस्तृत जानकारी दी गयी है ।

परिच्छेद चार में यन्त्र-शिल्प विषयक सामग्री का विवेचन है । यन्त्रधारागृह के प्रसंग में सोमदेव ने अनेक प्रकार के यान्त्रिक उपादानों का उल्लेख किया है । कुछ सामग्री अन्य प्रसंगों में भी आयी है ।

यन्त्रधारागृह के निर्माण की परम्परा का क्रमशः विकास हुआ है । समरागण सूत्रधार में पाँच प्रकार के वारिगृहों के उल्लेख हैं । सोमदेव ने यन्त्रधारागृह का विस्तार से वर्णन किया है । वहाँ यन्त्रजलघर या मायामेष की रचना की गयी थी । विभिन्न प्रकार के पशु-पक्षियों के मुँह से निकलता हुआ जल दिखाया गया था । यन्त्रपुत्तलिकार्य, यन्त्रवृक्ष आदि की रचना की गयी थी । यन्त्रधारागृह का प्रमुख आकर्षण यन्त्रस्त्री थी, जिसके हाथ छूने पर नखाग्रो से, स्तन छूने पर चूबुको से, कपोल छूने पर नेत्रों से, सिर छूने पर कर्णावतसो से, कटि छूने पर करधनि की डोरियों से तथा त्रिवली छूने पर नाभि से चन्दन चर्चित जल की धारयाँ बहने लगती थी । सोमदेव ने पंखा झलनेवाली तथा ताम्बूल-वाहिनी यान्त्रिक पुत्तलिकाओं का भी उल्लेख किया है । अन्तःपुर के प्रसंग में यन्त्रपर्यंक का उल्लेख है । इस परिच्छेद में इस सम्पूर्ण सामग्री का विवेचन किया गया है ।

चतुर्थ अध्याय में यशस्तिलककालीन भूगोल पर प्रकाश डाला गया है । यशस्तिलक में सैतालिस जनपद, चालीस नगर और ग्राम, पाँच बृहत्तर भारत के देश, पन्द्रह वन और पर्वत तथा बारह झील और नदियों के उल्लेख हैं । इसमें कुछ सामग्री ऐसी भी है जो सोमदेव के युग में अस्तित्व में नहीं थी । ऐसी सामग्री को सोमदेव ने परम्परा से प्राप्त किया था । इस सम्पूर्ण सामग्री का पाँच परिच्छेदों में विवेचन किया गया है ।

परिच्छेद एक में यशस्तिलक में उल्लिखित सैंतालिस जनपदों का परिचय है। अवनति, अश्मक, अन्न, इन्द्रकच्छ, कम्बोज, कर्णाट या कर्णाटक, करहाट, कर्लिंग, क्रथकैशिक, कांची, काशी, कीर, कुरुजागल, कुन्तल, केरल, कोग, कौशल, गिरिकूटपत्तन, चेदि, चेरम, चोल, जनपद, डहाल, दशार्ण, प्रयाग, पल्लव, पांचाल, पाण्डु या पाण्ड्य, भोज, वर्बर, मद्र, मलय, मगध, यौधेय, लम्पाक, लाट, वनवासि, बग या बगाल, बगी, श्रीचन्द्र, श्रीमाल, सिन्धु, सूरसेन, सौराष्ट्र, यवन तथा हिमालय इन सैंतालिस जनपदों में से यशस्तिलक में कई एक का एक बार और अधिकांश का एक से अधिक बार उल्लेख हुआ है। इस परिच्छेद में इन सबका परिचय दिया गया है।

परिच्छेद दो में यशस्तिलक में उल्लिखित चालीस नगर और ग्रामों का परिचय है। अहिच्छत्र, अयोध्या, उज्जयिनी, एकचक्रपुर, एकानमी, कनकगिरि, ककाहि, काकन्दी, काम्पिल्य, कुशाग्रपुर, किन्नरगीत, कुमुमपुर, कौशाम्बी, चम्पा, चुकार, ताम्रलिति, पद्मावतीपुर, पद्मनिखेट, पाटलिपुत्र, पोदनपुर, पौरव, बलवाहनपुर, भावपुर, भूमितिलकपुर, उत्तरमथुरा, दक्षिण-मथुरा या मदुरा, मायापुरी, मिथिलापुर, माहिष्मती, राजपुर, राजगृह, वल्लभी, वाराणसी, विजयपुर, हस्तिनापुर, हेमपुर, स्वस्तिमति, सोपारपुर, श्रीसागर या श्रीसागरम्, सिंहपुर तथा शखपुर, इन चालीस नगर और ग्रामों के विषय में यशस्तिलक में जानकारी आयी है। इस परिच्छेद में इनका परिचय दिया गया है।

परिच्छेद तीन में यशस्तिलक में उल्लिखित बृहत्तर भारतवर्ष के पाँच देश—नेपाल, सिंहल, सुवर्णद्वीप, विजयार्ध तथा कुलूत का परिचय दिया गया है।

परिच्छेद चार में यशस्तिलक में उल्लिखित पन्द्रह वन और पर्वतों का परिचय है। सोमदेव ने कालिदासकानन, कैलास, गन्धमादन, नाभिगिरी, नेपालशैल, प्रागट्टि, भीमवन, मन्दर, मलय, मुनिमनोहरमेखला, विन्ध्य, शिखण्डिताण्डव, सुवेला, सेतुबन्ध और हिमालय का उल्लेख किया है। इन सबके विषय में इस परिच्छेद में जानकारी दी गयी है।

परिच्छेद पाँच में यशस्तिलक में उल्लिखित सरोवर तथा नदियों का परिचय दिया गया है। सोमदेव ने मानस या मानसरोवर भील तथा गंगा, यमुना, नमंदा, जलवाहिनी, गोदावरी, चन्द्रभागा, सरस्वती, सरयू, शोण, सिन्धु तथा सिप्रा नदी का उल्लेख किया है। इस परिच्छेद में इनके बारे में जानकारी प्रस्तुत की गयी है।

पंचम अध्याय यशस्तिलक की शब्द सम्पत्ति विषयक है। यशस्तिलक संस्कृत के प्राचीन, अप्रसिद्ध, अप्रचलित तथा नवीन शब्दों का एक विशिष्ट कोश है। सोमदेव ने प्रयत्नपूर्वक ऐसे अनेक शब्दों का यशस्तिलक में संग्रह किया है। वैदिक काल के बाद जिन शब्दों का प्रयोग प्रायः समाप्त हो गया था, जो शब्द कोश ग्रन्थों में तो आये हैं, किन्तु जिनका प्रयोग साहित्य में नहीं हुआ या नहीं के बराबर हुआ, जो शब्द केवल व्याकरण ग्रन्थों में सीमित थे तथा जिन शब्दों का प्रयोग किन्हीं विशेष विषयों के ग्रन्थों में ही देखा जाता था, ऐसे अनेक शब्दों का संग्रह यशस्तिलक में उपलब्ध होता है। इसके अतिरिक्त यशस्तिलक में ऐसे भी बहुत से शब्द हैं, जिनका संस्कृत साहित्य में अन्यत्र प्रयोग नहीं मिलता। कुछ शब्दों का तो अर्थ और ध्वनि के आधार पर सोमदेव ने स्वयं निर्माण किया है। लगता है सोमदेव ने वैदिक, पौराणिक, दार्शनिक, व्याकरण, कोश, आयुर्वेद, धनुर्वेद, अश्वशास्त्र, गजशास्त्र, ज्योतिष तथा साहित्यिक ग्रन्थों से चुनकर विशिष्ट शब्दों की पृथक् पृथक् सूचियाँ बना ली थी और यशस्तिलक में यथास्थान उनका उपयोग करते गये। यशस्तिलक की शब्द सम्पत्ति के विषय में सोमदेव ने स्वयं लिखा है कि 'काल के कराल व्याल ने जिन शब्दों को चाट डाला उनका मैं उद्धार कर रहा हूँ। शास्त्र-समुद्र के तल में डूबे हुये शब्द-रत्नों को निकालकर मैंने जिस बहुमूल्य आभूषण का निर्माण किया है, उसे सरस्वती देवी धारण करे' (पृ० २६६ उ० प्र०)।

प्रस्तुत प्रबन्ध में मैंने ऐसे लगभग एक सहस्र शब्द दिये हैं। आठ सौ शब्द इस अध्याय में हैं तथा दो सौ से भी अधिक शब्द अन्य अध्यायों में यथास्थान दिये हैं। इस अध्याय में शब्दों को वैदिक, पौराणिक, दार्शनिक आदि श्रेणियों में वर्गीकृत न करके अकारादि क्रम से प्रस्तुत किया गया है। शब्दों पर मैंने तीन प्रकार से विचार किया है—(१) कुछ शब्द ऐसे हैं, जिन पर विशेष प्रकाश डालना उपयुक्त लगा। ऐसे शब्दों का मूल सदर्थ, अर्थ तथा आवश्यक टिप्पणी दी गयी है। (२) सोमदेव के प्रयोग के आधार पर जिन शब्दों के अर्थ पर विशेष प्रकाश पड़ता है, उन शब्दों के पूरे सदर्थ दे दिये हैं। (३) जिन शब्दों का केवल अर्थ देना पर्याप्त लगा, उनका सदर्थ संकेत तथा अर्थ दिया है।

शब्दों पर विचार करने का आधार श्रीदेव कृत टिप्पण तथा श्रुतसागर की अपूर्ण संस्कृत टीका तो रहे ही हैं, प्राचीन शब्द कोश तथा मोनियर विलियम्स और प्रो० आण्टे के कोशों का भी उपयोग किया गया है। स्वयं सोमदेव का प्रयोग भी प्रसंगानुसार शब्दों के अर्थ को खोलता चलता है। शि

अप्रचलित तथा नवीन शब्दों के कारण यशस्तिलक दुल्ह अवश्य लगता है, किन्तु यदि सावधानीपूर्वक इसका सूक्ष्म अध्ययन किया जाये तो क्रम-क्रम से यशस्तिलक के वर्णन स्वयं ही आगे पीछे के सदर्थों को स्पष्ट करते चलते हैं। इस प्रकार यशस्तिलक की कुञ्जी यशस्तिलक में ही निहित है। सोमदेव की इस बहुमूल्य सामग्री का उपयोग भविष्य में कोश ग्रन्थों में किया जाना चाहिए।

इस तरह उपर्युक्त पाँच अध्यायों के पच्चीस परिच्छेदों में प्रस्तुत प्रबन्ध पूर्ण होता है।



अध्याय एक

यशस्तिलक के परिशीलन की पृष्ठभूमि

यशस्तिलक और सोमदेव सूरि

यशस्तिलक

सोमदेव सूरि कृत यशस्तिलक महाराज यशोधर के जीवनचरित्र को आचार्य चनाकर गद्य और पद्य में लिखा गया एक महत्त्वपूर्ण संस्कृत ग्रन्थ है। इसमें आठ आश्वास या अध्याय हैं। पूरे ग्रन्थ में दो हजार तीन सौ ग्यारह पद्य तथा शेष गद्य है। सोमदेव ने गद्य और पद्य दोनों को मिलाकर आठ हजार श्लोक प्रमाण बताया है।^१

यशस्तिलक का रचनाकाल निश्चित है, इसलिए इसके अनुशीलन में वे अनेक कठिनाइयाँ नहीं आती, जो समय की अनिश्चितता के कारण प्राचीन भारतीय साहित्य के अनुशीलन में साधारणतया उपस्थित होती हैं। सोमदेव ने यशस्तिलक के अन्त में स्वयं लिखा है कि चैत्र शुक्ल त्रयोदशी शुकु मवत् ८८१ (६५६ ई०) को जिस समय श्री कृष्णराजदेव पाण्ड्य, सिंहल, चोल, चेर आदि राजाओं को जीतकर मेघनादी सेना शिविर में थे, उस समय उनके चरणरुमनोपजीवी, चातुर्व्यवशीय शरिरिकेपरी के प्रथम पुत्र सात वट्टिग (वट्टग) की राजधानी गगधारा में यह काव्य रचा गया।^२

राष्ट्रकूट नरेश कृष्णराज तृतीय के एक दानपत्र में भी सोमदेव के विवरण के समान ही कृष्णराजदेव की दिग्विजय का उल्लेख है।^३ यह दानपत्र सोमदेव

१ एतामष्टमहस्त्रीम् । -पृ० ४१८ उत०

२. शाहनामानातीतमवत्सराशेऽष्टमे ताशेत्यधिके तु गतेषु अक्षर (८८१) सिद्धार्थ-संवत्सरान्तर्गतचैत्रमासमदनत्रयोदश्यां पाण्ड्य-सिंहल-चोल-चेरममृतीन्महीपतीन् प्रसाध्यमेघनादीप्रवर्धमानराज्यपत्रवे श्रीकृष्णराजदेवे सति तत्पादपद्मोपजीविन समधिगतपत्रमशाश्वदमशासामन्ताधिपतिश्चालुक्यकुलतन्मन सामन्तचूडामणैः श्रीमदशिकेपरिण्य प्रथमपुत्रस्य श्रीमद्रथगराजप्रवर्धमानवसुधाराया गगधारायां विनिर्मापिनभिर्दं काव्यमिति । -यश० उक्त०, पृ० ४१८

३ कृतत्रादक्षिणदिग्जयोद्यतधिया चोलान्वयोन्मूलनम् ।
तद्भूमिं निजमृत्युवर्गपरितश्चेन्मपाण्ड्यादिकान् ॥
येनोच्चै सह सिंहलेन करदान् सम्मण्डलाधीश्वरान् ।
न्यस्त कीर्तिलतांकुप्रतिकृतिस्तम्भश्च रामेश्वरे ॥

—पपिप्राफिया इंडिका, भा० ४, अध्याय ६-७, दो करहाट प्लेट्स इन्सक्रिप्शन ।

के यशस्तिलक की रचना के कुछ ही सप्ताह पूर्व फाल्गुन वृष्ण त्रयोदशी शक सवत् ८८० (६ मार्च सन् १५६ ई०) को मेलपाटी (वर्तमान मेलाडी जो उत्तर अक्वटि की वादिवाश तहसील में है) में लिखा गया था ।^४

राष्ट्रकूट मध्ययुग में दक्षिण भारत के महाप्रतापी नरेश थे । धारवाड कर्नाटक तथा वर्तमान हैदराबाद प्रदेश पर राष्ट्रकूटों का अखण्ड राज्य था । लगभग आठवीं शती के मध्य से लेकर दशमी शती के अन्त तक राष्ट्रकूट सम्राट न केवल भारतवर्ष में, प्रत्युत पश्चिम के अरब साम्राज्य में भी अत्यन्त प्रसिद्ध थे । अरबों के साथ उन्होंने विशेष मंत्री का व्यवहार रखा और उन्हें अपने यहाँ व्यापार की सुविधाएँ दी । इस वंश के राजाओं का विरुद्ध बल्लभराज प्रसिद्ध था जिसका रूप अरब लेखकों से बल्हरा पाया जाता है ।^५

राष्ट्रकूटों के राज्य में साहित्य, कला, धर्म और दर्शन की चतुर्मुखी उन्नति हुई । उस युग की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को आधार बनाकर अनेक ग्रन्थों की रचना की गयी । यशस्तिलक उसी युग की एक विशिष्ट कृति है । यह अपने प्रकार का एक विशिष्ट ग्रन्थ है । एक उत्कृष्ट काव्य के सभी गुण इसमें विद्यमान हैं । कथा और आख्यायिका के श्लिष्ट, रोमाञ्चकारी और रोचक वर्णन, गद्य और पद्य के सम्मिश्रण का रुचि वैचित्र्य, रूपक के प्रभावकारी और हृदयग्राही सरल कथनोपकथन, महाकाव्य का वृत्तविधान, रससिद्धि, अलङ्कृत चित्राङ्कन तथा प्रसाद और माधुर्य युक्त सरस शैली, सुरुचिपूर्ण कथावस्तु और साहित्यकार के दायित्व का कलापूर्ण निर्वाह, यह यशस्तिलक का साहित्यिक स्वरूप है । गद्य का पद्यों जैसा सरल विन्यास, प्राकृत छन्दों का संस्कृत में अभिनव प्रयोग तथा अनेक प्राचीन अप्रसिद्ध शब्दों का सकलन यशस्तिलक के साहित्यिक स्वरूप की अतिरिक्त विशेषताएँ हैं । संस्कृत साहित्य सर्जन के लगभग एक सहस्र वर्षों में सुबन्धु, बाण और दण्डि के ग्रन्थों में गद्य का, कालिदास, भवभूति और भारवि के महाकाव्यों में पद्य का तथा भास और शुद्रक के नाटकों में रूपक रचना का जो विकास हुआ, उसका और अधिक परिष्कृत रूप यशस्तिलक में उपलब्ध होता है ।

काव्य के विशेष गुणों के अतिरिक्त यशस्तिलक में ऐसी प्रचुर सामग्री है, जो इसे प्राचीन भारत के सांस्कृतिक इतिहास की विभिन्न विधाओं से जोड़ती है,

४ वही

५. अल्लेकर—राष्ट्रकूट राज पण्ड देवरा टाइम्स (विशेष विवरण के लिए)

पुरातत्त्व, कला, इतिहास और साहित्य की सामग्री के साथ तुलना करने पर इसकी प्रामाणिकता और उपयोगिता और भी परिपुष्ट होती है। एक बड़ी विशेषता यह भी है कि सोमदेव ने जिस विषय का स्पर्श भी किया उस विषय में पर्याप्त जानकारी दी। इतनी जानकारी कि यदि उसका विस्तार से विश्लेषण किया जाये तो प्रत्येक विषय का एक लघुकाय स्वतन्त्र ग्रन्थ तैयार हो सकता है। यशस्तिलक पर श्रीदेव कृत यशस्तिलकपत्रिका नामक एक सक्षिप्त संस्कृत टीका है। इसे संस्कृत टिप्पण कहना अधिक उपयुक्त होगा। यद्यपि इनके समय का ठीक पता नहीं चलता, फिर भी ये सोमदेव से अधिक बाद के नहीं लगते। सोलहवीं शती में श्रुतसागर सूरि ने यशस्तिलकचन्द्रिका नामक संस्कृत टीका लिखी। यह लगभग साढ़े चार आश्वासो पर है। संभवतया वे इसे पूरा नहीं कर सके। श्रीदेव ने पत्रिका में यशस्तिलक के विषयो को इस प्रकार गिनाया है^७—

१ छन्द, २ शब्द निघट्ट, ३ अलंकार, ४ कला, ५ सिद्धान्त, ६ सामुद्रिक ज्ञान, ७ ज्योतिष, ८ वैद्यक, ९ वेद, १० वाद, ११ नाट्य, १२ काम, १३ गज, १४ अश्व, १५ आयुध, १६ तर्क, १७ आख्यान, १८ मंत्र, १९ नीति, २० शकुन, २१ वनस्पति, २२ पुराण, २३ स्मृति, २४ मोक्ष, २५ अर्घ्यात्म, २६ जगत्स्थिति और २७ प्रवचन।

यदि श्रीदेव के अनुसार ही यशस्तिलक के विषयो का वर्गीकरण किया जाये तो इस सूची में कई विषय और जोड़ने होंगे। जैसे— भूगोल, वास्तुशिल्प, यन्त्रशिल्प, चित्रकला, पाक विज्ञान, वस्त्र और वेशभूषा, प्रसाधन सामग्री और आभूषण, कला-विनोद, शिक्षा और साहित्य, वाणिज्य और सार्थवाह, सुभाषित आदि।

इस सूची के कई विषयो का समावेश सोमदेव ने यशस्तिलक में प्रयत्नपूर्वक किया है। उनका उद्देश्य था कि दशमी शताब्दि तक की अनेक साहित्यिक और सांस्कृतिक उपलब्धियों का मूल्यांकन तथा उस युग का सम्पूर्ण चित्र अपने ग्रन्थ में

७ छन्द शब्दनिघट्टवलकृतिकलासिद्धान्तसामुद्रिकज्योतिषवैद्यकवेदवादभरतानन्दपद्मिपश्यायुधम्।
तर्कख्यानकमन्त्रनीतिशकुनक्षमास्तूपुराणस्मृति-
श्रेयोऽर्घ्यात्मजगत्स्थितिप्रवचनीव्युत्पत्तिरश्नीच्यते ॥

उतार दें। निःसन्देह सोमदेव को अपने इस उद्देश्य में पूर्ण सफलता मिली। यशस्तिलक जैसे महनीय ग्रन्थ की रचना दशमी शती की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। सामग्री की इस विविधता और प्रचुरता के कारण यशस्तिलक को स्वयं सोमदेव के शब्दों में एक महान् अभिधान कोश कहना चाहिए।^८

यशस्तिलक में सामग्री की जितनी विविधता और प्रचुरता है, उतनी ही उसकी शब्द सम्पत्ति और विवेचन शैली की दुरुहता भी। इसलिए जिस वैदुष्य और यत्न के साथ सोमदेव ने यशस्तिलक की रचना की, शायद ही उससे कम वैदुष्य और प्रयत्न यशस्तिलक के हार्द को समझने में लगे। संभवतया इस दुरुहता के कारण ही यशस्तिलक साधारण पाठकों की पहुँच से दूर बना आया, पर दक्षिण भारत से लेकर उत्तर भारत, राजस्थान और गुजरात के शास्त्र भण्डारों में उपलब्ध यशस्तिलक की हस्तलिखित पाण्डुलिपियाँ इस बात की प्रमाण हैं कि पिछली शताब्दियों में भी यशस्तिलक का सम्पूर्ण भारतवर्ष में मूल्यावन हुआ।

बीसवीं शती में पीटरसन और कीथ जैसे पाश्चात्य विद्वानों का ध्यान यशस्तिलक की महत्ता और उपयोगिता की ओर आकर्षित हुआ है। भारतीय विद्वानों ने भी अपनी इस निधि की ओर अब दृष्टि डाली है।

सम्पूर्ण यशस्तिलक श्रुतसागर सूरि की अपूर्ण संस्कृत टीका के साथ दो जिल्दों में अब तक केवल एक बार लगभग साठ वर्ष पूर्व निर्णयसागर प्रेस, बम्बई से प्रकाशित हुआ था। तीन आश्वासों का पूर्व खण्ड सन् १९०१ में और पाँच आश्वासों का उत्तर खण्ड सन् १९०३ में। पूर्व खण्ड सन् १९१६ में पुनर्मुद्रित भी हुआ था। इस संस्करण में पाठ की अनेक अशुद्धियाँ हैं। उत्तर खण्ड में तो अत्यधिक है। सन् १९४६ में बम्बई से केवल प्रथम आश्वास श्री जे० एन० क्षीरसागर द्वारा अंगरेजी टिप्पण आदि के साथ सम्पादित होकर प्रकाशित हुआ था। सन् १९४६ में झोलापुर से प्रो० वृष्णकान्त हन्दिकी का 'यशस्तिलक एण्ड इंडियन क्लचर' प्रकाश में आया। इसमें प्रो० हन्दिकी ने यशस्तिलक की सांस्कृतिक-विशेषकर धार्मिक और दार्शनिक सामग्री का विद्वत्पूर्ण अध्ययन और विश्लेषण प्रस्तुत किया है।

सन् १९६० में वाराणसी से प० सुन्दरलाल शास्त्री ने हिन्दी अनुवाद के साथ प्रथम तीन आश्वासों का सम्पादन करके प्रकाशन किया है। अन्त में लगभग

उतने ही श्रीदेव के टिप्पण भी दे दिये हैं। इस सस्करण में सम्पादक ने मूल पाठ को प्राचीन प्रतियो से बहुत कुछ शुद्ध किया है।

पिछले ५-६ दशको में पत्र-पत्रिकाओं में भी सोमदेव और यशस्तिलक पर विद्वानो के कई लेख प्रकाशित हुये हैं, जिनमें स्व० प० नाथूराम प्रेमी, स्व० प० गोविन्दराम शास्त्री, डॉ० वी० राघवन् तथा डॉ० ई० डी० कुलकर्णी के लेख विशेष महत्त्वपूर्ण हैं।

यशस्तिलक के अतिम तीन आश्वासो का पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री ने संपादन और हिन्दी अनुवाद किया है, जो सन् १९६४ के अन्त में उपासकाध्ययन नाम से प्रकाशित हुआ है। प्रारम्भ में संपादक ने छयानवे पृष्ठो की हिन्दी प्रस्तावना भी दी है। प० जिनदास शास्त्री, सोलापुर ने श्रुतसागर सूरि की टीका की पूर्ति स्वरूप सस्कृत टीका लिखी है, वह भी इसके अन्त में मुद्रित हुई है।

यशस्तिलक पर अब तक जितना कार्य हुआ उसका यह संक्षिप्त लेखा-जोखा है। यशस्तिलक की महनीयता को देखते हुये यह कार्य अत्यल्प है और इसके बाद भी यशस्तिलक में बहुत-सी सामग्री ऐसी बच रहती है जिसका विवेचन नितान्त आवश्यक है। और जिसके बिना यशस्तिलक की सम्पूर्ण सामग्री का भारतीय सास्कृतिक इतिहास और साहित्य की नवीन उपलब्धियों में उपयोग नहीं किया जा सकता। प्रो० हन्दिनी ने अपने ग्रन्थ में यशस्तिलक के जिन विषयो की विवेचना की है, वह निःसंदेह महत्त्वपूर्ण है। उन्होने जिस-जिस विषय को लिया है, उसके विषय में सोमदेव की ही तरह पूरी निष्ठा, विद्वत्ता और श्रमपूर्वक पर्याप्त और प्रामाणिक जानकारी दी है।

मेरी समझ में यशस्तिलक के सही अध्ययन का यह श्रीगणेश मात्र है। श्रीगणेश मगलमय हुआ यह परम शुभ एव आनन्द का विषय है। प्रो० हन्दिनी जैसे अनेक विद्वान् जब यशस्तिलक के परिशीलन में प्रवृत्त होंगे, तभी उसकी बहुमूल्य सामग्री का ज्ञान-विज्ञान की विभिन्न शाखा-प्रशाखाओं में उपयोग किया जा सकेगा। यशस्तिलक तो विविध प्रकार की बहुमूल्य सामग्री का भंडार है। अध्येता ज्यो-ज्यो इसके तल में पैठता है, उसे और-और सामग्री उपलब्ध होती जाती है। इसी कारण स्वयं सोमदेव ने विद्वानो को निरन्तर आनुपूर्वी से इसका विमर्श करते रहने की मन्त्रणा दी है (अजस्रमनुपूर्वश. वृत्ती विमृशन्, यश० उक्त०, पृ० ४१८)।

सोमदेव सूरि

यशस्तिलक आचार्य सोमदेव का कीर्तिस्तंभ है। यह उनकी तलस्पर्शिनी विमल प्रज्ञा, बिम्बग्राहिणी सर्वतोमुखी प्रतिभा तथा प्रशस्त प्रकाण्ड पांडित्य का मूर्तिमान स्मारक है। वे एक महान तार्किक, सरस साहित्यकार, कुशल राजनीतिज्ञ, प्रबुद्ध तत्त्वचिंतक और उच्चकोटि के धर्मचार्य थे। उनके लिए प्रयुक्त होने वाले स्याद्वादाचलसिंह, तार्किकचक्रवर्ती, वादीभपचानन, वाक्कल्लोल-घयोनिधि, कविकुलराजकुजर, अनवद्यगद्यपद्यविद्याधरचक्रवर्ती आदि विशेषण उनकी उत्कृष्ट प्रज्ञा और प्रभावकारी व्यक्तित्व के परिचायक हैं।^९

सोमदेव ने यशस्तिलक में लिखा है कि वे देवसघ के साधु श्री नेमिदेव के शिष्य तथा यशोदेव के प्रशिष्य थे।^{१०}

सोमदेव ने अपना यशस्तिलक चालुक्यवशीय अरिकेसरी के प्रथम पुत्र वद्दिग की राजधानी गगवारा में पूर्ण किया था। यह वश राष्ट्रकूटों के अधीन सामन्त पदवीधारी था। अरिकेसरिन् तृतीय के दानपत्र में कहा गया है कि 'अरिकेसरी' ने अपने पिता वद्दिग के 'शुभधामजिनालय' नामक मन्दिर की मरम्मत आदि करके शक सवत् ८८८ (सन् ९६६ ई०) के बाद वैशाख मास की पूर्णिमा को बुधवार के दिन श्री सोमदेवसूरि को सन्निवेश सहस्रान्तर्गत रेपाक द्वादशो में का बनिक्कट्टुपुल (वर्तमान बोट्टुडुपुल्ल, हैदराबाद के करीमनगर जिले में) नामक ग्राम त्रिभोगाभ्यन्तरसिद्धि और सर्वं नमस्य सहित जलधारा छोडकर दिया।^{११}

९ स्याद्वादाचलसिंह-तार्किकचक्रवर्ति-वादीभपचानन-वाक्कल्लोलपयोनिधि-कविकुल-राजकुजरप्रभृतिप्रशस्तिप्रशस्तालकारेण। —नीतिवाक्यामृतन प्रशस्ति।

१० श्रीमानस्ति स देवसघतिलको देवो यश पूर्वक,
शिष्यस्तस्य बभूव सद्गुणनिधि श्रीनेमिदेवाह्वय।
तस्याश्चर्यतप स्थितेस्त्रिनवतेजेतुर्महावादिनाम्,
शिष्योऽभूदिह सोमदेव इति यस्तस्येष काव्यक्रम ॥

—यश० उक्त०, पृ० ४५८

११ निजपितु श्रीमद्वद्यगस्य शुभधामजिनालयाख्यवस (ते.) खण्डस्फुटितनवसुधा-कर्मवलिनिवेद्यार्थं शकाब्देष्वष्टशतीत्यधिकेष्वष्टशतेषु गतेषु (प्रव)र्त्तमानत्रयसंवत्सरवैशाखपौ (पौ) ण्यमास्या (स्या) बुधवामरे तेन श्रीमदरिकेसरिणा अनन्तरोक्ताय तस्मै श्रीसोमदेवसूरये सन्निवेशसहस्रान्तर्गतरप कद्वादशग्रामीमध्येकुत्तुवृत्ति वनिक्कट्टुपुलनामा ग्राम त्रिभोगाभ्यन्तरसिद्धिमर्वनमस्यस्सोदकधारन्दत्त।

—जैन साहित्य और इतिहास में उद्धृत, पृ० ५९५

इस दानपत्र में भी सोमदेव को, यशस्तिलक के उल्लेख के समान ही नेमिदेव का शिष्य तथा यशोदेव का प्रशिष्य बताया है। अन्तर केवल इतना है कि सोमदेव ने यशोदेव को देवसघ का लिखा है जब कि इस दानपत्र में उन्हें गौडसघ का कहा गया है।^{१२}

देवसघ और गौडसघ दो नाम एक ही मुनि सघ के प्रतीत होते हैं। सभघतः यशोदेव, नेमिदेव, सोमदेव आदि देवान्त नामो के कारण इस सघ का नाम देवसघ पडा हो तथा देश के आधार पर, द्रविड देश का द्रविडसघ, पुन्नाट देश का पुन्नाटसघ, तथा मथुरा का माथुरसघ आदि की तरह गौड देश के वासी होने से गौडसघ नाम हो गया हो। अपने देश से बाहर जाने के बाद मुनिसघ प्रायः उसी देश के नाम से प्रसिद्ध हो जाते थे।^{१३}

यशस्तिलक के अतिरिक्त सोमदेव का दूसरा ग्रन्थ नीतिवाक्यामृत उपलब्ध है। यह कौटिल्य के अर्थशास्त्र की तरह एक विशुद्ध राजनीतिक ग्रन्थ है। इसमें वृत्तीय समुद्देश हैं, जिनमें राजनीति सम्बन्धी विषयो को सूत्रशैली में लिपिवद्ध किया गया है।

नीतिवाक्यामृत पर दो टीकायें हैं। एक प्राचीन संस्कृत टीका है। इसके लेखक का नाम और समय का पता नहीं चलता। मगलाचरण से हरिवल नाम अनुमानित किया जाता है। टीका प्राचीन ज्ञात होती है। दूसरी टीका कन्नड कवि नेमिनाथ की है। यह संस्कृत टीका की अपेक्षा बहुत सक्षिप्त है।

नीतिवाक्यामृत मूल मात्र बवई से सन् १८८० में प्रकाशित हुआ था। सन् १९२२ में मारिकचन्द्र ग्रन्थमाला, बवई से संस्कृत टीका सहित भी प्रकाशित हुआ। और सन् १९५० में प० सुन्दरलाल शास्त्री ने मूल का हिन्दी अनुवाद के साथ भी प्रकाशन कराया। एक इटालियन अनुवाद भी प्रकाशित हुआ है।

नीतिवाक्यामृत की प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि सोमदेव ने षण्णवतिप्रकरण, युक्तिचिन्तामणिस्तव तथा महेन्द्रमातलिसंजल्प की भी रचना की थी।^{१४}

१२ श्रीगौडसघे मुनिमान्यकीर्तिनाम्ना यशोदेव इति प्रजज्ञे।—वही, श्लोक १५

१३ प्रेमी—जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग ११, कि० २, पृ० ९३।

१४. इति" षण्णवतिप्रकरण युक्तिचिन्तामणिस्तव-महेन्द्रमातलिसंजल्प यशोधर-महाराजचरितप्रमुखवेधसा सोमदेवसूरिणा विरचित नीतिवाक्यामृत समाप्तमिति।—नीतिवाक्यामृत प्रशस्ति।

चालुक्यवशीय अरिक्केसरिन् तृतीय के दान-पत्र में सोमदेव को स्याद्वादोपनिषद् का भी कर्ता कहा गया है।^{१५} अब तक इन ग्रन्थों का कोई पता नहीं चला। कहा नहीं जा सकता कि ये महान् ग्रन्थ-रत्न काल के कराल गाल में समा गये या किसी सुनसान एवं उपेक्षित शास्त्र-भण्डार में पड़े किसी सहृदय अन्वेषक की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

सोमदेव सूरि और कन्नौज के गुर्जर प्रतिहार

नीतिवाक्यामृत की प्रशस्ति में एक और भी महत्त्वपूर्ण सूचना है। इसमें सोमदेव को 'वादीन्द्रकालानलश्रीमन्महेन्द्रदेवभट्टारकानुज'^{१६} लिखा है। अर्थात् प्रतिपक्षी इन्द्र के लिए काल रूपी अग्नि के समान श्री महेन्द्रदेव महाराज के लघुभ्राता। इस पद में भट्टारक शब्द का प्रयोग आदरवाची है, जिसका अर्थ महाराज या सरकार बहादुर किया जा सकता है। शेष सब स्पष्ट है। देखना यह है कि ये इन्द्र तथा महेन्द्रदेव कौन थे ?

नीतिवाक्यामृत के संस्कृत टीकाकार ने लिखा है कि नीतिवाक्यामृत की रचना कान्यकुब्ज (कन्नौज) नरेश महेन्द्रदेव के आग्रह पर की गयी।^{१७}

यशस्तिलक से भी कान्यकुब्ज नरेश महेन्द्रदेव के साथ सोमदेव का परिचय और सम्बन्ध प्रतीत होता है। यशस्तिलक के मंगल पद्य में श्लेष द्वारा कन्नौज और महेन्द्रदेव का उल्लेख किया गया है—

“श्रियं कुवलयानन्दप्रसादितसहोदयः।

देवश्चन्द्रप्रभः पुष्याज्जगन्मानसवासिनीम् ॥”

इस पद्य के दो अर्थ हैं—एक चन्द्रप्रभ के पक्ष में और दूसरा कन्नौज नरेश देव या महेन्द्रदेव के पक्ष में।

१५. अपि च यो भगवानादर्शस्त्वरतविद्याना विरचायिता यशोधरचरित्तय कर्ता स्याद्वादोपनिषद् कवि (कवयि) ता चान्येषानपि लुभाषितानाम् ..।

—प्रेमी-जैन साहित्य और इतिहास, पृ० १९०

१३. नीतिवाक्यामृत प्रश०, पृ० ४०६

१७. रघुवशावरधाधिपराक्रमपालित्तय कर्णकुम्भेन महाराजश्रीमहेन्द्रदेवेन पूर्वाचार्यवृत्तार्थशारुद्रु(वदोषग्रन्थगौरवखिन्नमानसेन हृदोऽललितलघुनीतिवक्यामृत(चन्नासु प्रवर्तित' ।

पहला अर्थ—जिनका महान् उदय पृथ्वीमण्डल को आनन्दित करनेवाला है, ऐसे चन्द्रप्रभ भगवान् ससार के मानस में निवास करनेवाली लक्ष्मी को पुष्ट करें ।

दूसरा अर्थ—पृथ्वीमण्डल के आनन्द के लिए प्रसादित किया है कञ्चीज (महोदय) को जिसने ऐसे महेन्द्रदेव ससार के मनुष्यों के मन में निवास करनेवाली लक्ष्मी को पुष्ट करें ।

उक्त पद्य में प्रयुक्त 'महोदय' शब्द को मेदनी कोषकार भी कञ्चीज के अर्थ में बताता है (महोदयः कान्यकुब्जे) । हेमनाममाला में भी कान्यकुब्ज को महोदय कहा गया है (कान्यकुब्जं महोदयम्) ।

यशस्तिलक के एक दूसरे पद्य में भी सोमदेव ने अपना तथा महेन्द्रदेव का नाम एव सम्बन्ध विलिख्य रूप में निदिष्ट किया है—

“सोऽयमाशापितयशः महेन्द्रामरमान्यधीः ।

देयात्ते सततानन्दं वस्त्वभीष्टं जिनाधिपः ॥” (१।२२०)

इस पद्य के भी दो अर्थ हैं—पहला जिनेन्द्रदेव के अर्थ में और दूसरा सोमदेव के पक्ष में ।

पहला अर्थ—सभी दिशाओं में जिनका यश फैला है तथा समस्त नरेन्द्रो और देवेन्द्रो के द्वारा जिनके ज्ञान की पूजा की जाती है, ऐसे जिनेन्द्र भगवान् निरन्तर आनन्द स्वरूप (मोक्ष रूपी) अभीष्ट वस्तु प्रदान करें ।

दूसरा अर्थ—समस्त दिशाओं में जिनकी कीर्ति फैल गयी है तथा महेन्द्रदेव के द्वारा जिनकी विद्वत्ता का सम्मान किया गया है, ऐसे सोमदेव निरन्तर आनन्द देनेवाली (काव्य रूप) अभीष्ट वस्तु प्रदान करें ।

तीसरा अर्थ महेन्द्रदेव के सम्बन्ध में भी हो सकता है । अर्थात् जिनका यश समस्त दिशाओं में फैल गया है तथा जिनकी बुद्धि का लोहा देवता लोग भी मानते हैं, ऐसे महेन्द्रदेव आप सबको निरन्तर आनन्द और अभीष्ट वस्तु प्रदान करें ।

इस पद्य के प्रत्येक चरण के प्रथम अक्षर को मिलाने से 'सोमदेव' नाम निकलता है तथा द्वितीय चरण में महेन्द्र पद स्पष्ट है ।

यशस्तिलक के संस्कृत टीकाकार श्रुतसागर सूरि ने इस पद्य से सकेतित

होनेवाले सोमदेव नाम का तो टीका में उल्लेख किया है,^{१८} किन्तु आश्चर्य है कि न तो श्लिष्टार्थ को ही लिखा और न महेन्द्रदेव के नाम का भी कोई संकेत किया, यही कारण है कि विद्वानों को इस पद्य में से महेन्द्रदेव नाम निकालना मुश्किल लगता है।^{१९} इसी तरह प्रथम पद्य के द्वितीय अर्थ का भी टीकाकार ने कोई निर्देश नहीं किया।^{२०}

महेन्द्रमातलिसंजल्प का संकेत

नीतिवाक्यामृत की प्रशस्ति के उल्लेखानुसार सोमदेव ने 'महेन्द्रमातलिसंजल्प' नामक ग्रन्थ की भी रचना की थी। यद्यपि यह ग्रन्थ अभी तक प्राप्त नहीं हुआ फिर भी इसके नाम से प्रतीत होता है कि यह एक राजनीति विषयक ग्रन्थ होगा, जिसमें महेन्द्रदेव और उनके सारथी के सवाद रूप में राजनीति सम्बन्धी विषयों का वर्णन होगा। 'मातलि' और 'महेन्द्र' दोनों ही शब्द श्लिष्ट हैं। 'मातलि' शब्द का प्रयोग इन्द्र के सारथी तथा सारथी मात्र के लिए भी होता है। इसी तरह 'महेन्द्र' शब्द देवराज इन्द्र तथा कन्नौज नरेश महेन्द्रदेव दोनों का बोध कराता है।

उपर्युक्त विवरण से प्रतीत होता है कि सोमदेव का कन्नौज नरेश महेन्द्रदेव के साथ निकट का सम्बन्ध था। ये महेन्द्रदेव कौन थे, कब हुए तथा सोमदेव और इनके बीच किस-किस प्रकार के सम्बन्ध थे, इत्यादि बातों पर विचार करना आवश्यक है।

सोमदेव और महेन्द्रदेव के सम्बन्धों का ऐतिहासिक मूल्यांकन

कन्नौज के इतिहास में महेन्द्रदेव या महेन्द्रपालदेव नाम के दो राजा हुए हैं।^{२१} महेन्द्रपाल देव प्रथम और महेन्द्रपाल देव द्वितीय।

१८ अस्य श्लोकस्य चतुर्षु चरणेषु पूर्वो वर्णो गृह्यते, तेन 'सोमदेव' इति नाम भवति।

—यश० श्लो० २२० की सं० टी०, पृ० १९४।

१९ हन्दिकी—यशस्तिलक एण्ड इंडियन कल्चर, ४६४

२० इन दोनों पद्यों के श्लिष्टार्थ का पता सर्वप्रथम स्व० प्रज्ञाचतु प० गोविन्दराम जी शास्त्री ने लगाया था जिसका उल्लेख स्व० प्रेमी जी ने जैन साहित्य और इतिहास में किया है। शास्त्री जी ने बनारस आने पर मुझसे भी इसकी चर्चा की थी।

२१ दी एज ऑव इम्पीरियल कन्नौज, पृ० ३३, ३७

महेन्द्रपालदेव प्रथम

महेन्द्रपालदेव प्रथम का समय ८८५ ई० से ९०७ ८ ई० तक माना जाता है। यह महाराज भोज ८३६-८८५ ई० के बाद राजगद्दी पर बैठा था। महाकवि राजशेखर को बालकवि के रूप में इसका सरक्षण प्राप्त था।^{२२} राजशेखर त्रिपुरी के युवराजदेव द्वितीय के समय (९९० ई०) करीब ९० वर्ष की अवस्था में विद्यमान थे।^{२४} सोमदेव ने अपने यशस्तिलक में महाकवियों के उल्लेख के प्रसंग में राजशेखर को अन्तिम महाकवि के रूप में उल्लिखित किया है।^{२५} यशस्तिलक को सोमदेव ने ९५९ ई० में रचकर समाप्त किया था।^{२६} यह उनके परिपक्व जीवन की रचना है। यह बात उनके इस कथन से भी झलकती है कि जिस तरह गाय सूखा घास खाकर मधुर दूध देती है, उसी तरह मेरी बुद्धि रूपी गौ ने जीवन भर तर्क रूपी सूखी घास खायी, फिर भी सज्जनों के पुण्य से यह (यशस्तिलक) काव्य रूपी मधुर दुग्ध उत्पन्न हुआ।^{२७} इतना होने पर भी यशस्तिलक को समाप्ति के समय सोमदेव को पचास वर्ष से अधिक का नहीं माना जा सकता, क्योंकि ६६० ई० में राजशेखर ६० वर्ष के थे और सोमदेव ने उन्हें महाकवि के रूप में उल्लिखित किया है। यदि राजशेखर को सोमदेव से ८-१० वर्ष भी ज्येष्ठ न माना जाये तो सोमदेव द्वारा राजशेखर को महाकवि कहना कठिन है। सोमदेव स्वयं एक महाकवि थे। एक महाकवि के द्वारा दूसरे को महाकवि जितना आदर देने के लिए साधारणतया इतना अन्तर भी कम है।

इस प्रकार सोमदेव का आविर्भाव ६०८-६ ई० के आसपास मानना चाहिए। महेन्द्रपालदेव प्रथम का समय जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, ६०७-८ ई० तक माना जाता है। इस समय सोमदेव का या तो जन्म ही न हुआ होगा या फिर अवस्था अत्यल्प रही होगी। इसलिए इन महेन्द्रपालदेव के आग्रह पर नीतिवाक्यामृत की रचना का प्रश्न नहीं उठता।

२२ वही, पृ० ३३

२३ २४ दी क्रोनोलॉजिकल आर्डर ऑफ राजशेखराज वर्क्स, पृ० ३६५-३६६

२५ यशस्तिलक पृ० १५३ उक्त०

२६ वही पृ० ४१७ उक्त०

२७ आजन्मसमम्यस्ताच्छुष्कान्तर्कातृयादिव ममास्य ।

मत्तिमुरभेरभवदिद सृक्तिपय स्रुक्तिना पुरयै ॥ यश० आ० १। ७

महेन्द्रपालदेव द्वितीय

महेन्द्रपालदेव द्वितीय का समय ६४५-६ ई० माना जाता है।^{२८} सोमदेव इस समय सम्भवतया ३५-३६ वर्ष के रहे होंगे। इसलिए महेन्द्रपालदेव द्वितीय और सोमदेव के पारस्परिक सम्बन्धों में कालिक कठिनाई नहीं आती।

इन्द्र तृतीय

प्रथम महेन्द्रदेव के पुत्र और द्वितीय महेन्द्रदेव के पितृव्य महीपालदेव (६१४-६१७ ई०) का राष्ट्रकूट नरेश इन्द्र तृतीय (नित्यवर्ष) के साथ युद्ध हुआ था। चडकौशिक नाटक की प्रस्तावना में आर्य क्षेमीश्वर ने लिखा है—

“आदिष्टोऽस्मि श्रीमहीपालदेवेन यस्येसां पुराविदाः प्रशस्तिगाथा-मुदाहरन्ति—

यः संसृत्यप्रकृतिगहनामार्यं चाणक्यनीति
जित्वा नन्दान्कुसुमनगरं चन्द्रगुप्तो जिगाय।
कर्णाणत्वं ध्रुवमुपगतानद्य तानेव हन्तुं
दौर्दाढ्यः सः पुनरभवच्छ्रीमहीपालदेवः ॥”

अर्थात् उन महीपालदेव ने मुझे आज्ञा दी है, पुराविद लोग जिनकी इस प्रशस्ति गाथा को उद्धृत करते हैं कि जिस चन्द्रगुप्त ने स्वभाव से गहन चाणक्य-नीति का सहारा लेकर नन्दों को जीतकर कुसुमपुर (पटना) में प्रवेश किया, वही चन्द्रगुप्त कर्णाटक में जनमे हुए उन्ही नन्दों (राष्ट्रकूटों) को मारने के लिए महीपालदेव के रूप में अवतरित हुआ है।

इससे ज्ञात होता है कि राष्ट्रकूटों पर चढाई करते समय महीपालदेव ने आर्य चाणक्य की नीति (अर्थशास्त्र) का अवलम्बन किया था और आर्य क्षेमीश्वर उसे प्रकृति गहन बतलाते हैं तब आश्चर्य नहीं कि महीपाल देव के उत्तराधिकारी महेन्द्रपालदेव ने सोमदेव से कह कर सरल नीतिग्रन्थ नीतिवाक्या-मृत की रचना करायी हो।^{२९}

नीतिवाक्यामृत का रचनाकाल

यद्यपि नीतिवाक्यामृत के रचनाकाल तथा रचना स्थान का ठीक पता नहीं

^{२८} दी एज ऑव इम्पोरियल कन्नौज, पृ० ३७

^{२९} प० नाथूराम प्रेमी-सोमदेव सूरि और महेन्द्रदेव, जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग ११, किरण २

चलता फिर भी नीतिवाक्यामृत यशस्तिलक के पूर्व की रचना है, यह उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर निर्णीत किया जाता है।^{३०}

यशस्तिलक राष्ट्रकूट नरेश कृष्णराज तृतीय के चालुक्य वंशीय सामन्त वद्यग के आश्रित गगधारा में सन् ६५६ ई० में पूर्ण हुआ था जिसका उल्लेख सोमदेव ने स्वयं किया है। यशस्तिलक में सोमदेव के गुरु नेमिदेव को तिरानवे महावादियों को जीतने वाला कहा है जब कि नीतिवाक्यामृत में पचपन महावादियों को जीतने वाला। इससे नीतिवाक्यामृत यशस्तिलक के पूर्व की रचना ठहरता है। नीतिवाक्यामृत की रचना के समय नेमिदेव ने पचपन महावादियों को पराजित किया हो उसके बाद यशस्तिलक की रचना के समय तक अड़तीस वादियों को और भी जीत लिया हो। यदि नीतिवाक्यामृत बाद में रचा गया होता तो ये सख्यायें विपरीत होती अर्थात् यशस्तिलक की पचपन और नीतिवाक्यामृत की तिरानवे।^{३१}

दूसरे यदि नीतिवाक्यामृत यशस्तिलक के बाद का होता तो चूंकि वह शुद्ध राजनीतिक ग्रन्थ है, इसलिए किसी राष्ट्रकूट या चालुक्य राजा के लिए ही लिखा जाता और उसका उल्लेख भी अवश्य होता, किन्तु ऐसा कोई उल्लेख नहीं है। इससे प्रतीत होता है कि नीतिवाक्यामृत यशस्तिलक के पूर्व रचा गया।

उपर्युक्त साक्ष्यों के परिप्रेक्ष्य में नीतिवाक्यामृत के टीकाकार का यह कथन जांचने-देखने पर ठीक प्रतीत होता है कि प्रतिपक्षी इन्द्र के लिए कालाग्नि के समान कान्यकुब्ज नरेश महेन्द्रदेव के आग्रह पर उनके अनुज सोमदेव ने नीतिवाक्यामृत की रचना की।

लगता है महेन्द्रदेव द्वितीय के गद्दी पर बैठने के उपरान्त सोमदेव साधु हो गये हो। क्योंकि प्राचीन इतिहास में प्रायः ऐसा देखा गया है कि एक भाई के हाथ में शासन सूत्र आने पर दूसरा भाई यदि उसका विरोध नहीं करना चाहता तो सन्यस्त हो जाता था, या राज्य छोड़कर अन्यत्र चला जाता था। सोमदेव के साथ भी यही सम्भावना हो सकती है। या यह भी सम्भव है कि सोमदेव महेन्द्रदेव के सगे भाई न होकर दूर के रिश्ते के भाई रहे हो।

३० डाक्टर वी० राघवन्-नीतिवाक्यामृत आदि के रचयिता सोमदेव सूरि, जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग १० किरण २

३१ त्रिनवतर्जैतुर्महावादिनाम्-।-यश० पृ० ४५८

पंचपंचाशन्महावादिविजयोपार्जितकौनिन्दाकिनीपवित्रितत्रिभुवनस्य ।

-नीति० प्रशस्ति ।

एक अतिरिक्त प्रमाण के रूप में सोमदेव का देवान्त नाम भी इस बात का द्योतक है कि सोमदेव का गुर्जर प्रतिहार नरेशो से पारिवारिक सम्बन्ध रहा। यद्यपि साधु होने के बाद पहले का नाम प्रायः बदल दिया जाता है, किन्तु सम्भव है शब्द या अर्थ परिवर्तन के साथ सोमदेव ने किसी तरह अपना नाम भी सुरक्षित रख लिया हो।

यह कहा जा सकता है कि सोमदेव जिस सघ के साधु थे वह सघ ही देवान्त नाम वाला था। इसलिए सोमदेव का नाम भी देवान्त रखा गया। यह भी उतनी ही सम्भावना के रूप में ग्रहण किया जा सकता है, जितनी सम्भावना के रूप में प्रथम बात।

अन्त में पर्भनी शिलालेख के उल्लेख पर भी विचार कर लेना आवश्यक है। इस शिलालेख में सोमदेव के दादा गुरु को गौडसघ का कहा गया है।^{३२}

स्व० पण्डित नाथूराम प्रेमी श्रमणवेलगोला के शिलालेख में उल्लिखित गोल या गोल्ल से गौड की पहचान करते हैं। प्रो० हन्दिकी दक्षिण कनारा की गौड़ जाति से गौड़ सघ के सम्बन्ध की सम्भावना प्रकट करते हैं। वास्तव में सोमदेव और गुर्जर प्रतिहारों के सम्बन्धों पर विचार करते हुए ये दोनों सम्भावनाएँ ठीक नहीं लगती। कन्नौज के गुर्जर प्रतिहारों का साम्राज्य दूर-दूर तक था। दो गौड़ जनपद इसके अन्तर्गत थे। पश्चिम बङ्गाल को भी उस समय गौड़ कहा जाता था और उत्तर कौशल अर्थात् अवध के एक भाग को भी। बहुत सम्भव है कि यशोदेव उत्तर कौशल के रहे हो। अथवा प्रो० हन्दिकी के सुभावानुसार यदि गौड़ सघ और यशोदेव का सम्बन्ध दक्षिण कनारा की गौड़ जाति से भी मान लिया जाय तो भी इससे सोमदेव के महेन्द्रदेव के अनुज होने न होने पर प्रभाव नहीं पड़ता। राष्ट्रकूट और गुर्जर प्रतिहारों के पारिवारिक सम्बन्ध इतिहास में सुविदित हैं। सम्भव है महेन्द्रदेव द्वितीय के गद्दी पर बैठने के बाद सोमदेव दक्षिण भारत चले गये हो और कालान्तर में वही गौड़ सघ में मुनि हो गये हो।

निष्कर्ष रूप में यह स्वीकार न भी किया जाये कि सोमदेव महेन्द्रदेव के अनुज थे, तो भी यशस्तिलक से यह स्पष्ट है कि सोमदेव का सम्बन्ध विराट

३२ श्री गौडसघमुनिमान्यकीतिनाम्ना यशोदेव इति प्रजशे।

-प्रेमी जैन साहित्य और इतिहास में उद्धृत, पृ० ००

३३ ओम्का-राजपूताने का इतिहास, भाग १, पृ० २४०

राज्यशासन से दीर्घकाल तक रहा है। दक्षिण भारत में राष्ट्रकूटों के संपर्क में भी वे बहुत काल तक रहे प्रतीत होते हैं। यशस्तिलक में राज्यतन्त्र और उसके विभिन्न अवयवों के जो वर्णन हैं, वे सोमदेव के चित्रग्राहिणी प्रतिभा द्वारा स्वयं गृहीत चित्र हैं। इतने स्पष्ट और सागोपाग वर्णन बिना इसके सम्भव न थे। बाण ने अपने युग के महान् प्रतापी सम्राट् हर्ष के राज्यतन्त्र का चित्राकन अपने हर्षचरित में किया था, सोमदेव ने अपने युग के महाप्रतापी राष्ट्रकूटों के राज्यतन्त्र का चित्राकन अपने महतीय ग्रन्थ यशस्तिलक में किया।



यशस्तिलक की कथावस्तु और उसकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

पहले बताया है कि पूरा यशस्तिलक आठ आश्वासो या अध्यायो में विभक्त है। प्रथम आश्वास कथावतार या कथा की पृष्ठभूमि के रूप में है और अन्त के तीन आश्वासो में उपासकाध्ययन अर्थात् जैन गृहस्थ के आचार का विस्तृत वर्णन है। यशोधर की वास्तविक कथा बीच के चार आश्वासो में स्वयं यशोधर के मुँह से कहलायी गयी है। बाण की कादम्बरी की तरह कथा जहाँ से आरम्भ होती है, उसकी परिसमाप्ति भी वही आकर होती है। महाराज शूद्रक की सभा में लाया गया वैशम्पायन शुक कादम्बरी की कथा कहना प्रारम्भ करता है और कथावस्तु तीन जन्मों में लहरिया गति से घूमकर फिर यथास्थान पहुँच जाती है। सम्राट मारिदत्त द्वारा आयोजित महानवमी के अनुष्ठान में अपार जनसमुदाय के बीच बलि के लिए लाया गया परिव्रजित राजकुमार यशस्तिलक की कथा का आरम्भ करता है और रथ के चक्र की तरह एक ही फेरे में आठ जन्मों की कहानी पूरी होकर अपने मूल सूत्र से फिर जुड़ जाती है। आठ जन्मों की लम्बी कहानी का सूत्र यशस्तिलक के प्रासंगिक विस्तृत वर्णनों में कही खोज जाये, इसलिए सक्षिप्त कथा का जान लेना आवश्यक है। सम्पूर्ण कथावस्तु इस प्रकार है—

कथावस्तु

यौधेय नाम का एक जनपद था। उसकी राजधानी राजपुर थी। वहाँ मारिदत्त राज्य करता था। एक दिन उसे वीरभैरव नामक कौल आचार्य ने बताया कि चण्डमारी देवी के सामने सभी प्रकार के पशु-युगल के साथ सर्वाङ्ग सुन्दर मनुष्य युगल की अपने हाथ से बलि करने से विद्याधर लोक को जीतने वाले चक्र की प्राप्ति होती है। मारिदत्त विद्याधर लोक की विजय करने और वहाँ की कमनीय कामनियों के कटाक्षावन्नोकन की उन्मुक्तता को रोक न सका। उसने चण्डमारी के मन्दिर में महानवमी के आयोजन को अपूर्व उत्साह और धूमधाम के साथ मनाने की घोषणा कर दी। तैयारियाँ होने लगीं। छोटे-बड़े सभी तरह के पशुओं के जोड़े उपस्थित किये गये। कमी थी केवल सर्वाङ्ग सुन्दर मनुष्य युगल की। चारों ओर ऐसे युगल की खोज में राज्य कर्मचारी भेज दिये गये।

उसी समय राजधानी के निकट सुदत्त नाम के महात्मा आकर ठहरे। उनके साथ उनके दो अल्प वयस्क शिष्य भी थे। ये दोनों भाई-बहिन अल्प अवस्था में ही राज्य त्याग कर साधु हो गये थे। साधु वेश में उनका राजसी तेज और कमनीयता अक्षुण्ण थी। मध्याह्न में वे दोनों अपने गुह की आज्ञा लेकर नगर में भिक्षा के लिए गये। वहाँ उनकी राज्य कर्मचारियों से भेंट हो गयी। राज्य कर्मचारी बिना किसी रहस्य का उद्घाटन किये ही वहाना बना कर उन दोनों को चण्डमारी के मन्दिर में ले गये।

मारिदत्त सर्वांग सुन्दर नर युगल की प्राप्ति से उल्लसित हो उठा। उसकी विद्याधर लोक को जीतने की इच्छा साकार होनी थी। हर्षातिरेक में उसने कोश से तलवार निकाल ली, किन्तु साधु वेश, सौम्य प्रकृति और मृत्यु के सामने खड़ा होने पर भी उनके अपूर्व धैर्य को देख कर उसका हाथ रुक गया। बोला— मैं तुम्हारा परिचय जानना चाहता हूँ। मुनिकुमार ने कहा—साधु का क्या परिचय। फिर भी कौतूहल हो तो सुनो। [प्रथम आश्वास]

भरत क्षेत्र में अश्वन्ति नाम का एक जनपद है। उसकी राजधानी उज्जयिनी शिप्रा नदी के किनारे बसी है। वहाँ राजा यशोर्व राज्य करता था। उसकी चन्द्रमति नाम की रानी थी। उन दोनों के यशोधर नाम का एक पुत्र हुआ। एक दिन राजा ने अपने सिर पर सफेद बाल देखे। उन्हें देखकर उमे वैराग्य हो गया और उसने अपने पुत्र को राज्य देकर सन्यास ले लिया। यशोधर का राज्याभिषेक और अमृतमति के साथ पाणिग्रहण सस्कार शिप्रा के तट पर एक विशाल मण्डप में धूमधाम से सम्पन्न हुआ। [द्वितीय आश्वास]

राज्य संचालन में यशोधर का जीवन सुखपूर्वक बीतने लगा।

[तृतीय आश्वास]

एक दिन राजा यशोधर रानी अमृतमति के साथ विलास करके लेटा ही था कि रानी उसे सोया समझ धीरे से पलंग से उतरी और दासी के कपड़े पहन कर महल से निकल पड़ी। यशोधर इस रहस्य को जानने के लिए चुपके से उसके पीछे हो गया। उसने देखा कि रानी गजशाला में पहुँचकर अत्यन्त गन्दे विजयमकरध्वज नामक महावत के साथ नाना प्रकार से विलास कर रही है। उसके आश्वर्य, क्रोध और घृणा का ठिकाना न रहा। वह क्रोध से तिलमिला उठा और यह सोच कर कि दोनों का एक साथ ही काम तमाम कर दे, उसने कोश से तलवार निकाल ली। पर एक क्षण कुछ सोच कर उलटे पैर लौट पड़ा

श्रीर महल में आकर पलंग पर पुनः लेट गया। महावत के साथ रति करने के बाद रानी लीट आयी और यशोधर के साथ पलंग पर इस तरह चुपके से सो गयी मानो कुछ हुआ भी न हो।

इस घटना से यशोधर के मन को बड़ी ठेम लगी। उसका दिल टूट गया। ससार की असारता के विचार उसके मन में बार बार आने लगे।

सबसे प्रतिदिन के अनुसार जब यशोधर राजसभा में पहुँचा तो उसकी माता चन्द्रमति ने उसे उदास देख कर उदासी का कारण पूछा। यशोधर ने बात टालने की दृष्टि से कहा कि उसने आज रात्रि के अन्तिम प्रहर में एक स्वप्न देखा है कि वह अपने राजकुमार यशोमति को राज्य देकर सन्यस्त हो वन को चला गया है। इसलिए वह अपनी कुल परम्परा के अनुसार राजकुमार को राज्य देकर माधु होना चाहता है।

यह सुनकर राजमाता चिन्तित हुई और उसने कुल देवी चडमारी के मन्दिर में वलि चढाकर स्वप्न की शान्ति करने का उपाय बताया। यशोधर पशु हिंसा के लिए किसी भी मूल्य पर तैयार नहीं हुआ तो राजमाता ने कहा कि आटे का मुर्गा बना कर उसी की वलि करेंगे। यशोधर को विवश होकर यह मानना पडा। उसने सोचा कि कही राजमाता पुत्र के द्वारा अवज्ञा होने पर कोई अनिष्ट न कर बैठे, इसलिए उसने माँ की बात मान ली। एक और चडमारी के मन्दिर में वलि का आयोजन, दूसरी और कुमार यशोमति के राज्याभिषेक की तैयारी होने लगी।

अमृतमति को जब यह समाचार ज्ञात हुआ तो वह हृदय से प्रसन्न हो उठी। फिर भी दिखावा करती हुई बोली—स्वामिन् ! मुझे छोड़कर आप सन्यास लें, यह ठीक नहीं। अतः कृपा करके मुझे भी अपने साथ वन ले चलें।

यशोधर कुलटा रानी की इस ढिठाई से तिलमिला उठा। उसे गहरी चोट लगी, फिर भी बात को पी गया। मन्दिर में जाकर उसने आटे के मुर्गे की वलि चढायी। इससे उसकी माँ तो प्रसन्न हुई, किन्तु रानी को दुःख हुआ कि कही राजा का वैराग्य क्षणिक न हो। उसने वलि किये हुए उस आटे के मुर्गे के प्रसाद को पकाते समय उसमें विष मिला दिया, जिमके खाने से यशोधर और उसकी माँ, दोनों की मृत्यु हो गयी। [चतुर्थ आश्वास]

मृत्यु के बाद दोनों माँ और बेटे छ जन्मों तक पशुयोनि में भटकते रहे। पहले जन्म में यशोधर मोर हुआ और उसकी माँ चन्द्रमति कुत्ता। दूसरे जन्म में

यशोधर हिरण हुआ और चन्द्रमति साँप। तीसरे जन्म में वे शिप्रा नदी में जल जन्तु हुए। यशोधर एक बड़ी मछली हुआ और चन्द्रमति मगर। चौथे जन्म में दोनो अज युगल (बकरा-बकरी) हुए। पाँचवें जन्म में यशोधर पुनः बकरा हुआ तथा चन्द्रमति कर्लिंग देा में भैसा हुई। छठे जन्म में यशोधर मुर्गा और चन्द्रमति मुर्गी हुई।

मुर्गा-मुर्गी का मालिक वसन्तोत्सव में कुक्कुट युद्ध दिखाने के लिए उन्हें उज्जयिनी ले गया। वहाँ सुदत्त नाम के आचार्य ठहरे हुए थे। उनके उपदेश से उन दोनों को अपने पूर्व जन्मों का स्मरण हो गया और उन्हें अपने किये पर पश्चात्ताप होने लगा। अगले जन्म में मरकर वे दोनो राजा यशोमति के यहाँ उसकी रानी कुसुमावलि के गर्भ से युगल भाई-बहन के रूप में पैदा हुए। उनके नाम क्रमशः अभयरुचि और अभयमति रखे गये।

एक बार राजा यशोमति सपरिवार आचार्य सुदत्त के दर्शन करने गया और वहाँ अपने पूर्वजों की परलोक यात्रा के सम्बन्ध में पूछा। आचार्य सुदत्त ने अपने दिव्यज्ञान के प्रभाव से जानकर बताया कि तुम्हारे पितामह यशोवं अपनी तपस्या के प्रभाव से स्वर्ग में सुख भोग रहे हैं और तुम्हारी माता अमृतमति विष देने के पाप के कारण नरक में है। तुम्हारे पिता यशोधर तथा उनकी माता चन्द्रमति आटे के मुर्गों की बलि देने के पाप के कारण छः जन्मों तक पशुयोनि में भटककर अपने पाप का प्रायश्चित्त करके तुम्हारे पुत्र और पुत्री के रूप में उत्पन्न हुए हैं।

आचार्य सुदत्त ने उनके पूर्व जन्मों की कथा सुनायी जिसे सुनकर उन बालकों को संसार के स्वरूप का ज्ञान हो गया और इस डर से कि बड़े होने पर पुनः संसार चक्र में न फँस जायें, उन्होंने बाल्यावस्था में ही दीक्षा ले ली।

इतना कह कर अभयरुचि ने कहा, राजन् ! हम दोनो वही भाई-बहन हैं। हमारे वे आचार्य सुदत्त इसी नगर के पास आकर ठहरे हैं। हम लोग उनकी आज्ञा लेकर भिक्षा के लिए नगर में आये थे कि आपके कर्मचारी हमें पकड़कर यहाँ ले आये। [पचम आश्वास]

इतनी कथा पाँच आश्वासों में समाप्त होती है। इसके आगे तीन आश्वासों में सोमदेव ने उपासकाध्ययन (श्रावकाचार) का वर्णन किया है। वाणभट्ट की कादम्बरी की तरह यशस्तिलक की कथा का जहाँ से आरम्भ होता है वही उसकी परिसमाप्ति भी। कथा के सूत्र को जोड़ने के लिए सोमदेव ने आगे इतना और कहा है कि—राजा मारिदत्त यह वृत्तान्त सुनकर आश्चर्यचकित हो गया और

वोला-मुनिकुमार, हमें शीघ्र ही अपने गुरु के निकट ले चलें। हमें उनके दर्शनो की तीव्र उत्कंठा हो रही है।

इसके बाद सब लोग आचार्य सुदत्त के पास पहुँचे और उनके उपदेश से प्रभावित होकर धर्म में दीक्षित हो गये। धर्म के प्रभाव से सारा यौधेय सुख, शान्ति और समृद्धि से श्रोतप्रोत हो गया।

यशस्तिलक की इस सम्पूर्णा कथावस्तु को सोमदेव ने एक स्थान पर केवल एक पद्य में सजो कर रख दिया है—

“आसीच्चन्द्रमतिर्यशोधरनृपस्तस्यास्तनूजोऽभवत्
तौ चण्ड्याः कृतपिष्टकुक्कुटबलीच्चेडप्रयोगान्मृतौ ॥
श्वा केकी पवनाशनश्च पृषतः ग्राहस्तिमिश्रङ्गागिका
भर्तास्यास्तनयश्च गर्वरपतिर्जातौ पुनः कुक्कुटौ ॥”

—पृ० २५६, उक्त०

चन्द्रमति नामकी रानी थी। उसका पुत्र यशोधर हुआ। उन दोनों ने चण्डमारी देवी के सामने आटे के मुर्गे की बलि दी और विष के दिये जाने से उन दोनों की मृत्यु हो गयी। इसके बाद अगले जन्मो में क्रम से कुत्ता और मोर, साँप और सेही, मगर और महामत्स्य, बकरा-बकरी, फिर बकरा-बकरी और अन्त में मुर्गा-मुर्गी हुए।

इस तरह यशस्तिलक की कथा को एक ओर एक पद्य में संग्रहित किया गया है, दूसरी ओर इसी कथा को पूरे यशस्तिलक में नियोजित किया गया है।

कथावस्तु की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

काव्य के माध्यम से जन-मानस में नैतिक जागरण की प्रक्रिया प्राचीन काल से चली आयी है। काव्य से एक ओर पाठक का मनोरजन होता रहता है, दूसरी ओर बिना किसी बोझ के अनजाने ही उसके मानस-पटल पर नैतिक घरातल की पृष्ठभूमि भी तैयार होती रहती है। इसीलिए मम्मट ने इसे कान्तासम्मित उपदेश कहा। जिस प्रकार कान्ता (स्त्री) अपने पति का मन बहलाती हुई खुशी-खुशी उससे अपनी बात मनवा लेती है, उसी प्रकार काव्य पाठक का मनोरञ्जन करता हुआ उसे सदुपदेश भी दे देता है।

काव्यशास्त्र की इस मौलिक प्रेरणा ने ही साहित्यकार पर सामाजिक चरित्र विकास का उत्तरदायित्व ला दिया। फिर तो काव्य के माध्यम से धर्म और तत्त्वज्ञान की भी शिक्षा दी जाने लगी। महाकवि अश्वघोष के सौंदरानन्द महा-

काव्य और बुद्धचरित की पृष्ठभूमि बौद्ध चिन्तन और तत्त्वज्ञान को जनमानस तक पहुँचाने की मूल प्रेरणा से ही निर्मित हुई है। जैन साहित्य का एक बहुत बड़ा भाग इसी धरातल पर आधारित है।

सोमदेव सूरि का यशस्तिलक दशवी शताब्दी (६५६ ई०) के मध्य में लिखा गया संस्कृत साहित्य का एक ऐसा ही ग्रन्थ है, जिसकी मूल प्रेरणा शुद्ध रूप से नैतिक धरातल पर प्रतिष्ठित हुई है। कथाकार को जनमानस में अहिंसा के उत्कृष्टतम रूप की प्रतिष्ठा करना अभीष्ट था, जिसे उसने एक लोकप्रिय कथा-पुरुष के चरित्र के माध्यम से प्रस्तुत किया। यशस्तिलक का चरितनायक सम्राट यशोधर हिंसा का तीव्र विरोधी है, इसलिए जब उसकी माँ उससे पशुबलि देने की बात कहती है तो वह बिगड़ खड़ा होता है और कठोर शब्दों में बलि का खण्डन करता है। बाद में माँ के आग्रह और तीव्र प्रेरणा के कारण आटे के मुर्गे की बलि देना मजूर कर लेता है। बलि देने के तात्कालिक दुष्परिणाम-स्वरूप यशोधर की रानी उस आटे के मुर्गे में विष मिलाकर माँ-बेटे को बलि के प्रसाद के रूप में लिखा देती है, जिससे उन दोनों की तत्काल मृत्यु हो जाती है। मृत्यु के बाद दोनों छ जन्मों तक पशुयोनि में भटकते रहते हैं। अन्त में सद्-गुरु का सान्निध्य पाकर जब उन्हें अपने इस पाप का बोध होता है और उसके लिए वे पश्चात्ताप करते हैं तब कही उन्हें फिर से मनुष्य भव की प्राप्ति होती है।

इस तरह यशस्तिलक की कथावस्तु हिंसा और अहिंसा के द्वन्द्व की कहानी है। आचार्य सोमदेव एक उच्चकोटि के जैन साधु थे। अतएव उनका अहिंसा के प्रति तीव्र अनुराग स्वाभाविक था। कथा के माध्यम से वे अहिंसा संस्कृति को सम्पूर्ण जनमानस में बिठा देना चाहते थे। यशस्तिलक की कथा के द्वारा उन्होंने लोगों को दिखाया कि जब आटे के मुर्गे की भी हिंसा करने से लगातार छ जन्मों तक पशुयोनि में भटकना पड़ा तो साक्षात् पशु-हिंसा करने का कितना विषाक्त परिणाम होगा, इसकी कल्पना करना भी कठिन है। कथावस्तु की यही सांस्कृतिक पृष्ठभूमि है।

यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि यशस्तिलक की कथा का नायक एक सम्राट है। साम्राज्य में कितने तरह की हिंसा नहीं होती? पशुओं की बात तो दूर रही, युद्धों में नर संहार की भी सीमा नहीं रहती। ऐसी स्थिति में एक आटे के मुर्गे की बलि देने के कारण उसे छ जन्मों तक पशुयोनि में भटकना कहाँ तक-तर्कसंगत है?

सोमदेव का ध्यान उपर्युक्त तथ्य की ओर अवश्य गया होगा, क्योंकि अहिंसा संस्कृति के क्रमिक विकास को दृष्टि में रखते हुए उक्त कथावस्तु की योजना की गयी है। अहिंसा के उत्कृष्ट स्वरूप की साधना साधु ही कर सकता है जो प्रस और स्यावर समस्त जीवों की हिंसा से विरत है। गृहस्थ इतनी साधना नहीं कर सकता। उसे अपने आश्रित प्राणियों के भरण-पोषण के लिए नाना प्रकार का आरम्भ करना पड़ता है, तरह-तरह के उद्योग करने होते हैं तथा अपने विरोधियों का प्रतिरोध और विनाश करना होता है। वह यदि कुछ साधना कर सकता है तो केवल यह कि जानबूझकर (सकल्पपूर्वक) किसी भी प्राणी की हिंसा न करे। इन चार प्रकार की हिंसाओं को शास्त्रीय शब्दों में निम्न-लिखित नाम दिये गये हैं—

१. आरम्भी हिंसा, २. उद्योगी हिंसा, ३. विरोधी हिंसा, ४. सकल्पी हिंसा।

गृहस्थ इन चार प्रकार की हिंसाओं में से अतिम अर्थात् सकल्पी हिंसा का त्यागी होता है। यशस्तिलक के कथानायक ने सकल्पपूर्वक आटे के मुर्गों की बलि की थी, जिसका कि उसे त्यागी होना चाहिए था। यही कारण है कि उसे इसका विषाक्त फल भोगना पड़ा।

कथा की इस योजना के पीछे एक और भी महत्त्वपूर्ण तथ्य छिपा हुआ है। यशोधर को उक्त हिंसा के प्रतिफल छः जन्मों तक पशुयोनि में ही क्यों भटकना पड़ा, नरक में भी तो जा सकता था ?

यशोधर ने आटे का मुर्गा चढाकर उससे समस्त जीवों की बलि करने का फल प्राप्त होने की कामना की।^१ निःसन्देह यह देवता के साथ बहुत बड़ा छल था। छल-कपट (माया) तिर्यग्गति के कर्म बन्धन का कारण है (माया तैर्यग्योनस्य, तत्त्वार्थसूत्र ६।१६)। यही कारण है कि यशोधर को ऐसे तिर्यग्गति कर्म का बन्ध हुआ, जिसे वह छ जन्मों में भोग पाया।

इस प्रकार यशस्तिलक की कथावस्तु अहिंसा संस्कृति की विशाल पृष्ठभूमि पर प्रतिष्ठित हुई है। इससे एक ओर सोमदेव के साहित्यकार ने जनमानस के

१ सर्वेषु सत्त्वेषु हतेषु यन्मे भवेत्फलं देवि तदन्न भूयात् ।

इत्याशयेन स्वयमेव देव्या. पुर शिरस्तस्य चकर्त शस्त्र्या ॥

चरित्र विकास की नैतिक जिम्मेदारी पूर्ण की, दूसरी ओर अहिंसा की प्रतिष्ठा से धार्मिक नेता का दायित्व ।

एक बात और जो ध्यान में आती है वह यह कि समवतया १० वीं शताब्दी में बलि प्रथा का बहुत ही जोर था । छोटे से छोटे पशु-पक्षी से लेकर बड़े से बड़े पशु की बलि देने में भी लोगों का हिचकिचाहट नहीं होती थी । दक्षिण भारत में जहाँ कौल और कापालिक सम्प्रदाय विशेष पनपे, वहाँ बलि प्रथा का जोर होना स्वाभाविक था । सोमदेव ने यशस्तिलक में जिस तीव्रता के साथ और जिन कठोर शब्दों में बलि प्रथा का विरोध किया है, वह कथावस्तु की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का दूसरा अङ्ग है । बलि प्रथा का विरोध करना अहिंसा के विकास के लिए नितांत आवश्यक था । उसी के लिए सोमदेव ने कथा के माध्यम से जन सामान्य के सामने बलि के दुष्परिणामों को प्रस्तुत किया और लोगों को यह महसूस करने के लिए बाध्य किया कि बलि करना निन्द्य और निकृष्ट काम ही नहीं घृणास्पद, अतएव परित्याज्य भी है ।



यशोधरचरित्र की लोकप्रियता

यशोधरचरित्र मध्ययुग के साहित्यकारों का प्रिय और पर्यक्त विषय रहा है। यद्यपि कभावस्तु के मूल उल्ला के विषय में अभी निश्चयपूर्वक ज्ञान प्राप्त नहीं है, फिर भी अब तक उपलब्ध प्रकाशित तथा अप्रकाशित ग्रन्थों के आधार पर कहा जा सकता है कि लगभग सातवीं शताब्दी के अन्त में नैपथ्य उभरती जाती है यशोधरचरित्र पर ग्रन्थ रचना होती रही। प्रायतः, मध्ययुग, अथवा श, पुगनी हिन्दी, गुजराती, तमिल, कन्नड आदि भारतीय भाषाओं में इस कथा का आधार बनाकर लिखे गये अनेक ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। अथवा जगद्गुरुचरित्र की भूमिका में प्रो० पी० एल० वैद्य ने उनतीस ग्रंथों की सूचना दी है। इन उपलब्ध जानकारी से यह सरया जीवन तक पढ़ा जाती है। अनेक शास्त्र-भण्डारों की सूचियाँ अभी तक नहीं बन पायीं, इसलिए अभी भी यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि इस सूची के अतिरिक्त शायद नए ग्रन्थ यशोधरचरित्र पर न मिलें। अब तक प्राप्त जानकारी का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

१ उद्योतन सूरि ने कुचलयमाला कहा (७७९ ई०) में प्रभजन द्वारा रचित यशोधरचरित्र की सूचना दी है।^१ यद्यपि यह ग्रन्थ अब तक प्राप्त नहीं हुआ, किन्तु यह सत्य है कि प्रभजन ने यशोधरचरित्र की रचना की थी। वासवसेन ने भी प्रभजन का उल्लेख किया है।^२

२ हरिभद्र सूरि के प्राकृत ग्रन्थ समराट्टच कहा में यशोधर की कथा पायी है। हरिभद्र उद्योतन सूरि के गुरुपुत्रों में से थे। इनका समय आठवीं शताब्दी का मध्यकाल माना जाता है।

१ सत्तुष्य जी जसहरौ जसहर चरिष्य जयधर पथडो ।
कलि-मल-पभंजयो चिय पभजयो आसि राधरिसी ॥
—कुचलयमाला, पृ० ३।३१

२ सर्वशास्त्रविदा मान्ये सर्वशास्त्रार्थपारसी ।
प्रभंजनादिभिः पूर्वं हरिषेयसमन्वितैः ॥

—पौ० पल० वैद्य -जसहरचरित्र, भूमिका, पृ० २५

३ हरिभद्र के बाद दशवी शती में सोमदेव ने सस्कृत में विशालकाय यशस्तिलक लिखा ।

४ सोमदेव के समकालीन विद्वान् पुष्पदन्त ने अपभ्रंश में जसहरचरिउ की रचना की ।

५ पुष्पदन्त और सोमदेव के बाद वादिराजकृत यशोधरचरित्र की जानकारी मिलती है । श्रुतमागर ने वादिराज को सोमदेव का शिष्य बताया है ।^३ स्वयं वादिराज की सूचना के अनुसार उन्होंने यशोधरचरित्र की रचना के पूर्व सवत् ९४७ (१०२५ ई०) में पार्श्वनाथचरित की रचना की थी ।^४

६ वादिराज के बाद वासवसेन का उल्लेख किया जाना चाहिए । वासवसेन ने सस्कृत में आठ अध्यायों में यशोधरचरित्र लिखा ।

७ वामवसेन के समकालीन वत्सराज ने भी यशोधर-कथा पर ग्रन्थ लिखा । गन्धर्व कवि ने वासवसेन तथा वत्सराज दोनों का उल्लेख किया है । इसलिए इनका समय १४ वी शती से पूर्व का अनुमाना जाता है ।

८ वासवसेन ने अपने पूर्ववर्ती प्रभजन और हरिषेण का उल्लेख किया है । हरिषेण के काव्य के विषय में कोई जानकारी नहीं मिलती । सस्कृत कथाकोष के रचयिता हरिषेण से इनकी पहचान की जाती है किन्तु पर्याप्त साध्यों के अभाव में निश्चित रूप में यह नहीं माना जा सकता कि वामवसेन के द्वारा उल्लिखित हरिषेण यही है ।

९ वासवसेन की शैली और विधा पर ही सम्भवतया सकलकीर्ति ने अपना ससृष्ट यशोधरचरित्र लिखा । सकलकीर्ति के गिण्य ज्ञानभूषण ने सवत् १५६० में अपनी तत्त्वज्ञानतरंगिणी की रचना की थी । इसी आधार पर सकलकीर्ति का समय १४५० ई० के लगभग अनुमाना जाता है ।

१० सकलकीर्ति की ही शैली और विधा पर सोमकीर्ति ने सस्कृत में यशोधरचरित्र की रचना की । स्वयं सोमकीर्ति ने इसका रचनाकाल सवत् १५३६ (१४७९ ई०) दिया है ।

३ स वादिराजोऽपि सोमदेवाचार्यस्य शिष्य । वादीभसिंहोऽपि मदीय शिष्य श्री वादिराजोऽपि मदीय शिष्य । इत्युक्तत्वाच्च ।—यश० २।१२६ स० टी०

४ श्री पार्श्वनाथकाङ्कत्थचरित येन कीर्तितम् ।

तेन श्रीवादिराजेनारब्धा याशोधरी कथा ॥

११ माणिक्यसूरि ने संस्कृत के अनुष्टुप् पद्यों में १४ अध्यायों में यशोधर चरित्र की रचना की। इनके समय आदि के विषय में कोई जानकारी नहीं मिलती। माणिक्यसूरि ने हरिभद्र को अपने पूर्ववर्ती रूप में स्मरण किया है।

१२ पद्मनाभ ने ना अध्यायों में संस्कृत यशोधरचरित्र लिखा। इसकी प्राचीनतम प्रति सन् १५३८ की मिलती है, जो आमेर (राजस्थान) के शास्त्र-भंडार में सुरक्षित है। इनके समय इत्यादि का ठीक पता नहीं चलता।

१३ पूर्णभद्र ने संस्कृत के ३११ पद्यों में सक्षय में यशोधरचरित्र लिखा। इनके सम्बन्ध में भी कोई विशेष जानकारी नहीं मिलती।

१४ क्षमाकल्याण ने संस्कृत गद्य में यशोधरचरित्र लिखा, जो कि आठ अध्यायों में समाप्त होता है। क्षमाकल्याण ने अपने यशोधरचरित्र के प्रारम्भ में हरिभद्र के प्राकृत यशोधरचरित्र का उल्लेख किया है।^५ क्षमाकल्याण ने अपनी कृति स० १८३९ (१७८२ ई०) में पूर्ण की थी।

१५ भण्डारकर इस्टीट्यूट में एक और पाण्डुलिपि यशोधरचरित्र की है, जिसके प्रारम्भ के कुछ पृष्ठ नहीं हैं और इसलिए उसके लेखक का भी पता नहीं चलता। ग्रन्थ ४ अध्यायों में समाप्त होता है। यह पाण्डुलिपि सन् १५२४ ई० की है।

रायबहादुर हीरानाल की ग्रन्थ-सूचि के अनुसार यशोधरचरित्र पर निम्न लिखित विद्वानों ने भी ग्रन्थ लिखे—

१६ मल्लिभूषण न० ७७८८

१७ ब्रह्मनेमिदत्त न० ७८००

१८ पद्मनाथ न० ७८०५। सम्भवतया उपरि-उल्लिखित पद्मनाभ और पद्मनाथ एक ही हैं।

१९ श्रुतसागर ने चार अध्यायों में संस्कृत में यशोधरचरित्र लिखा। ये श्रुतसागर यशस्तिलक के टीकाकार ही है। सप्त की प्रार्थना पर इन्होंने अपने ग्रन्थ की रचना की थी। ग्रन्थ के अन्त में प्रशस्ति इस प्रकार दी गयी थी—

श्रीसत्कुंदकुंदविदुषो देवेन्द्रकीर्तिर्गुरुः।

पट्टे तस्य मुमुक्षुरक्षणगुणो विद्यादिनंदीश्वरः ॥

५ श्री हरिभद्रमुनीन्द्रैर्विहित प्राकृतमय तथान्यकृतम्
तदहम् गद्यमय तत् कुर्वे सर्वावबोधकृते ॥

तत्पादपावनपयोधरमत्तभृंगः, श्रीमल्लिभूषणगुरुर्गरिमाप्रधानः ।

सप्रेरितोऽहममुनाभयरुच्यभिख्ये भट्टारकेण चरिते श्रुतसागराख्यः ॥^६

इनका समय १६वीं शती माना जाता है ।

२० हेमकजर ने ३७० श्लोको मे सस्कृत मे यशोधरकथा लिखी ।

२१. जन्न कवि ने सन् १२०९ में गद्य और पद्य मे चार अवतारो (अध्यायो) में कन्नड मे यशोधरचरित्र लिखा ।

२२ पूर्णदेव ने सस्कृत मे यशोधरचरित्र लिखा । इसके रचनाकाल का पता नही चलता । स० १८४४ की एक पाण्डुलिपि आमेर शास्त्र-भण्डार मे सुरक्षित है ।^७

२३ श्री विजयकीर्ति ने सस्कृत गद्य में यशोधरचरित्र लिखा । इसके रचना-काल या लिपिकाल का पता नही चलता ।^८

२४ ज्ञानकीर्ति ने सवत् १६५९ में सस्कृत यशोधरचरित्र लिखा । इसकी प्राचीनतम प्रति सवत् १६६१ की उल्लव्व है । यह आमेर शास्त्र-भण्डार मे सुरक्षित है ।^९

२५-२८ वडा मन्दिर, जयपुर के शास्त्र-भण्डार में सस्कृत यशोधरचरित्र की चार ऐसी भी पाण्डुलिपियाँ है, जिनके लेखक का पता नही चलता । इनमे रचनाकाल भी नही है । एक का लिपिकाल सवत् १७१५ तथा एक का १८०१ दिया है । चारो की शास्त्र सख्या इम प्रकार है ।^{१०}

(१) वेण्टन सख्या १४४६ (सवत् १८०१ की प्रति)

(२) वेण्टन सख्या १४४८

(३) वेण्टन सख्या १४४९

(४) वेण्टन सख्या १४५० (सवत् १७५० की प्रति)

६ राजस्थान के शास्त्र-भण्डारों की सूची, भाग २, पृ० २८८

७ आमेर शास्त्र भण्डार सूची, पृ० ११७

८ वही

९ वही, पृ० ११६

१० वही, पृ० २२८

२९ देवसूरि ने ३५० श्लोको में यशोधरचरित्र लिखा । इनके समय आदि का पता नहीं चलता (जैन ग्रन्थावलि, पृ० २३०) ।

३० सोमकीर्ति ने पुरानी हिन्दी में यशोधरगम लिखा । इसके रचना काल का पता नहीं चलता । यह सवत् १६६१ के लिये एक गुटके में उपलब्ध है ।^{११}

३१ परिहरानन्द ने हिन्दी पद्यों में सवत् १६७० में यशोधरचरित लिखा । इसकी सवत् १८३९ को पाण्डुलिपि ववीचन्द्रजी का मंदिर, जयपुर में सुरक्षित है ।^{१२}

३२ साह लोहट ने पद्मनाभ के यशोधरचरित के आधार पर हिन्दी यशोधरचरित्र लिखा । इसका रचनाकाल सवत् १७२१ है । इसकी सवत् १८०३ की प्रति उपलब्ध है ।^{१३}

३३ खुशालचन्द्र ने सवत् १७८१ में हिन्दी में यशोधरचरित्र लिखा । इसकी प्राचीनतम प्रति सवत् १८०१ की उपलब्ध है ।^{१४}

३४ अजयराज ने हिन्दी में यशोधर चामई लिखी । इसकी सवत् १८३९ की पाण्डुलिपि उपलब्ध है ।^{१५}

३५ गारवदास ने हिन्दी पद्यों में यशोधरचरित्र लिखा । इसका रचनाकाल सवत् १५८१ है ।^{१६}

३६ पन्नालाल ने हिन्दी गद्य में यशोधरचरित्र लिखा । इसका रचनाकाल सवत् १९३२ है ।^{१७}

३७ एक प्रति हिन्दी यशोधरचरित्र की जैन मन्दिर सवी जी के शास्त्र भंडार, जयपुर में वेण्टन सख्या ६११ में है । इसके लेखक, रचनाकाल आदि का पता नहीं चलता ।^{१८}

११ वही, पृ० २७६

१२ राजस्थान के शास्त्र भंडारों की सूची, भाग ३ पृ० ७१

१३ आमेर शास्त्र भंडार सूची, पृ० ११६

१४ वही

१५ राजस्थान के शास्त्र भंडारों की सूची, भाग ३, पृ० ७७

१६ वही, भाग ४, पृ० १६१

१७ वही, पृ० १६२

१८ वही, पृ० १६३

३८ यशोधर-जयमाल नाम से हिन्दी में एक रचना एक गुटके में उपलब्ध है। इसके रचयिता या रचनाकाल का पता नहीं चलता।

३९ सोमदत्तसूरि ने हिन्दी में यशोधररास लिखा। इसके रचनाकाल आदि का पता नहीं चलता। यह ववीचन्दजी का मंदिर, जयपुर में गुटका संख्या ४८, वेण्टन संख्या १०१३ (ख) में सुरक्षित है।^{१९}

४० यशोधरचरित्र भाषा नाम से एक पाण्डुलिपि उपलब्ध है, जिसके रचयिता आदि का पता नहीं चलता।

४१ प० लक्ष्मीदास ने पुरानी हिन्दी में यशोधरचरित्र लिखा। लक्ष्मीदास ने अपनी कृति के प्रारम्भ में कहा है कि उन्होंने पद्मनाभ की शैली और विधा के आधार पर यशोधरचरित्र की रचना की।

४२ जिनचन्द्रसूरि ने पुरानी गुजराती में यशोधरचरित्र लिखा। सम्भवतया जिनचन्द्रसूरि १६वीं शती के विद्वान् थे।

४३ देवेन्द्र ने पुरानी गुजराती में यशोधररास लिखा।

४४ लावण्यरत्न ने स० १५७३ (१५१६ ई०) में गुजराती में यशोधरचरित्र लिखा।

४५ लावण्यरत्न के समान ही मनोहरदास ने भी स० १६७६ (१६१९ ई०) में गुजराती में यशोधरचरित्र लिखा।

४६ ब्रह्मजिनदास ने स० १५२० (१४६३ ई०) में यशोधररास लिखा।

४७. इसी तरह जिनदाम ने स० १६७० (१६१३ ई०) में यशोधररास लिखा।

४८ विवेकराज ने सवत् १५७३ में यशोधररास लिखा।

४९ यशोधरकथा चतुष्पदी के नाम से एक और गुजराती पाण्डुलिपि प्राप्त होती है। इसके रचयिता आदि का पता नहीं चलता।^{२०}

५० एक अज्ञात लेखक ने तमिल भाषा में यशोधरचरित्र लिखा। इसका समय १०वीं शताब्दी है और सम्भवत यह वादिराज की कृति है।

१९ वही, भाग ३, पृ० १२६

२० लिखडीना जैन ज्ञानमण्डारनी हस्तलिखित प्रतियोंनु सूची पत्र, पृ० १२३

५१ श्री चन्द्रनवर्णी ने कन्नड में यशोधरचरित्र लिखा । ये श्रुतमुनि के पौत्र प्रशिष्य शुभचन्द्र के पुत्र थे । रचनाकाल या लिपिकाल का पता नहीं चलता ।^{२१}

५२ कवि चन्द्रम ने भी कन्नड में यशोधरचरित्र लिखा । इनके भी समय आदि का पता नहीं चलता ।^{२२}

५३-५४ इनके अतिरिक्त और भी दो पाण्डुलिपियाँ कन्नड में यशोधरचरित्र की उपलब्ध होती हैं । इनके रचयिता आदि का पता नहीं चलता ।^{२३}

२१ कन्नड़प्रान्तीय ताडपत्रीय ग्रन्थसूची, पृ० १५६

२२, वही

२३ वही

अध्याय दो
यशस्तिलककालीन सामाजिक जीवन

वर्ण-व्यवस्था और समाज-गठन

यशस्तिलककालीन भारतीय समाज छोटे-छोटे अनेक वर्गों में बँटा हुआ था। आदर्श रूप में उन दिनों भी वर्णाश्रम-व्यवस्था की वैदिक मान्यताएँ प्रचलित थीं। यशस्तिलक से इस प्रकार की पर्याप्त जानकारी प्राप्त होती है। विभिन्न प्रमणों पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वश्य और शूद्र इन चारों वर्गों तथा अपने-अपने वर्गों का प्रति-निधित्व करने वाले अनेक सामाजिक व्यक्तियों के उल्लेख आये हैं। सोमदेव ने एकाधिक बार वर्णशुद्धि के विषय में भी सूचनाएँ दी हैं।^१

वर्णाश्रम-व्यवस्था की वैदिक मान्यताओं का प्रभाव सामाजिक जीवन के रंग-रंग में इस प्रकार बैठ गया था कि इस व्यवस्था का घोर विरोध करने वाले जैन-धर्म के अनुयायी भी इसके प्रभाव में तब तक नहीं आ सके। दक्षिण भारत में यह प्रभाव सबसे अधिक पडा, इसका साक्ष्य वहाँ उत्पन्न होने वाले जेनाचार्यों का साहित्य है। सोमदेव के पूर्व नवीं शताब्दि में ही आचार्य जिनसेन ने उन सभी वैदिक नियमोप-नियमों का जैनीकरण करके उन पर जैनधर्म की छाप लगा दी थी, जिन्हे वैदिक प्रभाव के कारण जैन समाज भी मानने लगा था। जिनसेन के करीब सौ वर्ष बाद सोमदेव हुए। वे यदि विरोध करते तो भी सामाजिक जीवन में से उन मान्यताओं का पृथक् करना सम्भव न था, इसलिए यशस्तिलक में उन्होंने यह चिन्तन दिया कि 'गृहस्थों का धर्म दो प्रकार का है—लौकिक तथा पारलौकिक। लौकिक धर्म लोकायित है तथा पारलौकिक आगमाश्रित, इसलिए लौकिक धर्म के लिए वेद (श्रुति) और स्मृतियों को प्रमाण मान लेने में कोई हानि नहीं है।'^२ प्राचीन जैन साहित्य की पृष्ठभूमि पर सोमदेव के इस चिन्तन का पर्यालोचन विशेष महत्व का है।

१. भजन्ति साकर्यमिमानि देहिना न यत्र वर्णाश्रमधमवृत्तयः ।—पृ० १ :

लोचनेषु वर्णसकरो न कुलाचारेषु ।—पृ० २०८

शुद्धवर्णाश्रमचरितविगतेतय ।—पृ० १८३ उक्त०

२. द्वौ हि धर्मा गृहस्थाना लौकिक पारलौकिक ।

लोकाश्रयो भवेदाद्य पर. स्यादागमाश्रय ॥

जातयोऽनादय सर्वास्तत्क्रियापि तथाविधा ।

श्रुति शास्त्रान्तर वास्तु प्रमाण काय न चति ॥—पृ० ३७३ उक्त०

चतुर्वर्णा

ब्राह्मण—यशस्तिलक में ब्राह्मण के लिए ब्राह्मण (११६-११८, १२६ उक्त०), द्विज (९०, १०५, १०८, १०४ उक्त०, ४५७ पू०), विप्र (४५७ पू०), भूदेव (८८ उक्त०), श्रोत्रिय (१०३ उक्त०), वाडव (१३५ उक्त०), उपाध्याय (१३१ उक्त०), मौहूर्तिक (३१६ पू० १४० उक्त०), देवमोगी, (१४० उक्त०) तथा पुरोहित (३१६ पू०, ३४५ उक्त०) शब्द आये हैं। एक स्थान पर (२१०) त्रिवेदी ब्राह्मण का भी उल्लेख है।

उन दिनों समाज में ब्राह्मणों की खूब प्रतिष्ठा थी। राजा भी इस बात में गौरव अनुभव करता था कि ब्राह्मणों में उसकी मान्यता है।^३ पितृतर्पण आदि सामाजिक क्रिया-काण्डों में भी ब्राह्मण ही आगे रहता था।^४ श्राद्ध के लिए ब्राह्मणों को घर बुलाकर भोजन कराया जाता था।^५ विशिष्ट ब्राह्मणों को दान देने की प्रथा थी^६। श्राद्ध तथा मृत्यु के बाद की अन्य क्रियाएँ करानेवाले ब्राह्मणों के लिए भूदेव शब्द आया है।^७ सम्भवतः श्रोत्रिय ब्राह्मण आचार की दृष्टि से सबसे श्रेष्ठ माने जाते थे, किन्तु उनमें भी मादक द्रव्यों का उपयोग होने लगा था।^८ बलि आदि कार्य के विषय में पूरी जानकारी रखने वाले, वेदों के जानकार ब्राह्मणों को वाडव कहते-थे।^९ दशकुमारचरित में भी ब्राह्मण के लिए वाडव शब्द का प्रयोग हुआ है।^{१०} अध्यापन कार्य कराने वाले ब्राह्मण उपाध्याय कहलाते थे।^{११} शुभ मुहूर्त का शोधन करने वाले ब्राह्मण मौहूर्तिक कहे जाते थे।^{१२} मुहूर्त शोधन का कार्य करते समय वे उत्तरीय से अपना मुंह

३ त्रिवेदीवेदिभिर्मान्य ।—पृ० २१०

४. पितृसन्तर्पणार्थं द्विजसमाजसत्रसवतोकाराय समर्पयामास ।—पृ० २१८ उक्त०

५. भुक्ता च श्राद्धामन्त्रितैर्भूदेवै ।—पृ० ८८

६ ददाति दानं द्विजपुगवेष्य ।—४५७

७ श्राद्धामन्त्रितैर्भूदेवै —पृ० ८८ पू०, कार्यान्तामनयोर्भूदेवसदोहसाक्षिणी क्रिया ।—पृ० १९२ उक्त० ।

८. अशुचिनि मदनद्रव्यैर्निपात्यते श्रोत्रियो यद्वत् ।—पृ० १०३ उक्त०

९ वेदविद्भिर्वाडवै ।—पृ० १३५ उक्त०

१० वाडवाय प्रचुरतर धन दत्त्वा ।—दशकुमार० ११५

११ अध्यापयन्नुपाध्याय ।—पृ० १३१ उक्त०

१२ राज्याभिषेकदिवसात्प्राय मौहूर्तिकान् । पृ० १४० उक्त०

ढँक लेते थे ।^{१३} मन्दिर में पूजा के लिए नियुक्त ब्राह्मण देवभोगी कहलाता था ।^{१४} राज्य के मागलिक कार्यों के लिए नियुक्त प्रधान ब्राह्मण पुरोहित कहलाता था ।^{१५} यह प्रातःकाल ही राज-भवन में पहुँच जाता था ।

ब्राह्मण के लिए ब्राह्मण और द्विज बहु प्रचलित शब्द थे । विप्र, श्रोत्रिय, वाडव, देवभोगी तथा त्रिवेदी का यशस्तिलक में केवल एक-एक बार उल्लेख हुआ है । मीह्रतिक तथा भूदेव का दो-दो बार तथा पुरोहित का चार बार उल्लेख हुआ है ।

क्षत्रिय—क्षत्रिय वर्ग के लिए क्षत्र और क्षत्रिय दो शब्दों का व्यवहार हुआ है । प्राणियों की रक्षा करना क्षत्रियों का धर्म माना जाता था^{१६} । पौरुष सायक कार्य तथा राज्य संचालन क्षत्रियोचित कार्य माने जाते थे । यमराट् यगोवर को अहिच्छेत्र के क्षत्रियों का शिरोमणि कहा गया है ।^{१७}

वैश्य—व्यापारी वर्ग के लिए यशस्तिलक में वैश्य, वरिणक, श्रेष्ठी और सार्थवाह शब्द आए हैं । व्यापारी वर्ग राज्य में व्यापार करने के अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए विदेशों से भी सम्बन्ध रखते थे । सुवर्णद्वीप जाकर अपार धन कमाने वाले व्यापारियों का उल्लेख आया है ।^{१८}

कुशल व्यापारी को राज्य की ओर से राज्यश्रेष्ठी पद दिया जाता था ।^{१९} उसे विशापति भी कहते थे ।^{२०}

शूद्र—शूद्र अथवा छोटी जातियों के लिए यशस्तिलक में शूद्र, अन्त्यज तथा पामर शब्द आए हैं । अन्त्यजों का स्पर्श वर्जनीय माना जाता था । पामरों की सन्तान उच्च कार्य के योग्य नहीं मानी जाती थी ।^{२१}

१३ उत्तरीयदुकलाचलपिहितबिम्बिना . मीह्रतिकसमाजेन ।--पृ० ३१६ पृ०

१४ समाज्ञापय देवभोगिनम् ।--पृ० १४० उत्त०

१५ द्वारे तवोत्तमवमतिश्च पुरोहितोऽपि ।--पृ० ३६१ पृ०

१६ भूतसरक्षणं हि क्षत्रियाणां महान्धर्मं ।--पृ० ९५ उत्त०

१७ अहिच्छेत्रक्षत्रियशिरोमणि ।--पृ० २६७ पृ०

१८ सुवर्णद्वीपमनुसार । पुनरगण्यपण्यविनिमयेन तत्रत्यमचिन्त्यमात्माभिमत वस्तुस्कन्धमादाय ।- पृ० ३४२ उत्त०

१९. अजमार राजश्रेष्ठिन् --पृ० २६१ उत्त०

२० स विशापतिरेवमूचे ।--पृ० २६१ उत्त०

-१ अन्त्यजै स्पृष्टा ।--पृ० ४२७

अन्य सामाजिक व्यक्ति

सामाजिक कार्य करने वाले अन्य व्यक्तियों में निम्नलिखित उल्लेख आये हैं—

१ हलायुधजीवि (५६) हल चलाकर आजीविका करनेवाले ।

२ गोप (३९१) कृषि करने वाले ।

गोप की पत्नी गोपी या गोपिका कहलाती थी । पत्नी पति के कृषि कार्य में भी हाथ बटाती थी । सोमदेव ने धान के खेतों में जाती हुई गोपिकाओं का उल्लेख किया है (शालिविषु यान्य गोपिका , १८) । गोप और हलायुधजीवि में सम्भवतया यह अन्तर था कि गोप वे कहलाते थे, जिनकी अपनी निजी खेती होती थी तथा हलायुधजीवि उनको कहते थे, जो अपने हल ले जाकर दूसरों के खेत जोतकर अपनी आजीविका चलाते थे ।

३ ब्रजपाल (५६) गायें पालनेवाले ।

४ गोपाल (३४० उक्त०) ग्वाला ।

ग्वालों की बस्ती को गोष्ठ कहते थे ।^{२२} सम्भवतया ब्रजपाल उन्हें कहते थे, जिनके पास गायों तथा अन्य पशुओं का पूरा ब्रज (बड़ा भारी समुदाय) होता था तथा गोपाल वे कहलाते थे, जो अपने तथा दूसरों के पशु चराते थे ।

५ गोध (१३१ उक्त०) गडरिया ।

वकरियाँ तथा भेड़ें पालनेवाले को गोध कहते थे ।^{२३}

६ तक्षक (२७१) कारीगर या राजमिस्त्री ।^{२४}

७. मालाकार (३९३) माली ।

मालाकार या माली की कला का सोमदेव ने एक सुन्दर चित्र खींचा है । मन्त्री राजा से कहता है कि राजन्, मालाकार की तरह कटकितों को बाहर रोककर या लगाकर, घनों को विरले करके, उखाड़े गये को पुन रोपकर, पुष्पित हुए से फूल चुनकर, छोटों को बड़ाकर, ऊँचों को झुकाकर, स्थूलों को कुश करके तथा त्रत्यन्त उच्छृंखल या ऊबड़-खाबड़ को गिराकर पृथ्वी का पालन करे ।^५

२२ गोष्ठीनमनुस्मृत ।—पृ० ३४० उक्त०

२३ त गोधमेषमन्धधात् ।—पृ० १३१ उक्त०

२४ कार्यं किमत्र सदनादिषु तक्षकायै ।—पृ० २७१

२५ वृक्षान्कण्टकिनो बहिर्नियमयन् विश्लेषयन्साहिता
नुत्खातप्रतिरोपयन्कुसुमिता ष्वेचन्वाल्लघून्वर्धयन् ।

उच्चान्शनमय पृथ इच कृशयन्नर्युच्छ्रितान्पातयन्

मालाकार इव प्रयोगनिपुणो राजन्मही पालय ॥—पृ० ३६३

८ कौलिक (१२६) जुलाहा या बुनकर

कौलिक के एक औजार नलक का भी उल्लेख है। यह धागो को सुलभाने का औजार था जो एक ओर पतला तथा दूसरी ओर मोटा जघाओ के आकार का होता था।^{२६}

९ ध्वजिन् या ध्वज (४३०) श्रुतदेव ने इसका अर्थ तेली किया है।^{२७}

मनुस्मृति तथा याज्ञवल्क्य स्मृति में सोम या सुरा बेचने वाले के अर्थ में ध्वज या ध्वजिन् शब्द का प्रयोग हुआ है।^{२८}

१० निपाजीव (३९०) कुम्भकार।

निपाजीव निश्चल आसन पर बैठकर चक्र घुमाता तथा उस पर घड़े बनाता है। यशस्तिलक में एक मन्त्री राजा से कहता है कि हे राजन्, जिस प्रकार निपाजीव घड़ा बनाने के लिए निश्चल आसन पर बैठकर चक्र घुमाता है उसी तरह आप भी अपने आसन (सिंहासन या शासन) को स्थिर करके दिक्पालपुर रूपी घड़े बनाने के लिए अर्थात् चारों दिशाओं में राज्य करने के लिए चक्र घुमाओ (सेना भेजो)।^{२९}

११. रजक (२५४) बौबी अर्थात् कपड़े धोनेवाला।

रजक की स्त्री रजकी कहलाती थी। सोमदेव ने जरा (बुढापे) को रजकी की उपमा दी है, जिस तरह रजकी गन्दे कपड़ों को साफ कर देती है, उसी तरह जरा भी काले केशों को सफ़ेद कर देती है।^{३०}

१२. दिवाकीर्ति (४०३, ४३१) नाई या चाण्डाल।

सोमदेव ने लिखा है कि दिवाकीर्ति को सेनापति बना देने के कारण कलिङ्ग में अनग नामक राजा मारा गया था।^{३१} मनुस्मृति में चाण्डाल अथवा नीच जाति के लिए दिवाकीर्ति शब्द आया है।^{३२} नैषधकार ने नाई के अर्थ में इसका प्रयोग किया है।^{३३} यशस्तिलक के संस्कृत टीकाकार ने भी दिवाकीर्ति

२६. कौलिकनलकाकारे ते जघे साप्रत जाते।—पृ० १२६

२७. ध्वजकुलजात तिलतुदकुलोत्पन्न।—पृ० ४३०

२८. सुरापाने सुराध्वज, मनुस्मृति ४।८२, याज्ञवल्क्य स्मृति १।१४१

२९. निपाजीव इव स्वामिन्स्थीकृतनिजासन।

चक्र भ्रमय दिक्पालपुरभाजनसिद्धये।—पृ० ३६०

३०. कृष्णच्छवि, साध शिरोरुहश्रीर्जरारजकया क्रियतेऽवदाता।—पृ० २५४

३१. कर्लिंगेध्वनगो नाम दिवाकीर्ते, सेनाधिपत्येन वधमवाप।—पृ० ४३६

३२. मनुस्मृति ५।८२

३३. दिनामव दिवाकीर्तिस्तीक्ष्णं क्षुरं सवितु करं।—नैषध, १।६।२६

का अर्थ नाई तथा चाण्डाल दोनो किये है ।^{३४} नाई के लिए नापित शब्द भी आता है (२४५ उक्त०) ।

१३ आस्तरक (४०३) शय्यापालक ।

१४. सवाहक (४०३) पैर दवानेवाला ।

दिवाकीर्ति, आस्तरक और सवाहक ये तीनों अलग-अलग राज परिचारक होते थे । सोमदेव ने तीनों का एक ही प्रसङ्ग में उल्लेख किया है । सम्भवतया दिवाकीर्ति का मुख्य कार्य बाल बनाना, आस्तरक का मुख्य कार्य बिस्तर, गद्दी आदि ठीक करना तथा सवाहक का मुख्य कार्य पैर दवाना, तैल मालिश करना आदि होता था । कौटिल्य ने आस्तरक तथा सवाहक दोनो का उल्लेख किया है ।^{३५} समृद्ध परिवारो मे भी ये परिचारक रखे जाते थे । चारुदत्त के सवाहक ने अपने स्वामी के धनहीन हो जाने पर स्वयमेव काम छोड़ दिया था ।^{३६}

१५. धीवर (२१६, ३३५ उक्त०) मछली पकडने वाले ।

धीवर के लिए कैवर्ता शब्द (२१६, उक्त०) भी आया है । इनका मुख्य धन्धा मछली पकडना था । कैवर्ता के नव उपकरणों के नाम यशस्तिलक में आए है ।^{३७}

१ लगुड—लाठी या डण्डा

२ गल—मछली मारने का लोहे का काँटा

३ जाल—मछली पकडने का जाल

४ तरी—नाव

५ तर्प—घास का बना घोडा

६ तुवरतरग—तूबी पर बनाया गया फलक या पटिया

७ तरण्ड—फलक या तैरने वाला पटिया

८ वेडिका—छोटी नाव या डोगी

९ उडुप—परिहार नौका

३४ दिवाकीर्तिनापितस्य ।—पृ० ४३१ स० टी० । दिवाकीर्ति—चाण्डालस्य वा ।—४०३

३५ अर्थशास्त्र भाग १, अध्याय १२

३६. सवाहक —चालित्तावशेशे अ तस्मि जूशोवजीवो म्हि शबुत्ते ।

—मृच्छकटिक, अङ्क २

३७. कैवर्ता —लगुडगलजालव्यग्रपाणयत्तरीतर्पतुवरतरगतरण्डवेडिकोडुपसम्पन्नपरिकरा ।—पृ० २१६ उक्त०

१६. चर्मकार (१२५) चमार या चमडे का व्यापार करनेवाला ।

चर्मकार के साथ उसके एक उपकरण दृति का भी उल्लेख है ।^{३८} दृति का अर्थ श्रुत-नागर ने चर्मप्रसेविका किया है ।^{३९} दृति का अर्थ प्रायः पानी भरने वाला चमडे का थैला या मयक किया जाता है ।^{४०} लगता है दृति कच्चे चमडे को पकाने के लिए थैला बनाकर तथा उसमें पानी और अन्य पकाने वाली सामग्री भरकर ढाँगे गये चमडे को कहते थे । इसमें से पानी टपटप गिरता रहता है । देहातो^१ में चमडा पकाने की यही प्रक्रिया है । मोमदेव के उल्लेख से भी लगभग इसी स्वरूप का बोध होता है ।^{४१} मनुस्मृति तथा याज्ञवल्क्य स्मृति के उल्लेखों से भी इसका समर्थन होता है ।^{४२}

१७ नट या शैलूष (२२८ उत्त०, २६१)

इसका मुख्य पेना तरह-तरह के चित्ताकर्षक वेप धारण करके लोगों को खेल दिखाकर आजीविका चयाना था ।^{४३} नटों के पेशे का एक पद्य में सम्पूर्ण चित्र खींचा गया है । नट के खेल में जोर-जोर से वाजा बजाया जाता था (आनक-निनदनदत् रम्य) । स्त्रियाँ गीत गाती थी (गीतकान्त) । नट आभूषण पहने होता था, खानकर गले का हार (हाराभिराम) और जोर-जोर से नर्तन करता था (प्रोत्तालानर्तनीतिर्नट, २२८ उत्त०) ।

१८ चाण्डाल (२५४, २५७)

एक उपमा में चाण्डाल का उल्लेख है । सफेद केश को चाण्डाल के दण्ड (डंडे) की उपमा दी गयी है ।^{४४} एक स्थान पर कहा गया है कि वर्णाश्रम, जाति, कुल आदि की व्यवस्था तो व्यवहार से होती है, वास्तव में राजा के लिए जैसा विप्र वर्मा चाण्डाल ।^{४५}

३८ चर्मकारदृतिद्युतिम् ।—पृ० १०५

३९ दृतिश्चर्मप्रसेविका ।—वही, म० टी०

४० आप्टे—संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी

४१ या कृशोऽभूत्पुरा मय्यो बलित्रयविराजित ।

सोऽय द्रवद्रसो धत्ते चर्मकारदृतिद्युतिम् ॥—पृ० १२५

४२ इन्द्रियाणां तु सर्वेषां यथेकं क्षरतीन्द्रियम् ।

तेनास्य क्षरति प्रज्ञा दृतेपादादिवेदकम् ॥—मनुस्मृति, २।९९, याज्ञवल्क्य ३।२६

४३ गनूपयोषिदिव संसृतिरेनमेपा, नाना विडम्बयति चित्रकरैः प्रपञ्चैः ।

प्रपञ्चैर्नानावेषैः ।—पृ० २६५, म० टी०

४४ चाण्डालदण्ड इव ।—पृ० २५४

४५ वर्णाश्रमजातिकूलस्थितिरैषा देव सवृतेर्नान्या ।

परमाधतश्च नृपते को विप्र कश्च चाण्डाल ॥—पृ० ४५७

इसी प्रसङ्ग में 'भाल' शब्द का उल्लेख है। श्रुतसागर ने उसका अर्थ चाण्डाल किया है।^{४६} चाण्डाल अद्धृत माना जाता था और समाज में उसका अत्यन्त निम्न स्थान था। सोमदेव ने चाण्डाल का स्पर्श हो जाने पर मन्त्र जपने का उल्लेख किया है।^{४७}

१६ शवर (२८१, उक्त० ६०)

शवर एक जगली जाति थी। इसे भी अस्पृश्य माना जाता था।^{४८} शवर की स्त्री को शवरी कहते थे। शवर परिवार गरीब होते थे। ठड आदि से बचने के लिए उनके पास पर्याप्त वस्त्र आदि नहीं होते थे। सोमदेव ने लिखा है कि ठड में प्रातः काल शिशु को निश्चेष्ट देखकर शवरी उसे पिलाने के लिए हाथ में फलो का रस लिए उसे मरा हुआ समझकर रोती है।^{४९}

२०. किरात (२२० उक्त०)

किरात भी एक जगली जाति थी। इसका मुख्य पेशा शिकार था। यशस्तिलक में सम्राट यशोधर जब शिकार के लिए गये तब उनके साथ अनेक किरात शिकार के विविध उपकरण लेकर साथ में जाते हैं।^{५०}

२१. वनेचर (५६)

वनेचर शब्द से ही यह स्पष्ट है कि यह जगली जाति थी। किरातार्जुनीय में वनेचर का उल्लेख आया है।^{५१}

२२. मातंग (३२७ उक्त०)

यह भी एक जगली जाति थी। यशस्तिलक से ज्ञात होता है कि विन्ध्याटवी में मातङ्गों की बस्तियाँ थी। इनमें मद्य-मास का प्रयोग बहुत था। अकेला आदमी मिल जाने पर ये उसे भी मद्य-मास पिला-खिला देते थे।^{५२}

•

४६ प्रकृतिशुचिर्भालमध्येऽपि । भालमध्येऽपि चाण्डालमध्येऽपि ।—पृ० ४५७ स० टी०

४७ चाण्डालशवरादिभिः, आप्णुत्य दण्डवत् सन्यजपेन्मन्त्रमुपोषित ।

—पृ० २८१, उक्त०

४८ वही

४९ प्रातडिम्भविचेष्टितुण्डकलनान्नीहारकालागमे,

हस्तन्यस्तफलद्रवा च शवरी वाष्पातुर रोदिति ।—पृ० ६०

५० अनशुक्तोपोत्कृषितपाणिभिः किरातैः परिवृत ।—पृ० २२०

५१ स वशिष्ठिगि विदित समाययौ, युधिष्ठिर द्वैतवने वनेचर ।—१।३

५२. विन्ध्याटवीविषये "मातङ्गैरपवध्य उक्त ।—पृ० ३२७ उक्त०

सोमदेव सूरि और जैनाभिमत वर्ण-व्यवस्था

सोमदेव सूरि ने यज्ञस्तिलक में जैन चिन्तको के सामने सामाजिक व्यवस्था के सम्बन्ध में एक प्रश्न उपस्थित किया है—

द्वौ हि धर्मौ गृहस्थाना लौकिक पारलौकिकः ।
 लोकाश्रयो भवेदाद्यः परः स्यादागमाश्रय ॥
 जातयोऽनाद्यः सर्वास्तत्क्रियापि तथाविधाः ।
 श्रुति शास्त्रान्तरं वास्तु प्रमाणं कात्र नः क्षतिः ॥

(पृ० २७३ उक्त०)

—गृहस्थों के दो धर्म हैं एक लौकिक दूसरा पारलौकिक । लौकिक धर्म लोकाश्रित है और पारलौकिक आगमाश्रित । जातियाँ अनादि हैं तथा उनकी क्रियाएँ भी अनादि हैं, इसलिए इस विषय में श्रुति (वेद) और शास्त्रान्तर (स्मृति आदि) को प्रमाण मान लेने में हमारी क्या हानि है ।

इस प्रसङ्ग में आये श्रुति और शास्त्र शब्द को अन्यथा न समझा जाये, इसलिए स्वयं सोमदेव ने उक्त दोनों शब्दों को स्पष्ट कर दिया है—

श्रुतिर्वेदमिह प्राहुर्धर्मशास्त्रं स्मृतिर्मवा ।

(पृ० २७८)

—वेद को श्रुति कहते हैं और धर्मशास्त्र को स्मृति ।

उपर्युक्त प्रश्न को प्रस्तुत करने के बाद सोमदेव ने अपना निर्णय निम्न-लिखित शब्दों में दे दिया है—

सर्व एव हि जैनाना प्रमाणं लौकिको विधिः ।

यत्र सम्यक्त्वहानिर्न यत्र न व्रतदूषणम् ॥

(पृ० ३७३)

—जिन विधि में सम्यक्त्व की हानि न हो तथा व्रत में दूषण न लगे, ऐसी प्रत्येक लौकिक विधि जैनों के लिए प्रमाण है ।

इन पृष्ठभूमि पर विकसित होने वाला सोमदेव का चिन्तन उनके दूसरे ग्रन्थ नीतिवाक्यामृत में प्रसिद्ध स्पष्ट रूप में सामने आया है । उनके त्रयी ममुद्देश में

किया गया वर्ण-व्यवस्था सम्बन्धी वर्णन स्मृति प्रतिपादित तत्-तत् विषयो का सूत्रीकरण मात्र है। ब्राह्मण आदि चार वर्ण, उनके अलग-अलग कार्य, सामाजिक और धार्मिक अधिकार आदि का वर्णन विस्तार के साथ किया गया है।^१

जैन सिद्धान्तों के साथ वर्ण-व्यवस्था तथा उसके आधार पर सामाजिक व्यवस्था का प्रतिपादन करने वाले मन्तव्यों का किसी भी तरह सामंजस्य नहीं बैठता। सोमदेव स्वयं जैन सिद्धान्तों के मर्मज्ञ विद्वान् थे। ऐसी स्थिति में उनके द्वारा किया गया यह वर्णन सिद्धान्तों में अन्तर्विरोध उपस्थित करता हुआ प्रतीत होता है।

सोमदेव के पूर्वकालीन साहित्य को देखने से पता चलता है कि जैन चिन्तक बहुत पहले से ही सामाजिक वातावरण और वैदिक साहित्य से प्रभावित हो चले थे, उसी प्रभाव में आकर उन्होंने अनेक वैदिक मन्तव्यों को जैन साँचे में ढालने का प्रयत्न किया। यहाँ तक कि बाद के अनेक सिद्धान्तिक ग्रन्थों पर यह प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है।

मूल में जैनधर्म वर्ण-व्यवस्था तथा उसके आधार पर सामाजिक व्यवस्था को स्वीकार नहीं करता। सिद्धान्त ग्रन्थों में वर्ण और जाति शब्द नामकर्म के प्रभेदों में आये हैं। वहाँ वर्ण शब्द का अर्थ रंग है, जिसके कृष्ण, नील आदि पाँच भेद हैं। प्रत्येक जीव के शरीर का वर्ण (रंग) उसके वर्ण-नामकर्म के अनुसार बनता है।^२ इसी तरह जाति नामकर्म के भी पाँच भेद हैं—एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय। ससार के सभी जीव इन पाँच जातियों में विभक्त हैं।^३ जिसके केवल एक स्पर्शन इन्द्रिय है उसकी एकेन्द्रिय जाति होगी। मनुष्य के स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र—ये पाँचो इन्द्रियाँ होती हैं, इसलिए उसकी जाति पचेन्द्रिय है। पशु के भी पाँचो इन्द्रियाँ हैं, इसलिए उसकी भी पचेन्द्रिय जाति है।^४ इस तरह जब जाति की दृष्टि से मनुष्य और पशु में भी भेद नहीं तब वह मनुष्य-मनुष्य का भेदक तत्त्व कैसे माना जा सकता है? वर्ण (रंग) की अपेक्षा अन्तर हो सकता है, किन्तु वह ऊँच-नीच तथा स्पृश्य-प्रस्पृश्य की भावना पैदा नहीं करता।

गोत्रकर्म के उच्च गोत्र और नीच गोत्र दो भेद भी आत्मा की अभ्यन्तर

१ तुलना, नीतिवाक्यामृत त्रयी समुद्देश तथा मनुस्मृति, अध्याय १०

२. कर्मविपाकनामक प्रथम कर्मग्रन्थ, गाथा ३६

३ वही गाथा ३२

शक्ति की अपेक्षा किये गये हैं।^४ ये वर्ण, जाति और गोत्र धर्म धारण करने में किसी भी प्रकार की स्कावट पैदा नहीं करते। प्रत्येक पर्याप्तक भव्य जीव चौदहवें गुणस्थान तक पहुँच सकता है।^५ पाँचवें गुणस्थान से आगे के गुणस्थान मुनि के ही हो सकते हैं। इसका स्पष्ट अर्थ है कि कोई भी मनुष्य चाहे वह लोक में शूद्र कहलाता हो या ब्राह्मण, स्वेच्छा से धर्म धारण कर सकता है।

सैद्धान्तिक ग्रन्थों में सामाजिक व्यवस्था सम्बन्धी मन्तव्यों का वर्णन नहीं है। पौराणिक अनुश्रुति भी चतुर्वर्ण को सामाजिक व्यवस्था का आधार नहीं मानती।

अनुश्रुति के अनुसार सभ्यता के आदि युग में, जिसे शास्त्रीय भाषा में कर्मभूमि का प्रारम्भ कहा जाता है, ऋषभदेव ने अग्नि, मणि, कृपि, विद्या, शिल्प और वाणिज्य का उद्देश दिया। उमी आधार पर सामाजिक व्यवस्था बनी।^६ लोगों ने स्वेच्छा से कृपि आदि कार्य स्वीकृत कर लिये। कोई कार्य छोटा-बड़ा नहीं समझा गया। इसी तरह कोई भी कार्य धर्म धारण करने में स्कावट नहीं माना गया।

वाद के माहित्य में यह अनुश्रुति तो सुरक्षित रही, किन्तु उसके साथ में वर्ण-व्यवस्था का सम्बन्ध जोड़ा जाने लगा। नवमी शती में आकर जिनसेन ने अनेक वैदिक मन्तव्यों पर भी जैन छाप लगा दी।

जटामिह्नन्दि (७वीं शता, अनुमानित) ने चतुर्वर्ण की लौकिक और श्रांत-स्मार्त मान्यताओं का विस्तारपूर्वक खण्डन करके लिखा है कि—कृतयुग में तो वर्ण भेद था नहीं, त्रेतायुग में स्वामी-सेवक भाव आ चला था। इन दोनों युगों की अपेक्षा द्वापर युग में निकृष्ट भाव होने लगे और मानव समूह नाना वर्णों में विभक्त हो गया। कलियुग में तो स्थिति और भी बदतर हो गयी। शिष्ट लोगो ने क्रिया-विशेष का ध्यान रखकर व्यवहार चलाने के लिए दया, अभिरक्षा, कृपि और शिल्प के आधार पर चार वर्ण कहे हैं, अन्यथा वर्ण-चतुष्टय बनता ही नहीं।^७

४, कषाथप्राभृत, अध्याय १, सूत्र ८

५ वही, अध्याय १, सूत्र ८

६ स्वयम्भून्मोत्र, चादिनाथ श्रुति, श्लोक २

७. वराहचरित २१।६-११

रविषेणाचार्य (६७६ ई०) ने पूर्वोक्त अनुश्रुति तो सुरक्षित रखी, किन्तु उसके साथ वर्णों का सम्बन्ध जोड़ दिया। उन्होंने लिखा है कि—ऋषभदेव ने जिन व्यक्तियों को रक्षा के कार्य में नियुक्त किया वे लोक में क्षत्रिय कहलाए, जिन्हें वाणिज्य, कृषि, गोरक्षा आदि व्यापारों में नियुक्त किया, वे वैश्य तथा जो शास्त्रों से दूर भागे और हीन काम करने लगे वे शूद्र कहलाए।^८

ब्राह्मण वर्ण के विषय में एक लम्बा प्रमङ्ग आया है। जिसका तात्पर्य है कि ऋषभदेव ने यह वर्ण नहीं बनाया, किन्तु उनके पुत्र भरत ने व्रती श्रावणों का जो एक अलग वर्ण बनाया वही बाद में ब्राह्मण कहलाने लगा।^९

हरिवंशपुराण में जिनसेन सूरि (७८३ ई०) ने रविषेणाचार्य के कथन को ही दूसरे शब्दों में दोहराया है।^{१०}

इस प्रकार कर्मणा वर्ण-व्यवस्था का प्रतिपादन करते रहने के बाद भी उसके साथ चतुर्वर्ण का सम्बन्ध जुड़ गया और उसके प्रतिफल सामाजिक जीवन और श्रौत-स्मार्त मान्यताएँ जैन समाज और जैन चिन्तकों को प्रभावित करती गयीं। एक शताब्दी बीतते-बीतते यह प्रभाव जैन जन-मानस में इस तरह बैठ गया कि नवमी शती में जिनसेन ने उन सब मन्तव्यों को स्वीकार कर लिया और उन पर जैनधर्म की छाप भी लगा दी। महापुराण में पूर्वोक्त अनुश्रुति को सुरक्षित रखने के बाद भी स्मृति-ग्रन्थों की तरह चारों वर्णों के पृथक्-पृथक् कार्य, उनके सामाजिक और धार्मिक अधिकार, ५३ गर्भान्वय, ४८ दीक्षान्वय और ८ कर्त्तव्य क्रियाओं एवं उपनयन आदि संस्कारों का विस्तार के साथ वर्णानुक्रम किया गया है^{११}।

जिनसेन पर श्रौत-स्मार्त प्रभाव की चरम सीमा वहाँ दिखाई देती है, जब वे इस कथन का जैनीकरण करने लगते हैं कि—“ब्रह्मा के मुँह से ब्राह्मण, बाहुओं से क्षत्रिय, ऊरु से वैश्य तथा पैरों से शूद्रों की उत्पत्ति हुई।” वे लिखते हैं कि ऋषभदेव ने अपनी भुजाओं में शस्त्र-धारण करके क्षत्रिय बनाए, ऊरु द्वारा यात्रा का प्रदर्शन करके वैश्यों की रचना की तथा हीन काम करने वाले शूद्रों को

८ पद्मपुराण, पर्व ३, श्लोक २५५-२८

९ वही, पर्व ४, श्लोक ६६-१२९

१० हरिवंशपुराण, सर्ग ६, श्लोक ३३-४०, सर्ग ११, श्लोक १०३-१०७

११ महापुराण, पर्व १६, श्लोक १७६-१६१, २४३-२५०

पैरो से बनाया। मुख से शास्त्रों का अव्यापन कराते हुए भरत ब्राह्मण वर्ण की रचना करेगा।^{१२}

एक तरफ समाज में श्रौतस्मार्त प्रभाव स्वयं बढ़ता जा रहा था दूसरे उस पर जैनधर्म की छाप लग जाने से श्रौत भी दृढ़ता आ गयी।

जिनसेन के करीब एक शती बाद सोमदेव हुए। वे जैनधर्म के मर्मज्ञ विद्वान् होने के साथ-साथ प्रसिद्ध सामाजिक नेता भी थे। उनके सामने यह समस्या थी कि जैनधर्म के मौलिक सिद्धान्त, सामाजिक वातावरण तथा जिनसेन द्वारा प्रतिपादित मन्तव्यों का जैन चिन्तन के साथ कोई मेल नहीं बैठता। किन्तु जन-मानस में धँसे हुए मस्कारों को बदलना और एक प्राचीन आचार्य का विरोध करना सरल काम नहीं था। सोमदेव जैसे जन-नेता के लिए वह अभीष्ट भी न था। ऐसी परिस्थिति में उन्होंने यह चिन्तन दिया कि गृहस्थों के दो धर्म मान लिए जाएँ—एक लौकिक और दूसरा पारलौकिक। लौकिक धर्म के लिए वेद और स्मृति को प्रमाण मान लिया जाये और पारलौकिक धर्म के लिए आगमों को।

सोमदेव के ये मन्तव्य ऊपर से देखने पर जैन-चिन्तन के विलकुल विपरीत लगते हैं, क्योंकि एक तो वेद और स्मृतियों की विचारधारा जैन-चिन्तन के साथ मेल नहीं खाती। दूसरे जैनागमों में गृहस्थधर्म और मुनिधर्म, ये दो भेद तो आते हैं,^{१३} किन्तु गृहस्थों के लौकिक और पारलौकिक दो धर्मों का वर्णन यशस्तिलक के अतिरिक्त अन्यत्र नहीं हुआ।

अनायास ही यह प्रश्न उठता है कि क्या सोमदेव जैसा निर्भीक शास्त्रवेत्ता लौकिक और वैदिक प्रवाह में बहकर जैनधर्म के साथ इतना बड़ा अन्याय कर सकता है? यशस्तिलक के अन्त परिशीलन से ज्ञात होता है कि सोमदेव ने जो चिन्तन दिया, उसका शाश्वत मूल्य है तथा जैन-चिन्तन के साथ उसका किञ्चित् भी विरोध नहीं आता।

सोमदेव ने यशस्तिलक में अनेक वैदिक मान्यताओं का विस्तार के साथ सटन किया है,^{१४} इसलिए यह कहना नितान्त अनङ्गन होगा कि वे वेद और स्मृति को प्रमाण मानते थे।

^{१२} तुलना—महापुराण, पर्व १६, श्लोक ३४३-३४६

ऋग्वेद, पुरुषसूक्त १०, ६०, ६२

महाभारत, अन्वयाय = ६६, श्लोक ५६, पूना १६:२ ई०

मनुस्मृति, अध्याय १, श्लोक ३१, वनारस १२३५ ई०

^{१३} चारिषप्रामृत, गाथा २०

^{१४} यशस्तिलक उत्तरार्ध, अध्याय ४

गृहस्थो के दो धर्म व्रती और अन्नती सम्यग्दृष्टि के द्योतक हैं। अन्नती सम्यग्दृष्टि का चौथा गुणस्थान होता है। इस गुणस्थानवर्ती जीव के दर्शन-मोहनीयकर्म की मिथ्यात्व आदि प्रकृतियों का उपशम, क्षय या क्षयोपशम होने से सम्यक्त्व तो होता है, किन्तु चारित्रमोहनीय की अप्रत्याख्यानावरण कषाय आदि प्रकृतियों के उदय होने से सयम बिलकुल नहीं होता। यहाँ तक कि वह इन्द्रियों के विषयो से तथा व्रस और स्थावर जीवो की हिंसा से भी विरत नहीं होता।^{१५} सोमदेव द्वारा प्रतिपादित लौकिक धर्म को प्रमाण मानने वाला गृहस्थ जैन दृष्टि से इसी गुणस्थान के अन्तर्गत आता है।

पारलौकिक धर्म को स्वीकार करने वाले गृहस्थ के लिए सोमदेव ने स्पष्ट रूप से केवल आगमाश्रित विधि को ही प्रमाण बताया है। यह गृहस्थ सैद्धान्तिक दृष्टि से पञ्चम गुणस्थानवर्ती देशव्रती सम्यग्दृष्टि माना जाएगा। यहाँ दर्शन-मोहनीयकर्म की अप्रत्याख्यानावरण कषायों का भी उपशम, क्षय या क्षयोपशम हो जाने से जीव देश-सयम का पालन करने लगता है।^{१६} इस गुणस्थानवर्ती सम्यग्दृष्टि केवल उसी लौकिक विधि को प्रमाण मानता है जिसके मानने से उसके सम्यक्त्व की हानि न हो तथा व्रत में दोष न लगे। सोमदेव ने भी इस बात को कहा है, जिसका उल्लेख ऊपर कर चुके हैं।

इस तरह सोमदेव ने जिस कुशलता के साथ उस युग के सामाजिक जीवन में प्रचलित मान्यताओं के साथ जैन चिन्तन के मौलिक सिद्धान्तों का निर्वाह किया, उसका शाश्वत मूल्य है। जिनसेन की तरह सोमदेव ने वैदिक मन्तव्यों को जैन साँचे में ढालने का प्रयत्न नहीं किया, प्रत्युत उन्हें वैदिक ही बताया। सामाजिक निर्वाह के लिए यदि कोई उन्हें स्वीकृत करता है तो करे, किन्तु इतने मात्र से वे जैन मन्तव्य नहीं हो जाते।

सोमदेव के चिन्तन की यह स्पष्ट फलश्रुति है कि सामाजिक जीवन के लिए किन्हीं प्रचलित लौकिक मूल्यों को स्वीकृत कर लिया जाये, किन्तु उनको मूल चिन्तन के साथ सम्बद्ध करके सिद्धान्तों को हानि नहीं करनी चाहिए। सामाजिक मूल्य परिवर्तनशील होते हैं। देश, काल और क्षेत्र के अनुसार उनमें परिवर्तन होते रहते हैं। यह भी निश्चित है कि सैद्धान्तिक चिन्तन व्यवहार की कसौटी पर सर्वदा पूर्णरूपेण सही नहीं उतरता, किन्तु इतने मात्र से मूल सिद्धान्तों में परिवर्तन नहीं करना चाहिए।

१५ गोम्मटसार, जीवकाण्ड, गाथा २५, २६ २६

१६ गोम्मटसार, जीवकाण्ड, गाथा ३०

आश्रम-व्यवस्था और संन्यस्त व्यक्ति

सोमदेवकालीन समाज में आश्रम-व्यवस्था के लिए भी वदिक मान्यताएँ प्रचलित थीं। यद्यपि यशास्तलक में स्पष्ट रूप से ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास आश्रम का उल्लेख नहीं है फिर भी आश्रम व्यवस्था की पर्याप्त जानकारी प्राप्त होती है।

वाल्यावस्था को विद्याध्ययन का काल, यौवनावस्था को अर्थोपार्जन का काल तथा वृद्धावस्था को निवृत्ति का काल माना जाता था।^१

गुरु और गुरुकुल विद्याध्ययन की धुरी थे। वाल्यावस्था विद्याध्ययन का स्वर्णकाल माना जाता था। यदि वाल्यकाल में विद्या नहीं पढ़ी तो फिर जीवन-भर प्रयत्न करते रहने के बाद भी विद्या आना कठिन है।^२ जिनकी विधिवत् शिक्षा नहीं होती या जो विद्याध्ययन काल में ही प्रभुता या लक्ष्मीसम्पन्न हो जाते हैं, व बाद में निरकुश भी हो जाते हैं।^३ राजपुत्र तथा जन साधारण सभी के लिए यह समान बात है।^४

वाल्यावस्था या विद्याध्ययन के उपरान्त गोदान दिया जाता तथा विधिवत् गृहस्थाश्रम प्रवेश किया जाता था।^५ युवावस्था में लोग अपने गुरुजनों की सेवा का विशेष ध्यान रखते थे।^६

वृद्धावस्था में समस्त परिग्रह त्यागकर संन्यस्त होना आदर्श था।^७ इस अवस्था में अधिकांशतया लोग घर छोड़कर तपोवन चले जाते थे।^८ चतुर्थ

१. वाल्य विद्यागमैर्यत्र यौवन गुरुसेवया।

सर्वसगपरित्यागे सगत चरम वय ॥

—पृ० १६८

२. न पुनरायु रिधतय इवानुपासितगुरुकुलमथ यत्नवत्योऽपि सरस्वत्य ।—पृ० ४३२

३. बालकाल एव लब्धलक्ष्मीसमागम , असजातविद्यावृद्धगुरुकुलोपासन , निरकुशता नीयमान ।—पृ० २६

४ वही पृ० २३६-२३७

५ परिप्राणगोदानावसरश्च ।—पृ० ३२७

६ यौवन गुरुसेवया ।—पृ० १६८

७ सर्वमापरित्यागे सगत चरम वय ।—पृ० १६८

८. कुलवृद्धानां च प्रतिपन्न तपोवनलोकत्वात् । पृ० २६

परवय परिणतिद्वीनिवेदितनिसर्गप्रणयायास्तपोवनाश्रममाया ।—पृ० २८४

पुरुषार्थ (मोक्ष) की साधना करना इस अवस्था का मुख्य ध्येय था ।^{१०} नवयुवक को प्रव्रजित होने का लोग निषेध करते थे ।^{१०}

प्रव्रजित होते समय लोग अपने परिवार के सदस्यों तथा इष्ट-मित्रों आदि से सलाह और अनुमति लेते थे । यशोधर कहता है कि नयी अवस्था होने के कारण माता, पत्नी (महारानी), युवराज (पुत्र), अन्त पुर की स्त्रियाँ, पुरवृद्ध, मन्त्रिगण तथा सामन्त-समूह प्रव्रजित होने में तरह-तरह से रुकावट डालेंगे ।^{११} सम्राट यशोधर जब प्रव्रजित होने लगे तो उन्होंने अपने पुत्र को बुलाकर अपना मनोरथ प्रकट किया ।^{१२}

आश्रम-व्यवस्था के अपवाद

यद्यपि सामान्य रूप से यह माना जाता था कि बाल्यावस्था में विद्याध्ययन, युवावस्था में गृहस्थाश्रम प्रवेश तथा वृद्धावस्था में सन्यास ग्रहण करना चाहिए, किन्तु इसके अपवाद भी कम न थे । यशस्तिलक के प्रमुखपात्र अभयरुचि तथा अभयमति अपनी आठ वर्ष की अवस्था में ही प्रव्रजित हो गये थे ।^{१३} एक स्थल पर यशोधर श्रुति की साक्षी देता हुआ कहता है कि श्रुति का यह एकान्त कथन नहीं है कि 'बाल्यावस्था में विद्या आदि, जीवन में काम तथा वृद्धावस्था में धर्म और मोक्ष का सेवन करो, प्रत्युत यह भी कथन है कि आयु अनित्य है इसलिए यथा-योग्य रूप से इनका सेवन करना चाहिए ।'^{१४}

जैनागमों में बाल्यावस्था में प्रव्रजित होने के अनेक उल्लेख मिलते हैं । अति-मुक्तककुमार इतनी छोटी अवस्था में साधु हो गया था कि एक बार वर्षा के पानी को बाँवकर उसमें अपना पात्र नाव की तरह तैराकर खेलने लगा था ।^{१५} गज-सुकुमार गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने के पूर्व ही सन्यस्त हो गये थे ।^{१६}

१ चिराय प्राथितचतुर्थपुरुषार्थमर्थनमनोरथसारा ।—पृ० २८४

१० नवे च वयसि मयि राजातनिर्वेदे विधास्यन्ते अन्तराया ।—पृ० ७०, उक्त^१

११ वही, पृ० ७० ७१, उक्त०

१२. वही, पृ० २८४

१३. अष्टवर्षदेशायतयार्हदरूपायोग्यत्वादिमा देशयतिश्लाघनीयाशा दशामाश्रित्य ।

—पृ० २६५, उक्त०

१४ बाल्ये विद्यादीनर्थान् कुर्यात्, काम यौवने स्थविरे धर्म मोक्ष चैत्यपि नायमे-
कान्तोऽनित्यत्वादाशुघो यथोपपद वा सेवेत्यपि श्रुति ।—पृ० ७६, उक्त०

१५ भगवती० ५।४

१६. अतगडदमासुत्त, वर्ग ३

जैनधर्म सिद्धान्तत भी आयु के आघार पर आश्रमो का वर्गीकरण नही मानता । सोमदेव ने इस तथ्य को यशस्तिलक मे प्रकारान्तर से स्पष्ट किया है ।^{१७}

परिव्रजित या संन्यस्त व्यक्ति

परिव्रजित या संन्यस्त हुए लोगो के लिए यशस्तिलक मे अनेक नाम आए है । ये नाम उनके अपने धार्मिक सम्प्रदाय का प्रतिनिधित्व करते है—

१ आजीवक (४०६ उक्त०)

आजीवक सम्प्रदाय के साधुओं के साथ जैन श्रावक को सहालाप, सहावास तथा उनकी सेवा करने का निषेध किया गया है ।^{१८}

यशस्तिलक में आजीवको का उल्लेख अत्यधिक महत्वपूर्ण है, इससे यह ज्ञात होता है कि दशवी शताब्दी तक आजीवक सम्प्रदाय के साधु विद्यमान थे ।

आजीवक सम्प्रदाय के प्रणेता मखलिपुत्र गोशाल भगवान् महावीर के सम-सामयिक तथा उनके विरोधी थे । जैनागमो में इसके अनेक उल्लेख मिलते है ।^{१९}

आजीवको की अपनी कुछ विचित्र-सी मान्यताएँ थी । गोशाल पूर्ण नियति-वाद में विश्वास करते थे । 'जो होना है वही होगा' यह नियतिवाद की फलश्रुति है । गोशाल का कहना था कि 'सत्वो (जीवो) के केश का कोई हेतु नही है । विना हेतु और विना प्रत्यय के सत्व केश पाते है, स्वयं कुछ नही कर सकते, दूसरे भी कुछ नही कर सकते । सभी सत्व भाग्य और सयोग के फेर में छह जातियो मे उत्पन्न होते है और सुख-दुःख भोगते है । सुख-दुःख द्रोण से तुले हुए है, समार मे घटना-वडना, उत्कर्ष-अपकर्ष कुछ नही होता ।'^{२०}

२. कर्मन्दी (१३४, ४०८)

यशस्तिलक मे कर्मन्दी का दो बार उल्लेख है । इसका अर्थ श्रुतदेव ने तप किया है ।^{२१} पाणिनि ने कर्मन्द भिक्षुओं का उल्लेख किया है ।^{२२} सम्भवत जिम तरह पारागर के शिष्य पाराशर्य, शुक के शौनक आदि कहनाते थे उसी

१७ ध्यानानुष्ठानशक्त्यात्मा युवा यो न तपस्यति ।

स जगज्जर्जरा येपा तपो विघ्नकर परम् ॥ पृ० ७७, उक्त०

१८. आजीवकादिभि महावास सहालाप तत्सेवा च विवर्जयेत् ।—पृ० ४०६, उक्त०

१९-२० देखिए मेरा लेख—'महावीर के समकालीन आचार्य,' 'त्रमण' मासिक, महावीर जयन्ती अंक, ५६६१

२१. कर्मन्दीव तपस्वीव, वही, ग० टी०

२०. कर्मन्द्दृशाघादिनि ।४।३।११

तरह कर्मन्द मुनि के शिष्य कर्मन्दी कहलाते होंगे । यशस्तिलक के उल्लेख से ज्ञान होता है कि कर्मन्दी भिक्षु एकान्त रूप से मोक्ष की साधना में लगे रहते थे तथा स्वरकथा और विषय-सुख में किञ्चित् भी रुचि नहीं दिखाते थे ।^{२२}

३. कापालिक (२८१ उक्त०)

कापालिक शैव सम्प्रदाय की एक शाखा के साधु कहलाते थे । सोमदेव ने कापालिक का सम्पर्क होने पर जैन साधु को मन्त्र-स्नान बताया है ।^{२४}

कापालिक साधु का एक सम्पूर्ण चित्र क्षीरस्वामी ने अपने प्रतीक नाटक प्रबोधचन्द्रोदय (अध्याय ३) में प्रस्तुत किया है । एक कापालिक साधु स्वयं अपने विषय में इस प्रकार जानकारी देता है—कर्णिका, रुचक, कुण्डल, शिखा-मणी, भस्म और यज्ञोपवीत, ये छह मुद्राषट्क कहलाते हैं । कपाल और खट्वाक उपमुद्राएँ हैं । कापालिक साधु इनका विशेषज्ञ होता है तथा भगसनस्थ होकर आत्मा का ध्यान करता है । मनुष्य की बलि देकर शिव के भैरव रूप की पूजा की जाती है । भैरवी की भी खून के साथ पूजा की जाती है । कापालिक कपाल में से रक्त पान करते हैं ।^{२५}

४ कुलाचार्य या कौल (४४)

कापालिकों की तरह कौल भी शैव सम्प्रदाय की एक शाखा थी । सोमदेव ने कुलाचार्य का दो बार उल्लेख किया है (४४, २६९ उक्त०) मारिदत्त को एक कुलाचार्य ने ही विद्याधर लोक को जीतने वाली करवाल की प्राप्ति के लिए चण्ड-मारी को सभी जीवों के जोड़ों की बलि देने की बात कही थी ।^{२६}

सोमदेव के कथन के अनुसार कौल सम्प्रदाय की मान्यताएँ इस प्रकार थी— सभी प्रकार के पेय-अपेय, भक्ष्य-अभक्ष्य आदि में निःशक चित्त होकर प्रवृत्ति करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है ।^{२७}

२२ एकान्त परमपदस्पृह्यालुतया स्वैरकथास्वपि कर्मन्दीव न तृप्यति विषविष-मोल्लेखेषु विषयसुखेषु ।—पृ० ४०८

२४. सगे कापालिकात्रेयी । आप्लुत्य दण्डवत्सम्पूजयेन्मन्त्रमुपोषित ।

—पृ० २८१, उक्त०

२५ उद्धृत—हान्दिकी-यशस्तिलक षण्ड इण्डियन कल्चर, पृ० ३२६

२६ विद्याधरलोकविजयिन करवालस्य सिद्धिर्भवतीति वीरभैरवनामकात्कुला-चार्यकादुपश्रुत्य ।—पृ० ४४

२७ सर्वेषु पेयापेयभक्ष्याभक्ष्यादिषु निःशकचित्तोद्वृत्तात्, इति कुलाचार्या ।

—पृ० २६६, उक्त०

नोमदेव के अनुसार कामादिक त्रिक मन को मानते थे। त्रिक मन के अनुसार मद्य-मान पी-झाकर प्रनर्थाचन होकर बायाँ और दायीं जो दिशाकर स्वयं भी गिव और पार्वती के समान आचरण करना हुआ गिव की आराधना करें।^{१८}

५. कुमारश्रमण (१२)

बाल्यवस्था में जो दोग नाबु हो जाते थे उन्हें कुमारश्रमण कहा जाता था। नोमदेव ने कुमारश्रमण के लिए 'अन जाननवनकमङ्ग' विनोदण दिया है। एक स्थान पर श्रमणमद्य (१३) का भी उल्लेख है। उक्त दोनों स्थलों पर श्रमण गच्छ जैन नाबु के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

६. चित्रशिखण्डि (१०)

चित्रशिखण्डि का अर्थ श्रुतदेव ने समर्पि किया है। मरीचि, अङ्गिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, ऋतु और वशिष्ठ, ये मान ऋषि मत्सर्पि कहलाते थे। नोमदेव ने इसका विशेषण 'मन्नहन्त्रारिता' दिया है। ये मान ऋषि आचार, विचार और भावना में समान होने के कारण ही एक श्रेणी में वर्गित गये। इन ऋषियों के शिष्य भी स भवन चित्रशिखण्डि के नाम से प्रसिद्ध हो गये हैं।

७. जटिल (१०६ उक्त०)

यगस्तित्रक में जैनों के लिए जटिलों के माय आत्माप, आवागम और सेवा का निषेध किया गया है।^{१९} जटिल भी गैर मत वाले नाबु कहलाते थे।

८. देशयति (२६७, ४०६ उक्त०)

देशयति या देशव्रती एकादश प्रतिमाधारी जन श्रावक को कहते हैं। मुनि के एकदेव समय का पालन करने के कारण इसे देशव्रती कहा जाता है। यह श्रावक या तो दो चादर और एक ल गोटी रखता है या केवल एक ल गोटी मात्र। चादर और ल गोटी वाले को धुलक तथा केवल ल गोटी वाले को ऐलक कहा जाता है।

९. देशक (३७७ उक्त०)

जो जैन साबु पठन-पाठन का कार्य करते हैं उन्हें उपाध्याय कहा जाता है। उपाध्याय के अर्थ में यगस्तित्रक में 'देशक' शब्द आया है।

२८ तथा च त्रिकमनो।क्त — 'मडि।।मादमेदु।वदनन्।सरसप्रनन्नहृदय
सव्यपार्श्वविनिवेशनशक्ति शक्तिमुद्रासनवर स्वयमुमामदेश्व।यमाण
कृप्यया सर्वाणीश्वरभाराधयेदिति ।-पृ० २६६, उक्त०

२९ जटिल जीवकादिभि । महावास महालाप तत्त्वैवां च विवर्जयेत् ।-पृ० ४०६

१०. नास्तिक (३०६ उक्त०)

सोमदेव ने जैनो के लिए नास्तिको के साथ आलाप, आवास आदि का निषेध किया है। चार्वाक अथवा बृहस्पति के शिष्यों के लिए सम्भवत यहाँ इस शब्द का प्रयोग हुआ है।

अन्य साधुओं के लिए निम्नांकित नाम आए हैं—

११. परिभ्राजक (३२७ उक्त०), परिक्राट (१३९ उक्त०)

१२. पारासर (९२) पारासर ऋषि के शिष्य पारासर कहलाते थे।

१३. ब्रह्मचारी (४०८)

१४. भविल (४०८)

भविल शब्द का अर्थ श्रुतदेव ने महामुनि किया है।^{३०} भविल साधु पैदल चलते थे तथा छोटे जीवों के प्रति महाकृपालु होने से लकड़ी की चप्पल (खडाज) भी नहीं पहनते थे।^{३१}

१५. महाव्रती (४९)

महाव्रती का दो बार उल्लेख है। चण्डमारी के मन्दिर में महाव्रती साधु अपने शरीर का मांस काटकर खरीद-बेच रहे थे।^{३२} ये साधु हाथ में खट्वाग लिये रहते थे।^{३३} कौल की तरह ये भी शैव मतानुयायी थे।

१६. महासाहसिक (४९)

महासाहसिक भी शैव होते थे। सोमदेव ने इनकी आत्मरक्षिरपान जैसी भयकर साधना का उल्लेख किया है।

१७. मुनि (५६, ४०४ उक्त०)

जन साधु के लिए यशस्तिलक में अनेक बार मुनि पद का प्रयोग हुआ है। अभी भी जैन साधु मुनि कहलाते हैं।

१८. मुमुक्षु (४०९)

मोक्ष की ओर उन्मुख तथा अनवरत साधना में सलग्न साधु मुमुक्षु कहलाता

३०. भविल इव--महामुनिरिव पृ० ४०८, स० टी०

३१. महाकृपालुतथा सत्त्वसमर्द्धभयेन पदात्पदमपि भ्रमन्भविल इव नादत्ते दार० पादपरिभ्राणम् ।—पृ० ४०८

३२. महाव्रतिकवोरक्रयविक्रीयमाणखवपुलूनधल्लूगन् ।—पृ० ४९

३३. सा कालमहाव्रतिना खट्वागकरकता नीता ।—पृ० १२७

था । मुमुक्षु पर्व-त्यौहार के दिनों में भी मुट्ठीभर सब्जी या जौ के अतिरिक्त और कुछ नहीं खाते थे ।^{३४}

१६ यति (२८५ उक्त०, ३७२ उक्त०, ४०६ उक्त०)

यति शब्द का भी कई बार प्रयोग हुआ है । यह शब्द भी जैन साधु के लिए प्रयुक्त होता है । सोमदेव के उल्लेखानुसार यति अपने नियम और अनुष्ठान में बड़े पक्के होते थे ।^{३५} यति भिक्षा भी करते थे ।^{३६}

२० यागज्ञ (४०६ उक्त०)

सम्भवतः यज्ञ करने वाले वैदिक साधु यागज्ञ कहलाते थे । सोमदेव ने यागज्ञों के साथ जैनो को सहावास, सहालाप तथा उनकी सेवा करने का निषेध किया है ।^{३७}

२१. योगी (४०९)

ध्यान में मस्त हुआ साधु योगी कहलाता था । सोमदेव ने लिखा है कि यह सोचकर कि दूसरे जीव को थोड़ा-सा भी दुःख पहुँचाने पर वह बोये गये बीज की तरह जन्मान्तर में सैकड़ों प्रकार से फल देता है, इसलिए योगी दयाभाव से तथा पापभीरु होने से वनस्पति के फल या पत्तों को स्वयं नहीं तोड़ता ।^{३८}

२२ वैखानस (४०)

वैखानस साधुओं के विषय में सोमदेव ने लिखा है कि ये बाल-ब्रह्मचारी होते थे तथा स्नान, ध्यान और मन्त्रजाप—खासतौर से अघमर्षण मन्त्रों का जाप करते थे ।^{३९}

३४. पर्वरसेष्वपि दिवसेषु मुमुक्षुरिव न शाकमृष्टेर्वापरमाहरत्याहारम् ।—पृ० ४०६

३५. निजनियमानुष्ठानैरुतानमनसि यतीश्वरे ।—पृ० २८५, उक्त०

३६. गृहस्थो वा यतिर्वापि जैन समयमाश्रितः ।

यथाकालमनुप्राप्त पूजनीय सुदृष्टिभिः ॥—पृ० ४०६

३७. शाक्यनास्तिकयागज्ञजटिलाजीवकादिभिः ।

सहावासं सहालाप तत्सेवा च विवर्जयेत् ॥—पृ० ४०६, उक्त०

३८. ईषदप्यशुभमन्यन्नोत्पादितमात्मन्युप्तबीजमिव जन्मान्तरे शतश फलतीति दयालु-
भावाद्दुरितभीरुभावाच्च न दत्त फल वा योगीव स्वयमवचिनोति वनस्पतीन् ।

—पृ० ४०६

३९. सर्वदा शुचिरिव ब्रह्मचारी तथापि लोकव्यवहारप्रतिपालनार्थं देवोपासनायामपि समाप्लुत्य वैखानस इव जपति जलजन्तूद्वैजनजनितकल्मषप्रघर्षणायामघमर्षण-
तन्त्रान्मन्त्रान् ।—पृ० ४०८

१०. नास्तिक (३०६ उक्त०)

सोमदेव ने जैनो के लिए नास्तिको के साथ आलाप, आवास आदि का निषेध किया है। चार्वाक अथवा बृहस्पति के शिष्यों के लिए सम्भवत यहाँ इस शब्द का प्रयोग हुआ है।

अन्य साधुओं के लिए निम्नांकित नाम आए हैं—

११. परिश्राजक (३२७ उक्त०), परित्राट (१३९ उक्त०)

१२. पारासर (९२) पारासर ऋषि के शिष्य पारामर कहलाते थे।

१३. ब्रह्मचारी (४०८)

१४. भविल (४०८)

भविल शब्द का अर्थ श्रुतदेव ने महामुनि किया है।^{३०} भविल साधु पैदल चलते थे तथा छोटे जीवों के प्रति महाकृपालु होने से लकड़ी की चप्पल (खडाउ) भी नहीं पहनते थे।^{३१}

१५. महाव्रती (४९)

महाव्रती का दो बार उल्लेख है। चण्डमारी के मन्दिर में महाव्रती साधु अपने शरीर का मास काटकर खरीद-बेच रहे थे।^{३२} ये साधु हाथ में खट्वाग लिये रहते थे।^{३३} कौल की तरह ये भी शैव मतानुयायी थे।

१६. महासाहसिक (४९)

महासाहसिक भी शैव होते थे। सोमदेव ने इनकी आत्मरक्षिरपान जैसी भयकर साधना का उल्लेख किया है।

१७. मुनि (५६, ४०४ उक्त०)

जैन साधु के लिए यशस्तिलक में अनेक बार मुनि पद का प्रयोग हुआ है। अभी भी जैन साधु मुनि कहलाते हैं।

१८. मुमुक्षु (४०९)

मोक्ष की ओर उन्मुख तथा अनवरत साधना में सलग्न साधु मुमुक्षु कहलाता

३०. भविल इव--महामुनिरिव पृ० ४०८, स० टी०

३१. महाकृपालुतया मत्त्वसमर्द्धभयेन यदात्पदमपि भ्रमन्भविल इव नादत्ते दारु-
पादपरिप्राग्यम् ।—पृ० ४०८

३२. महाव्रतिक्रवारक्यविक्रीयमाणस्ववपुलूनवल्लूम ।—पृ० ४९

३३. सा कालमहाव्रतिना खट्वागकरकता नीता ।—पृ० १२७

था। मुमुक्षु पर्व-त्यौहार के दिनों में भी मुट्ठीभर सब्जी या जौ के अतिरिक्त और कुछ नहीं खाते थे।^{३४}

१६ यति (२८५ उक्त०, ३७२ उक्त०, ४०६ उक्त०)

यति शब्द का भी कई वारः प्रयोग हुआ है। यह शब्द भी जैन साधु के लिए प्रयुक्त होता है। सोमदेव के उल्लेखानुसार यति अपने नियम और अनुष्ठान में बड़े पक्के होते थे।^{३५} यति भिक्षा भी करते थे।^{३६}

२० यागज्ञ (४०६ उक्त०)

सम्भवतः यज्ञ करने वाले वैदिक साधु यागज्ञ कहलाते थे। सोमदेव ने यागज्ञों के साथ जैनों को सहावास, सहालाप तथा उनकी सेवा करने का निषेध किया है।^{३७}

२१. योगी (४०९)

ध्यान में मस्त हुआ साधु योगी कहलाता था। सोमदेव ने लिखा है कि यह सोचकर कि दूसरे जीव को थोड़ा-सा भी दुःख पहुँचाने पर वह बोये गये बीज की तरह जन्मान्तर में सैकड़ों प्रकार से फल देता है, इसलिए योगी दयाभाव से तथा पापभीरु होने से वनस्पति के फल या पत्तों को स्वयं नहीं तोड़ता।^{३८}

२२ वैखानस (४०)

वैखानस साधुओं के विषय में सोमदेव ने लिखा है कि ये बाल-ब्रह्मचारी होते थे तथा स्नान, ध्यान और मन्त्रजाप—खासतौर से अघमर्षण मन्त्रों का जाप करते थे।^{३९}

३४. पर्वरसेष्वपि दिवसेषु मुमुक्षुरिव न शाकमुष्टेर्वापरमाहरत्याहारम् ।—पृ० ४०६

३५. निजनियमानुष्ठानैऋतानमनसि यतोश्चरे ।—पृ० २८५, उक्त०

३६. गृहस्थो वा यतिर्वापि जैन समयमाश्रित ।

यथाकालमनुप्राप्त पूजनीय सुदृष्टिभिः ॥—पृ० ४०६

३७. शाक्यनास्तिकयागज्ञजटिलाजीवकादिभिः ।

सहावामं सहालाप तत्सेवा च विवर्जयेत् ॥—पृ० ४०६, उक्त०

३८. ईषदप्यशुभमन्यत्रोत्पादितमारमन्युसबीजमिव जन्मान्तरे शतश फलतीति दयालु-
मावाद्दुरितभीरुमावाच्च न दल फल वा योगीव स्वयमवचिनोति वनस्पतीन् ।

—पृ० ४०६

३९. सर्वदा शुचिरिव ब्रह्मचारी तथापि लोकव्यवहारप्रतिपालनार्थं देवोपासनायामपि
समाप्लुत्य वैखानस इव जपति जलजम्तूद्वैजनजनितकल्मषप्रघर्षणाय। अघमर्षण-
तन्त्रान्मन्त्रान् ।—पृ० ४०८

२३ शंसितव्रत (४०८)

शंसितव्रत का अर्थ श्रुतदेव ने दिग्म्बर साधु किया है । शंसितव्रत अशुभ का दर्शन या स्पर्श तो दूर रहा मन में उसके विचार आ जाने से भी भोजन छोड़ देते थे ।^{४०}

२४ श्रमण (९२, ९३) जैन साधु

दिग्म्बर मुनि के अर्थ में श्रमण का प्रयोग हुआ है ।^{४१} श्रमणों का पूरा सघ^{४२} गाँव, नगर आदि में विहार करता था ।^{४३} सघ में विविध विषयों में निष्णात अनेक साधु रहते थे ।^{४४}

२५ साधक (४९)

मन्त्र-तन्त्र आदि की सिद्धि के लिए विकट साधना करने वाले साधु साधक कहलाते थे । सोमदेव ने अपने सिर पर गुग्गुलु जलाने वाले साधकों का उल्लेख किया है ।^{४५}

२६ साधु (३७७, ४०५, ४०७ उक्त०)

साधु शब्द का अनेक बार प्रयोग हुआ है तथा सभी स्थानों पर जैन साधु के अर्थ में आया है ।

२७ सूरि (३७७)

जैनाचार्य के अर्थ में इसका प्रयोग हुआ है ।

इनके अतिरिक्त सोमदेव ने परिव्रजित व्यक्तियों के निम्नलिखित नामों की निरुक्तियाँ^{४६} इस प्रकार दी हैं—

४०. आस्ता तावदशुभस्य दर्शनं स्पर्शनं च, किन्तु मनसाप्यस्य परामर्षं शंसितव्रत इव प्रत्यादिशत्याशम् ।—पृ० ४०८

४१. श्रमण इव जातरूपधारिण ।—पृ० ९३

४२. अनूचानेन श्रमणसघेन ।—पृ० ६३

४३. विहरमाण ।—पृ० ८६

४४. वही

४५. साधकलोकनिजशिरोदक्षमानगुग्गुलुसम् ।—४६

४६. तत्तद्गुणप्रधानत्वात्पतयोऽनेकधा स्मृता ।

निरुक्तिं युक्तिरस्तेषां वदतो मन्निबोधत ॥

२८. जितेन्द्रिय

जो सब इन्द्रियो को जीतकर अपने द्वारा अपने को जानता है, वह गृहस्थ हो या वानप्रस्थ, उसे जितेन्द्रिय कहते हैं ।^{४७}

२९. क्षपण

जो मान, माया, मद और अमर्ष का नाश कर देता है उसे क्षपण कहते हैं ।^{४८}

३०. श्रमण

जगह-जगह विहार करके भी जो श्रान्त नहीं होता उसे श्रमण कहते हैं ।^{४९}

३१. आशाम्बर

जो लालसाओ को नाश अथवा प्रशान्त कर देता है उसे आशाम्बर कहते हैं ।^{५०}

३२. नग्न

जो सब प्रकार के परिग्रह से रहित होता है उसे नग्न कहते हैं ।^{५१}

३३ ऋषि

क्लेश समूह को रोकने वाले को मनीषिजन ऋषि कहते हैं ।^{५२}

३४. मुनि

आत्मविद्या में मान्य व्यक्ति को महात्मा लोग मुनि कहते हैं ।^{५३}

३५ यति

जो पाप रूपी बन्धन के नाश करने का यत्न करता है वह यति कहलाता है ।^{५४}

४७ जित्वेन्द्रियाणि सर्वाणि यो वेत्यात्मानमात्मना ।

गृहस्थो वानप्रस्थो वा स जितेन्द्रिय उच्यते ॥—कल्प ४४, श्लो० ८५८

४८. मानमायामदामर्षक्षपणनात्क्षपण स्मृत ।—कल्प ४४, श्लो० ८५९

४९ यो न श्रान्तो भवेद्भ्रान्तेस्त विदु श्रमण बुधा ॥—वही

५० यो हनाश प्रशान्ताशस्तमाशाम्बरमूचिरे ।—कल्प ४४, श्लो० ८६०

५१ य सर्वमङ्गसत्यक्त स नम्य परिकीर्तित ॥—कल्प ४४, श्लो० ८६०

५२ रेषणात्वजेशाशीनामृषिमाहुर्मनीषिण ।—कल्प ४४, श्लो० ८६१

५३. मान्यत्वादात्मविद्याना महद्भि कीर्त्यते मुनि ॥—कल्प ४४, श्लो० ८६१

५४. य पापपाशनाशाय यतते स यतिर्भवेत् ।—कल्प ४४, श्लो० ८६२

३६. अनगार

जो शरीररूपी घर में भी उदासीन होता है उसे अनगार कहते हैं ।^{५५}

३७ शुचि

जो आत्मा को मलिन करने वाले कर्मरूपी दुर्जनो से सम्पर्क नहीं रखता वह शुचि कहलाता है ।^{५६}

३८ निर्मम

जो धर्म और कर्म के फल के प्रति उदासीन है तथा अधर्माचारण से निवृत्त है, आत्मा ही जिसका परिच्छेद है उसे निर्मम कहते हैं ।^{५७}

३९ मुमुक्षु

जो पुण्य और पाप दोनों कर्मों से रहित है वे मुमुक्षु कहलाते हैं ।^{५८}

४० शंसितव्रत

जो ममता, अहंकार, मान, मद तथा मत्सर रहित है तथा निन्दा और स्तुति में समान बुद्धि रखता है, उसे शंसितव्रत कहते हैं ।^{५९}

४१. वाचयम

जो आम्नाय के अनुसार तत्त्व को जानकर उसी का एक मात्र ध्यान करता है, उसे वाचयम कहते हैं । पशु की तरह मौन रहने वाला वाचयम नहीं ।^{६०}

४२ अनूचान

जिमका मन श्रुत (शास्त्र) में, व्रत में, ध्यान में, सयम में, नियम में तथा यम में सलग्न रहता है, उसे अनूचान कहते हैं ।^{६१}

५५. योऽनोहो देहगेहेऽपि सोऽनगार सता मत. ॥—कल्प ४४, श्लो० ८६२

५६. आत्मशुद्धिकरैर्यस्य न सग कर्मदुर्जनैः ।

स पुमान् शुचिराख्यातो नाम्युसप्लुतमस्तक ॥—कल्प ४४, श्लो० ८६३

५७ धर्मकर्मफलेऽनोहो निवृत्तोऽधर्मकर्मण ।

त निर्मममुशान्तोह केवलात्मपरिच्छेदम् ॥—कल्प ४४, श्लो० ८६४

५८ य कर्मद्विषयातीतस्त मुमुक्षु प्रचक्षते ।—कल्प ४४, श्लो० ८६५

५९. निर्ममो निरहकारो निर्मानमदमत्सर ।

निन्दाया सरतवे चैव समधो शंसितव्रत ॥—कल्प ४४, श्लो० ८६६

६०. योऽवगम्य यथाम्नाय तत्त्व तत्त्वैकभावन ।

वाचयम स. विशेषो न मौनी पशुवन्नर ॥—कल्प ४४, श्लो० ८६७

६१ श्रुते व्रते प्रसरयाने सयमे नियमे यमे ।

यस्योच्चै मर्वदा चैन सोऽनूचान प्रकीर्तित, ॥—कल्प ४४, श्लो० ८६८

४३. अनाश्वान्

जो इन्द्रियरूपी चोरो का विश्वास नहीं करता तथा शाश्वत मार्ग पर दृढ रहता है, और सब प्राणी जिसका विश्वास करते हैं, उसे अनाश्वान् कहते हैं। ६२

४४ योगी

जिसकी आत्मा तत्त्व में लीन है, मन आत्मा में लीन है और इन्द्रियाँ मन में लीन हैं, उसे योगी कहते हैं। ६३

४५ पंचाग्नि साधक

काम, क्रोध, मद, माया और लोभ ये पाँच अग्नियाँ हैं। जो इन पाँचों अग्नियों को अपने वश में कर लेता है, वह पंचाग्निसाधक है। ६४

४६ ब्रह्मचारी

ज्ञान को ब्रह्म कहते हैं, दया को ब्रह्म कहते हैं, काम के निग्रह को ब्रह्म कहते हैं। जो आत्मा अच्छी रीति से ज्ञान की आराधना करता है, या दया का पालन करता है, या काम का निग्रह करता है, उसे ब्रह्मचारी कहते हैं। ६५

४७ शिखाच्छेदी

जिसने ज्ञानरूपी तलवार से ससाररूपी अग्नि की शिखा याने लपटों को काट डाला, उसे शिखाच्छेदी कहते हैं, सिर घुटाने वाले को नहीं। ६६

४८ परमहंस

ससार अवस्था में कर्म और आत्मा, दूध और पानी की तरह मिले हुए हैं। जो कर्म और आत्मा को दूध और पानी की तरह पृथक्-पृथक् कर देता है, वह

६२ योऽज्ञस्तेनेष्वविश्वस्त शाश्वते पथि निष्ठित ।

समस्तसद्विश्वास्यः सोऽनाश्वानिह गीर्यते ॥—कल्प ४४, श्लो० ८६६

६३. तत्त्वे पुमान्मन पुसि मनस्यक्षकदम्बकम् ।

यस्य युक्त स योगी स्यान्न परेच्छादुरीहितः ॥—कल्प ४४, श्लो० ८७०

६४. काम क्रोधो मदो माया लोभश्चेत्यग्निपचकम् ।

येनेद साधित स स्यात्कृती पचाग्निसाधक ॥—कल्प ४४, श्लो० ८७१

६५. ज्ञान ब्रह्म दया ब्रह्म ब्रह्म कामविनिग्रह ।

सम्यग्त्र वसन्नात्मा ब्रह्मचारी भवेन्नर ॥—कल्प ४४, श्लो० ८७२

६६. ससाराग्निशिखाच्छेदो येन शानासिना कृत ।

त शिखाच्छेदिन प्राहुर्न तु मुण्डितमरतकम् ॥—कल्प ४४, श्लो० ८७५

परमहम है। अग्नि की तरह सर्वभक्षी (जो मिल जाये वही खा लेने वाला) परमहम नहीं है। ६७

४६ तपस्वी

जिमका मन ज्ञान से, शरीर चारित्र्य से और इन्द्रियाँ नियमों से सदा प्रदीप्त रहती हैं, वही तपस्वी है, कोरा वेष बनाने वाला तपस्वी नहीं। ६८

•

६७. कर्मात्मनो विवेक्ता य क्षीरनीरसमानयो ।

भवेत्परमहमोऽमौ नाशिवत्सर्वभक्षक ॥—कल्प ४४, श्लो० ८७६

६८. शानैर्मनो वपुर्वृत्तैर्नियमैरिन्द्रियाणि च ।

नित्यं यम्य प्रदीप्तानि स तपस्वी न वेषवान् ॥—कल्प ४४, श्लो० ८७७

पारिवारिक जीवन और विवाह

सोमदेवकालीन भारत में सयुक्त परिवार प्रणाली प्रचलित थी। अपने से बड़े के लिए आदर तथा छोटे के लिए प्यार, इस प्रणाली का मुख्य रहस्य था। इसके बिना सयुक्त परिवार संभव न था। राज-परिवार तक में इस विशेषता का ध्यान रखा जाता था। यशोधर्म जब परिवर्द्धित होने लगे तो अपने पुत्र को बुलाकर स्नेह मिश्रित शब्दों में अपनी इच्छा व्यक्त की। पुत्र ने भी विनम्रतापूर्वक अपने विचार प्रस्तुत किये।^१ शासन-सूत्र सभालने के बाद भी यशोधर ने अपनी माता की इच्छाओं के आदर का पर्याप्त ध्यान रखा। यशोधर अपनी माता से कहता है कि यदि आप मुझ पर दुष्पुत्र होने का अपवाद न लगायें तो कुछ कहूँ।^२ इसी प्रसङ्ग में आगे चलकर बलि का तीव्र विरोधी होने पर भी यशोधर केवल इसलिए पिष्टकुक्कुट (आटे का मुर्गा) की बलि देना स्वीकार कर लेता है, क्योंकि आज्ञा न मानने पर अपना अपमान समझ कर वह (माँ) कोई भी अनिष्ट कर सकती थी।^३

बड़े लोग भी अपने से छोटे की मर्यादा का ध्यान रखते थे। चन्द्रमती कहती है कि वाल्यावस्था में भले ही जवर्दस्ती, डर दिखाकर या कान खीचकर वच्चे से काम करा लें, किन्तु युवा होने पर तथा जो स्वयं शक्तिसम्पन्न और उच्चपद पर प्रतिष्ठित हो गया हो उसे न तो बलपूर्वक रोकना चाहिए, न काम करने के लिए जवर्दस्ती करना चाहिए।^४

१ पृ० २८२-२८४

२. वदामि किञ्चिदह यदि तन्नभवति मयि दुष्पुत्रापावादराराग न विकिरति।

—पृ० ६१ उक्त०

३. परमपमानिता चेय जरती न जाने किं करिष्यति भवतु, भवत्येवात्र प्रमाणम्, ननु तवैव पूर्यन्तामत्र कामितानि।—पृ० १३८, १४०

४ गत स काल खलु यत्र पुत्र स्वतन्त्रवृत्त्या हृदयेऽभितानि।

कार्याणि कार्येत् हठात्रयेन मयेन वा कर्णचपेटया वा ॥

युवा निजादेशानि शितश्री स्वयप्रभु प्राप्तपदप्रतिष्ठ।

शिष्य सुतो वात्महिनैर्बलाद्धि न शिष्यणीयो न निवारणीय ॥—पृ० १२३ उक्त०

पारिवारिक सम्बन्ध चिर परिचित, सहज और स्वाभाविक हैं, फिर भी सोमदेव ने यशोर्ध राजा के परिवार का जो चित्र प्रस्तुत किया है वह विशेष मनोहारी है। यशोर्ध के चन्द्रमति नामकी प्रियतमा थी। वह पतिव्रताओं में श्रेष्ठ थी। कामदेव के लिए रति थी, धर्मपरायण के लिए धर्मभूमि थी, गुणों की खान थी, कला का उत्पत्तिस्थान थी, शील का उदाहरण थी, पति की आज्ञा मानने और अवमरोचित कार्य करने में आचार्याणी थी। पति में एकनिष्ठ होने से उसका रूप, विनय में मीमांस्य तथा मरलता से कलाप्रियता उसके आभूषण बने।^५ यशोर्ध भी चन्द्रमति को बहुत मानता था। जैसे धर्म और दया, राज्य और नीति, तप और शान्ति, कल्पवृक्ष और कल्पलता एक दूसरे से अनन्य सम्बन्ध रखते हैं उसी तरह चन्द्रमति और यशोर्ध का भी अनन्य सम्बन्ध था।^६

यशोर्ध और चन्द्रमती से यशोधर नाम का पुत्र हुआ। गर्भ से लेकर शिक्षा-दीक्षा पर्यन्त जो रोचक वर्णन सोमदेव ने किया है वह अन्यत्र देखने में कम आता है। चन्द्रमती ने रात्रि के अन्तिम प्रहर में स्वप्न देखा कि उसके गर्भ में इन्द्र पुत्र होकर आया है। प्रातः काल उसने अपने प्रियतम को स्वप्न का वृत्तान्त बताया (पृ० २४-२५)। गर्भवृद्धि के साथ चन्द्रमति के शारीरिक परिवर्तन भी होने लगे। दोहद इत्यादि का सुन्दर वर्णन है। गर्भ की रक्षा कुशल वैद्यों के द्वारा की जाती थी। आठ महीने के पूर्व गर्भिणी स्त्री के लिए उच्च हास का निषेध किया गया है।^७

प्रभूति का समय आने पर सूतिकासदम (प्रसूतिगृह) की रचना की गयी। शुभ मुहूर्त में बालक का जन्म हुआ। पुत्ररत्न की प्राप्ति पर सहज ही परिवार में उल्लास का वातावरण होता है। और फिर यशोर्ध तो सम्राट् था। गीत, नृत्य,

५ अहो महीपाल नृपस्य तस्य त्वद्वशाया चन्द्रमति प्रियासीत् ।

पतिव्रतत्वेन महीसपत्न्या प्राप्तोपरिष्ठात्पदवी यया हि ।

माभूद्रतिस्त्वस्य मनोभवस्य धर्मावनि धर्मपरायणस्य ।

गुणैकधाम्ना गुणरतभूमि कलाविनोदस्य कलाप्रसूति ॥

शीनेन दृष्टान्तपदं जनाना निदर्शनत्व पतिसुव्रतेन ।

पत्युनिदेशावमरोचारादाचार्यक या च मतीषु लेभे ॥

रूप भर्तारिभावेन सीभाग्य विनयेन च ।

वलावत्व ऋजुत्वेन भूययामान ह्यात्मन ॥—पृ० २२२

६ वही,—पृ० २३०

७ मामोऽष्टमात्पूर्वमिदं त्वयोच्चैर्हानादिकं कर्म न देवि कार्यम् ।—पृ० २२६

चादित्र इत्यादि की परम्परा एक लम्बे समय तक चलती रही। स्थान-स्थान पर तोरण और पताकाएँ सजायी गयी। यशोर्ष ने याचको को वस्तु, वस्त्र और वाहन का मनचाहा दान दिया। ऐसा दान जिमसे फिर कभी याचक को याचना न करना पड़े (पृ० २२७-२३१)।

जात-कर्म सम्पन्न हो जाने के बाद बालक का यशोधर नामकरण किया गया। बालक क्रम से वृद्धि-ज्ञत होने लगा। उत्तानशयन (ऊपर को मुँह करके सोना), दरहसित (मुस्कराना), जानुचक्रमण (घुटनो के बल सरकना), स्वलित-गति (डगमगाते पैरो चलना) और गद्गदालाप (तुतलाते हुए बोलना) इत्यादि अवस्थाओं को क्रमशः पार किया। बाल्यावस्था के स्वरूप का अत्यन्त मनोरम चित्र सोमदेव ने खोचा है। बालक को पनने में सुलाया कि वह परेशान हो रोने लगा। किसी दूसरे ने उठाया भी तो भी मचलने लगा। प्यारवश पिता ने अपनी गोद में लिया तो मीने में दुग्धपान के लिए स्तन खोजने लगा। परेशान होकर अपना ही अगूठा मुँह में दिया। और जब अगूठे में से कुछ न निकला तो फूट-फूटकर रोने लगा। वह देखने में प्रिय लगता और कपोलो पर जरा-सा स्पर्श करते ही खिलखिलाकर हँस देता। पुरोहित ने स्वस्तिवाचन के अक्षत हाथ पर रखे नहीं कि कब के मुँह में डाल लिये (पृ० २३२-२३३)।

घुटनो के बल कुछ-कुछ चला, कुछ धात्री की उगली पकडकर चला और जैसे ही उँगली छोड़ी तो घडाम से गिरने को हुआ कि धात्री ने उठा कर गोद में ले लिया। गोद में उठाते ही उसने धात्री की चोटी खींचना शुरू कर दिया। बच्चो की बड़ी विचित्र स्थिति है। बालो के आभूषण को हाथों में पहना। हाथों के कडो को बालो में लगाया, और हाथ खाली हुए नहीं कि कमर से करधनी निकाल कर अपने ही हाथों अपने पैरो में बाँध ली। और तब निश्चेष्ट होकर रोते हुए उस बालक को देखना कितना प्रिय लगता है, और कितना अजीब भी। हर्ष और विषाद की वह सम्मिश्रित स्थिति केवल अनुभवगम्य ही है। सोमदेव ने लिखा है कि जिस घर में आँगन में बालक नहीं खेलते वह घर वन के समान है। उनका जन्म व्यर्थ है जिनके बालक न हुआ। उनके शरीर में अङ्ग-विलेपन कोचड पोतने के समान है जिनके वक्षस्थल पर धूलि-विधूसरित पुत्र की रज न लिपटी हो। चंचल काकपक्ष, ढेर-सा काजल लगी आँखें, बहुत देर तक खेलने से निकलता हुआ उच्छ्वास और काँपते हुए आँठ तथा गोद में लेते ही पुलकित हुआ बदन, ऐसे बालको का मुख चुम्बन करने का जिन्हे अवसर प्राप्त होता है वे धन्य हैं (पृ० २३२-२३५)।

बालक तुलनाते बोलता है, कभी पिता को माँ और माँ को पिता कह देता है। घातृ जब बुलवाती है तो कुछ टूटे-फूटे शब्दों में बोलता है। कुछ सिखाने को बैठाओ तो नाराज होकर भाग जाता है। कहीं एक जगह नहीं बैठता, बुलाओ तो सुनता नहीं, फिर दौड़कर आता है और एक क्षण बाद फिर भाग जाता है (पृ० २३५)।

इस प्रकार बाल्यावस्था का चित्रण करने के उपरान्त बाल-कर्म और विद्याभ्यास का वर्णन किया गया है। विद्याभ्यास के बाद गोदान का निर्देश है (परिप्राप्तगोदानावसरश्च, पृ० २३७)।

सोमदेव ने एक सुखी पारिवारिक जीवन का चित्रण बहुत ही स्वाभाविक ढंग से किया है।

स्त्री के विषय में सोमदेव ने लिखा है कि स्त्री के बिना ससार के सारे कार्य व्यर्थ हैं, घर जगल के समान है और जिन्दगी बेकार।^८ एक तरफ सोमदेव ने स्त्री के बिना घर को जगल और जीवन को व्यर्थ बताया, दूसरी ओर उसके निवृष्टतम स्वरूप का भी स्पष्ट चित्र खींचा है। अग्नि शान्त हो जाए, विष अमृत बन जाए, राक्षसियों को वश में कर लिया जाए, क्रूर जन्तुओं को भी सेवक बना लिया जाए, पत्थर भी मृदु हो जाए पर स्त्रियाँ अपने वक्र स्वभाव को नहीं छोड़ती। यशस्तिलक के चौथे आश्वास में स्त्रियों के स्वरूप का विस्तृत वर्णन किया है (पृ० ५३-६३ उक्त०)।

इसी प्रसङ्ग में यह भी कह देना उपयुक्त होगा कि सोमदेव स्त्रियों को विशेष शिक्षा देने के पक्षपाती नहीं है। उनका कहना है कि स्त्रियों को शिक्षित करना ठीक वैसे ही है जैसे माँप को दूध पिलाना।^९ स्त्रियों को धर्मभावन में बाधा स्वरूप माना गया है।^{१०} स्त्री के भगिनी, जननी, दूतिका, सहचरी, महानमकी (रमोर्दन), घातृ तथा भार्या स्वरूप का चित्रण किया गया है।^{११}

८ यामन्तरेण जगनो विकला प्रयास, याम तरेण भवनानि वनोपमानि । यामन्तरेण ह्य मगति जीवितम् च ।—पृ० १२६

९ अष्टमृदुस्यात्मन एव ज्ञानि क्रियं विदग्धा सलु क करोति ।

दुग्धेन य पोषयते भुजुर्गा पुम कुतरतस्य सुमदलानि ॥—पृ० १२२ उक्त०

१० हृदयेन तप सिद्धौ युधा कारणमचिरे ।

यदनामोजः स्त्रीरा यच्च राग्लापन तनो ॥—पृ० ११८

विवाह

यशस्तिलक में विवाह के दो प्रकारों की जानकारी आती है—एक स्वयंवर दूसरे परिवार द्वारा विवाह ।

स्वयंवर

कन्या के परिणय योग्य हो जाने पर उसका पिता देश-विदेश के प्रतिष्ठित लोगों को उसके स्वयंवर की सूचना देता और तदनुसार किसी निश्चित दिन स्वयंवर का आयोजन किया जाता । स्वयंवर-मण्डप में जन-समुदाय उपस्थित होता । कन्या हाथ में वरमाला लेकर मण्डप में प्रवेश करती और अपनी रुचि के अनुसार किसी योग्य व्यक्ति के गले में वरमाला पहना देती ।^{१२}

स्वयंवर का प्रचार राजे-महाराजों में ही अधिक था । सम्भवतया कोई-कोई विगिष्ट सम्पन्न व्यक्ति भी स्वयंवर का आयोजन करते थे । स्वयंवर के आयोजन का सारा उत्तरदायित्व आदि से अन्त तक कन्या पक्ष वालों पर ही होता था ।

परिवार द्वारा विवाह

दूसरे प्रकार के विवाह में वर के माता-पिता योग्य धात्री तथा पुरोहित को कन्या की खोज में भेजते थे । धात्री और पुरोहित का कार्य बहुत ही उत्तरदायित्वपूर्ण था । एक तो यह कि योग्य कन्या की तलाश करे, दूसरे कन्या तथा उसके माता-पिता के मन में यह भावना उत्पन्न कर दे कि जिम व्यक्ति का वे प्रस्ताव कर रहे हैं, उससे अधिक योग्य व्यक्ति उस सम्बन्ध के लिए हो ही नहीं सकता । धात्री और पुरोहित की कुशलता से माता-पिता पहले किये गये निर्णय तक को बदल देते थे ।^{१३}

विवाह की आयु

बारह वर्ष की कन्या और सोलह वर्ष का युवक विवाह के योग्य माना जाता था ।^{१४} मोमदेव के बहुत पहले से बाल-विवाह की प्रवृत्ति चली आती थी । हिन्दू धर्मशास्त्र में कन्या के रजस्वला होने के पूर्व विवाह कर देना उचित माना जाता था । उत्तरकालीन स्मृति-ग्रन्थों में इस अवस्था में कन्या का विवाह न करने वाले अभिभावकों को अत्यन्त पाप का भागी बताया गया है ।^{१५}

१२ पृ० ७६, ७७, ३२१ उक्त०

१३ पृ० ३२०-२१ उक्त०

१४ वही, पृ० ३१७

१५. बृहद्यम ३, २०, सवर्त १, ६७, यम १, २२, श्रुत ६५, ८, उद्धृत, अल्तेकर—
दी राष्ट्रकूटाज पण्ड देयर टाइम्स पृ० ४०-४३

अलबल्लनी ने लिखा है कि हिन्दू लोग अपने लडकों के विवाह का आयोजन करते थे, क्योंकि विवाह बहुत ही छोटी अवस्था में होते थे।^{१६} एक स्थान पर यह भी लिखा है कि ब्राह्मणों में अरजस्वला कन्या को ही ग्रहण किया जाता था।^{१७} गुप्तकाल में बाल-विवाह का प्रचलन रहा।^{१८} आगे चलकर राष्ट्रकूटयुग में भी यही परम्परा चलती रही।^{१९} सोमदेव ने स्पष्ट गठनों में अपने दोनों ग्रन्थों में बारह वर्ष की कन्या और सोलह वर्ष के युवा को विवाह के योग्य बताया है।^{२०}

देव, द्विज और अग्नि की साक्षि में माता-पिता कन्यादान करते थे।

स्वयंवर के अतिरिक्त कन्याओं को सम्भवतया वर पसन्द करने का अधिकार नहीं था। माता-पिता जिनके साथ विवाह कर दे, वही उन्हें स्वीकार करना पड़ता था। सोमदेव ने ऐसे सम्बन्धों की बुराइयों की ओर लक्ष्य दिलाया है। अमृतमति कहती है कि देव, द्विज और अग्नि के ममक्ष माता-पिता द्वारा वेचे गये शरीर का पति मालिक हो सकता है, मन का नहीं। मन का स्वामी तो वही है जिसमें असाधारण प्रणय हो।^{२१}



१६, एपिग्राफिया इंडिका, २ पृ० १५४

१७ वही पृ० १३१

१८, आर० एन० सालेटोरकर-लाइफ इन दी गुप्ता एण्ड पृ० २२०-१०

१९, अल्लेकर-दी राष्ट्रकूटाज्ज् एण्ड देयर टाइम्स पृ० ३४२-४३

२०, यगस्तिलक उक्त० पृ० ३५७, नीति० ३१,१

२१ देवद्विजाग्निस्तनक्ष मातापितृविक्रीतस्य कायस्यैव भवतीश्वर, न मनस । तस्य पुन स एव स्वामी यत्रायमसाधारण्य प्रवर्तते पर विश्रन्मविश्रमाश्रय प्रणय ।—पृ० १४५ उक्त०

पाक-विज्ञान और खान-पान

यशस्तिलक में खान-पान सम्बन्धी बहुविध जानकारी आती है। इस सम्पूर्ण सामग्री की त्रिविध उपयोगिता है—

- (१) यह सामग्री खाद्य और पेय वस्तुओं की एक लम्बी सूची प्रस्तुत करती है।
- (२) इस सामग्री से दशम शताब्दी में भारतीय परिवारों, खासकर दक्षिण भारत के परिवारों की खान-पान व्यवस्था का पता लगता है।
- (३) ऋतुओं के अनुसार सतुलित एवं स्वास्थ्यकर भोजन की सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त होती है।

पाकविद्या

यशस्तिलक में षड्रसों का सर्वदा व्यवहार करते रहने को सुखावह बताया है (षड्रसाम्ब्यवहारस्तु सदा नृणां सुखावह, पृ० ५१६)। मधुर, अम्ल, तिक्त, तीक्ष्ण, कषाय तथा क्षार—इन छ रसों का शुद्ध और सवर्गपूर्वक उपयोग करके ६३ प्रकार के व्यजन तैयार हो सकते हैं (रसाना शुद्धसवर्गभेदेन त्रिषष्टिव्यजनोपदेशभाज, पृ० ५२१)। सज्जन नाम के वैद्य ने इन ६३ प्रकार के भेदों का उपदेश दिया। श्रुतसागर ने संस्कृत टीका में ६३ भेद गिनाए हैं। सोमदेव ने एक प्रसंग में समस्त सूषशास्त्राविगतपटु पोरोगव (प्रवान रसोइया) का उल्लेख किया है (पृ० २२२ उक्त०) तथा पकाने वाले रसोइयों को समस्त रसों की प्रसाधनविधि में निपुण बताया है (सकलरसप्रसाधनविधिव्यतिकराधिकविवेकेषु पाचकलोकेषु, पृ० २२२ उक्त०)।

भोजन बनाने के अनेक तरीके थे—घी में तलकर पकाना (सर्पिषिस्ताता, ५१७), अगारों पर सेक लेना (अगारपाचित, वही), राधना (राद्धम्, ५१३), आधा राधना (अर्धरद्ध, ४०४), पूरा नहीं सेकना (असमस्तसिद्ध, ४०४), थोड़ी-सी आँच मात्र दिखाना (ईपत्त्रिन्न, ४०५), कच्चा ही रहने देना (अपक्व ४०५), बटलोई ढककर तथा अन्न को चलाकर अच्छी तरह पकाना (साधुपाक, ५०७), पकाते-पकाते पानी जला देना (पयसा विशुष्कम्, ५१६), पकाकर दही में डाल देना (दघ्ना परिप्लुतम् ५१६), दाल इत्यादि के बने पदार्थों को कच्चे दूध, दही में

छोड़ देना (द्विदल, ३३५ उक्त०), मिलाकर बनाना (मिश्रम्, ३३४ उक्त०), अकेला बनाना (अमिश्रम्, ३३४, उक्त०) ।

बिना पकाई गयी खाद्यसामग्री

यशस्तिलक में वर्णित सम्पूर्ण खाद्यसामग्री निम्नप्रकार संकलित की जा सकती है—

१. गोधूम (५१५) गेहूँ

२. यव (१५, ५१९) . जौ

३. दीदिवि (४०१) लम्बे तथा उज्ज्वल चावल । सोमदेव ने इसे कामिनिजन के कटाक्षी की तरह अतिदीर्घ एव उज्ज्वल कहा है ।^१ दीदिवि मूलतः वैदिक शब्द है । ऋग्वेद (१, १, ८) में इसका चमकते हुए के अर्थ में प्रयोग हुआ है । अग्नि तथा बृहस्पति के विशेषण के रूप में भी इसका प्रयोग होता है ।^२

४ श्यामाक (४०६) समा (साँवाँ) । सोमदेव ने श्यामाक के भात को सर्वपात्रीण (सभी साधुओं के द्वारा लेने योग्य) कहा है ।^३ कालिदास ने शाकुन्तल में श्यामाक का उल्लेख किया है । कण्व के आश्रम में हरिणों को श्यामाक खिलाकर बढ़ाया गया था ।^४ यजुर्वेद संहिताओं में इसके सबसे प्राचीन उल्लेख मिलते हैं । आपस्तम्भ में इसे बिना बोये उत्पन्न होनेवाला धान्य कहा है । इसका उपयोग साधु-सन्यासी लोग करते थे । श्यामाक के तीन प्रकारों का पता चलता है—(१) राज श्यामाक, (२) अभ श्यामाक या तोय श्यामाक तथा (३) हस्ति श्यामाक । समा (साँवाँ) से इसकी पहचान की जाती है ।^५ समा कोद्रव, बाजरा आदि की श्रेणी का सबसे छोटा धान्य है । इसका रंग साँवला होता है । उत्तर तथा मध्यभारत में कहीं-कहीं अभी भी लोग समा या साँवाँ पैदा करते हैं ।

५ शालि (५१५-५१६) एक विशेष प्रकार का सुगन्धित चावल ।

६ कलम (५१५) एक विशेष प्रकार का सुगन्धित चावल । यह धान्य पानी बरसते ही बो दिया जाता था । करीब एक फिट के पीछे होने पर उखाड़कर दूसरी जगह खेत में रोप दिये जाते थे । ठंड के महीनो (अग्रहन-पीष) तक यह धान्य तैयार हो जाता था ।

१ कामिनीजनकटाक्षैरिवातिदीर्घविपदच्छविभि ।—पृ० ४०१

२ आप्टे—संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी पृ० ११६

३ सर्वपात्रीण श्यामाकभक्त ।—पृ० ४०६

४ श्यामाकमुष्टिपरिवर्धितो जघाति ।—शाकुन्तल, ४।१३

५ श्रीमप्रकाश—फूड एण्ड ड्रिंक इन ऐशियन्ट इंडिया पृ० २६१

कलम शालि का ही एक प्रकार था । जैनागमो मे शालि के तीन भेद मिलते है—(१) रक्तशालि, (२) कलमशालि तथा (३) महाशालि । सुश्रुत ने शालि के १८ प्रकार गिनाए हैं । उवासगदसा (१, ३५) के अनुसार कलमशालि मगव मे उत्पन्न होता था ।^६ सोमदेव ने कलम को ठड की ऋतु के भोजन में गिनाया है तथा शालि का उपयोग वर्षा और शरद् ऋतु के लिए निर्दिष्ट किया है ।^७

कलम की वालियाँ लम्बी-लम्बी होती थी और पकने पर लटक जाती थी ।^८ कलम के खेत जब पकने लगते तब उनकी खास तौर से रखवाली करनी पडती थी । कालिदास ने गन्नो की छाया में बैठकर गाती हुई शालि की रखवाली करने वाली स्त्रियो का उल्लेख किया है ।^९ भारवि तथा माघ ने भी कलम के खेतो की रखवाली करनेवाली स्त्रियो का उल्लेख किया है ।^{१०} एक ओर धूप से कलम के खेतो का पानी सूखने लगता, दूसरी ओर कलम पककर पीले होने लगते हैं ।^{११}

७ यवनाल (४०४) जुआर

८. चिपिट (४६६) चिउडा धान को थोडा उबालकर मूसल या ढेंकी से कूट लेते है, ऐसा करने से धान का छिलका अलग हो जाता है तथा चावल अलग हो जाता है । इसे ही चिपट या चिउडा कहते हैं । बगाल और बिहार मे चिउडा खाने का बहुत रिवाज है । मध्यप्रदेश के रायगढ, बिलासपुर, रायपुर, सरगुजा आदि जिलो में तथा उत्तरप्रदेश के कई जिलो में भी चिउडा खाने का रिवाज है । सम्पन्न परिवारो में चिउडा दही के साथ खाते है, गरीब तथा साधारण परिवारो में पानी में फुलाकर अथवा सूखा ही चिउडा गुड, नमक, मिर्च तथा प्याज आदि के साथ खाया जाता है ।

सोमदेव ने लिखा है कि तिरहुत के सैनिको के मसूडे निरन्तर चिउडा चबाते रहने के कारण छिल गये थे ।^{१२}

६. वही पृ० ५८, ५६, २६२

७ यशस्तिलक पृ० ५१५, ५१६

८ आपादपक्षपण्णा कलमा इव ते रघुम् ।—रघुवश, ४।३७

९ इक्षुच्छाधानिषादिन्य शालिगोप्यो जगुर्यश ।—रघुवश, ४।२०

१०. सुतेन पाण्डो कमलस्य गोपिकाम् ।—किरात० ४।६

११. कलमगोपवधूर्नं मृगव्रजम् ।—शिशु० ६।४६

उपति शुष्यन्कलम सहाभसा मनोभुवा तप्त इवाभिपाण्डुताम् ।

—किरात० ४।३४

१२ अनवरतचिपिटचर्वणदीणदशनाग्रदेशै ।— यश० पृ० ४६६

चिउडा का पुराना नाम पृथुक था। पृथुक का इतिहास ब्राह्मणकाल तक पहुँचता है। आजकल इसके बनाने की जो प्रक्रिया है, यही उस समय भी चलती थी।^{१३}

६. सत्तू (५१२, ५१५) सत्तू गेहूँ या जी को भून कर उनमें भुजे हुए चने मिलाकर पीसे गये चूर्ण को सत्तू कहा जाता है। सत्तू का इतिहास वैदिक-युग तक पहुँचता है। ऋग्वेद (१०, ७१, २), तैत्तरीय ब्राह्मण (३, ८, १४) आदि में इसके उल्लेख मिलते हैं।

सत्तू पानी में उसनकर पिण्ड के रूप में तथा पतला चाटने योग्य (अवलेह्य) बनाकर खाया जाता था। उत्तर काल में घी, गुड़, चीनी आदि के साथ में भी खाया जाने लगा (सुश्रुत ४६, ४१२)।^{१४} वर्तमान में भी सत्तू खाने के यही तरीके प्रचलित हैं।

सोमदेव ने स्वास्थ्य की दृष्टि से पिण्डरूप अथवा दही के समान गाढ़ा सत्तू खाने का निषेध किया है।^{१५}

१० मुद्ग (५१५, ५१६) मूँग

११. साप (५१२, ५१४) उडद

१२ चिरसाल (४०४) राजमाष

१३ द्विदल (३३५, उत्त०) दाल, जिसके दो समान टुकड़े होते हों, ऐसा प्रत्येक अन्न द्विदल कहलाता है।

घृत, दधि, दुग्ध, मट्ठा आदि के गुण-दोष तथा उपयोग—विधि

घृत घृत के गुणों का वर्णन करते हुए सोमदेव ने लिखा है कि वेद तथा आगमों के जानकारों ने घृत को साक्षात् आयु कहा है, वैद्य लोगों ने वृद्धत्व-नाशक होने से रसायन के लिए इसका विधान किया है, सारस्वतकल्प से निर्मल हुई बुद्धिवालों ने बुद्धि की सिद्धि (धिय सिद्धये) के लिए बताया है, ऐसा घृत द्रव स्वर्ण तथा केतकी के समान रस और छाया वाला उत्तम होता है। अर्थात् घृत आयुवर्द्धक, वृद्धतानिवारक तथा बुद्धि को निर्मल बनाता है।^{१६}

दधि दधि स्थूलता करता तथा वायु को दूर करता है। इसका सेवन

१३ ओमप्रकाश—फूड एण्ड ड्रिंक इन एशियन्ट इंडिया पृ० २९०

१४ वही पृ० २६१

१५. दधिवत्सक्तून्नाद्यात् ।—यश० पृ० ५१२

१६ पृ० ५१७, श्लोक ३६०, तुलना—'आयुवै' घृतम्'

वसन्त, शरद् तथा ग्रीष्म को छोड़कर अन्य ऋतुओं में घृत (सर्पि), सिता (शक्कर), आमला तथा मूँग के पानी के साथ करना चाहिए ।^{१७}

तक्र दधि को मथकर तुरन्त जिसका नवनीत निकाल लिया गया है, ऐसा तक्र समगुण वाला होता है, बहुत देर तक मथा गया किसी भी दोष को उत्पन्न नहीं करता ।^{१८}

दुग्ध दुग्ध माक्षात् जीवन ही है । जन्म के साथ ही दुग्ध-पान प्रारम्भ हो जाता है । गाय का धारोष्ण दुग्ध आयुष्य करनेवाला होता है । दूध प्रातः, सायंकाल, सभोग के अनन्तर तथा भोजन के बाद उपयुक्त मात्रा में पीना चाहिए ।^{१९}

जल भोजन के प्रारम्भ में जल पीने से जठराग्नि नष्ट हो जाती है तथा कृशता आती है, अन्त में पीने से कफ बढ़ता है, मध्य में पीने पर समता तथा सुख करता है । एक साथ ही अधिक जल नहीं पीना चाहिए ।^{२०}

जल को अमृत भी कहते हैं और विष भी, इसका तात्पर्य यही है कि युक्तिपूर्वक पिया गया जल अमृत तथा अयुक्ति या अव्यवस्थापूर्वक पिया गया जल विष के समान है ।^{२१}

ऋतुओं के अनुसार पेय जल वसन्त और ग्रीष्म ऋतु में कुआँ तथा भरने का, वर्षा में कुआँ, अथवा चुरी (कुण्ड) का, ठंड में सरसी (पोखरा) या तालाव का तथा शरद् ऋतु में सूर्य-चन्द्रमा की किरणों तथा वायु के भ्रूकोरो से शुद्ध हुए जल को पीना चाहिए ।^{२२}

ससिद्ध जल हवा तथा धूप से स्वच्छ हुआ, रस तथा गव रहित जल स्वभावतः पथ्य है, यदि ऐसा न मिले तो उबाला हुआ पीना चाहिए ।^{२३} सूर्य और चन्द्रमा की किरणों से ससिद्ध किया जल २४ घंटे (अहोरात्र) के बाद नहीं पीना चाहिए, दिन में सिद्ध किया गया रात्रि में तथा रात्रि में सिद्ध किया जल दिन में नहीं पीना चाहिए ।^{२४}

१७. पृ० ५१७-१८, श्लोक ३६१

१८. पृ० ५१८, श्लोक ३६२

१९ वही, श्लोक ३६३

२०. श्लोक ३६७

२१ श्लोक ३६८

२२ श्लोक ३६९

२३ श्लोक ३७०

२४. श्लोक ३७१

जल को समिद्ध करने की प्रक्रिया के विषय में टीकाकार ने लिखा है कि जल से भरा हुआ घड़ा प्रातः काल धूप में रखकर चार प्रहर रात्रि तक खुले आकाश में रखा रहने दिया जाए, यह जल सूर्येन्दु ससिद्ध कहलाता है ।^{२५}

मसाला

लवण (५१४)—नमक

दरद (४६४)—हींग

• क्षपारस (४६४)—हलदी

* मरिच (५१२)—मिरच

पिप्पली (५१२)—छोटी पीपल

राजिका (४०६)—राई

स्निग्ध पदार्थ, गोरस तथा अन्य पेय

घृत (५१४, ५१६, ५१९)

आज्य (२५१, ४०१)

पृषदाज्य (३२४)

तैल (४०४, ५१४)

दधि (५१२, ५१४, ५१६, ५१७)

दुग्ध (५१८)

नवनीत (५१८)

तक्र (५१२, ५१९)

कलि या अवन्तिसोम (४०६, ५१२, ५१९)

नारिकेलफलाम्भ (५१२)

पानक (५१५)

शर्कराद्वय (५१५)

मधुर पदार्थ

शर्करा (५१५)

सिता (५१६)

गुड (५१२)

मधु (५१२)

इक्षु (५१४)

साग—सब्जी तथा फल

- १ पटोल (५१६)—परवल
- २ कोहल (५१६)—कुम्हडा
३. कारवेल (५१६)—करेला
- ४ वृन्ताक (५१६)—वैगन
- ५ वाल (५१६)
- ६ कदल (५१२)—केला
- ७ जीवन्ती (५१६)—डोडी
- ८ कन्द (५१२, ५१६)—सूरन
- ९ किसलय (५१५, ५१६)—कोमल पत्ते
१०. विष (५१५)—मृगाल
- ११ वास्तूल (५१६)—त्रथुआ
- १२ तण्डुलीय (५१६)—चौराई
- १३ चिल्ली (५१६)
- १४ चिर्भटिका (४०५, ५१६)—कचरिया
- १५ मूलक (४०५, ५१२)—मूली
- १६ आर्द्रक (५१६)—प्रदरख
- १७ वात्रीफन (५१६)—प्राँवला
- १८ एवारु (४०४)—ककडी
- १९ अलावू (४०४)—जौकी (गोल)
- २० कर्कारु (४०५)—कलिंगफन (सस्कृत टीका)
- २१ मालूर (४०५)—त्रेल
- २२ चक्रक (४०५)—लट्टे पत्ते का साग
- २३ अग्निदमन (४०५)
- २४ रिगिणीफल (४०५)—भटकटैया
- २५ अगस्ति (४०५)—अगस्त्य वृक्ष
- २६ आम्र (४०५)—ग्राम
- २७ आम्रातक (४०५)—ग्रामडा
२८. पिचुमन्द (४०५)—नीम
- २९ सोभाजन (४०५)—सहजन
- ३० वृहतीवार्ताक (४०५)—बडा वैगन
३१. एरण्ड (४०५)—अठी (रेंड, रेडी)

३२. पलाण्डु (४०५)—प्याज या लहसुन
 ३३. वल्लक (४०५)
 ३४. रालक (४०६)
 ३५. कोकुन्द (४०६)
 ३६. काकमाची (५१२)
 ३७. नागरग (९५)
 ३८. ताल (९५)
 ३९. मन्दर (९५)—पारिजात (स० टी०)
 ४०. नागवल्ली (९६)—पनवेल
 ४१. वारा (९६)—बीजवृक्ष (स० टी०)
 ४२. आसन (९६)—रालवृक्ष (स० टी०)
 ४३. पूग (९६)—सुपारी
 ४४. अक्षोल (९६)—अखरोट
 ४५. खर्जूर (९६)—खजूर
 ४६. लवली (९६)
 ४७. जम्बीर (९६)—जिमरिया
 ४८. अश्वत्थ (९६)—पीपल
 ४९. कपित्थ (९६)—कैथ
 ५०. नमेरु (९६)
 ५१. राजादन (९६)—क्षीरवृक्ष
 ५२. पारिजात (९७)
 ५३. पनस (९७)
 ५४. ककुभ (९९)—अर्जुन वृक्ष
 ५५. वट (९९)
 ५६. कुरवक (९९)
 ५७. जम्बू (१००)—जामुन
 ५८. दर्दरीक (१०३)—दाडिम (अनार)
 ५९. पुण्ड्रेक्षु (१०३)—पोडा
 ६०. मृद्वीका (१०३)—द्राख
 ६१. नारिकेल (१०३)—नारियल
 ६२. उदुम्बर (३३० उत्त०)—ऊमर (गूलर)
 ६३. प्लक्ष (३३० उत्त०)

तैयार की गयी सामग्री

१ भक्त (५१६)—भात पकाए गये चावलो को भात कहते हैं। भात के लिए यशस्तिलक में तीन शब्द आए हैं—१ दीदिवि (४०), २ भक्त (५१६) और ३ ओदन।

२. सूप (४०१, ५१६)—दाल जिस अन्न के दो समान दल (टुकड़े) होते हैं, वह द्विदल कहलाता था। इसी का वर्तमान रूप 'दाल' पद में अवशिष्ट है। पकाई गयी दाल को सूप कहते थे। अच्छी तरह पकाई गयी दाल स्वर्ण के रंग की तरह पीली हो जाती है (काचनच्छायापलापै सूपै, ४०१)।

३ शष्कुली (५१२)—खस्ता पूड़ी शष्कुली चावल के आटे में तिल मिला कर घी अथवा तेल में पकाई जाती थी। यह कई प्रकार की बनती थी। वृहत्-सहिता (७६, ९) में कामोद्दीपन करने वाली शष्कुली का उल्लेख है। अगविज्जा (पृ० १८२) में दीर्घ शष्कुलि का उल्लेख है।^{२६} सोमदेव ने काजी के साथ शष्कुली खाने का निषेध किया है।^{२७} आगरा में अभी भी सावन-भादो में यह बनाई जाती है।

४. समिध (या सामिता) (५१६)—गेहूँ के आटे की लप्सी सामिता गेहूँ के आटे में मूँग भरकर बनाया गया खाद्य था (सुश्रुत, ८६, ३९८)।^{२८}

५. यवागू (६९, ८८ उक्त०) यवागू वैदिक काल में भारतीय भोजन का अङ्ग रही है। डॉ० ओमप्रकाश ने प्राचीन साहित्य के आधार पर इसके विषय में इस प्रकार जानकारी दी है—यजुर्वेद के अनुसार यवागू सम्भवतः जौ की बनती थी। महावग्ग (६, २४, ५) में इसे स्वास्थ्यकारक खाद्यान्न माना है। यवागू का एक विशेष प्रकार त्रिकटुक बीमारी में उपयोग किया जाता था। पाणिनि ने दो प्रकार की यवागू बतायी है—(१) पेया, (२) विलेपी। विलेपी को पाणिनि ने नखपच कहा है। अङ्गविज्जा (पृ० १७९) में दूध, मक्खन तथा तेल डालकर बनायी गयी यवागू का उल्लेख है। सुश्रुत (४६, ३७६) ने फनो के रस से बनी यवागू को खाड यवागू कहा है।^{२९}

२६ ओमप्रकाश—फूड एण्ड ट्रिंक इन एशियन्ट इंडिया, पृ० २६१

७ यशस्तिलक पृ० ५१२

२८ उद्धृत, ओमप्रकाश—वही पृ० २६१

२९. ओमप्रकाश—वही, पृ० २६४

सोमदेव ने यवागू सामान्य (८८) तथा अपामार्ग यवागू (६९) का उल्लेख किया है। वसन्तिका कहती है कि मैं स्वप्न में यवागू बन गयी तथा माँ के द्वारा श्राद्ध के लिए आमन्त्रित ब्राह्मणों ने मुझे खा लिया।^{२०} सोमदेव ने अपामार्ग यवागू को पचाना मुश्किल बताया है।^{२१}

६. मोदक (८८, उक्त०)—चूड़, चावल, गेहूँ अथवा दाल के आटे को भून कर घी, चीनी या गुड डाल कर गंद के समान बनाए गये मिष्ठान्न को मोदक कहते थे।^{२२} प्राचीन काल से मोदक बनाने का यही ढंग सुरक्षित चला आ रहा है।

७ परमान्न (४०२) यशस्तिलक में परमान्न को अभिनव अङ्गना-सङ्गम की तरह अत्यन्त स्वादयुक्त तथा शर्करायुक्त कहा गया है।^{२३} परमान्न चार भाग चावलो को बारह भाग दूध में पका कर उसमें छह भाग मक्खन तथा तीन भाग गुड या शर्करा मिला कर बनाया जाता था। (अङ्गविज्जा, पृ० २२०, भोजन-कुतुहल, पृ० २८)।^{२४}

८. खाण्डव (४०२) खाण्डव को यशस्तिलक में नर्तकी के विलास की तरह नेत्र, नासिका तथा रसना को आनन्द देने वाला कहा है।^{२५} रामायण के उत्तरकाण्ड में यज्ञ के उपरान्त विभिन्न प्रकार के गोड (गुड से बने पदार्थ तथा खाण्डवो (खाण्ड से बने पदार्थों) को बाँटने का उल्लेख है।^{२६} महाभारत में भी खाण्डव का उल्लेख है।^{२७} अष्टागसग्रह (सू० ७) में इसे एक प्रकार का मुरब्बा कहा है। डॉ० ओमप्रकाश ने इन उल्लेखों का उपयोग करके भी खाण्डव का अत्यन्त सीधा-साधा अर्थ खाण्ड की मिठाई किया है।^{२८} सोमदेव की साक्षी से

३०. स्वप्ने किलाह यवागूरिव सवृतास्मि, भुक्ता च मन्मातु श्राद्धामन्त्रितैर्भूदेवै ।

—पृ० ८८ उक्त०

३१. अप.मार्गयवागूरिव लब्धापि न शक्यते परिणमयितुम् ।—पृ० ६६ उक्त०

३२. ओमप्रकाश, वही, पृ० २८६

३३. अभिनवागनासगमैरिवातीवस्वादुभि शर्करासंपर्कसमापन्नै परमान्नै ।

—पृ० ४०२

३४. ओमप्रकाश, वही, पृ० २८९, ९०

३५. लासिकाविलासैरेव मनोहरै समानोतनेत्रनासारसनानन्दभावै खाण्डवै ।

—पृ० ४०५, ४०२

३६. विविधानि च गौडानि खाण्डवानि तथैव च ।—रामायण, उक्त० १२/१२

३७. मध्यखाण्डवरागाणाम् ।—महाभारत, १४, ८६, ४१

३८. ओमप्रकाश, वही, पृ० २८७

तो खाण्डव की पहचान आयुर्वेदिक ग्रन्थों में आनेवाले 'षाडव' से करना चाहिए।^{३९} षाडव में खट्टा, मीठा स्पष्ट प्रतीत होता था तथा कसैला और नमकीन कम। लगता है खाड की मात्रा अधिक होने के कारण यह खाण्डव कहा जाने लगा।

६. रसाल (७९ उक्त०)—शिखरणी सोमदेव ने रसाल को 'मञ्जीर्णरसा' कहा है।^{४०} अच्छी तरह जमे हुए दही में सफेद चीनी, घी, मधु तथा मोठ और कालीमिर्च का चूर्ण कपडछत करके डालकर कर्पूर से सुगन्धित करके रसाल तैयार किया जाता था।^{४१}

१०. आमिक्षा (३२४) उवाले गये दूध में दही डालकर आमिक्षा बनता था (श्रुते क्षीरे दक्षिणामामिक्षा कथ्यते बुधै, स० टी०)। आमिक्षा और पृषदाज्य की अग्नि में आहुति दी जाती थी (पृषदाज्येनामिक्षया च समेधितमहसम्, वही)। आमिक्षा और पृषदाज्य दोनों वैदिक शब्द थे। यजुर्वेद संहिताओं तथा सत्यय-ब्राह्मण में इसके अनेक उल्लेख आते हैं।^{४२}

११. पक्वान्न (४०२)—पक्वान्न के लिए सोमदेव ने प्रियतमा के अग्ररो के समान स्वादयुक्त कहा है (प्रियतमावरैरिव स्वादमानं पक्वान्नं, वही)। पक्वान्न का प्रयोग सामान्य रूप से घृत या तेल में बने हुए पक्वानो के लिए हुआ है।

१२. अवदश मन को प्रीति उत्पन्न करने वाली रसदार सब्जियों को सोम-देव ने स्त्रियो के कैतव की उपमा दी है।^{४३} श्रुतसागर ने अवदश का अर्थ भक्ति-

३६ चरक० स० २७।२८२, सुश्रुत स० ४६।३७८

४० रसालामिव सकीर्णरसासरालाम् ।—पृ० ७६ उक्त०

४१ अर्षाटकं सुचिरपर्युषितस्य दध्न खण्डस्य षोडशपलानि शितप्रभस्य ।

सर्पि पल मधुपल मरिचद्विकर्षं शुद्ध्या पलार्धमपि चार्धपल चतुर्णाम् ॥

श्लक्ष्णे पटे ललनया मृदुपाणिपुष्टा कर्पूरधूलिसुरभीकृतभाण्डसंस्था ।

एषा वृकोदरकृता मरसा रसाला यास्वादिता भगवता मधुसूदनेन ॥

—उद्धृत —वही, स० टी०

अपक्वतक्र सव्योष चतुर्जागुडकम् । सजीरक रसालं स्थान्मलिनका शिखरिणा ॥

सव्योषम-शुण्ठीपिप्पलीमरिचदुक्तम् । चतुर्जातम् पलालवगककोलनागपुष्पाणि ॥

वैजयन्ती, उद्धृत, श्रीमप्रकाश—वही, पृ० १०५, फुटनोट ३

४० श्रीमप्रकाश—वही, पृ० २८४

४३, श्रीकैतवैरिवजनिनस्वान्तप्रीतिभिर्वहुरमवशैरवदशै ।—पृ० ४०१

सिक्तसयुक्तवनस्पतिव्यजन किया है।^{४४} मानसोल्लास में व्यजन के बारे में कहा है कि—चावल के धोवन में चिचा, दही, मट्टा तथा चीनी मिलाकर इलायची का चूर्ण तथा अदरक का रस मिलाए तथा हींग का छौंक लगाए, उसे व्यजन कहते हैं।^{४५}

१३ उपदंश (४०४)—सब्जी

१४. सर्पिपिस्नात (५२७)—घी में तले गये पदार्थ

१५. अंगारपाचित (५१७)—अङ्गारो पर पकाए गये पदार्थ

१६. दध्नापरिप्लुत (५१६)—दही में डूबे हुए पदार्थ

१७. पयसा विशुष्क (५१६)—सूखी सब्जी आदि

१८. पर्पट (५१६)—पापड

सोमदेव ने अमीर तथा गरीब दोनों परिवारों के खान-पान का सुन्दर चित्र खींचा है।

अमीर परिवारों में दीदिवि, अनेक प्रकार की दालें, प्रचुर मात्रा में आज्य, रसीले अवदश, खाण्डव, पक्वान्न, दही, दुग्ध, परमान्न आदि खाने-पीने का प्रचार था। जल भी कर्पूर आदि सुगन्धित द्रव्यों से युक्त करके पीते थे।^{४६} सोमदेव ने अत्यन्त मनोरंजक ढंग से इस प्रसंग को प्रस्तुत किया है—

“देशान्तर प्रवास के बाद दूत लौटा। सम्राट ने परिहास में पूछा—‘शखनक, तुम्हारी वह तोद कहाँ गयी?’ शखनक बोला—‘देव, तोद हम गरीबों के कहाँ रखी, तोद तो उनकी फूटती है, जिनको रोज-रोज कामिनी-कटाक्षों की तरह लम्बे-लम्बे एव उज्ज्वल दीदिवि (सुगन्धित चावलो का भात) खाने को मिलते हैं, जिनको विरहणियों के हृदयों के समान गरम-गरम तथा सोने के रंग को मात करनेवाली दाले उपलब्ध होते हैं, कान्ता के मुख की तरह प्राजलि-पेय सुगन्ध वाला प्रचुर मात्रा में आज्य प्राप्त होता है, स्त्री के कौतवों के समान मन को प्रसन्न करने वाले रसीले अवदश मिलते हैं, नर्तकी के विलास की तरह मनोहर नेत्र,

४४ अवदशै शालनकै भक्तिसिक्तसयुक्तवनस्पतिव्यजनै ।—वही, सं० टी०

४५ तण्डुलसालित तोयं चिचाम्लेन विमिश्रितम् ।

ईपत्तक्रेण सयुक्त सितया सष्ट योजितम् ॥

पलाचूर्णसमायुक्तमार्द्रकस्य रसेन च ।

धूपित हिंनुना सम्यक् व्यजन परिकीर्तितम् ॥

—मानसोल्लास, भा० ३, १२७८ ७६

नासिका तथा रसना को आनन्द प्रदान करने वाले खाण्डव प्राप्त होते हैं, प्रियतमा के अघरो के समान आस्वादन करने योग्य पक्वान्न उपलब्ध होते हैं, तरुणी के पयोधरो के समान सुजाताभोग एव स्तब्ध (कठोर) दही मिलता है, प्रणयिनी के विलोकन की तरह मधुरकान्ति एव स्निग्ध दुग्ध उपलब्ध होता है, अभिनव अगना की तरह अतीव स्वादु शर्करायुक्त परमान्न प्राप्त होते हैं, तथा मैथुनरस-रहस्य की तरह सम्पूर्ण शरीर के सन्ताप को दूर करने वाला कर्पूरयुक्त जल पीने को मिलता है ।” ४७

गरीब परिवारों में यवनाल का भात, राजमाप की दाल, अलसी आदि का तेल, काँजी, मट्ठा तथा अनेक प्रकार के फल एव पत्तों के साग खाने का रिवाज था । ४८ उपर्युक्त वर्णन की तरह सोमदेव ने एक गरीब परिवार के खान-पान का भी चित्र प्रस्तुत किया है । सम्राट ने शखनक से पूछा—“आज कहीं हस्तमुख सयोग हुआ या नहीं ?” शखनक बोला—“देव, हुआ है । सुनिए—मक्खी के मुण्डों की तरह काले-काले तुपयुक्त गन्दे, पुराने, टूटे यवनालो का भात मिला, उसमें भी अनेक ककण थे, पिछले दिन की राजमाप की दाल मिली, जिसमें से अत्यन्त दुर्गन्ध आती थी, उसमें चूहे के मूत्र की तरह जरा-सा अलसी का तेल टपका दिया था, अचपके ऐवारु की बहुत सारी सब्जी मिली, आवे राँधे गये अलाबु की बहुत-सी फाँकें तथा कुछ पके हुए ककारु के कड़े-कड़े टुकड़े मिले, बड़े-बड़े वेल, मूली, चक्रक, विना फूटी कचरियाँ, कच्चे अर्क, अग्निदमन, रिगिणी-फल, अगस्ति, आम्र, आम्रातक, पिचुमन्द तथा कन्दल उपलब्ध हुए, कई दिनों की माँग-माँग कर इकट्ठी की गयी आम्रखलक मिली, खूब पके, बड़े-बड़े वैगन, सोभा-जन, कन्द, सालनक, एरण्ड, पलाण्डु, मुण्डिका, वल्लक, रालका, तथा कोकुन्द प्राप्त हुए, बहुत-सी राई डाली हुई काजी तथा खारा पानी पीने को मिला । मुझसे कुछ भी नहीं खाया गया, न भूख मिटा । उसी को घरवाली ने छिपाकर रखा हुआ थोड़ा-सा श्यामाक का भात तथा खट्टे दही का मट्ठा दिया, जिससे जिन्दा बचा रहा ।” ४९

मासाहार

सोमदेव जैन साधु थे । अहिंसा के चरम विकास में आस्था रखने वाला

जैनधर्म मासाहार का स्पष्ट निषेध करता है, यही कारण है कि सोमदेव ने भी मासाहार का घोर विरोध किया है। इतना होने पर भी यह नहीं माना जा सकता कि सोमदेव के युग में मासाहार नहीं था। यशस्तिलक में ऐसे अनेक प्रसंग आए हैं जिनसे मासाहार का पता चलता है।

कौल-कापालिक संप्रदायो में मासाहार और मद्य का व्यवहार धार्मिक क्रियाओं के रूप में अनुमत था,^{५०} इसलिए उन संप्रदायो में मास का व्यवहार स्वाभाविक था। जलचर, थलचर तथा तभचर सभी प्राणियों का मास खाया जाता था। देवी के नाम पर तो ये मनुष्य तक की बलि कर देते थे। बहुत सम्भव है कि प्रसाद के रूप में मनुष्य का भी मास खा लेते हों। अपना मास काट काट-काटकर क्रय-विक्रय करने का उल्लेख है।^{५१}

चण्डमारी के मन्दिर में बलि के लिए निम्नलिखित पशु-पक्षी लाए गये थे।^{५२}

(१) मेघ, महिष, मय, मातंग (गज), मितद्रु (अश्व)।

(२) कुम्भीर, मकर, सालूर (मेढक), कुलीर (कंकडा), कमठ और पाठीन।

(३) भेरुण्ड, क्राँच, कोक, कुर्कुट, कुरर, कलहस।

(४) चमर, चमूर, हरिण, हरि (सिंह), वृक, वराह, वानर, गोखुर।

कौलो में तो कच्चे मास खाने तक का रिवाज था।^{५३}

क्षत्रिय तथा ब्राह्मण जातियों में भी मासाहार का चलन था। यशस्तिलक में राजमाता कहती है कि पिष्टकुक्कुट की बलि देकर उसके अवशिष्ट भाग को मास मानकर हमारे साथ खाओ।^{५४}

अमृतमति तो अत्यन्त मासप्रिय थी। जिस मेमने को अतिशय प्यार के साथ राजभवन में पाला गया था उसे भी उसने नहीं बचने दिया।^{५५}

५०. रण्डाचण्डा दिक्खया धम्मदारा मज्जं मस पिज्जए खज्जए च।

भिक्षा भोज्ज चम्मखण्ड च सेज्जा कोलो धम्मो करस न होइ रम्मो ॥

—कपूरमजरी, १।२३

मज्ज मस मिट्ठ भक्खं भक्खिय जीवसोक्खं च।

कउले धम्मे विसरे रम्मो त जि हो सग्गमोक्ख ॥—भावराग्रहं, १८३

५१. क्रियविक्रीयमाणस्ववपूर्वत्लूरम्।—यश० पृ० ४६

५२. पृ० १४४

५३. पियुरापितजरुथमन्थरकपालशकलम्।—पृ० ४८

५४. पिष्टकुक्कुटेन बलिमुपवत्थ्य तदवशिष्टं पिष्टं मासमिति च परिकल्प्य मया सहावश्यं प्राशनीयम्।—पृ० १३५ उक्त०

५५. जागलभक्षणाक्षिप्तचित्तया।—पृ० २२७ उक्त०

यज्ञोमति की महारानी कुसुमावली को दोहद उ हुआ था कि भोजनालय में मास नहीं आना चाहिए ।^{५६} सम्राट के भोजनालय में मास पकाने की शिक्षा (पिशितपाकोपदेश, २२२ उक्त०) देनेवाले विद्यमान थे । इस सबसे स्पष्ट है कि क्षत्रिय परिवारों में मास का व्यवहार होता था ।

ब्राह्मणों में साधारणतया मासभक्षण का रिवाज ही या नहीं, यज्ञ और श्राद्ध के नाम पर मास खाने का अत्यधिक प्रचार था । सम्राट के यहाँ जब विशाल मत्स्य और मगर पकड़ कर लाए तो उन्हें देख कर सम्राट ने उन्हें पितरों के सत्पर्ण के लिए ब्राह्मणों को दे दिया ।^{५७} इतना ही नहीं, वे सब प्रतिदिन उनमें से अपने उपयोग के योग्य मास काटते थे ।^८

एक कथा में याज्ञिक पर आक्षेप किया गया है कि उसने यज्ञ के नाम पर अनेक निरीह पशुओं को खा डाला ।^{५९}

सोमदेव ने वैदिक साहित्य से ऐसे अनेक पद्य उद्धृत किये हैं, जिनसे यज्ञ तथा श्राद्ध में मास के प्रयोग का पता चलता है ।

मनु ने मधुपर्क, यज्ञ तथा पितृ एव देवता के निमित्त मास का प्रयोग शास्त्र सम्मत बताया है ।^{६०} यज्ञ के लिए मास प्रयोग के समर्थन में वैदिक मान्यताओं का विस्तार से वर्णन किया है ।^{६१} मास के समर्थकों का तो यहाँ तक कहना है कि जो व्यक्ति मास के बिना भोजन करता है, क्या वह गोबर नहीं खाता ।^{६२}

श्राद्ध में मास के विवेचन के लिए सोमदेव ने मनुस्मृति के पाँच पद्य (३।२६७-२७१) उद्धृत किये हैं, जिनमें कहा गया है कि पितृ लोक मात्स्य, हारिण, औरभ, शाकुनि छाग, पार्श, एण, रोरव, वाराह, माहिप, शश, कूर्म, गव्यण,

५६. देव, प्रतिबन्धिता महानसेपु कव्यागम ।—पृ० २६०, उक्त०

५७. महीपतिरवलोक्य पितृगतर्षणार्थं द्विजसमाजसत्ररसवतीकाराय समर्पयामास ।

—पृ० २१८ उक्त०

५८. तत्र च तदुपयोगमात्रतया प्रत्यहमुत्कृत्यमानकायैकदेश ।—वही

५९. अन्ये खलु ने वराकतनय । मखमिषेण भवता भक्षिता ।—पृ० १३२ उक्त०

६०. मधुपर्के च यज्ञे च पितृदैवतकर्मणो ।

अत्रैवपशवो हिंस्या नाम्यत्रेत्यब्रवीन्मनु ॥—पृ० ६० उक्त० । मनु० २।४१

६१. वही, पृ० ११६-१८

६२. ये भुंजते मासरसेन हीनं ते भुजते किं नु न गेभयेन ।—पृ० १२६ उक्त०

पायस तथा वार्धीण मास से क्रमशः दो, तीन, चार, पाँच, छह, सात, आठ, नव, दश, ग्यारह पूरा वर्ष तथा बारह वर्ष तक के लिए वृत्त होते हैं ।^{६३}

छोटी जातियों में भी मास का व्यवहार रहा होगा, किन्तु उसके उल्लेख नाम मात्र को ही है । चण्डकर्मा मुर्गी पालता था । एक प्रसंग में वह मुनिराज के समक्ष कहता है कि हिंसा हमारा कुल धर्म है ।^{६४} सम्भवतः धीवर (२१६, ३३५, उक्त०) चर्मकार (१२५), चाण्डाल (२५४), अन्त्यज (४५७), भाल (४५७), शबर (२३१ उक्त०), किरात (२२० उक्त०), बनेचर (५६) तथा निषादो (६०२, उक्त०) में भी मास का व्यवहार होता था ।

मासाहार निषेध—सोमदेव ने मासाहार का घोर विरोध किया है । उनका कहना है कि लोग इन्द्रिय लोलुपता तथा अपने स्वार्थ के कारण मास खाते हैं, उसके साथ धर्म और आगम को व्यर्थ ही जोड़ रखा है ।^{६५} सोमदेव ने उद्धरण देकर इस बात को सिद्ध किया है कि तिल या सरसो के बराबर भी मास खानेवाला यावच्चन्द्रदिवाकर नरक की यातनाएँ सहता है ।^{६६} मास खाने के सकल्प मात्र से होने वाले दुष्परिणाम का वर्णन एक लम्बी कथा में किया गया है ।^{६७} सम्पूर्ण यशस्तिलक भी एक प्रकार से इसी परिणाम की कहानी है ।

६३ द्वािमासी मत्स्यमासेन त्रीन्मासान्धारिणेन च ।

औरभ्रेयाथ चतुर शाकुनेनैव पञ्च वै ॥

षट्मासाश्छागमासेन पार्श्वेन हि सप्त वै ।

अष्टात्रेयस्य मासेन रौरवेण नवैव तु ॥

दशमासास्तु नृप्यन्ति वाराहमहिषामिषै ।

शशकूर्मस्य मासेन मासानेकादशैव तु ॥

सवत्सरं तु गव्येन पयसा पायसेन वा ।

वार्धीणस्य मासेन तृप्तिर्द्वादशवार्धिकी ॥—पृ० १२७ १२८ उक्त०

६४. हिंसास्माक कुलधर्म (—पृ० २५८ उक्त०

६५ मास जिघत्सेद्यदि कोऽपि लोक किमागमस्तत्र निदर्शनीय ।

लोलेन्द्रियैलोकमनोनुकूलै स्वाजीवनायागम पष सृष्ट ॥

—पृ० १३० उक्त०

६६ तिलसर्पधमात्रं यो मासमश्नाति मानव ।

स श्वभ्रात्र निवर्तेत् यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥

—पृ० १३० उक्त०

६७ अध्याय ७, कल्प २४

मासाहार समर्थक कहते हैं कि मुद्गा (मूंग) और माष (उडद) आदि भी तो मय (ऊँट) और मेष (भेड़) आदि के समान ही जीवस्थान होने से मास ही है। उनमें अन्तर क्या है। ६८

सोमदेव ने इस कथन का व्यावहारिक पृष्ठभूमि पर दृढतापूर्वक खण्डन किया है। उन्होंने लिखा है कि यह जरूरी नहीं कि जो जीव शरीर हो वह मास ही हो, इसके विपरीत मास तो जीव-शरीर है ही, उसी प्रकार जिस प्रकार नीम का वृक्ष वृक्ष है ही, किन्तु जो वृक्ष है वह नीम ही हो, यह जरूरी नहीं। गाय का दूध शुद्ध है, किन्तु गोमास नहीं। सर्प का रत्न विष को नाश करता है, किन्तु विष विपदकारक है। किसी-किसी वृक्ष के पत्र तो आयुष्य के कारण होते हैं, किन्तु जड़ें मृत्युकारी। ६९

•

६८ जीवयोग्या विशेषेण मयमेपादिकायवत् ।

मुद्गमापादिकायोऽपि मासमित्यपरे जगु ॥—पृ० ३३० उक्त०

६९. मांस जीवशरीर जीवशरीरं भवेन्न वा मामम् ।

यद्ग्नित्वो वृक्षो वृक्षस्तु भवेन्न वा निम्ब ॥—पृ० ३३१ उक्त०

पायस तथा वार्धीण मास से क्रमशः दो, तीन, चार, पाँच, छह, सात, आठ, नव, दश, ग्यारह पूरा वर्ष तथा बारह वर्ष तक के लिए वृत्त होते हैं । ६३

छोटी जातियों में भी मास का व्यवहार रहा होगा, किन्तु उसके उल्लेख नाम मात्र को ही है । चण्डकर्मा मुर्गी पालता था । एक प्रसंग में वह मुनिराज के समक्ष कहता है कि हिंसा हमारा कुल धर्म है । ६४ सम्भवतः धीवर (२१६, ३३५, उत्त०) चर्मकार (१२५), चाण्डाल (२५४), अन्त्यज (४५७), भाल (४५७), शबर (२३१ उत्त०), किरात (२२० उत्त०), वनेचर (५६) तथा निषादो (६०२, उत्त०) में भी मास का व्यवहार होता था ।

मासाहार निषेध—सोमदेव ने मासाहार का घोर विरोध किया है । उनका कहना है कि लोग इन्द्रिय लोलुपता तथा अपने स्वार्थ के कारण मास खाते हैं, उसके साथ धर्म और आगम को व्यर्थ ही जोड़ रखा है । ६५ सोमदेव ने उद्धरण देकर इस बात को सिद्ध किया है कि तिल या सरसो के बराबर भी मास खानेवाला यावच्चन्द्रदिवाकर नरक की यातनाएँ सहता है । ६६ मास खाने के सकल्प मात्र से होने वाले दुष्परिणाम का वर्णन एक लम्बी कथा में किया गया है । ६७ सम्पूर्ण यशस्तिलक भी एक प्रकार से इसी परिणाम की कहानी है ।

६३ द्वीमासी मत्स्यमासेन त्रीन्मासान्धारिण्येन च ।

श्रौरभ्रेयाथ चतुर शकुनेनैव पन्न वै ॥

षट्मासाश्छागमासेन पार्श्वेन हि सप्त वै ।

अष्टावेणस्य मासेन रौरवेण नवैव तु ॥

दशमासास्तु तृप्यन्ति वाराहमहिषामिषै ।

शशकूर्मस्य मासेन मासानेकादशैव तु ॥

सवत्सरं तु गव्येन पयसा पायसेन वा ।

वार्धीणस्य मासेन तृप्तिर्द्वादशवार्षिकी ॥—पृ० १२७ १२८ उत्त०

६४, हिंसात्माक कुलधर्म ।—पृ० २५८ उत्त०

६५ मास जिघत्सेद्यदि कोऽपि लोक किमागमस्तत्र निदर्शनीय' ।

लोलेन्द्रियैलोकमनोनुकूलै स्वाजीवनायागम एष सृष्ट ॥

—पृ० १३० उत्त०

६६ तिलसर्पधमात्र यो मासमश्नाति मानव ।

स श्वभ्रात्र निवर्तेत् यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥

—पृ० १३० उत्त०

६७ अध्याय ७, कल्प २४

मासाहार समर्थक कहते हैं कि मुद्ग (मूग) और माष (उडद) आदि भी तो मय (ऊँट) और मेष (भेड़) आदि के समान ही जीवस्थान होने से माम ही हैं। उनमें अन्तर क्या है। ६८

सोमदेव ने इस कथन का व्यावहारिक पृष्ठभूमि पर दृढतापूर्वक खण्डन किया है। उन्होंने लिखा है कि यह जरूरी नहीं कि जो जीव शरीर हो वह माम ही हो, इसके विपरीत मास तो जीव-शरीर है ही, उसी प्रकार जिस प्रकार नीम का वृक्ष वृक्ष है ही, किन्तु जो वृक्ष है वह नीम ही हो, यह जरूरी नहीं। गाय का दूध शुद्ध है, किन्तु गोमास नहीं। सर्प का रक्त विष को नाश करता है, किन्तु विष विषदकारक है। किसी-किसी वृक्ष के पत्र तो आयुष्य के कारण होते हैं, किन्तु जड़ें मृत्युकारी। ६९

६८ जीवयोग्या विशेषेण मयमेपादिकायवत् ।

मुद्गमाषादिकायोऽपि मासमित्यपरे जगुः ॥—पृ० ३३० उक्त०

६९ मांस जीवशरीरं जीवशरीरं भवेन्न वा मामम् ।

यद्गन्निम्बो वृक्षो वृक्षस्तु भवेन्न वा निम्बः ॥—पृ० ३३१ उक्त०

स्वास्थ्य, रोग और उनकी परिचर्या

खान-पान और स्वास्थ्य का अनन्य सम्बन्ध है। उपनिषदों में आता है कि अन्न से ही व्यक्ति दृष्टा, श्रोता, मन्ता, बोद्धा, कर्ता और विज्ञाता बनता है। आहार शुद्धि पर विचार शुद्धि आधारित है। विचार शुद्धि से स्मृति और स्मृति से मोक्ष होता है। अन्न से ही प्रजा उत्पन्न होती है और जोती है।^१

इसी तरह जल को अमृत और विष दोनों कहा गया है, उचित समय पर उचित मात्रा में पिया गया जल अमृत है और अनुचित समय में अव्यवस्थित रूप से पिया गया विष।^२ इसलिए स्वास्थ्य के लिए खान-पान में सन्तुलन एवं व्यवस्था आवश्यक है।

मनुष्यों की प्रकृति विभिन्न प्रकार की होती है। ऋतु परिवर्तन के साथ प्रकृति में भी परिवर्तन होता रहता है। इसलिए सोमदेव ने विभिन्न प्रकृति तथा ऋतुओं के अनुसार खान-पान की जानकारी दी है।^३

जठराग्नि—जठराग्नि चार प्रकार की होती है—मन्द, तीक्ष्ण, विषम और सम। मन्द अग्नि वाले को लघु (हलका), तीक्ष्ण अग्नि वाले को गुरु (भारी) विषम अग्नि वाले को स्निग्ध तथा सम अग्नि वाले को सम पदार्थ खाना चाहिए।

प्रकृति परिवर्तन—ऋतुओं के अनुसार मनुष्य की प्रकृति में भी परिवर्तन होता रहता है, वात, पित्त तथा कफ कभी संचित, कभी प्रकुपित (जाग्रत) तथा

१. अधान्नस्यै दृष्टा भवति, श्रोता भवति, मन्ता भवति, बोद्धा भवति, कर्ता भवति, विज्ञाता भवति।—छान्दो० ७, ९, १

आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धि, सत्त्वशुद्धौ ध्रुवास्मृति, स्मृतिलम्भ सर्वग्रन्थिना विप्रमोक्ष।—वहो, ७, २६, ३

अन्नाद्दे प्रजा प्रजायन्ते—अथा नेनैव जिवन्ति।—तैत्तिरीय० २, २

उद्धृत, टी० ओमप्रकाश—फूड एण्ड ड्रिंक इन एन्शिपन्ट इंडिया, इंट्रोडक्शन, फुटनोट

२ अमृत विषमिति चेतत् सलिल निगदन्ति विदिततस्वार्थः।

युक्त्या सेवितममृत विषमेतदयुक्तिः पीतम्।—यश० ३।३६८

३. पृ० ५१३, श्लोक ३४७

कभी प्रशान्त होते हैं, इसलिए विभिन्न ऋतुओं के अनुसार ही भोजन करना चाहिए वात आदि के संचय, प्रकोप तथा प्रशमन का क्रम निम्न प्रकार है^४—

दोष नाम	संचय	प्रकोप	प्रशमन
कफ	शिशिर	वसन्त	ग्रीष्म
वात	ग्रीष्म	वर्षा	शरद
पित्त	वर्षा	शरद	हेमन्त

ऋतु-चर्या—उपर्युक्त प्रकार से प्रकृति परिवर्तन को ध्यान में रखकर भोजन-पान की व्यवस्था बनाना चाहिए। यशस्तिलक में विभिन्न ऋतुओं के भोजन-पान के लिए निम्न प्रकार जानकारी दी है^५—

ऋतु	खाद्य-पेय
शरद	स्वादु (मधुर), तिक्त, काषाय
वर्षा	मधुर, नमकीन, अम्ल (खट्टा)
वसन्त	तीक्ष्ण, तिल, काषाय
ग्रीष्म	प्रशम रस वाले अन्न

इस प्रकार के भोजन-पान के लिए सोमदेव ने ऋतुओं के अनुसार खान-पान तथा उपभोग्य सामग्री का विवरण इस प्रकार दिया है^६—

ऋतु	खाद्य-पेय तथा उपभोग्य सामग्री
शिशिर	ताजा भोजन, क्षीर (दुग्ध), उडद, इक्षु, दधि, घृत और तैल के बने पदार्थ, पुरन्ध्री।
वसन्त	जौ और गेहूँ का बना प्रायः रूक्ष भोजन
ग्रीष्म	सुगन्धित चावलों का भात, धी डली हुई मूँग की दाल, विप (कमल नाल), किसलय (मधुर पल्लव), कन्द, सत्तू, पानक (ठडाई) आम, नारियल का पानी तथा चीनी डला पानी या दूध।

४ शिशिरसुरभिधर्मैश्वातपाम्भ शरत्सु, क्षितिप जलशरद्धेमन्तकालेषु चैते।
कफपवनहुताशा सचर्यं च प्रकोपं प्रशममिह भजन्ते जन्मभाजा क्रमेण ॥

—पृ० ५१४, श्लोक ३४८

५ पृ० ५१४, श्लोक ३४६

६ पृ० ५१४, श्लोक ३५०-५४

वर्षा	पुराने चावल, जौ तथा गेहूँ के बने पदार्थ ।
शरद	घृत, मूँग, शालि, लप्सी, दूध के बने पदार्थ (खीर आदि), परवल, दाख (अमूर), आँवला, ठडी छाया, मधुर रस वाले पदार्थ, कन्द, कोपल, रात्रि में चन्द्रकिरणों ।

उपर्युक्त विवेचन के बाद सोमदेव ने कहा है कि ऋतुओं के अनुसार रसों को कम ज्यादा मात्रा में उपयोग में लाना चाहिए । वैसे छह रसों का व्यवहार सर्वदा सुखकर होता है ।^७

भोजन-पान के सम्बन्ध में अन्य जानकारी

भोजन का समय—भोजन के समय के विषय में सोमदेव ने लिखा है कि चारायण के अनुसार रात्रि में भोजन करना चाहिए, निमि के अनुसार सूर्यास्त होने पर, धिषण के अनुसार दोपहर को तथा चरक के अनुसार प्रातः काल, किन्तु मेरे विचार से तो भोजन का समय वही है जब भूख लगी हो । भूख के बिना ही जो लालचवश आकठ भोजन करता है, वह व्याधियों को सोये हुए सर्पों की तरह जगाता है ।^८

कुछ लोगों का कहना है कि जो चक्रवाक पक्षी की तरह दिन में मँथुन करते हैं वे रात्रि में भोजन कर सकते हैं, किन्तु जो चकोर की तरह रात्रि में रमण करते हैं उन्हें दिन में भोजन करना चाहिए ।^९

रात्रि में भोजन का निषेध करने वाले कुछ लोगों का कहना है कि सूर्य के चले जाने से हृदय कमल तथा नाभिकमल बन्द हो जाते हैं, इसलिए रात्रि में नहीं खाना चाहिए ।^{१०}

विशेष—देवपूजा, भोजन तथा शयन खुले आकाश में, अन्धेरे में, सध्याकाल में तथा बिना वितान (चदोवे) वाले घर में नहीं करना चाहिए ।^{११}

सह भोजन—लोगों के साथ में भोजन करते समय उनके पहले ही भोजन समाप्त कर देना चाहिए अन्यथा उनका दृष्टि-विष (नजर) लग जाता है ।^{१२}

८ पृ० ५०६, श्लोक ३२८, ३२६

९ पृ० ५१०, श्लोक ३३०

१० पृ० वही, श्लोक ३३१

११ पृ० वही, श्लोक ३३३

१२ पृ० वही, श्लोक ३३४

आहार, निद्रा और मलोत्सर्ग के समय शक्ति तथा वाघायुक्त मन होने पर अनेक प्रकार के बड़े-बड़े रोग हो जाते हैं ।^{१२}

भोजन के समय वर्जनीय व्यक्ति—भोजन करते समय उच्छिष्ट भोजी, दुष्ट प्रकृति, रोगी, भूखा तथा निन्दनीय व्यक्ति पास में नहीं होना चाहिए ।^{१४}

अभोज्य पदार्थ—विवर्ण, अपक्व, सडा-गला, विगन्ध (जिसकी गन्ध बदल गयी हो), विरस, अतिजीर्ण, अहितकर तथा अशुद्ध अन्न नहीं खाना चाहिए ।^{१५}

भोज्य पदार्थ—हितकारी, परिमित, पक्व, नेत्र-नासा तथा रसना इन्द्रिय को प्रिय लगने वाला सुपरीक्षित भोजन न जल्दी-जल्दी और न धीरे-धीरे अर्थात् मध्यमगति से करना चाहिए ।^{१६}

विषयुक्त भोजन—विषयुक्त भोजन को देखकर कौआ और कोयल विकृत शब्द करने लगते हैं, नकुल और मयूर आनन्दित होते हैं, कौच पक्षी अलसाने लगता है, ताम्रचूड (मुर्गा) रोने लगता है, तोता वमन करने लगता है, बन्दर मल कर देता है, चकोर के नेत्र लाल हो जाते हैं, हंस की चाल डगमगाने लगती है तथा भोजन पर मक्खियाँ भी नहीं बैठती । जिस तरह नमक डालने से अग्नि चटचटाती है, उसी तरह विषयुक्त अन्न के सम्पर्क से भी चटचटाने लगती है ।^{१७}

भोजन के विषय में अन्य नियम—पून गर्म किया हुआ भोजन, अकुर निकले हुए अन्न तथा दस दिन तक काँसे के वर्तन में रखा गया घी नहीं खाना चाहिए ।

दही और छाँछ के साथ केला, दूध के साथ नमक, काजी के साथ कचौड़ी (शफ़्कुलि), गुड, पीपल, मधु तथा मिर्च के साथ काकमाची (मकोय) तथा मूली के साथ उडद की दाल, दही की तरह गाढा सत्तू तथा रात्रि में कोई भी तिल विकार (तिल के बने पदार्थ) नहीं खाना चाहिए ।^{१८}

घृत तथा जल को छोड़कर रात्रि में बने हुए सभी पदार्थ, केश या कीटयुक्त पदार्थ तथा फिर से गरम किया गया भोजन नहीं करना चाहिए ।

१३. पृ० वही, श्लोक ३३४

१४. पृ० वही, श्लोक ३३५

१५. पृ० वही, श्लोक ३३६

१६. पृ० ५१०, श्लोक ३३७

१७. पृ० वही, श्लोक ३३८-४०

१८. पृ० वही, श्लोक ३३८-४४

स्नान—ऋतु के अनुसार ठंडे या गरम जल से किया गया स्नान आयु को बढ़ाता है, हृदय को प्रसन्न करता है तथा शरीर की खुजली और परिश्रम को दूर करता है ।^{३२}

परिश्रम करने तथा धूप में से आने के तत्काल बाद तथा इन्द्रिय और चित्त में जिस समय व्याकुलता हो उस समय स्नान तथा खान-पान नहीं करना चाहिए ।^{३३}

धूप में से आकर तत्काल पानी पीने से दृष्टि मन्द हो जाती है, परिश्रम करने के तुरन्त बाद भोजन करने से वमन होने लगता है और ज्वर हो जाता है, शौच की बाधा होने पर भी भोजन करने से गुल्म हो जाता है ।^{३४}

स्नानोपरान्त विविधपूर्वक देवपूजा आदि कार्य करके स्वच्छ वेष धारण करे तथा प्रसन्न मन से अतिथि-मत्कार करके आप्त (विश्वस्त) व्यक्तियों के साथ उतना भोजन करे, जिससे सायकाल फिर से भूख लग जाए ।^{३५}

स्वच्छ वेष धारण करने तथा एकान्त में और आसजनों के साथ भोजन करने के कई कारण हैं, जिनका आयुर्वेद में विस्तार के साथ वर्णन किया गया है ।^{३६}

३२ आयुष्य हृदयप्रसादि वपुष कण्डूक्लमच्छेदि च,
स्नान देव यथार्तुसेवितमिद शीतैरशीतैर्जले ॥—पृ० ५०८
तुलना—दीपन वृष्यमायुष्य स्नानमोजोबलप्रदम् ।

कण्डूक्लमश्रमस्वेदतन्द्रातृड्द्राहपाप्मनुत् ॥

३३. श्रमघर्मातिरेहानामाकुलेन्द्रियचेतसाम् ।

तव देव द्विपा सन्तु स्नानपानादनक्रिया ॥—पृ० ५०८

३४ दुग्मान्यभागात्तपितोऽम्बुसेवी श्रान्त कृताशो वमनज्वरार्ह ।

भगन्दरी स्यन्दविवन्धकाले गुल्मी जिहस्तुविहिताशनश्च ॥—पृ० ५०९

३५ स्नानं विधाय विधिवत्कृतदेवकार्यं सतर्पितातिथिजन सुमना सुवेष ।

आप्तैर्वृत्तौ रहसि भोजनकृतथा स्यात् सायं यथा भवति भुक्तिकरोऽभिलाष ॥

—पृ० ५०९

३६. यशस्य कान्यमायुष्य श्रीमदानन्दवर्धनम् ।

त्वच्य वशीकर रच्य नवनिर्मलमम्वरम् ॥

कदाऽपि न जनै सद्भिर्धार्यं मलिनमम्वरम् ।

तत्तु कण्डूकृमिकर ग्लान्यलभमीकर परम् ॥

व्यायाम—पाचन क्रिया ठीक से रहे इसलिए व्यायाम करना आवश्यक है। जिम तरह बिना चनाए बटलॉई में अन्न ठीक नहीं पक सकता उसी तरह व्यायाम न करने पर पाचन क्रिया ठीक नहीं होती।^{३७}

रोग और उनकी परिचर्या

यशस्तिलक में निम्नलिखित रोगों के बारे में जानकारी दी गयी है—

- (१) अजीर्ण (५१९, पृ०)
- (२) दृग्मान्द्य (५०९, पू०, ५१८, पू०)
- (३) वमन (५०९, पू०)
- (४) ज्वर (५०९, पू०)
- (५) भगन्दर (५०९, पू०)
- (६) गुल्म (५०९, पू०)
- (७) कोथ (११२ पू०)—कुष्ठ
- (८) कण्डू (५०८, पू०)—खुजली
- (९) अग्निमान्द्य (५१८, पू०)
- (१०) शरीर कृशहोना (५१८, पू०)
- (११) देहदाह (५१८, पू०)
- (१२) मितविवन (उत्त०२२३)—पफेद कुष्ठ, बहने वाला

अजीर्ण—अजीर्ण के लिए सामदेव ने दो नाम दिये हैं—(१) विदाहि,
(२) दुर्जर।

कारण—अजीर्ण का मुख्य कारण उचित नोद न लेना तथा व्यायाम न करना है। जिब तरह बुली हुई बटलॉई में बिना चनाये अन्न ठीक से नहीं पकता ठीक उसी तरह निद्रा न लेने में तथा व्यायाम न करने में पाचन क्रिया भी ठीक नहीं होती।^{३८}

पितृमातृमुहूर्त्वेयथाकृद्द सजहिणम् ।

मारसभ्य चकोरव्य भोजने दृष्टिरुत्तमा ॥

आहा तु १८ कुर्यात्त्रिहासपमर्षदा ।

उभान्या लक्ष्यपेन, स्यात्तत्रकाये हीयते श्रिय ॥

—बही, पृ० १२२-२३, श्लो० १२०-२२

प्रकार—अजीर्ण चार प्रकार का बताया गया है—^{३९}

- (१) जी इत्यादि हलके पदार्थों के खाने से उत्पन्न ।
- (२) गेहूँ इत्यादि पदार्थों के खाने से उत्पन्न ।
- (३) दाल इत्यादि दो दल वाले पदार्थों के खाने से उत्पन्न ।
- (४) घृत आदि स्निग्ध पदार्थों के खाने से उत्पन्न ।

परिचर्या—इन चार प्रकार के अजीर्ण को दूर करने के लिए यशस्तिलक में भ्रम से चार साधन बताए गये हैं—^{४०}

- (१) जी आदि के अजीर्ण को दूर करने के लिए ठंडा पानी पिए ।
- (२) गेहूँ आदि के अजीर्ण को दूर करने के लिए गर्म (क्वथित) जल पिए ।
- (३) दाल आदि के अजीर्ण को दूर करने के लिए अवन्तिसोम (काजी) पिए ।
- (४) घृत इत्यादि से उत्पन्न अजीर्ण के लिए कालसेय (तक्र) पिए ।

दृग्मान्द्य—यशस्तिलक में दृग्मान्द्य के दो कारण बताए हैं—नमक या नमकीन पदार्थ अधिक खाना तथा धूप में से आकर तुरन्त पानी पी लेना ।^{४१}

सोमदेव ने स्पष्ट रूप से दृग्मान्द्य को दूर करने के उपाय नहीं बताए, फिर भी उसके कारणों में ही दूर करने के उपायों की भी अभिव्यक्ति है । दृग्मान्द्य न हो इसके लिए व्यक्ति को उपर्युक्त दोनों बातों का बचाव रखना चाहिए ।

वमन—सोमदेव ने लिखा है कि थका हुआ व्यक्ति यदि तुरन्त भोजन कर ले तो वमन होने लगता है ।^{४२}

ज्वर—ज्वर के लिए भी यही कारण दिया है ।^{४३}

भगन्दर—भगन्दर का कारण सोमदेव ने 'स्यन्दविबन्ध' अर्थात् मल के वेग को रोकना बताया है ।^{४४} भावप्रकाश में मल के वेग को रोकने से भगन्दर

३९ यवसमिधविदाहिष्वम्बुरीत निषेव्य, क्वथितमिदमुपास्य दुर्जरंऽग्ने च पिष्टे ।

भवति विदलकालेऽवन्तिसोमस्य पानं घृतविकृतिषु पेयं कालसेयं सदैव ॥

—पृ० १२६

४० वही, पृ० २१६

४१ समधिकलवणान्नप्राशानाद्दृष्टिमान्द्यम् ।—पृ० २१८

दृग्मान्द्यभागात्तपितोऽम्बुसेवी ।—पृ० २०६

४२ शान्तं कृताशो वमनज्वरार्हं ।—पृ० ५०९

४३ वही, पृ० २०६

४४ भगन्दरी स्यन्दविबन्धकाले ।—पृ० २०६

तुलना—शुकमलमूत्रमरुद्वैगसरोधोऽश्मरीभगदरगुल्मार्शांसा हेतु' ।—नीति०

दि० ११

के अतिरिक्त आटोप (पेट में गुडगुड शब्द होना) शूल, परिकर्तन (गुदा में कतरने के मद्दश पीडा), मलावरोध, ऊर्ध्ववात (डकार आना) तथा मुख से मल निकलने लगना आदि रोग बताए हैं ।^{१५}

वैद्यक शास्त्र में भगन्दर को महाभयकर रोग बताया गया है । भावप्रकाश में इसके विषय में निम्नप्रकार से जानकारी दी गयी है—

पूर्वरूप—भगन्दर जब होने वाला होता है तो कमर तथा शिर में मूर्ड चुभने के समान पीडा, वाह तथा खुजली आदि पूर्वरूप होते हैं ।^{१६}

लक्षण—गुदा के पार्श्व में दो अंगुल स्थान में पीडा करने वाली फटी हुई फुमियाँ इत्यादि कई प्रकार का भगन्दर होता है । भारतीय वैद्यक में पाँच भेद बताए हैं—(१) वानिक, (२) पित्तिक, (३) श्लैष्मिक, (४) मन्निपातिक तथा (५) शल्यज ।^{१७}

पाश्चात्य वैद्यक में भगन्दर को 'फिस्चुला इन एनो' कहते हैं । इनके भी कई भेद होते हैं ।^{१८}

गुल्म—यशस्तिलक में गुल्म का कारण शीघ्र की वाधा होने पर भी भोजन करना बताया है ।^{१९} भावप्रकाश में अद्यशन आदि मिथ्या आहार तथा बलवान के साथ कुस्ती लडना आदि गुल्म के कारण बताये हैं ।^{२०}

गुल्म हृदय तथा नाभि के बीच में संचरणशील अथवा अचल तथा बढ़ने-घटने वाली गीलाकार ग्रन्थि को कहते हैं ।^{२१}

४२. आटोपशूलौ परिकर्तिका च सग पुरीषस्य तथोऽर्धवात ।

पुरीषमास्यादधवा निरेति पुरीषवेगोऽभिहते नरस्य ॥

—सा०भा० १, पृ० १०६, श्लो० १८

४६. कर्ताकपालनिस्तोददाहकरण्डुरुजादय ।

भवन्नि पूर्वरूपाणि भविष्यति भगन्दरे ॥

गुदस्य हृदयगुने चेत्रे पार्श्वत पिण्डकानिकृत् ।

भिन्ना भगन्दरो ज्ञेया स च पचविधो भवेत् ॥

—वही, भाग २, चि० म० श्लो० १, २

४७ वही

४८ विम्भार के लिए देख, भाव० भा० २, पृ० २३६

४९ गुल्मी जिह्वतृदिहिनाशनश्च ।—पृ० २०६, पृ०

५०. दुष्टवातादयोत्पर्वमिथ्याहारविहारत ।—भाव०, भाग २, गुल्मा०, श्लो० १

२१ हन्नाभ्योगन्तरे ग्रन्थि मचागी यदि वाचल ।

वृत्तश्चयोपचयवान्म गुल्म इति कीर्तित ॥—वही, श्लोक २

भारतीय वैद्यक में गुल्म के पाँच भेद बताए गये हैं—(१) वातज, (२) पित्तज, (३) कफज, (४) त्रिदोषज तथा (५) रक्तज ।^{५२}

पाश्चात्य वैद्यक में गुल्म को अबडामिनल ट्यूमर कहते हैं। ट्यूमर प्रायः दो प्रकार के होते हैं—(१) सामान्य और (२) घातक। इनके अनेक अवान्तर भेद होते हैं ।^{५३}

सितशिवत—सफेद कुष्ठ जिससे पीब बहती रहती है तथा अत्यन्त दुर्गन्ध आती है उसे यशस्तिलक में सितशिवत कहा है। अमृतमति का यह भयकर रोग हो गया था। परिवार के लोग भी नाक बन्द करके उसके पास आते थे ।^{५४} सोमदेव ने इसका दूसरा नाम साधारणतया कुष्ठ भी दिया है ।^{५५}

औषधियाँ—यशस्तिलक में अनेक प्रकार की औषधियों के उल्लेख हैं। शिखण्डिताण्डवमण्डन नामक वन के विस्तृत वर्णन में ही लगभग २० औषधियों के नाम गिनाए हैं। यह वर्णन किसी आयुर्वेदिक उद्यान के वर्णन से कम नहीं है। औषधियों की जानकारी इस प्रकार है—

*मागधी^{५६}—छोटी पीपल

अमृता—गुरुचि

सोम, विजया—हरड

जम्बूक

सुदर्शना

मरुद्भव

अर्जुन

अभीरु—शतावरी

लक्ष्मी—मरुण्डशृंगी

वृती

तमस्विनी—मुण्डी कल्लार आदि

चन्द्रलेखा—चाकुची

५२. वही, श्लोक १

५३. वही, श्लोक ५ की व्याख्या

५४. सन्नमिन्नश्चिन्नाम्रीमनवरतदरद्देहद्रवात्वादापीदन्मन्दमक्षिकाक्षेपक्षोमपात्रीमति-
पृतिगुयपिहितनामिकमविप्रसचरितपरिवाराम् ।—पृ० २२३ उक्त०

५५. सकलकुष्ठाधिष्ठानम् ।—वही

५६. *चिह्नान्तर्गत औषधियाँ, पृ० १६४-१६७ उक्त०

कलि—विभीतक

अर्क—आक

अरिभेद—विट्खदिर

शिवप्रिय—धतूरा

*गायत्री—खदिर

ग्रन्थिपर्ण^{५७}—गाथियन

पारदरस^{५८}—पारा

आयुर्वेदविशेषज्ञ आचार्य

यशस्तिलक में आयुर्वेदविशेषज्ञ आचार्यों में काशिराज, चारायण, निमि विपण तथा चरक का उल्लेख है।^{५९}

काशिराज—काशिराज को श्रुतसागर ने धन्वन्तरि कहा है।^{६०}

यह उल्लेख विशेष महत्व का है। निर्णयसागर द्वारा प्रकाशित सुश्रुतसहिता की संस्कृत भूमिका में इस पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। अनपेक्षित होने में उसे यहाँ पुनरुक्त नहीं किया गया।

निमि—इनमें सभवतया निमि सर्वाधिक प्राचीन हैं। इनका कोई ग्रन्थ तो उपलब्ध नहीं होता, किन्तु अन्य ग्रन्थों में उल्लेख आये हैं। चरक सहिता में निमि को विदेहराज कहा है।^{६१} वाग्भट ने अष्टांगहृदय में, क्षीरस्वामी ने अमरकोष की टीका (२।५।२८) में तथा ढल्हण ने सुश्रुतसहिता की टीका में निमि का उल्लेख किया है। निर्णयसागर द्वारा प्रकाशित इन ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि निमि के उल्लेख अन्य ग्रन्थों में भी मिलते हैं।

चारायण—चारायण का आयुर्वेदाचार्य के रूप में ग्रन्थ उल्लेख नहीं मिलता। वात्स्यायन ने कामसूत्र (१।१।१२) में चारायण को वाभ्रव्य पाचाल-कृत कामसूत्र के एक अध्याय को स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप में रचने वाला कहा है। सोमदेव ने चारायण का जो उल्लेख किया है, वह भी वात्स्यायन के कामसूत्र में

५७. पृ० ४७०, पू०, विवेचन के लिए देखें—ज्ञे० के० हन्दिक्को, यशस्तिलक पृ० इंडियन कल्चर, पृ० ९२, फुटनोट १।

५८ पृ० ११२, पृ०

५९ पृ० २३७, ५०६ म० पू०, पृ० २६७ उक्त०

६०. काशिराजो धन्वन्तरि ।—पृ० २३७ न० टी०

६१ मत्तरसा इति निमिर्वदेह ।—सूत्रस्थान, म० २६

उपलब्ध होता है।^{६२} सोमदेव के ही दूसरे ग्रन्थ नीतिवाक्यामृत में चारायण के कई उद्धरण आये हैं, किन्तु वे सभी नीतिविषयक होने से, यह कहना कठिन है कि चारायण ने किसी वैद्यक ग्रन्थ की रचना की हो।

धिषण—धिषण का अर्थ श्रुतसागर ने बृहस्पति किया है। बृहस्पतिकृत वैद्यक ग्रन्थ का पता नहीं चलता।

चरक—चरककृत चरकसहिता वैद्यक शास्त्र का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। आजकल यह वैद्यक का अत्यन्त उपयोगी ग्रन्थ माना जाता है।



वस्त्र और वेषभूषा

यशस्तिलक में भारतीय तथा विदेशी वस्त्रों के अनेक उल्लेख हैं। इन उल्लेखों से एक ओर प्राचीन भारतीय वेषभूषा का पता चलता है, दूसरी ओर प्राचीन भारत के समृद्ध वस्त्रोद्योग एवं विदेशी व्यापारिक सम्बन्धों पर भी प्रकाश पड़ता है। भारतीय साहित्य में वस्त्रों के अनेक उल्लेख मिलते हैं, किन्तु यशस्तिलक के उल्लेखों की यह विशेषता है कि उनसे कई एक वस्त्रों की सही पहचान पहले पहल होती है। इन वस्त्रों को मुख्यतया तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—

- (१) सामान्य वस्त्र।
- (२) पोशाकें या पहनने के वस्त्र।
- (३) अन्य गृहोपयोगी वस्त्र।

सामान्य वस्त्रों में नेत्र, चीन, चित्रपटी, पटोल, रल्लिका, दुकूल, अशुक और कौशेय आते हैं। पोशाकों में कचुक, वारबारा, चोलक, चण्डातक, पट्टिका, कोपीन, वैकक्ष्यक, उत्तरीय, परिधान, उपसव्यान, निचोल, उष्णीष, आवान, चीवर और कर्पट का उल्लेख है। कुछ अन्य गृहोपयोगी वस्त्रों में हसतूलिका, उपधान, कन्या, नमत और वितान आए हैं। इन वस्त्रों का विशेष परिचय निम्न-प्रकार है—

१. सामान्य वस्त्र

सामान्य वस्त्रों में नेत्र, चीन, चित्रपटी, पटोल और रल्लिका का उल्लेख यशस्तिलक में एक साथ हुआ है। सभामण्डप में जाते समय सम्राट यशोधर ने देखा कि घोड़ों को उक्त वस्त्रों की जीनें पहनाई गयी हैं।^१

नेत्र—श्रुतसागर ने नेत्र का अर्थ पतला पट्टकूल किया है।^२ नेत्र के विषय में डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन तथा जायसी के पदमावत में सर्वप्रथम विशेष रूप से प्रकाश डाला है।

१ नेत्रचीनचित्रपटापटोलरल्लिकाद्यावृतदेहाना वाजिनाम्।

—यश० स० पृ०, पृ० ३६८

२ नेत्राणा सूक्ष्मपट्टकूलवारलानाम्।—वही स० टीका

उपलब्ध होता है।^{६२} सोमदेव के ही दूसरे ग्रन्थ नीतिवाक्यामृत में चारायण के कई उद्धरण आये हैं, किन्तु वे सभी नीतिविषयक होने से, यह कहना कठिन है कि चारायण ने किसी वैद्यक ग्रन्थ की रचना की हो।

धिषण—धिषण का अर्थ श्रुतसागर ने बृहस्पति किया है। बृहस्पतिकृत वैद्यक ग्रन्थ का पता नहीं चलता।

चरक—चरककृत चरकसंहिता वैद्यक शास्त्र का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। आजकल यह वैद्यक का अत्यन्त उपयोगी ग्रन्थ माना जाता है।



चीदहवी गती तक वगाल मे नेत अयवा नेत्र एक नजवूत रेगमी कपडे का कहते थे । इसकी पाचूडी पहनी श्रीर विछाई जाती थी ।^{१२}

पदमावत के उल्लेखों मे ज्ञान होता है कि नीलहवी गती तक नेत्र का प्रचार था । जायसी ने तीन बार नेत्र अयवा नेत का उल्लेख किया है । रतनमेन के शयनागार मे अग्ररचन्दन पोतकर नेत के परदे लगाये गये थे ।^{१३} पदमावती जब चलती थी तो नेत के पाँवडे विछाए जाते थे ।^{१४} एक अन्य प्रमग में भी मार्ग में नेत विछाने का उल्लेख है (नेत विछावा वाट, ६४१।८) ।

भोजपुरी लोकगीतों मे नेत का उल्लेख प्रायः आता है ।^{१५} वगला मे भी नेत के उल्लेख मिलते हैं ।^{१६}

चीन—चीन का अर्थ श्रुतमागर ने चीन देश में उत्पन्न होनेवाले वस्त्र मे किया है ।^{१७} सामदेव के बहुत समय पहले मे भारतीय जन चीन देश से आनेवाले वस्त्रों से परिचित हों चुके थे । डॉ० मोतीचन्द्र ने भारतीय वेशभूषा में चीन देश से आनेवाले वस्त्रों के विषय मे पर्याप्त जानकारी दी है । मध्य एशिया के प्राचीन पथ पर बने हुए एक चीनी रक्षागृह मे एक रेगमी थान मिला, जिस पर ई० पू० पहली शताब्दी की ब्राह्मी मे एक पुरजा लगा हुआ था । यह डम वात का द्योतक है कि भारतीय व्यापारों चीनी-रेगमी कपडे की खाज मे चीन की सीमा तक इतने प्राचीन काल मे पहुँच गये थे ।^{१८}

चीन देश से आनेवाले वस्त्रों मे सबसे अधिक उल्लेख चीनाशुक के मिलते

१२. तमोनाशचन्द्रदास आसपेकर्म आफ वगाली मामापटी फ्र म वंगाली लिटरेचर, पृ० १८०-१८१

१३. आवरि जूड़ि तहाँ सोवनाग । अग्र पोति सुव नेन ओहारा ॥

अग्रवाल—पदमावत, ३३६।२

१४. पालक पाव कि आछहि पाटा । नेत विछाइअर्जा चल वाटा ॥—वही, ४८५।७

१५. राजा दशरथ द्वारे चित्र उरहल, ऊपर नेत फहरासु हे ।—जनपद, वर्ष ५, अंक ३, अग्रै

[० ५२

१६. नेतेर छ परे
में चमड़े से
धर्मपाल में
चीनाना ची

परिया घर घर वासिनी पोगे, अर्थात् नेत के आँचल
। व्यात्री घर घर में पानी जा रही हैं ।

त, उद्धृत, अग्रवाल—पदमावत, पृ० ३३६

।म्।—यश० स० पू०, पृ० ३३६, स० टी०

मेजर, हर्ष एनिवर्सरी वालुम १६२३, पृ० ३६७-

आरल

नेत्र एक प्रकार का महीन रेशमी वस्त्र था। यह कई रंगों का होता था। उमते आनां में से काटकर तरह-तरह के वस्त्र बना लिये जाते थे। यह चीन देश में भारत में आता था। प्राचीन भारतीय साहित्य में नेत्र का उल्लेख सबसे पहले कानिदाम ने किया है।^१ वाराणभट्ट ने नेत्र के बने विभिन्न प्रकार के वस्त्रों का कई बार उल्लेख किया है। मालती धुने हुए सफेद नेत्र का बना कंचुली की तरह हनका कचुक पहने थी।^४ हर्ष निर्मल जल से धुले हुए नेत्रसूत्र की पट्टी बाँधे हुए एक अघोवस्त्र पहने थे।^५

वाराण ने एक अन्य प्रसंग पर अन्य वस्त्रों के साथ नेत्र के लिए भी अनेक विशेषण दिये हैं—माँप की कंचुली की तरह महीन, कोमल केले के गांभे की तरह मुलायम, फूँक में उड़ जाने योग्य हलके तथा केवल स्पर्श से ज्ञात होने योग्य।^६ वाराण ने लिखा है कि इन वस्त्रों के सम्मिलित आच्छादन से हजार-हजार इन्द्र-पुत्रों जैसी कान्ति निकल रही थी।^७ इस उल्लेख से रंगीन नेत्र का पता लगता है। वाराण ने छापेदार नेत्र के भी उल्लेख किये हैं। राज्यश्री के विवाह के अवसर पर सम्भो पर छापेदार नेत्र लपेटा गया था।^८ एक अन्य स्थान पर छापेदार नेत्र के बने मूयनों का उल्लेख है।^९ सम्भवतः नेत्र की बुनावट में ही फूलपत्तियों की भाँत डाल दी जाती थी।

उद्योतनसूरि (७७९ ई०) कृत कुवलयमाला में एक वरिष्क कहता है कि वह महिम श्रीर गवय लेकर चीन गया श्रीर वहाँ से गगापटी तथा नेत्र वस्त्र लाया।^{१०} वर्णरत्नाकर में चौदह प्रकार के नेत्रों का उल्लेख है।^{११}

३. नेत्रक्रमेणोपकरोध सूर्यम् ।—रघुवश, ७।२९
४. धीनधवलनेत्रनिभितेन निर्मोकलघुतरेणाप्रपदोनकचुकेन ।—हर्षचरित, पृ० ३१
५. विमलपयोधीनेन नेत्रसूत्रनिवेशशाभिनाधरवाममा ।—वही, पृ० ७२
६. नेत्रैश्च निर्मात्रिभिः, अरुणारम्भागर्भकोमलैः, निश्चासहायैः, स्पर्शातुमैद्यै वामाभिः ।—वही, पृ० १४३ ।
७. स्फुरद्भिरिन्द्रायुधमहस्रैरिव सद्यदितम् ।—हर्षचरित, पृ० १४३ ।
८. उच्चिप्रनेत्रपटवेष्ट्यमानैश्च स्तम्भैः ।—वही, १४३
९. उच्चिप्रनेत्रमुकुमारवस्थानस्थगितजयाकाण्टैः ।—वही, पृ० २०६
१०. अहं चाण महोचीणे नु गश्रो महिम गत्रने वेत्तग, तत्थ गगावटिओ खेत्त पट्टाशय नेत्तय तद्दलाभो गियत्ता ।—कुवलयमाला कथा, पृ० ६६
११. र्ज ख, वंाना, नखी सर्वाद्ग, गुर, शुचीन, राजन, पचरग, नील, हरित, पीत, ताहित, चित्ररत्नं, पवन्विध चतुर्धन जानि नेत्र देपु ।—वर्णरत्नाकर, पृ० २२

चीदहवी शती तक बगाल मे नेत अथवा नेत्र एक मजवूत रेशमी कपडे का कहते थे। इसकी पाचूडी पहनी और बिछाई जाती थी।^{१२}

पदमावत के उल्लेखों से ज्ञात होता है कि सोलहवीं शती तक नेत्र का प्रचार था। जायसी ने तीन बार नेत्र अथवा नेत का उल्लेख किया है। रतनसेन के शयनागार में अग्रचन्दन पोतकर नेत के परदे लगाये गये थे।^{१३} पदमावती जब चलती थी तो नेत के पाँवडे बिछाए जाते थे।^{१४} एक अन्य प्रसंग में भी मार्ग में नेत बिछाने का उल्लेख है (नेत बिछावा वाट, ६४१।८)।

भोजपुरी लोकगीतों में नेत का उल्लेख प्रायः आता है।^{१५} बगला में भी नेत के उल्लेख मिलते हैं।^{१६}

चीन—चीन का अर्थ श्रुतसागर ने चीन देश में उत्पन्न होनेवाले वस्त्र से किया है।^{१७} सांमदेव के बहुत समय पहले में भारतीय जन चीन देश से आनेवाले वस्त्रों से परिचित हो चुके थे। डॉ० मोतीचन्द्र ने भारतीय वेशभूषा में चीन देश से आनेवाले वस्त्रों के विषय में पर्याप्त जानकारी दी है। मध्य एशिया के प्राचीन पथ पर बने हुए एक चीनी रक्षागृह से एक रेशमी थान मिला, जिस पर ई० पू० पहली शताब्दी की ब्राह्मी में एक पुरजा लगा हुआ था। यह इस बात का द्योतक है कि भारतीय व्यापारी चीनी-रेशमी कपडे की खोज में चीन की सीमा तक इतने प्राचीन काल में पहुँच गये थे।^{१८}

चीन देश से आनेवाले वस्त्रों में सबसे अधिक उल्लेख चीनाशुक के मिलते

१२. तमोनाशचन्द्रदास आसपेक्टम आफ बगाला सासायटी फ्रम बंगाली लिटरेचर, पृ० १८०-१८१

१३. आवरि जूडि तहॉ सोवनारा। अग्र पोति सुख नेत ओहारा ॥

अग्रवाल—पदमावत, ३३६।५

१४. पालक पाव कि आछहि पाटा। नेत बिछाइअ जौ चल बाटा ॥—वही, ४८५।७

१५. राजा दशरथ द्वारे चित्र अरेहल, ऊपर नेत फहरासु हे।—जनपद, वर्ष ६, अंक ३, अप्रैल, १९३६, पृ० ५२

१६. नेतेर छाचले चर्ममडत करिया घर घर वासिनी पोशे, अर्थात् नेत के आचल में चमड़े से ढँकी हुई स्त्रीरूपी व्याघ्री घर घर में पासी जा रही है।

धर्मपाल में गोरखनाथ का गीत, उद्धृत, अग्रवाल—पदमावत, पृ० ३३६

१७. चीनाना चीनदेशोत्पन्नवस्त्राणाम्।—यश० स० पू०, पृ० ३३६, स० टी०

१८. सर आरल रटाइन—एशिया मेजर, हर्थ पनिवर्सरी वालुम १९२३, पृ० ३६७-३७२

है।^{१०} यह एक रेशमी वस्त्र था। वृहत्कल्पसूत्र भाष्य में इसकी व्याख्या कौशिकार नामक कीड़े ने अथवा चीन जनपद के बहुत पतले रेशम से बने वस्त्र से की गयी है।^{१०}

चानाशुक के अतिरिक्त चीन और बाह्लीक से भेड़ों के ऊन, पशु (रांक्व), रंगम (कीटज) और पट्ट (पट्टज) के बने वस्त्र आते थे। ये ठीक नाप के, खुशनुमा रंगवाने तथा स्पर्श करने में मुलायम होते थे। इन देशों से नमदे (कुट्टीकृत), कमल के रंग के हजारों कपड़े, मुलायम रेशमी कपड़े तथा मेमनो की खालें भी आती थीं।^{११}

चित्रपटी—यशस्तिलक के सन्कृत टीकाकार ने चित्रपटी का अर्थ रंग-बिरंग सूक्ष्म वस्त्र से किया है।^{१२} डॉ० अग्रवाल ने लिखा है कि चित्रपटी या चित्रपट वे जामदानी वस्त्र ज्ञात होते हैं, जिनमें बुनावट में ही फूल-पत्तियों की भाँत डाल दी जाती थी। बगाल इन वस्त्रों के लिए सदा से प्रसिद्ध रहा है। बाणभट्ट ने लिखा है कि प्राग्ज्योतिषेव्वर (आसाम) के राजा ने श्रीहर्ष को उपहार में जो बहुमूल्य वस्तुएँ भेजी उनमें चित्रपट के तर्किए भी थे, जिनमें समूर या पक्षियों के बाल या रोएँ भरे थे।^{१३}

पटोल—पटोल का अर्थ टीकाकार ने पट्टकूल वस्त्र किया है।^{१४} गुजरात में अभी भी पटोला नामक साडी बनती है तथा इसका व्यवहार होता है। इस साडी को लडकी का मामा विवाह के अवसर पर उसे भेंट करता है। यह साडी वाघनू रंगने की विधि से रंगे गये ताने-वाने से बनती है। इसकी बुनावट में मकरपारे पड़ते हैं, जिनके बीच में तिपतिएँ फूल होते हैं। कभी-कभी

१६ आचाराग २, १४, ६। भगवती ९, ३३, ६। अनुयोगद्वार ३६, निशीथ ७, ११। प्रश्नव्याकरण ४, ४ इत्यादि।

२० वीशिकाराख्य कृमि तरमाज्ञातम्, अथवा चीनानाम् जनपद तत्र य श्लक्ष्ण-तरपट तग्माज्ञातम्।—वृहत्कल्प० ४, ३६६२

२१ प्रमाणगगपर्याय वाटहाचीनममुद्भवम्। श्रीर्ण च राक्व चैव कीटजं पट्टज तथा।

कुट्टीकृत तर्षवात्र कमलाभ महम्मरा। श्लक्ष्ण वस्त्रमकर्पात्समाविक नृदुचाजिनम् ॥

—महासा० समा पर्व, २१।२७

२२ निघा नानाप्रकारा या पट्ट सूक्ष्मवस्त्राणि।—यश०सा० पृ०, पृ० २६८, भा०टी०

२३ यशस्तिलक—इष्टचरित। एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० १६८

२४ पटोलानि च पट्टकूलवस्त्राणि।—यश० भा० पृ० २६८

अलकारो में हाथियों की पक्ति, पेड-पौधे, मनुष्य-आकृतियाँ और चिडियाँ भी होती हैं।^{२५}

रल्लिका—रल्लिका का अर्थ श्रुतसागर ने रक्त कबल किया है।^{२६} रल्लक एक प्रकार का मृग या जगली भेड होती थी, जिनके ऊन से यह वस्त्र बनता था। सोमदेव ने जगल का वर्णन करते हुए सेही के द्वारा परेशान किये जाते रल्लको का उल्लेख किया है।^{२७}

रल्लिका या रल्लक को अमरकोषकार ने भी एक प्रकार का कम्बल कहा है।^{२८} जिस समय युवाग च्वाग भारत आया उस समय भारतवर्ष में इस वस्त्र का खूब प्रचार था। उसने अपने यात्रा-विवरण में होलाली अर्थात् रल्लक का उल्लेख किया है। उसने लिखा है कि यह वस्त्र किसी जगली जानवर के ऊन से बनता था। यह ऊन आसानी से कत सकता था तथा इससे बने वस्त्रों का काफी मूल्य होता था।^{२९}

सोमदेव ने एक अन्य प्रसंग पर और अधिक स्पष्ट किया है कि रल्लको के रोओ से कम्बल बनाए जाते थे, जिनका उपयोग हेमन्त ऋतु में किया जाता था।^{३०}

दुकूल—सोमदेव ने दुकूल का कई बार उल्लेख किया है। राजपुर में दुकूल और अशुक की वैजयन्तियाँ (पताकाएँ) लगाई गयी थी।^{३१} राज्याभिषेक के बाद सम्राट यशोधर ने धवल दुकूल धारण किये^{३२}, वसन्तोत्सव के अवसर पर गोरोजना से पिंजरित दुकूल धारण किये^{३३} तथा सभामंडप (दरवार) में जाते समय उद्गमनीय मंगल-दुकूल पहिने।^{३४} अन्य प्रसंगों में भी दुकूल के उल्लेख हैं।

२५. वाट—इंडियन आर्ट एंड देहली एंकिजविशन, पृ० २५६-२५६।

उद्धृत, मोतीचन्द्र—भारतीय वेशभूषा, पृ० ६५।

२६. रल्लिकाश्च रक्तादिकबलविशेषा ।—यश० रा० पू०, पृ० ३६८, रा० टी०

२७. क्वचिन्नि शल्यशल्लकशलाकाजालकील्यमानरल्लकलोकलोकम्।

—यश० उक्त० पृ० २००

२८. अमरकोश, २।६।११६

२९. वाटर्स—युवागच्वाग्स ट्रावल्स इन इंडिया, भाग १, लन्दन १६०४।

प्रा० २०। उद्धृत, डॉ० माताचन्द्र—भारतीय वेषभूषा से।

३०. रल्लकरोमन्निष्पन्नकम्बललोवलीलाविलासिनो हेमने मरुति।

—यश० रा० पू० ५७५

३१. दुकूलाशुकवैजयन्तीसततिभि ।—यश० रा० पू० पृ० १६

३२. धृतधवलदुकूलमाल्यविलेपनालकार ।—वही, पृ० ३२३

३३. त्व देव देहेऽभिनवे दधानो, गोरोजना पिंजरिते दुकूले ।—वही, पृ० ५६२

३४. गृहीतोद्गमनीयमंगलदुकूल ।—वही, उक्त० पृ० ८१

आचाराग के मन्त्रुत व्याख्याकार शीलाकाचार्य ने दुकूल को बगाल में पैदा होनेवाली एक विशेष प्रकार की रुई से बननेवाला वस्त्र कहा है^{१५}, किंतु यह व्याख्या बारहवीं शती की होने से विश्वमनीय नहीं है। निशीथ के चूर्णिकार ने दुकूल को दुकूल नामक वृक्ष की छाल को कूट कर उसके रेशे से बनाया जानेवाला वस्त्र कहा है।^{१६}

अर्थशास्त्र ने दुकूल के विषय में कुछ और भी जानकारी मिलती है। इसके अनुसार बगाल में बननेवाला दुकूल सफेद और मुलायम होता था। पीड़ देश के दुकूल गहरे नीले और चिकने होते थे तथा सुवर्णकुड्या के दुकूल ललाई लिए होते थे।^७ कौटिल्य ने यह भी लिखा है कि दुकूल तीन तरह से बुना जाता था तथा बुनाई के अनुसार उसके एकाशुक, अर्धवर्णशुक, द्वयशुक तथा त्र्यशुक ये चार भेद होते थे।^{१८}

डॉ० अग्रवाल ने हर्षचरित में दुकूल के विषय में एक प्रश्न उठाया है। उन्होंने लिखा है कि 'सम्भवत कूल का अर्थ देश्य या आदिम भाषा में कपडा था, जिसे कोलिक (हि० कोली) शब्द बना। दोहरी चादर या थानके रूप में विप्रयार्थ आने के कारण यह द्विकूल या दुकूल कहलाने लगा।'^{१९} साहित्यिक सामग्री की साक्षीपूर्वक इस विषय पर विचार करने से उनके इस कथन का समर्थन होता है।

सोमदेव ने तीन बार सम्राट यशोधर को दुकूल पहनने का उल्लेख किया है। वसन्तोत्सव के समय तो निश्चित रूप में सम्राट ने दो दुकूल धारण किये थे, क्योंकि यहाँ पर सोमदेव ने 'दुकूले' इस द्विवचन का प्रयोग किया है।^{४०}

दूनरे प्रसंग में उद्गमनीय मगल दुकूल कहा है।^{४१} अमरकोषकार ने लिखा है कि घुले हुए दस्त्रों के जोड़े को (दो दस्त्रों को) उद्गमनीय कहते हैं।^{४२} इससे

३५ दुकूल गोणविषयविशष्टकार्पासिकम् ।—आचाराग २, वस्त्र० सू० ३६८ रा० टी०

३६ दुगुल्लो रक्खो तस्स वागो धेत्तु उदूखले कुट्टिज्जति पाणिपण्य ताव जाव भूसी-
भूतो ताहे कज्जति प्तेपु दुगुल्लो ।—निशोध ७, १०-१२

३७ वागक श्वेत स्निग्धं दुक्लं, पीण्डक श्याम मणिरिन्ध, सौवर्णकुट्यक सूर्यवर्णम् ।
—अर्थशास्त्र, २।११

३८ मणिरिन्धोदकवान चतुरश्रवान व्यामिश्रवान च । पतेपामेकाशुकमध्यर्धद्विप्र-
चतुरशुकमिति ।—वही, २।११

३९ अग्रवाल—हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ७६

४० गोरौचनापिञ्जरिते दुकूल ।—यश० म० पृ०, पृ० २६०

४१ गृहीतोद्गमनीयमगलदुकूल ।—यश० उत्त० पृ० ८१

४२ तस्स्याद्द्वगमनीय यद्द्वौतयोवस्त्रयोर्दुग्मम् ।—अमरकोष २, ६, ११३

यही तात्पर्य निकलता है कि सम्राट ने इस प्रसंग में भी दुकूल का जोडा पहना था। तीसरे स्थल पर दुकूल का विशेषण 'धवल' दिया है।^{४२} इस समय भी सम्राट ने दुकूल का जोडा ही पहना होगा अन्यथा मोमदेव अधोवस्त्र के लिए किसी अन्य वस्त्र का उल्लेख अवश्य करते।

गुप्तयुग में किनारो पर हस-मिथुन लिखे हुए दुकूल के जोडे पहनने का आम रिवाज था। वाण ने लिखा है कि शूद्रक ने जो दुकूल पहिन रखे थे वे अमृत के फेन के समान सफेद थे। उनके किनारो पर गोरोजना से हस-मिथुन लिखे गये थे तथा उनके छोर चमर से निकली हुई हवा से फडफडा रहे थे।^{४४} युद्ध-क्षेत्र को जाते समय हर्ष ने भी हस-मिथुन के चिह्नयुक्त दुकूल का जोडा पहना था।^{४५} आचाराग (२, १५, २०) में एक जगह कहा गया है कि शक्र ने महावीर को जो हस दुकूल का जोडा पहनाया था वह इतना पतला था कि हवा का मामूली झटका उसे उडा ले जा सकता था। उसी बुनावट की तारीफ कारीगर भी करते थे। वह कलावत्तू के तार से मिला कर बना था और उसमे हस के अलंकार थे। अतगडदसाओ (पृ० ३२) के अनुसार दहेज में कीमती कपडो के साथ दुकूल के जोडे भी दिए जाते थे।^{४६} कालिदास ने भी हस चिह्नित दुकूल का उल्लेख किया है।^{४७} किन्तु उससे यह पता नहीं चलता कि दुकूल एक था या जोडा था। इसी तरह भट्टिकाव्य मे भी दो बार दुकूल शब्द आया है^{४८} परन्तु उससे भी इसके जोडे होने या न होने पर प्रकाश नहीं पडता। गीत-गोविन्द मे करीब चार बार से भी अधिक दुकूल का उल्लेख हुआ है^{४९}, उसी में एक बार 'दुकूले' इम द्विवचन का भी व्यवहार हुआ है।^{५०}

४३ ध्वनधवलदुकूलमाल्यविलेपनालंकार ।—यश० स० पू०, पृ० ३२३

४४. अमृतफेनधवले गोरोजनालिखितहसमिथुनसनाथपर्यन्ते चाम्चमरवायुप्रनतितान्त-
देशे दुकूले वसानम् ।—ऋदम्बरी, पृ० १७

४५ परिधाय राजहसमिथुनलक्ष्मणि सट्टरो दुकूले ।—पृ० २०२

४६ उद्धृत, मोतोचन्द्र—भारतीय वेशभूषा, पृ० १४७-१४८

४७ आमुक्ताभरण सग्वी हसचिन्हदुकूलवान् ।—रघुवश, १७।२५

४८. उदन्निपन्पट्टदुकूलकेतून् ।—भट्टिकाव्य, ३।३४, अथ स वल्कदुकूलकुथादिभि ।
—वही, १०।१

४९ शिथिलाकृत जघनदुकूलम् ।—गीतगोविन्द, २, ६, ३

श्यामलमृदुलकलेररमण्डलमधिगतगौरदुकूलम् ।—वही, १२, २२, ३

विरहमिवापनयामि पथाधरोधकमुरसिदुकूलम् ।—वही, १२, २३, ३

५०. मजुलवजुलकुजगत विचकर्ष करेण दुकूले । वही १ ४, ६ ।

इस विवरण से इतना तो निश्चित रूप से ज्ञात हो जाता है कि दुकूल जोड़े के रूप में आता था। इसका एक चादर पहनने और दूसरा ओढ़ने के काम में लिया जाता था। दुकूल के थान को काटकर अन्य वस्त्र भी बनाए जाते थे। बाण ने दुकूल के बने उत्तरीय, साडियाँ, पलगपोश, तकियों के गिलाफ आदि का वर्णन किया है^{५१}।

दुकूल के विषय में एक बात और भी विचारणीय है। बाद के साहित्यकारों तथा कोपकारों ने क्षौम और दुकूलको पर्याय माना है। स्वयं यशस्तिलक के टीकाकार ने दुकूल का अर्थ क्षौमवस्त्र किया है^{५२}। अमरकोपकार ने भी दुकूल को पर्याय माना है।^{५३} वास्तव में दुकूल और क्षौम एक नहीं थे। कौटिल्य ने इन्हे अलग-अलग माना है।^{५४} बाण ने क्षौम की उपमा दूधिया रंग के क्षीरसागर से तथा अशुक की सुकुमारता की उपमा दुकूल की कोमलता से दी है।^{५५}

इस तरह यद्यपि क्षौम और दुकूल एक नहीं थे फिर भी इनमें अन्तर भी अधिक नहीं था। दुकूल और क्षौम दोनों एक ही प्रकार की सामग्री से बनते थे। इनमें अन्तर केवल यह था कि जो कुछ मोटा कपडा बनता वह क्षौम कहलाता तथा जो महीन बनता वह दुकूल कहलाता। दुकूल की व्याख्या करने के बाद कौटिल्य ने लिखा है कि इसी से काशी और पाड़देश के क्षौम की भी व्याख्या हो गयी।^{५६} गणपति शास्त्री ने इसे स्पष्ट करते हुए लिखा है कि मोटा दुकूल ही क्षौम कहलाता था।^{५७} हेमचन्द्राचार्य ने इसे और भी अधिक स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। उन्होंने लिखा है कि क्षुमा अतसी (अलसी) को कहते हैं, उससे बना वस्त्र क्षौम कहलाता है। इसी तरह क्षुमा से (अलसी से) रेशे निकालकर जो वस्त्र बनता है वह दुकूल कहलाता है।^{५८} साधुसुन्दरगण ने भी लिखा है

५१. अग्रवाल-हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ७६

५२. दुकूल क्षौमवस्त्रम्।—यश० स० प्र०, पृ० ५६२ स० टीका

५३. क्षौम दुकूल स्यात्।—अमरकोष २, ६, ११३

५४. अर्थशास्त्र २, ११

५५. क्षीरोदायमानं क्षौमै।—हर्षरहित पृ० ६०

चीनाशुकसुकुमारो दुकूलकोमलो।—वही, पृ० ३६

५६. तेन काशिक पौण्ड्रक च क्षौम व्याख्यातम्।—अर्थशास्त्र, २, ११

५७. स्थूल दुकूलमेव हि क्षौममिति व्यपदिश्यते।—वही, स० टी०

५८. लुमातना तस्या विकार क्षौमम्, दुह्यते क्षुमाया आकृष्यते दुकूलम्।—अभिधान-चिन्तामणि, ३३३३

कि दुकूल अलसी से बने कपडे को कहते हैं।^{५९} भारतवर्ष के पूर्वी भागो मे (आसाम-बंगाल) मे यह धुमा या अलसी नामक घास बहुतायत से होती थी। बंगाल मे इसे काखुर कहा जाता था।^{६०} दुकूल और क्षीम इसी घास के रेशो से बनने वाले वस्त्र रहे होंगे।

सोमदेव ने दुकूल का कई बार उल्लेख किया है, किन्तु क्षीम का एक बार भी नहीं किया। सम्भव है सोमदेव के पहले से ही दुकूल और क्षीम पर्यायवाची माने जाने लगे हों और इसी कारण सोमदेव ने केवल दुकूल का प्रयोग किया हो। सोमदेव के उल्लेखो से इतना अवश्य मानना चाहिए कि दशवी शताब्दी तक दुकूल का खूब प्रचार था तथा वह वस्त्र, सभ्रान्त और वेशकीमती माना जाता था।

अशुक—यशस्तिलक में कई प्रकार के अशुक का उल्लेख है—अशुक सामान्य या सफेद अशुक^{६१}, कुसुम्भाशुक या ललाई लिए हुए रंग का अशुक^{६२}, कार्दमिकाशुक अर्थात् नीला या मटमैले रंग का अशुक।^{६३}

अशुक भारत में भी बनता था तथा चीन से भी आता था। चीन से आने वाला अशुक चीनाशुक कहलाता था। भारतीय जन दोनों प्रकार के अशुको से बहुत काल से परिचित हो चुके थे। चीनाशुक के विषय में ऊपर चीन वस्त्र की व्याख्या करते हुए विशेष लिखा जा चुका है, अतएव यहाँ केवल अशुक या भारतीय अशुक के विषय में विचार करना है।

कालिदास ने सिताशुक,^{६४} अरुणाशुक,^{६५} रक्ताशुक,^{६६} नीलाशुक,^{६७} तथा श्यामाशुक^{६८} का उल्लेख किया है। सम्भवत अशुक पहले सफेद बनता था, बाद

५९. दुकूलमतसीपटे।—शब्दरत्नाकर, ३।२१६

६०. डिव्शनरी आफ इकनोमिक प्रॉडक्ट्स, भा० १, पृ० ४६८-४६९।

उद्धृत, अग्रवाल—दर्धवरिन एक मास्कृतिक अध्ययन, पृ० ७६-७७

६१. सितपताकाशुक।—यश० उक्त०. पृ० १३

६२. कुसुम्भाशुकपिहितगौरीपयोधर।—वही, पृ० १४

६३. कार्दमिकाशुकाधिकृतकायपरिकर।—वही, पृ० २२०

६४. सिताशुका मंगलमात्रभूषणा।—विक्रमोर्वशी, ३, १२

६५. अरुणारागनिषेधिभिरशुकै।—रघुवश. ९, ४३

६६. ऋतुमहार ६, ४ २६

६७. विक्रमोर्वशी, पृ० ६०

६८. मेघदूत, पृ० ४१

इस विवरण से इतना तो निश्चित रूप से ज्ञात हो जाता है कि दुकूल जोड़े के रूप में आता था। इसका एक चादर पहनने और दूसरा ओढ़ने के काम में लिया जाता था। दुकूल के थान को काटकर अन्य वस्त्र भी बनाए जाते थे। वारण ने दुकूल के बने उत्तरीय, साडियाँ, पलगपोश, तकियो के गिलाफ आदि का वर्णन किया है^{५१}।

दुकूल के विषय में एक बात और भी विचारणीय है। वाद के साहित्यकारों तथा कोपकारों ने क्षीम और दुकूलको पर्याय माना है। स्वयं यशस्तिलक के टीकाकार ने दुकूल का अर्थ क्षीमवस्त्र किया है^{५२}। अमरकोपकार ने भी दुकूल को पर्याय माना है।^{५३} वास्तव में दुकूल और क्षीम एक नहीं थे। कौटिल्य ने इन्हें अलग-अलग माना है।^{५४} वारण ने क्षीम की उपमा द्विविधा रग के क्षीरसागर से तथा अशुक की सुकुमारता की उपमा दुकूल की कोमलता से दी है।^{५५}

इस तरह यद्यपि क्षीम और दुकूल एक नहीं थे फिर भी इनमें अन्तर भी अधिक नहीं था। दुकूल और क्षीम दोनों एक ही प्रकार की सामग्री से बनते थे। इनमें अन्तर केवल यह था कि जो कुछ मोटा कपड़ा बनता वह क्षीम कहलाता तथा जो महीन बनता वह दुकूल कहलाता। दुकूल की व्याख्या करने के बाद कौटिल्य ने लिखा है कि इसी से काशी और पाण्ड्यदेश के क्षीम की भी व्याख्या हो गयी।^{५६} गरुडपति शास्त्री ने इसे स्पष्ट करते हुए लिखा है कि मोटा दुकूल ही क्षीम कहलाता था।^{५७} हेमचन्द्राचार्य ने इसे और भी अधिक स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। उन्होंने लिखा है कि क्षुमा अतसी (अलसी) को कहते हैं, उससे बना वस्त्र क्षीम कहलाता है। इसी तरह क्षुमा से (अलसी से) रेशे निकालकर जो वस्त्र बनता है वह दुकूल कहलाता है।^{५८} साधुसुन्दरगण ने भी लिखा है

५१ अग्रवाल-हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ७६

५२ दुकूल क्षीमवस्त्रम्।—यश० स० प्र०, पृ० ५६२ स० टीका

५३. क्षीम दुकूल स्यात्।—अमरकोष २, ६, ११३

५४ अर्थशास्त्र २, १५

५५. क्षीरोदायमानं क्षीमै।—हर्षरहित पृ० ६०

चीनांशुकमुकुमारे दुकूलकोमले।—वही, पृ० ३६

५६. तेन काशिक पौण्ड्रक च क्षीम व्याख्यातम्।—अर्थशास्त्र, २, ११

५७ स्थूल दुकूलमेव हि क्षीममिति व्यपदिश्यते।—वही, स० टी०

५८. तुमातना तस्या विचार क्षीमम्, दुह्यते क्षुमाया आकृष्यते दुकूलम्।—अभिधान-चिन्तामणि, ३३३३

कोशे के वस्त्र बनवा कर रखते हैं। बुन्देलखण्ड में अभी भी कोशे के साफे बाँधने का रिवाज है।

कौशेय के विषय में कौटिल्य ने कुछ अधिक जानकारी दी है। अर्थशास्त्र में लिखा है कि पत्रोर्ण की तरह कौशेय की भी चार योनियाँ होती हैं अर्थात् कौशेय के कीड़े नागवृक्ष, लिकुच, बकुल तथा वट के वृक्षों पर पाले जाते हैं और तदनुसार कौशेय भी चार प्रकार का होता है। नागवृक्ष पर पैदा किया गया पीतवर्ण, लिकुच पर पैदा किया गया गेहुआँ रंग का, बकुल पर पैदा किया गया सफेद तथा वट पर पैदा किया गया नवनीत के रंग का होता है। कौशेय चीन से भी आता था।^{७८}

२. पोशाके या पहनने के वस्त्र

पोशाक या पहनने के वस्त्रों में कचुक,^{७९} वारबाण^{८०} तथा चोलक^{८१} का उल्लेख विशेष महत्त्वपूर्ण है।

कचुक—कचुक एक प्रकार का कोट होता था, किन्तु सोमदेव ने चोलो अर्थ में कचुक का प्रयोग किया है। खेतों में जाती हुई कृषक वधुएँ कचुक पहने थी, जो कि उनके घटस्तनों के कारण फटे जा रहे थे।^{८२} यशस्तिलक के संस्कृत टीकाकार ने कचुक का अर्थ कूर्पासक किया है।^{८३}

वारबाण—वारबाण का उल्लेख यशस्तिलक में अमृतमती के वर्णन के प्रसंग में आया है। अमृतमती जब अष्टवक्र के साथ रति करके लौटी और जा कर यशोधर के साथ लेट गयी, उस समय जोर-जोर से चल रहे उसके श्वासोच्छ्वास से उसका वारबाण कपित हो रहा था।^{८४} श्रुतदेव ने वारबाण का अर्थ कचुक किया है।^{८५} अमरकोपकार ने भी कचुक और वारबाण को एक माना

७८ नागवृक्षो लिङ्गुचो ववुलो वटश्च योनय । पीतिका नागवृक्षिका, गोधूमवर्णा लौकुची, श्वेता वाकुली, शेषा नवनीतवर्णा । तथा कौशेय चीनपटाश्च चीनभूमिजा व्याख्याता ।—अर्थशास्त्र, २, ११

७९. पीनकुचकुम्भदर्पत्रुटत्कचुका ।—यश० स० पू०, पृ० १६

८०. निरुन्धाना चोत्कम्पोत्तलितवारबाणम् ।—वही, उक्त० पृ० ११

८१. आप्रपदीनचोलकसखलितगतिवैलक्ष्य..... ।—वही, स० पू० पृ० ४६६

८२. देखिए—उद्धरण सख्या ७६

८३. कचुकानि कूर्पासका ।—यश० स० पू०, पृ० १६ स० टी०

८४. निरुन्धाना चोत्कम्पोत्तलितवारबाणम् ।—यश० उक्त०, पृ० ११

८५. वारबाणं कचुकम् ।—वही, स० टी०

में उसकी विभिन्न रंगों में रँगई की जाती थी। कार्दमिकाशुक का अर्थ यशस्तिलक के संस्कृत टीकाकार ने कस्तूरी से रँगा हुआ वस्त्र किया है।^{६९} कात्यायन के अनुसार भी शकल और कर्दम से वस्त्र रँगने का रिवाज था, जिन्हे शाकलिक या कार्दमिक कहते थे (४।२।२ वा०)।^{७०}

बाराभट्ट ने अशुक का कई बार उल्लेख किया है। वे इसे अत्यन्त पतला और स्वच्छ वस्त्र मानते थे।^{७१} एक स्थान पर मृगाल के रेशों से अशुक की सूक्ष्मता का दिग्दर्शन कराया है।^{७२} बारा ने फूल-पत्तियों और पक्षियों की आकृतियों से सुशोभित अशुक का भी उल्लेख किया है।^{७३}

प्राकृत ग्रन्थों में 'असुय' शब्द आता है। आचाराग में अशुक और चीनाशुक दोनों का पृथक्-पृथक् निर्देश है।^{७४} बृहत्-कल्पसूत्र-भाष्य में भी दोनों को अलग-अलग गिनाया है।^{७५}

प्राचीन भारतवर्ष में दुकूल के बाद सबसे अधिक व्यवहार अशुक का ही देखा जाता है। सोमदेव के उल्लेखों से ज्ञात होता है कि दशवी शताब्दी में अशुक का पर्याप्त प्रचार था।

कौशेय—कौशेय का उल्लेख सोमदेव ने विभिन्न देशों के राजाओं द्वारा भेजे गये उपहारों में किया है। कोशल नरेश ने सम्राट यशोधर को कौशेय वस्त्र उपहार में भेजे।^{७६}

कौशेय शहतूत की पत्ती खाकर कोश बनानेवाले कीड़ों के रेशम से बनाए जानेवाले वस्त्र का नाम था।^{७७} देशों भाषा में अब इसका 'कोशा' नाम शेष रह गया है। कोशा तैयार करने की वही पुरानी प्रक्रिया अब भी अपनाई जाती है। कोशा मँहगा, खूबसूरत तथा चिकना वस्त्र होता है। मँहगा होने के कारण जन-साधारण इसका सदा उपयोग नहीं कर पाते, फिर भी विशेष अवसरों के लिए

६९ कार्दमिक कर्दमेण रक्तम् ।—यश० उक्त० पृ० २२०, सं० टी०

७० उद्धृत, अग्रवाल—पार्ष्णिनाकालीन भारतवर्ष, पृ० २२५

७१ सूक्ष्मविमलेन प्रज्ञावितानेनेवाशुकैनाच्छादितशरीरा ।—हर्षचरित, पृ० ६

७२ विषतन्तुमयेनाशुकैना ।—वही, पृ० १०

७३ बहुविषकुसुमशकुनिशतशोभितादतिस्वच्छादशुकात् ।—वही, पृ० ११४

७४ असुयाणि वा चीणसुयाणि वा ।—आचाराग, २, वस्त्र०, १४, ६

७५ अमुग चीणसुगे च विगलेदो ।—बृहत् कल्पसूत्र०, ४, ३६६१

७६ कौशेयै कौरालेन्द्र ।—यश० सं० पू०, पृ० ४७०

७७ मोतीचन्द्र—भारतीय वेशभूषा, पृ० ६५

कोशे के वस्त्र बनवा कर रखते हैं। बुन्देलखण्ड में अभी भी कोशे के माफे बांधने का रिवाज है।

कौशेय के विषय में कौटिल्य ने कुछ अधिक जानकारी दी है। अर्थशास्त्र में लिखा है कि पत्रोर्ण की तरह कौशेय की भी चार योनियाँ होती हैं अर्थात् कौशेय के कीड़े नागवृक्ष, लिक्चुच, बकुल तथा वट के वृक्षों पर पाले जाते हैं और तदनुसार कौशेय भी चार प्रकार का होता है। नागवृक्ष पर पैदा किया गया पीतवर्ण, लिक्चुच पर पैदा किया गया गेहुआँ रंग का, बकुल पर पैदा किया गया सफेद तथा वट पर पैदा किया गया नवनीत के रंग का होता है। कौशेय चीन से भी आता था।^{७८}

२ पोशाके या पहनने के वस्त्र

पोशाक या पहनने के वस्त्रों में कचुक,^{७९} वारबाण^{८०} तथा चोलक^{८१} का उल्लेख विशेष महत्त्वपूर्ण है।

कचुक—कचुक एक प्रकार का कोट होता था, किन्तु सोमदेव ने चोलो अर्थ में कचुक का प्रयोग किया है। खेतों में जाती हुई कृषक वधुएँ कचुक पहने थीं, जो कि उनके घटस्तनों के कारण फटे जा रहे थे।^{८२} यशस्तिलक के संस्कृत टीकाकार ने कचुक का अर्थ कूर्पासक किया है।^{८३}

वारबाण—वारबाण का उल्लेख यशस्तिलक में अमृतमती के वर्णन के प्रसंग में आया है। अमृतमती जब अष्टवक्र के साथ रति करके लौटी और जा कर यशोधर के साथ लेट गयी, उस समय जोर-जोर से चल रहे उसके श्वासोच्छ्वास से उसका वारबाण कपित हो रहा था।^{८४} श्रुतदेव ने वारबाण का अर्थ कचुक किया है।^{८५} अमरकोपकार ने भी कचुक और वारबाण को एक माना

७८ नागवृक्षो लिक्चुचो ववुलो वटश्च थोनय । पीतिका नागवृक्षिका, गोधूमवर्णा लोक्चुची, श्वेता वाकुली, शेषा नवनीतवर्णा । तथा कौशेय चीनपटाश्च चीनभूमिजा व्याख्याता ।—अर्थशास्त्र, २, ११

७९. पीनकुचकुम्भदर्पत्रुट्कचुका ।—यश० स० पू०, पृ० १६

८०. निरुन्धाना चोत्कम्पोत्तालितवारबाणम् ।—वही, उक्त० पृ० ५१

८१. आप्रपदीनचोलकस्खलितगतिवैलक्ष्य,.... ।—वही, स० पू० पृ० ४६६

८२. देखिए—उद्धरण सख्या ७६

८३. कचुकानि कूर्पासका ।—यश० स० पू०, पृ० १६ स० टी०

८४. निरुन्धाना चोत्कम्पोत्तालितवारबाणम् ।—यश० उक्त०, पृ० ५१

८५. वारबाणं कचुकम् ।—वही, रा० टी०

है।^{८६} किन्तु वास्तव में वारबाण कचुक की तरह का होकर भी कचुक से भिन्न था। यह कचुक की अपेक्षा कुछ कम लम्बा, घुटनों तक पहुँचने वाला कोट था।

काबुल से लगभग २० मील उत्तर खेरखाना से चौथी शती की एक सगमरमर की मूर्ति मिली है। वह घुटने तक लम्बा कोट पहने है, जो वारबाण का रूप है।^{८७} ठीक वैसा ही कोट पहने अहिच्छत्रा के खिलौनों में एक पुरुष मूर्ति मिली है।^{८८}

मथुरा कला में प्राप्त सूर्य और उनके पार्श्ववर दण्ड और पिंगल की वेशभूषा में जो ऊपरी कोट है वह वारबाण ही ज्ञात होता है। मथुरा संग्रहालय, मूर्ति स० १२५६ की सूर्य की मूर्ति का कोट उपर्युक्त खेरखाना की सूर्य-मूर्ति के कोट जैसा ही है। मूर्ति स० ५१३ की पिंगल की मूर्ति भी घुटने तक नीचा कोट पहने है। मथुरा में और भी आवे दर्जन मूर्तियों में यह वेशभूषा मिलती है।^{८९}

वारबाण भारतीय वेशभूषा में सासानी ईरान की वेशभूषा से लिया गया। वारबाण पहलवी शब्द का संस्कृत रूप है। इसका फारसी स्वरूप 'बरवान' (Barwan) अरमाइक भाषा में 'बरपानक' (Varpanak) सीरिया की भाषा में इन्ही से मिलता-जुलता 'गुरमानका' (Gurmanaka) और अरबी में 'जुरमानकह' (Zurmanaqah) रूप मिलते हैं, जो सब किसी पहलवी मूल शब्द से निकले होने चाहिए।^{९०}

भारतीय साहित्य में वारबाण के उल्लेख कम ही मिलते हैं। कौटिल्य ने ऊनी कपड़ों में वारबाण की गणना की है।^{९१} कालिदास ने रघु के योद्धाओं को वारबाण पहने हुए बताया है।^{९२} मल्लिनाथ ने वारबाण का अर्थ कचुक किया है।^{९३} बाणभट्ट ने सेना में सम्मिलित हुए कुछ राजाओं को स्तवरक के बने वारबाण पहने बताया है।^{९४} दधीचि का अग्ररक्षक सफेद वारबाण पहने

८६. कचु हा वारबाण स्त्री।—अमरकोष २, ८, ६४

८७. अग्रवाल—हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० १२०

८८. अग्रवाल—अहिच्छत्रा के खिलौने, चित्र ३०५, पृ० १७३, ऐन्शेट इंडिया

८९. अग्रवाल—हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० १२०, फुटनोट ८६

९०. ट्राजेक्शन ऑफ दो फिलोलॉजिकल सोसायटी ऑफ लन्दन, १९४५, पृ० १२४

फुटनोट, हेनिंग। उद्धृत, अग्रवाल—हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० १२१

९१. वारबाण परिस्तोम समन्तभद्रक च आविकम्।—अर्थशास्त्र, २६, ११

९२. तद्योधवारबाणानाम्।—रघुवश, ४।५५

९३. वारबाणाना कचुकानाम्।—बहो, स० टी०

९४. तारमुक्तास्तवकिनस्तवरकवारबाणैश्च।—हर्षचरित, पृ० २०६

था ।^{१५} कादम्बरी में भी वाराणभट्ट ने वारवाण का उल्लेख किया है । चन्द्रापीड जब शिकार खेलने गया तब उसने वारवाण पहन रखा था । मृग-रक्त के सँकड़ो छीटे पडने से उसकी शोभा द्विगुणित हो गयी थी ।^{१६} मृगया से लौटकर चन्द्रापीड परिजनो के द्वारा लाये गये आसन पर बैठा और वारवाण उतार दिया ।^{१७}

उपर्युक्त उल्लेखो से यह स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि वारवाण केवल जिरह-बस्तर के लिए नहीं, बल्कि साधारण वस्त्र के लिए भी आता था । कौटिल्य के उल्लेखानुसार तो वारवाण ऊनी भी बनते थे । वाराणभट्ट को वारवाण की जानकारी हर्ष के दरबार में हुई होगी । भारतवर्ष में यह वस्त्र कब से आया, यह कहना मुश्किल है, किन्तु इसके अत्यल्प उल्लेखो से लगता है कि वारवाण का प्रयोग प्रायः राजघरानो तक ही सीमित रहा । सम्भव है अधिक मँहगा होने से इसका प्रचार जनसाधारण में न हो पाया हो । सोमदेव के उल्लेख से इतना निश्चय अवश्य हो जाता है कि दशवो शताब्दी तक भारतीय राज्यपरिवारो मे वारवाण का व्यवहार होता आया था तथा कचुक की तरह वारवाण भी स्त्री-पुरुष दानो पहनते थे ।

चोलक—चोलक का उल्लेख सोमदेव ने सेनाओं के वर्णन के प्रसंग में किया है । गौड सैनिक पैरो तक लम्बा (आप्रपदीन) चोलक पहने थे ।^{१८} सस्कृत टीकाकार ने चोलक का अर्थ कूर्पासक किया है,^{१९} किन्तु देखना यह है कि टीकाकार इन वस्त्रो के वास्तविक स्वरूप को स्पष्ट किए बिना ही कुछ भी अर्थ कर देता है । ऊपर कचुक के लिए कूर्पासक कहा है यहाँ चोलक के लिए । वास्तव में ये सभी वस्त्र अलग-अलग तरह के थे ।

चोलक एक प्रकार का वह कोट था, जो कचुक या अन्य सब प्रकार के वस्त्रो के ऊपर पहना जाता था । यह एक सभ्रान्त और आदरसूचक वस्त्र समझा जाता था । उत्तर-पश्चिम भारत में मर्वत्र नौशे के लिए इस वेश का खिवाज लोक में अभी भी है, जिसे चोला कहते हैं । चोला ढीला-ढाला गुल्फो तक लम्बा खुले गने का पहनावा है, जो मव वस्त्रो के ऊपर पहना जाता है । ००

१५ धवलवारवाणधारिणम् । - वही, पृ० ३४

१६ मृगरुधिरलवशतशबलेन वारवाणेन । - कादम्बरी, पृ० २१६

१७ परिजनापनीत उपविश्यासने वारवाणमवनार्य । - वही, पृ० २१६

१८ आप्रपदीनचोलकस्खलितगतिवैलक्ष्य । - यश० स० पृ०, ४६६

१९ चोलक कूर्पासक । - वही स० टी०

१००. अग्रवाल—हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० १५०

सभवत मध्य एशिया से आनेवाले शक लोग इस वेश को भारत में लाये, और उनके द्वारा प्रचारित होकर यह भारतीय वेशभूषा में समा गया ।^{१०१}

मथुरा संग्रहालय में जो कनिष्क की मूर्ति है उसमें नीचे लम्बा कचुक और ऊपर सामने से घुराघुर खुला हुआ एक कोट दिखाया गया है, जिसकी पहचान चोलक से की जा सकती है ।^{१०२} मथुरा से प्राप्त हुई सूर्य की कई मूर्तियों में भी इसी प्रकार के खुले गले का ऊपरी पहरावा पाया जाता है । चण्टन की मूर्ति का भी ऊपरी लम्बा वेश चोलक ही ज्ञात होता है । इसका गला सामने से तिकोना खुला है । कनिष्क और चण्टन के चोलको में अन्तर है । ये दोनों दो प्रकार के हैं । कनिष्क का घुराघुर बीच में खुलने वाला है और चण्टन का दुपरतो, जिसका ऊपर का परत बायीं तरफ से खुलता है तथा बीच में गले के पास तिकोना भाग खुला दिखाई देता है । कनिष्क की शैली का चोलक मथुरा संग्रहालय की डी० ४६ सज्ञक मूर्ति में और भी स्पष्ट है ।^{१०३}

मध्य एशिया से लगभग सातवीं शती का एक ऐसा ही, पुरुष का चोलक प्राप्त हुआ है, जिसका गला तिकाना खुला है ।^{१०४} चण्टन-शैली के चोलक का एक सुन्दर नमूना लाप महभूमि से प्राप्त मृण्मय मूर्ति के चोलक में उलब्ध है । यह उत्तरी वाईदश (३८६-५३५) के समय का है ।^{१०५}

वाणभट्ट ने राजात्रो के वेशभूषा में चीन-चोलक का उल्लेख किया है ।^{१०६}
चण्डातक—चण्डातक का उल्लेख सोमदेव ने चण्डमारी देवी का वर्णन करते हुए किया है । गीला चमडा ही उस देवी का चण्डातक था ।^{१०७}

चण्डातक का अर्थ अमरकोषकार ने आधे जाघो तक पहुँचने वाला अधोवस्त्र

१०१ अग्रवाल वही, पृ० १२१ । मोतीचन्द्र—भारतीय वेशभूषा, पृ० १६१

१०२ मथुरा म्युजियम हैंडबुक, चित्र ४, उद्धृत, अग्रवाल—हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० १२१

१०३ अग्रवाल—वही, पृ० १२२

१०४ वायवी सिलवान—इन्वेस्टिगेशन ऑफ सिल्क फ्रॉम एड्सन गोल एण्ड लापनार (स्टाकहोम, १९४६), प्ले० ८५ । उद्धृत, अग्रवाल—वही, पृ० १२२

१०५ वायवी सिलवान—वही, पृ० ८३; चित्र स० ३२ ।

उद्धृत, अग्रवाल—वही, पृ० १२२

१०६, चापचितचीनचोलकै ।—हर्षचरित, पृ० २०६

१०७ चण्डातकमार्द्रचर्माणि ।—यश० स० पृ०, पृ० १२०

किया है। १०८ यह एक प्रकार का जाघिया या घघरीनुमा वस्त्र था, जिसे स्त्री और पुरुष दोनों पहनते थे। १०९

उष्णीष—शिरोवस्त्र में सोमदेव ने उष्णीष और पट्टिका का उल्लेख किया है। उत्तरापथ के सैनिक रग-विरगा उष्णीष पहने थे। ११० दक्षिणापथ के सैनिकों ने बालों को पट्टिका से कसकर बान्ध रखा था। १११

सोमदेव के उल्लेख से उष्णीष के आकार-प्रकार या बाँधने के ढंग पर विशेष प्रकाश नहीं पड़ता, केवल इतना ज्ञात होता है कि उष्णीष कई रग के बनते थे। सम्भव है इनकी रगई बाँधनू के ढंग से की जाती हो। बुन्देलखण्ड के लोकगीतों में पचरग पाग (उष्णीष) के उल्लेख आते हैं।

डॉ० मोतीचन्द्र ने साहित्य तथा भरहुत, साँची और अमरावती की कला में अंकित अनेक प्रकार के उष्णीषों का वर्णन भारतीय वेशभूषा में किया है।

कौपीन—कौपीन का उल्लेख सोमदेव ने एक उपमालकार में किया है। दक्षिणात्य सैनिक जाघों से इकदम सटा हुआ वस्त्र पहने थे, जिससे वे कौपीन-धारी वैखानस की तरह लगते थे। ११२

कौपीन एक प्रकार का छोटा चादर कहलाता था, जिसका उपयोग साधु पहनने के काम में करते थे।

उत्तरीय—उत्तरीय का उल्लेख भी तीन वार हुआ है। मुनिकुमारयुगल शरीर की शुभ्र प्रभा के कारण ऐसे प्रतीत होते थे, जैसे उन्होंने दुकूल का उत्तरीय ओढ़ रखा हो। ११३ कुमार यज्ञोवर के राज्याभिषेक का मुहूर्त निकालने के लिए जो ज्योतिषी लोग इकट्ठे हुए थे वे दुकूल के उत्तरीय से अपने मुँह ढँके थे। ११४

राजमाता चन्द्रमति ने सध्याराग की तरह हलके लाल रग का उत्तरीय ओढ़ रखा था (सन्ध्यारागोत्तरीयवमनाम्, उक्त० ८२)। ओढ़नेवाले चादर को उत्तरीय कहा जाता था। अमरकोपकार ने उत्तरीय को ओढ़ने वाले वस्त्रों में गिनाया है। ११५

१०८ अधोस्तक वरछाणा स्याच्चण्डातकमस्त्रियाम् ।—अमरकोष, २, ६, ११६

१०९ मोतीचन्द्र—भारतीय वेशभूषा, पृ० २३

११० भागभागापितानेकवर्णवसनवेष्टितोष्णीपम् ।—यश० स० पृ० ४६४

१११ पट्टिकाप्रतानघटिनोदभज्जूटम् । पृ० ४६१

११२ आवक्ष्णोत्सिप्रनिविडनिवमन सकौपीन वैखानसवृन्दमिव ।—पृ० ४६२

११३, वपुप्रभापटलदुकूलोत्तरीयम् ।—पृ० १५६

११४ उत्तरीयदुकूलाचनपिहितविन्विना ।—पृ० २१६

११५ सन्ध्यानमुत्तरीय च ।—अमरकोष, २, ६, ११८

चीवर—एक उपमा अलंकार में चीवर का उल्लेख है। चीवर की ललाई से अन्त करण के अनुराग की उपमा दी गयी है। ११६

बौद्ध भिक्षुओं के पहिने-ओढने के काषाय वर्ण के चादर चीवर कहलाते थे। महावग्ग मे चीवरक्खन्धक नाम का एक स्वतन्त्र प्रकरण है, जिसमें भिक्षुओं के लिए तरह-तरह की कथाओं के माध्यम से चीवरो के विषय में ज्ञातव्य सामग्री प्रस्तुत की गयी है। ११७ चीवर कपडो के अनेक टुकडो को एक साथ सिलकर बनाए जाते हैं।

अवान—आश्रमवासी तपस्वियों के वस्त्रों के लिए यशस्तिलक मे अवान शब्द आया है। ११८

परिधान—अधोवस्त्रों में सोमदेव ने परिधान और उपसव्यान शब्दों का उल्लेख किया है। एक उक्ति में सोमदेव कहते हैं कि जो राजा अपने देश की रक्षा न करके दूसरे देशों को जीतने की इच्छा करता है वह उस पुरुष के समान है जो धोती खोल कर सिर पर साफा बाँधता है। ११९ अमरकोषकार ने नीचे पहननेवाले वस्त्रों में परिधान की गणना की है। १२० बुन्देलखण्ड में अभी भी धोती को पर्दनी या परदनिया कहा जाता है, जो इसी परिधान शब्द का विगडा हुआ रूप है।

उपसव्यान—उपसव्यान का दो बार उल्लेख है। एक कथा के प्रसंग में एक अध्यापक बकरा खरीदता है और अपने शिष्य से कहता है, कि इसे उपसव्यान से अच्छी तरह बाँधकर लाना। १२१ यहाँ पर संस्कृत टीकाकार ने उपसव्यान का अर्थ उत्तरीय वस्त्र किया है। १२२

राजमाता ने सभामण्डप में जाते समय उपसव्यान धारण किया था (अरुण-मणिमौलिमयूखोन्मुखराजिरजितोपसव्यानाम्, उक्त० ८२)। यहाँ संस्कृत टीकाकार ने अधोवस्त्र ही अर्थ किया है।

११६ चीवरोपरागनिरतान्त करणेन ।—यश० उक्त०, पृ० ८

११७. महावग्ग, चीवरक्खन्धक

११८ अपरगिरिशिखराश्रयाश्रमवासतापसावानवितानितधातुजलपाटलपटप्रतान-स्पृशि ।—यश० उक्त०, पृ० ५।

११९ अकृत्वा निजदेशस्य रक्षा यो विजिगीषते ।

स नृप. परिधानेन वृत्तमौलि पुमानिव ॥—यश० स० पृ०, पृ० ७४

१२० अन्तरीयोपसव्यानपरिधानान्यधोशुके ।—अमरकोष, २, ६, ११७

१२१. तदतियत्नमुपसव्यानेन वद्धवानीयताम् ।—यश० उक्त० पृ० १३२

१२२. उपसव्यानेन उत्तरीयवस्त्रेण ।—वही, स० टी०

परिधान और उपसव्यान में क्या अन्तर था, यह स्पष्ट नहीं होता ।^{१२३} अमरकोपकार ने दोनों को अवोवस्त्र कहा है । हेमचन्द्र ने भी दोनों को अवोवस्त्र कहा है ।^{१२४} यशस्तिलक के संस्कृत टीकाकार के एक स्थान पर अवोवस्त्र और एक स्थान पर उत्तरीय अर्थ करने से प्रतीत होता है कि टीकाकार को उपसव्यान के अर्थ का ठीक पता नहीं था । अमरकोपकार ने अवोवस्त्र के लिए उपसव्यान और उत्तरीय के लिए सव्यान ^{१२५} पद दिया है । सम्भवत इसी शब्द व्यवहार से अमित होकर टीकाकार ने यह अर्थ कर दिया ।

गुह्या—गुह्या का उल्लेख शखनक नामक दूत के वर्णन में हुआ है । शखनक ने पुराने गोन की गुह्या पहन रखी थी ।^{१२६} गुह्या का अर्थ श्रुतसागर ने कच्छोटिका किया है ।^{१२७}

बुन्देलखण्ड में विना सिले वस्त्र को लगोट की तरह पहनने को कच्छुटिया लगाना कहते हैं । यहाँ गुह्या से सोमदेव का यही तात्पर्य प्रतीत होता है ।

हसतूलिका—हसतूलिका का उल्लेख सोमदेव ने अमृतमति महारानी के भवन के प्रसंग में किया है । अमृतमति के पलग पर हसतूलिका बिछी थी, जिस पर तरंगित दुकूल का चादर बिछा था ।^{१२८} संस्कृत टीकाकार ने हसतूलिका का अर्थ प्रास्तरण विशेष किया है ।^{१२९}

उपधान—तकिए के लिए सोमदेव ने अत्यन्त प्रचलित संस्कृत शब्द उपधान का प्रयोग किया है । अमृतमती के अन्त पुर में पलग के दोनों ओर दो तकिए रखे थे, जिनमें दोनों किनारे ऊँचे हो गये थे ।^{१३०}

कन्था—यशस्तिलक में कन्था का उल्लेख दो बार आया है । गीतकाल के वर्णन में सोमदेव ने लिखा है कि इतने जोरो की ठड पड रही थी कि

१२३ देखिये—उद्धरण १२०

१२४. परिधान त्वर्धोशुकम्, अन्तरीय निवसनमुपसव्यानमित्थपि, १—अभिधान चिन्तामणि, ३।३३६-३३७

१२५ सव्यानमुत्तरीय च ।—अमरकोष, २।६।१।६

१२६. पटच्चरणपर्याणगोणीगुह्यापिहितमेहन ।—यश० सं० पृ० ३९८

१२७. गुह्या कच्छोटिका ।—वही १० टी०

१२८ तरंगितदुकूलपटप्रसाधितहस्तूलिकम् ।—यश० उक्त०. पृ० ३०

१२९. हसतूलिका प्रास्तरणविशेष ।—वही, सं० टी०

१३०. उपधानद्वयोत्तम्भितपूर्वापरमागम् ।—यश० उक्त०, पृ० ३०

गरीब परिवारों में पुरानी कन्याएँ चिथड़ी हुई जा रही थी।^{१३१} एक अन्य स्थल पर दुःस्वप्न के कारण राज्य छोड़ने के लिए तत्पर सम्राट यशोवर्धन को राजमाता समझाती है कि जू के भय से क्या कन्या भी छोड़ दी जाती है।^{१३२}

कन्या, जिसे देशी भाषा में कथरी कहा जाता है, अनेक पुराने जीर्ण-शीर्ण कपड़ों को एक साथ सिल कर बनाए गये गद्दे को कहते हैं। गरीब परिवार, जो ठंड से बचाव के लिये गर्म या रूई भरे हुए कपड़े नहीं खरीद सकते, वे कन्याएँ बना लेते हैं। ओढ़ने और बिछाने दोनों कामों में कन्याओं का उपयोग किया जाता है। मोटी होने से इन्हे जल्दी से धोना भी मुश्किल होता है, इसी कारण इनमें जूँ भी पड़ जाती है।

नमत—यशस्तिलक में नमत^{१३३} (हि० नमदा) का उल्लेख एक ग्राम के वर्णन के प्रसंग में आया है। उज्जयिनी के समीप में एक ग्राम के लोग नमदे और चमड़े की जीने बना कर अपनी आजीविका चलाते थे।^{१३४} संस्कृत टीकाकार ने नमत का अर्थ ऊनी खेस या चादर किया है।^{१३५}

नमदे भेड़ों या पहाड़ी बकरों के रोएँ को कूट कर जमाए हुए वस्त्र को कहते हैं। काश्मीर के नमदे अभी भी प्रसिद्ध है।

निचोल—यशस्तिलक में निचोल के लिए निचल शब्द आया है।^{१३६} संस्कृत टीकाकार ने एक स्थान पर निचोल का अर्थ कचुक किया है।^{१३७} तथा दूसरे स्थान पर प्रावरण वस्त्र किया है।^{१३८} प० सुन्दरलाल शास्त्री ने भी इसी के आधार पर हिन्दी अनुवाद में भी उक्त दोनों ही अर्थ कर दिये हैं।^{१३९} प्रसंग की दृष्टि से निचल का अर्थ कचुक यहाँ ठीक नहीं बैठता। अमरकोषकार ने

१३१ शिथिलयति दुर्विधकुटुम्बेषु जरत्कन्यापटञ्चराणि ।—यश० स० पू०, पृ० ५७

१३२ भयेन किं मन्धविसर्पिणीना कन्या त्यजन्कोऽपि निरीनितोऽस्ति ।

—यश० उक्त०, पृ० ८९

१३३. मुद्रित प्रति का तमत पाठ गलत है।

१३४. नमताजिनजेणाजीवनोटजाकुले ।—यश० उक्त०, पृ० २१८

१३५ नमतम् ऊर्णमथाम्तरणम् ।—वही, स० टी०

१३६ जगद्वलयनीलनिचलेषु, निचलसनाथनृपनिचापसपादिषु ।

—यश० स०, पृ० ७१ ७२

१३७ नीलनिचल कृष्णवर्णनिचोलक कचुक ।—वही, स० टी०

१३८ निचलमनाथानि प्रावरणवस्त्रमहितानि ।—वही, स० टी०

१३९ सुन्दरलाल शास्त्री—हिन्दी यशस्तिलक, पृ० ४०

निचोल का अर्थ प्रच्छदपट अर्थात् विछाने का चादर किया है ।^{१४०} क्षीरस्वामी ने इसे और भी अधिक स्पष्ट किया है कि जिससे शय्या आदि प्रच्छादित की जाए उसे निचोल कहते हैं ।^{१४१} शब्दरत्नाकर में भी निचोलक, निचुलक, निचोल, निचोलि और निचुल ये पाँच शब्द प्रच्छादक वस्त्र के लिए आये हैं ।^{१४२} यही अर्थ यशस्तिलक में भी उपयुक्त वैठता है । सोमदेव ने लिखा है कि काले-काले मेघ पृथ्वीमण्डल पर इस तरह छा गये, जैसे नीला प्रच्छदपट विछा दिया हो ।^{१४३}

विनान—यशस्तिलक में सिचयोल्लोच तथा वितान शब्द आए हैं । सोमदेव ने लिखा है कि राजपुर में गगनचुम्बी शिखरो पर लगे हुए सुवर्ण-कलशों से निकलने वाली कान्ति से आकाश-लक्ष्मी के भवन में सिचयोल्लोच-सा बन रहा था ।^{१४४}

एक दूसरे प्रसंग में सोमदेव ने लिखा है कि अस्ताचल पर रहनेवाले साधुओं ने अपने श्रवान सूखने के लिए वितान की तरह डाल रखे थे ।^{१४५} चण्डमारी के मन्दिर में पुराने चमड़े के बने वितान का उल्लेख है ।^{१४६}

अमरकोष में उल्लोच और वितान समानार्थी शब्द है ।^{१४७}



१४० निचोल प्रच्छदपट ।—अमरकोष, २, ६, ५१६

१४१ निचोलते अनेन निचोल, येन तूलशय्यादि प्रच्छाद्यते ।—वही, स० टी०

१४२ निचोलको निचुलको निचोल च निचोल्यपि ।

निचुलो वसस्थिकाया स्मृता पर्यस्तिकायुत ॥—शब्दरत्नाकर, ३, २२५

१४३ पयोधरोन्नतिजनितजगदवलयनीलनिचलेषु ।—यश० स० पू० पृ० ७५

१४४ अप्रतनरदनचयनिचिनकाचनकलशविसरदविरलकिरणजालजनितान्तरिजलक्ष्मी-निवासविचित्रसिचयोल्लोचै ।—यश० स० पू०, पृ० १८-१९

१४५ अपरगिरिशिखराश्रयाश्रमावासतापमावानवितानितधातुजलपाटलप्रतानस्पृशि ।

—यश० उक्त०, पृ० ५

१४६ जीर्णचर्मविनिर्मितवितानम् ।—यश० स० पू०, पृ० ४८

१४७ अस्त्री वितानमुल्लोचो ।—अमरकोष, २, ६, १२०

आभूषण

यशस्तिलक में सोमदेव ने शरीर के विभिन्न अंगों में धारण किये जाने वाले विभिन्न अलंकारों या आभूषणों का उल्लेख किया है। शिरोभूषण में किरिटी, मौलि, पट्ट, मुकुट और कोटीर, कर्णाभरणों में अवतस, कर्णपूर, कर्णिका, कणात्पल तथा कुण्डल, गले के आभूषणों में एकावली, कण्ठिका, मौक्तिक-दाम तथा हारयष्टि, भुजा के आभूषणों में ककरा और वलय, अंगुली के आभूषण में उर्मिका तथा अंगुलीयक, कमर के आभूषणों में काँची, मेखला, रसना तथा सारसना और पैर के आभूषणों में मजीर, हिंजीरक, नूपुर, हसक तथा तुलाकोटि के उल्लेख हैं। भारतीय अलंकारशास्त्र की दृष्टि से यह सामग्री विशेष महत्व की है। विशेष विवरण निम्नप्रकार है—

शिरोभूषण

शिरोभूषण में किरिटी, मौलि, पट्ट, और मुकुट का उल्लेख है।

किरीट—किरीट का दो बार उल्लेख हुआ है। मगलपद्य में कहा गया है कि जिनेन्द्रदेव के चरणकमलों का प्रतिविम्ब नमस्कार करते हुए इन्द्र के किरीट में पड़ रहा था।^१ दूसरे प्रसंग में मुनिमनोहर नामक मेखला को अटवी रूप लक्ष्मी के किरीट की शोभा के समान कहा गया है।^२

मौलि—मौलि का उल्लेख भी दो बार हुआ है। राजपुर के उद्यान को महादेव के मौलि के समान कहा गया है।^३ एक प्रसंग में राजाओं के मौलियों का उल्लेख है। पाँचाल नरेश के दूत से यशोधर का एक योद्धा कहता है कि यदि कोई राजा हठ के कारण अपना मौलि यशोधर के चरणों में नहीं भुकाता तो युद्ध में उसका मिर काट लूँगा।^४

१ त्रिविष्टपाधीशकिरीटोदयकोटिपु ।—ग० पू०, पृ० २

२ किरीटोच्छ्रय इवाटवालक्ष्म्या ।—पृ० १३२

३ इंजानमौलिमिव ।—पृ० ६५

४. हठविलुठितमौलि ।—पृ० ५५६

पट्ट—पटवन्ध उत्सव के प्रसंग में पट्ट का उल्लेख है।^५ पट्ट सिर पर बाँधने का एक विशेष प्रकार का आभूषण था। यह प्रायः सोने का होता था जो उष्णीप या शिरो-भूषा के ऊपर बाँधा जाता था। केवल राजा, युवराज, राज-महिषी और सेनापति को पट्ट बाँधने का अधिकार था। बृहत्सहिता (४८ २-४) में पाँच प्रकार के पट्टों की लम्बाई, चौड़ाई और शिखा का विवरण दिया गया है। पाँचवें प्रकार का पट्ट प्रसाद-पट्ट कहलाता था, जो सम्राट की कृपा से किसी को भी प्राप्त हो सकता था।^६

मुकुट—एक प्रसंग में महासामन्तो के मुकुटों का उल्लेख है।^७

कर्णाभूषण

कर्ण के आभूषणों में अवतस, कर्णपूर, कर्णिका, कर्णात्पल तथा कुण्डल का उल्लेख है।

अवतंस—अवतस प्रायः पल्लवों अथवा पुष्पों का बनाया था। यशस्तिलक में विभिन्न प्रसंगों पर पल्लव, चम्पक, कचनार, उत्पल, कुवलय तथा कैरव के बने अवतसों के उल्लेख आये हैं। एक स्थान पर रत्नावतस का भी उल्लेख है।

पल्लवावतंस—प्रमदवन की श्रीडाओं के प्रसंग में सोमदेव ने लिखा है कि कपोलों पर आये हुए स्वेदबिन्दु रूप मजरी-जाल से कामिनियों के अवतस-पल्लव पुष्पित से हो गये थे।^८ यन्त्रधारागृह के प्रसंग में भी अवतस किसलय का उल्लेख है।^९

पुष्पावतंस—राजपुर की कामिनियाँ कचनार के विकसित हुए पुष्पों में चम्पा के पुष्प लगाकर अवतस बनाती थीं।^{१०} उत्पल के अवतसों को झूठी हुई कुन्तल वल्लरी ऐसी प्रतीत होती थी जैसे उत्पल पर भारे बैठे हों।^{११} कानों में पहने

५ पट्टवन्धविवाहोत्सवाय ।—पृ० २८८

पट्टवन्धोत्सवोपकरणसभार ।—पृ० २८६

६ अग्रवाल—हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० १५५

७ महासामन्तमुकुटमाणिक्य ।—यश० स० पृ०, पृ० ३३६

८ कपोल-लोल्लमस्वेदजलनजरीजालकुसुमितावतसपल्लवाभि ।—पृ० ३८

९ वल्लभावतसकिसलयश्रवामम् ।—पृ० ५३१

१० चम्पकचितविकचकचनारविरचितावतसेन ।—पृ० १५६

११ कर्णावतसोत्पलशिलशेदिदिदिसुन्दरद्युति कुन्तलवल्लरी ।—पृ० १२१

के फूल से बने कर्णपूर का उल्लेख है ।^{२३} यशोधर को दशार्ण देश की स्त्रियो के लिए कर्णपूर कहा है (सं० पू० पृ० ५६८) । संस्कृत टीकाकार ने कर्णपूर का पर्याय कर्णावतस दिया है ।^{२४}

कर्णपूर के लिए देशी भाषा में कनफूल शब्द चलता है (कर्णपूर > कर्णफूल > कनफूल) । कर्णपूर या कनफूल विकसित पुष्प या कुड्मल के आकार के बनते हैं ।

कर्णिका—यशस्तिलक में कर्णिका का केवल एक बार उल्लेख है । द्रामिल सैनिक अपने लम्बे-लम्बे कानों में सोने की कर्णिका पहने थे ।^{२५} सोमदेव ने लिखा है कि सुवर्ण कर्णिकाओं से निकलने वाली किरणें कपोलो पर पड़ती थी, जिससे लगता था कि कपोलो पर फूले हुए कनेर के उपवन की रचना की गयी है ।^{२६} इस उपमा से लगता है कि कर्णिका कनेर के फूल के आकार की बनती होगी । अमरकोषकार ने कर्णिका और तालपत्र को पर्याय माना है ।^{२७} क्षीरस्वामी ने इसे स्पष्ट करते हुए लिखा है कि कर्णिका तालपत्र की तरह सोने की भी बनती थी ।^{२८} इससे स्पष्ट है कि कर्णिका तालपत्र की तरह गोल आभूषण था, आजकल इसे तरौना कहते हैं ।

कर्णोत्पल—ऊपर उत्पल के अवतसो का वर्णन किया गया है, कर्णोत्पल का भी एक बार उल्लेख है । सोमदेव ने यौधेय की कृपक वधुओं के नेत्रों की उपमा विकसित हुए कर्णोत्पल से दी है ।^{२९}

कर्णोत्पल सम्भवत उत्पल अर्थात् नीले कमल का बनता था अथवा उसी आकार का सोने आदि का भी बनता हो । अजन्ता के चित्रों में भी कर्णोत्पल का चित्राकन हुआ है ।^{३०}

२३ कर्णपूरमरुवकोद्भेदुन्दरगण्डमण्डलाभि ।—पृ० ५३२

२४. कर्णपर कर्णाभरण श्रवणावतस ।—सं० टी० पृ० २४

२५. अतिप्रलम्बश्रवणदेशदोलायमानस्फारसुवर्णकर्णिका ।—पृ० ४६३

२६. सुवर्णकर्णिकाकिरणकोटिकमनीयमुखमण्डलतयाकपोलस्थलीपरिकल्पितप्रफुल्ल-
कर्णिकारकाननमिव ।—पृ० ३६३

२७ कर्णिका तालपत्र स्यात् ।—अमरकोष, २, ६, १०३

२८ कर्णालकारस्तालपत्रवत्सोवर्णोऽपि । वही, सं० टी०

२९ विकचकर्णोत्पलस्पधितरलेक्षणा ।—यश० पृ० १५

३०. अधिकृत अजन्ता, फलक ३३ । उद्धृत, अग्रवाल—हर्षचरित एक सांस्कृतिक
अध्ययन फलक २०, चित्र ७८

कुण्डल—यशस्तिलक में कुण्डल का उल्लेख तीन बार हुआ है। शखनक कपास के कुड्मल की आकृति के बने कुण्डल पहने था।^{३१} स्वयं सम्राट यशोधर ने चन्द्रकान्त के बने कुण्डल धारण किये थे।^{३२} मुनिकुमार युगल बिना आभूषणों के ही अपने कपोलों की कान्ति से ऐसे लगते थे मानो कानों में कुण्डल धारण किये हो।^{३३}

शखनक के 'तूलिनीकुसुमकुड्मल' के उल्लेख से ज्ञात होता है कि कुण्डल कई आकृतियों के बनते थे। अमरकोषकार के अनुसार कुण्डल कान को लपेट कर पहना जाता था।^{३४} बुन्देलखण्ड में कहीं-कहीं अभी भी ऐसे कुण्डलों का रिवाज है। इनमें गोल बाली तथा सोने की इकहरी लड़ी लगी होती है। लड़ी को कानों के चारों ओर लपेट लिया जाता है तथा बाली को कान के निचले हिस्से में छिद्र करके पहना जाता है। अजन्ता की कला में इस तरह के कुण्डल का चित्राकन देखा जाता है।^{३५}

गले के आभूषण

गले के आभूषणों में एकावली, कण्ठिका, मौक्तिकदाम, हार तथा हारयष्टि के उल्लेख हैं।

एकावली—सम्राट यशोधर के पिता जब सन्यस्त होने लगे तो उन्होंने अपने गले से एकावली निकालकर यशोधर के गले में बाँध दी।^{३६} यह एकावली उज्ज्वल मोती को मध्यमणि के रूप में लगा कर बनायी गयी थी (तारतरल-मुक्ताफलाम् २८८)।^{३७} सोमदेव ने इसे समस्त पृथ्वीमण्डल को वश में करने के लिये आदेशमाला के समान कहा है (अखिलमहीवलयवश्यतादेशमालामिव, २८८)।

३१ तूलिनीकुसुमकुड्मलाकृतिजातुषोत्कर्षितकर्णकुण्डल ।—यश० स० पू०, पृ० ३६८

३२. चन्द्रकान्तकुण्डलाभ्यामलकृतश्रवण्य. । पृ० ३६७

३३. कपोलकान्तिकुण्डलितमुखमण्डलम् । पृ० १२६

३४ कुण्डल कर्णवेष्टनम् ।—अमरकोष, २, ६, १०३

३५ आधिकृत अजन्ता फलक ३३, उद्धृत,

अग्रवाल—इर्षचरित पर सांस्कृतिक अध्ययन, फलक २०, चित्र ७८

३६ आदाय स्वकीयात् कण्ठदेशात् एकावली बन्ध ।—यश० स० पू०, पृ० २८८

३७. तारतरलमध्यग ।—अमरकोष, २, ६, १२२

इस विशेषण को समझने के लिए किंचित् पृष्ठभूमि की आवश्यकता है। वास्तव में यह विशेषण अपने साथ एक परम्परा लिए है। गुप्तयुग से ही विशिष्ट आभूषणों के बारे में तरह-तरह की किंवदन्तियाँ प्रचलित हो गयी थी। बाण ने एकावली के विषय में एक मनोरञ्जक प्रसंग दिया है—

दिवाकरमित्र ने हर्षको एकावली के सम्बन्ध में एक रहस्यपूर्ण बात बतायी—
“तारापति चन्द्रमा ने यौवन के उन्माद में बृहस्पति की स्त्री तारा का अपहरण किया और स्वर्ग से भाग कर उसके साथ इधर उधर घूमता रहा। देवताओं के समझाने-बुझाने से उमने तारा को तो बृहस्पति को वापिस कर दिया, किन्तु उसके विरह में जलता रहा। एक बार उदयाचल से उठते हुए उसने समुद्र के विमल जल में पडी अपनी परछाईं देखी, और काम भाव से तारा के मुख का स्मरण करके विलाप करने लगा। समुद्र में इसके जो आँसू गिरे उन्हें सीपियाँ पी गयी और उनके भीतर सुन्दर मोती बन गये। उन मोतिया को पाताल में वासुकि नाग ने किसी तरह प्राप्त किया और उन मुक्ताफलों को गूथकर एकावली बनायी, जिसका नाम मन्दाकिनी रखा। सब श्रीपथियों के अधिपति सोम के प्रभाव से वह अत्यन्त विषघ्नी है और हिमरूपी अमृत से उत्पन्न होने के कारण सन्ताप-हारिणी है। इसलिए विप-ज्वालाओं को शान्त करने के लिए वासुकि सदा उसे पहने रहता था। कुछ समय बाद ऐसा हुआ कि नाग लोग भिक्षु नागार्जुन को पाताल में ले गये और वहाँ नागार्जुन ने वासुकि से उस माला को माँग कर प्राप्त कर लिया। रसातल से बाहर आकर नागार्जुन ने मन्दाकिनी नामक वह एकावली माला अपने मित्र त्रिसमुद्राधिपति सातवाहन नाम के राजा को प्रदान की और वही माला शिष्य-परम्परा द्वारा हमारे हाथ में आयी।”^{३८} (हर्ष० २५१)

सोमदेव के समय तक सम्भवतया ऐसी मान्यताएँ चलती रहीं, जिसे सोमदेव ने सकेत मात्र से कह दिया।

एकावली मोतियों की इकहरी माला को कहते थे।^{३९} गुप्तकालीन शिल्प की मूर्तियों और चित्रों में इन्द्रनील की मध्यगुरिया सहित मोतियों की एकावली बराबर पायी जाती है।^{४०}

३८. अग्रवाल—हर्षचरित . एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० १९७

३९. एकावल्येक्यष्टिका।—अमरकोष, २, ६, १०६

४०. अग्रवाल—हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० १६६। फलक २४,

कण्टिका—कण्टिका का यगस्तित्रक में दो बार उल्लेख हुआ है। शकनक ने अनेक तरह की जड़ें मंत्रित करके लपेटी हुई कण्टिका पहन रखी थी।^{४१} दक्षिणात्य यैनिक अनेक प्रकार के चित्र विचित्र गुरियों की बनी तीन लड्डियों की कण्टिकाएँ पहने थे।^{४२}

हार—हार का उल्लेख यगस्तित्रक में सात बार हुआ है। राजपुर की स्त्रियाँ उदारहार पहनती थीं।^{४३} ग्रीष्म ऋतु की मयकर धूपन्थ अग्नि के सम्पर्क से नायिकाओं के मौक्तिक हार फूटे जा गये थे (तीव्रातपातकपावकमम्पर्कस्फुटन्मौक्तिक-विरहणीहृदयहारे, म० पू० ५२२)। षण्ड्य जनपद का राजा सम्राट यशोधर को प्राभृत में देने के लिए मुक्ताफल के मध्यमणि वाला हार लेकर उपस्थित हुआ।^{४४} यहाँ मम्मवतया हार से प्रयोजन एकावली से है। वतानिको ने तारहारस्तनी स्त्रियों के माथ क्रीडा करने की यशोधर महाराज ने प्रार्थना की।^{४५} तारोत्तरल हागे की कान्ति से चन्द्रमा का प्रकाश मान्द्र (बना) हो गया।^{४६} विरहणी नायिका की कपकपी में हार चचन हो उठे।^{४७} किन्ती विरहणी नायिका ने बन्धु-वान्धवां के कहने से आभूषण पहने भी तो कटि की करवनी गले में आर गले का हार नितम्ब में पहन लिया।^{४८} यशोधर ने मभामण्डप में जाने के पूर्व मुक्ताफल का हार पहना (गुणवता वर हर, कण्ठे गृहीत्वा मुक्ताफलभूषणानि)।

हारयष्टि—हारयष्टि का उल्लेख दो बार हुआ है। गुल्फों तक लटकती हुई हारयष्टियों में टूट-टूट कर गिरन जाने मोतियों का समूह ऐसा लगता था माना होनेवाली मग्राम विजय पर देवागनाओं ने पुण्य बिखेर दिये हो।^{४९}

४१. अनेकजटाजातिजटिकण्टिकावगुण्ठनजठरकण्ठनाल ।—यश० पू० ३६८

४२. किमीमणिविनिर्मितमिगरकण्टिकम् ।—पृ० २६०

४३. उदारहारनिर्माचित ।—पृ० २८, उदार अतिमनोहरा ।—म० टी०

४४. तरलगुलिकहारप्राभृतव्यग्रहम् ।—पृ० ४६६

४५. तारहारस्तनीनाम् ।—पृ० ५३४

४६. हारस्तारोत्तरलचिम् ।—पृ० ६६०

४७. उत्तारहारतरलस्तनमण्डल च ।—पृ० ६९६

४८. कण्ठे काचिगुणोऽपित परिहित हारो नितम्बगले ।—पृ० ६६७

४९. आपतन्मुक्ताफलप्रकाशिरामनहारयष्टिभिरागामिजन्यजयसमयावमगुरमुद्गरी-
करविकीर्णकुमुदवर्षामिव ।—पृ० ५५५

यन्त्रधारागृह के प्रसंग में मोगरक के कुड्मलो की बनी हारयष्टि का उल्लेख है ।^{५०}

मौक्तिकदाम—यशस्तिलक में मौक्तिकदामका उल्लेख केवल एक बार हुआ है । विरहणी नायिका के गले की मौक्तिकमाला चूर-चूर हो गयी ।^{५१} यन्त्रधारा-गृह के प्रसंग में कुसुमदाम का भी उल्लेख है ।^{५२}

भुजा के आभूषण

यशस्तिलक में भुजा के आभूषणों में अगद और केयूर का उल्लेख है ।

अगद — अगद का उल्लेख केवल एक बार हुआ है । शखनक वेर के बराबर बड़ा त्रापुष मरिण (सीसे का गुरिया) लगाकर बनाया गया अगद पहने था ।^{५३}

केयूर—केयूर का उल्लेख यशस्तिलक में दो बार हुआ है । राजपुर की स्त्रियाँ लाल कमल में श्वेत कमल लगाकर केयूर बना लेती थीं ।^{५४} विरह की अवस्था में स्त्रियाँ बाहु का केयूर पैरो में और पैरो के नूपुर बाहु में पहन लेती थीं ।^{५५}

अगद और केयूर में क्या अन्तर था, इसका पता यशस्तिलक से नहीं चलता । अमरकोषकार ने दोनों को पर्याय माना है ।^{५६} क्षीरस्वामी ने केयूर और अगद की व्युत्पत्ति करते हुए लिखा है कि 'के बाहूशीर्षे यौति केयूरम्'^{५७} अर्थात् जो भुजा के ऊपरी छोर को सुशोभित करे उसे केयूर कहते हैं तथा जो 'अग दयते अगदम्'—अर्थात् जो अग को निपीडित करे वह अगद ।

पुरुष और स्त्री दोनों अगद पहनते थे ।

कलाई के आभूषण

कंकण और बलय—कलाई के आभूषणों में कंकण और बलय के उल्लेख हैं । स्त्री और पुरुष दोनों कंकण पहनते थे । यौधेय जनपद के कृपको की स्त्रियाँ

५० विचकिलमुकुलपरिकल्पितहारयष्टिभि ।—पृ० ५३२

५१. कण्ठे मौक्तिकदामभि प्रदलितम् ।—पृ० ६१३

५२ शिपीपकुसुमदामसादामिन .. ।—पृ० ५३२

५३. कुवलाफलस्थनत्रापुषमणिविनिमितागद ।—पृ० ३६८

५४ मौगन्धिकानुपञ्चकमलकेयूरपर्यायिणा ।—पृ० ५०६

५५ केयूर चरणे धृत विरचित हस्ते च हिंजीरिकम् ।—पृ० ६१७

५६ केयूरमगद तुल्ये ।—अमरकोष, २, ६, १०७

५७ वही, न० टी०

सोने के ककण पहनती थी ।^{५८} यशोधर ने भी सभामण्डप में जाने के पूर्व ककण पहने (निधाय करे ककणालकारम्) । एक अन्य प्रसंग में यशोधर को 'कनकककण-वर्ष' कहा है (पृ० ५६६) ।

वलय का उल्लेख तीन बार हुआ है । शखनक भैसे के सीग के बने वलय पहने था ।^{५९} एक स्थान पर यशस्तिलक का नायक यशोधर कहता है कि टूटे हुए दिल को स्फटिक के फूटे हुए वलय की तरह कौन मूर्ख धारण किए रहेगा ।^{६०} यन्त्रधारगृह के प्रसंग में मृणाल के बने वलय का उल्लेख है ।^{६१} चतुर्थ उच्छ्वास में दांत के बने वलय का उल्लेख है (दन्तवलयेन, उक्त० ६९) ।

अंगुलियों के आभूषण

उर्मिका—यशस्तिलक में अगूठी के लिए उर्मिका तथा अंगुलीयक शब्द आये हैं । यशोधर रत्न की बनी उर्मिका पहने था ।^{६२} उर्मि का अर्थ भँवर है । भँवर के समान कई चक्कर लगा कर बनायी गयी अगूठी को उर्मिका कहते थे । बुन्देलखण्ड में आजकल इसे छला कहा जाता है ।

उर्मिका का उल्लेख बाणभट्ट ने भी किया है । सावित्री दाहिने हाथ में शख की बनी उर्मिका पहने थी ।^{६३}

अंगुलीयक—अंगुलीयक का केवल एक बार उल्लेख आया है । चौथे आश्वास में एक गडरिया अंगुलीयक के बदले में बकरा देने के लिए तैयार है ।^{६४}

कटि के आभूषण

कटि के आभूषणों के लिए काची, मेखला, रसना, सारसना तथा घर्घर-मालिका नाम आये हैं ।

काची—काची का उल्लेख तीन बार हुआ है । यौवेय की कृषक बधुएँ खेतों

५८ कनकमयककण गोषिका ।—पृ० ५५

५९ गवलवलययावरुण्डन ।—पृ० ३९८

गवलवलयाना महिषशृ गकटकानाम् ।—स० टी०

६० को नु खलु विषटित चेत स्फटिकवलयमिधमुधापि सधातुमर्हति ।—उक्त० पृ० ७७

६१ मृणालवलयालंकृतकलाचीदेशाभि ।—पृ० ५३२

६२ सत्तोर्मिकाभरण ।—पृ० ३६७

६३ कम्बुनिर्मितोर्मिका ।—हर्षचरित, पृ० १०

६४. प्रमादीकरोत्यंगुलीयकम् ।—उक्त०, पृ० १३१

में काम करने जाते समय अपनी ढीली-ढाली काची को बार-बार हाथ से ऊपर चढाती थी, जिससे उनका ऊर प्रदेश दिख जाता था ।^{६५} विपरीत रति में काची जोर-जार से हिलने लगती थी ।^{६६} विरहणी नायिका कमर की काची गले में डाल लेती थी ।^{६७} तीनों प्रसंगों पर श्रुतसागर ने काची का पर्याय कटि = मेखला दिया है । एक स्थान पर काची के लिए काचिका भी कहा गया है (हसावली-काचिका, पृ० ५०३)

मेखला—मेखला का उल्लेख पाँच बार हुआ है । मुखर मणिमेखलाग्रो के शब्द से पञ्चमालिप्ति नामक राग द्विगुणित हो गया था ।^{६८} यहाँ श्रुतसागर ने मेखला का पर्याय रसना दिया है ।^{६९} इसी प्रसंग में सिन्दुवार की माला लगाकर केले के कोमल पत्तों की बनायी गयी मेखला (कदलीप्रवालमेखला) का उल्लेख है ।^{७०} शखनक ने मथानी की पुरानी रस्सी को मेखला की तरह पहन रखा था (पुराणतरमन्दिरमेखला, पृ० ३९८) । समुद्र की उपमा मेखला में दी है (मही च रत्नाकरवारिमेखलाम्, उक्त० पृ० ८७) ।

रसना—रसना का उल्लेख केवल एक बार हुआ है । वह भी हारयष्टि के वर्णन में प्रसंगवश आ गया है । सोमदेव ने आरसना अर्थात् रसना पर्यन्त लटकती हुई हारयष्टि का वर्णन किया है ।^{७१} यहाँ श्रुतसागर ने आरसन का अर्थ आगुल्फलम्ब किया है ।

अमरकोषकार ने उपर्युक्त तीनों को पर्याय माना है ।^{७२} सोमदेव के उपर्युक्त उल्लेखों से लगता है कि काची एक लड़ी की ढीली-ढाली करधनी होना चाहिए तथा मेखला छुद्र घटिकाएँ लगी हुई । उपर्युक्त उल्लेखों में काची के लिए काची-गुण पद आया है तथा मेखला के लिए मुखरमणिमेखला कहा गया है । एक स्थान पर मेखला को मणिकिकणी युक्त भी बताया गया है ।^{७३}

६५. काचिकोव्वासवशदशितोहस्थला ।—पृ० १५

६६. पुरुषरतनियोगव्यग्रकाचीगुणानाम् ।—पृ० २३७

६७. करठे काचिगुणोऽपितम् ।—पृ० ६१७

६८. मुखरमणिमेखलाजालवाचालितपञ्चमालिप्ति ।—पृ० १००

६९. मेखलाजालानि रसनासमूहा ।—रा० टी०, पृ० १००

७०. सिन्दुवारससुन्दरकदलीप्रवालमेखलेन ।—पृ० १०६

७१. आरसनहारयष्टिभि ।—पृ० २२५

७२. स्त्रीकृत्या मेखला काची सप्तकी रशना तथा ।—अमरकोष, २, ६, १०८

७३. मेखलामणिकिकणीजालवदनेषु ।—पृ० ६ उक्त०

सारसना—चण्डमारी के लिए कहा गया है कि मृतक प्राणियों की आत्में ही उसकी सारसना थी ।^{७४}

घर्घरमालिका—यशोधर जब बालक था, तो खेल खेल में दाईं की कमर से घर्घरमालिका को निकाल कर पैरो में बाँध लेता था ।^{७५}

पैर के आभूषण

पैर के आभूषण के लिए यशस्तिलक में पाँच शब्द आये हैं—(१) मजीर, (२) हिंजीरक, (३) नूपुर, (४) तुलाकोटि, (५) हसक ।

मजीर—सोमदेव ने मणिमजीर का उल्लेख किया है ।^{७६} मजीर को पहनकर चलने से जो मधुर भन-भन शब्द होते थे उन्हें शिजित कहते थे ।^{७७} मजीर रस्सी सहित मथानी को कहते हैं, इसी की समानता के कारण इसका नाम मजीर पडा । मजीर वजन में हलके तथा भीतर से पोले होते थे । उनमें भीतर बहुमूल्य मोती आदि भरे जाते थे । माडवार में अभी भी इस तरह के आभूषण पहनने का रिवाज है (शिवराम०, अमरावती०, पृ० ११४) ।

हिंजीरक—हिंजीरक का उल्लेख केवल एक बार हुआ है । विरहणी स्त्रियाँ हाथ का केयूर चरण में तथा चरण का हिंजीरक हाथ में पहन लेती थी ।^{७८} हिंजीरक का पर्याय श्रुतसागरदेव ने नूपुर दिया है । यशस्तिलक से इस पर विशेष प्रकाश नहीं पडता ।

नूपुर—नूपुर का भी एक बार ही उल्लेख हुआ है ।^{७९} श्रुतसागर ने यहाँ नूपुर का पर्याय मजीर दिया है ।^{८०} नूपुर पहनकर चलने से मधुर शब्द होता था । नूपुर जल्दी पहने या उतारे जा सकते थे । अमरावती की कला में एक दासी वाली में नूपुर लिए प्रतीक्षा करती खडी है कि जैसे ही अलक्तक मडन समाप्त हो, वह नूपुर पहनाए ।

तुलाकोटि—तुलाकोटि का दो बार उल्लेख है । तुलाकोटि के शब्द को

७४ सारसना मृतकान्त्रच्छेदा ।—पृ० १२०

७५ मुक्त्वा घर्घरमालिका कटितटादध्वा च ता पादयो ।—पृ० २३४

७६ रमणीमणिमजीरशिजित ।—पृ० ३२

७७ भणभणायमानमणिमजीरशिजित .. ।—पृ० १०१

७८. केयूर चरणे धृतं विरचित हस्ते च हिंजीरकम् ।—पृ० ६१७

७९ यत्रालितौ नूपुरौ ।—पृ० १२६

८० नूपुरी मजीरी ।—स० टी०

सोमदेव ने 'क्वणित' कहा है।^{८१} वारविलामिनियो के वाचाल तुलाकोटियो के क्वणित से फ्रीडा-हस आकुलित हो रहे थे।^{८२} एक स्थान पर नीलमणि के बने तुलाकोटि का उल्लेख है (नीलोपलतुलाकोटिपु, उक्त० पृ० ९)।

तुलाकोटि का उल्लेख वाण ने भी हर्षचरित (पृ० १६३) में किया है। तुलाकोटि आन्ध्र में प्रचलित नूपुरो से मेल खाते हैं। इनके दोनो किनारे तुला अर्थात् तराजू की डडी के समान किञ्चित् घनाकार होते हैं (शिवराम०—अमरावती०, पृ० ११४)। इसी कारण इसका नाम तुलाकोटि पडा।

हंसक—हसक का उल्लेख भी एक वार ही हुआ है। शखनक कासे के बने हसक (कसहसक) पहने था।^{८३} हसक के शब्द को सोमदेव ने रसित कहा है।^{८४} हसक से तात्पर्य उन वाँके नूपुरो से था जिनकी आकृति गोल न होकर वाँकी मुडी हुई होती थी। आजकल इन्हे वाँक कहते हैं।^{८५}



८१ वाचालतुलाकोटिक्वणिताकुलितविनोदवारलम् ।—पृ० ३४५

८२ वही

८३ कमहसकरमितवाचालचरण ।—पृ० ३६६

८४ वही

८५ अग्रवाल—हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ६७ फलक ६, चित्र ३८

केश-विन्यास, प्रसाधन सामग्री तथा पुष्प प्रसाधन

केश-विन्यास

यशस्तिलक में केश-विन्यास और केश प्रसाधन सम्बन्धी प्रभूत सामग्री है । प्राचीन भारत में इस कोमल कला का विशेष प्रचार था । साहित्य और पुरातत्व की सामग्री में इसका समान रूप से अकन हुआ है ।

यशस्तिलक में सोमदेव ने केशों के लिए अलक, कुन्तल, केश, चिकुर, कच और जटा शब्दों का प्रयोग किया है । स्नान के अनन्तर केशों को सर्वप्रथम घूप के सुगन्धित घुएँ से सुखा लिया जाता था, उसके बाद चूराँ, सिन्दूर, पल्लव, पुष्प, पुष्पमाला, मजरी आदि के द्वारा कलात्मक ढंग से सँवार कर बाँधा जाता था । सँवारे हुए केशों में सोमदेव ने अलकजाल, कुन्तलकलाप, केशपाश, चिकुरभंग, घम्मिल्लविन्यास, मौलिबन्ध, सीमन्तसन्तति, वेणुदण्ड, जूट तथा कबरी का वर्णन किया है । इनकी विशेष जानकारी निम्न प्रकार है

केश धूपाना—स्नान के बाद केश सँवारने के पूर्व उन्हें सुगन्धित घूप के घुएँ से सुखाने का सोमदेव ने दो बार उल्लेख किया है ।^१ कालिदास ने केशों को धूपाने की प्रक्रिया का विशेष वर्णन किया है । धूपित करने से स्नानार्द्र केश भभरे हो जाते थे और उनमें घूप की सुगन्धि व्याप्त हो जाती थी । कालिदास ने धूपित केशों को 'आश्यान' कहा है ।^२ घूप से सुगन्धित किये जाने के कारण इन्हे धूपवास भी कहते थे ।^३

केश सुवासित करने की यह प्रक्रिया केश-सस्कार कहलाती थी ।^४ कालिदास की नायिकाएँ अटारी पर गवाक्षों के पास बैठकर केश-सस्कार करती थी, जिनमे गवाक्षों से निकलनेवाले सुगन्धित घुएँ को देखकर मार्ग से चलने वाले

१. अविरतदृष्टमानकालागुरु धूपधूमोद्गमारभ्यमाणदिग्विलासनीकुन्तलजालम् ।

—पृ० ३६८, अलकधूपधूमेषु । पृ० ८, उक्त०

२. त धूपाश्यानकेशान्तम् ।—रघुवश, १७।२२ । आश्यान शोषित, सं० टी०

३. स्नानार्द्रमुक्तेष्वनुधूपवासम् ।—वही १६।१०

४. केशमत्कारधूमे ।—मेघदूत १।३२

लोग यह अनुमान सहज ही लगा लेते थे कि कोई नायिका केश-संस्कार कर रही है ।^५

अलकजाल—यशस्तिलक में बालों के लिए अलक शब्द का प्रयोग अनेक बार हुआ है । अलक चूर्ण विशेष के द्वारा घुँघराले बनाए गये बालों को कहते थे ।^६ सोमदेव ने इस चूर्ण को पिष्टातक नाम दिया है । पिष्टात या पिष्टातक कुकुम आदि सुगन्धित द्रव्यों को पीसकर बनाया जाता था ।^७ पिष्टातक के प्रयोग द्वारा घुँघराले बनाकर सँवारे गये बालों को अलकजाल कहते थे । सोमदेव ने लिखा है कि सैनिक प्रयाण से उठी हुई घूलि ने ककुभागनाओं के अलक-प्रमाधन के लिए पिष्टातक चूर्ण का काम किया ।^८ अलकों में चूर्ण के प्रयोग की सूचना कालिदास ने भी दी है । इस तरह घुँघराले बनाए गये बालों को सँवार कर उनमें पत्र-पुष्प लगा लिए जाते थे ।^९

अलकजाल को छल्लेदार या घुँघरदार केश रचना कहा जा सकता है । अग्ररेजी लेखों में जिन्हें Spiral या Frizzled locks कहा जाता है वह उसके अत्यन्त निकट है । अलकजाल के अनेक प्रकार राजघाट (वाराणसी) से प्राप्त खिलौनों में देखे जाते हैं । जैसे—(१) शुद्ध घुँघर, (२) छतरीदार घुँघर, (३) चटुलेदार घुँघर, (४) पटियादार घुँघर । डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने इनका विशेष विवेचन किया है ।^{१०}

कुन्तलकलाप—यशस्तिलक में कुन्तल शब्द भी बालों के लिए कई बार आया है । 'कुन्तलकलाप' इस मम्मिलित पद का प्रयोग केवल तीन बार हुआ है । कलाप मयूर को भी कहते हैं तथा समूह अर्थ में भी आता है ।^{११} कुन्तल-कलाप में म्रियत 'कलाप' शब्द में इन्हीं की ध्वनि है । बालों को इस तरह सँवार

५ जालोद्गौर्यरूपचितवपु केशमस्कारधूपे ।—वही, १।३२

६ अलकाश्चूर्णकु तल ।—अमरकोष २, ६, ६६

७ पिष्टेन कुकुमचूर्णादिनातति पिष्टात ।—अमरकोष, २, ६, १३६, ग० टी०

८ ककुभागनालकप्रमाधनपिष्टातकचूर्ण ।—यश० पृ० ३३८

९ अत्रनेपु चमूरेणुश्चूर्णप्रतिनिधीकृत ।—शुबरा, ४।६४

१० विकचविचक्रिलालाकार्णलोलालकानाम् ।—यश०, पृ० ५३४

११ अग्रवाल—राजघाट के खिलौनों का एक अध्ययन,

जला और संस्कृति, पृ० २४६

१२. कलाप महने वहें तूीरे भूपणे हरे ।—विश्वलोचन

कनापो दहितृणयो । महतौ भूपणे काच्यन् ।—अनेकार्यमग्रह १।१५८

कर बाँधना जिससे कलापिन् (मयूर) के पखो की तरह सुन्दर दिखने लगे, कुन्तलकलाप कहलाता था । सोमदेव ने कुटज के कुड्मल और मल्लिका के पुष्प लगाकर बालों को कुन्तलकलाप के ढग से सजाने का वर्णन किया है ।^{१३}

कुन्तलकलाप को गूँथने के लिए शिरीष के पुष्पों की माला का उपयोग किया जाता था ।^{१४} सम्भवतया पहले बालों को शिरीष की माला से सुविभक्त करके बाँध लिया जाता था, बाद में उसके बीच-बीच में कुटज कुड्मल और मल्लिका के पुष्पों को इस तरह से खोसते थे, जिससे मयूरपिच्छ के ताराओं की पूर्ण अनुकृति हो जाये । राजघाट से प्राप्त मिट्टी के खिलौनों में कुछ मस्तकों में इस प्रकार का केश-विन्यास देखा जाता है । इन खिलौनों में माँग के दोनों ओर कनपटी तक लहराती हुई शुद्ध पटिया मिलती हैं और वे ही छोर पर ऊपर को मुड़कर घूम जाती हैं । देखने में ये ऐसी मालूम होती हैं जैसे मोर की फहराती हुई पूँछ ।^{१५} कुन्तलकलाप की ठीक पहचान इसी तरह के केश-विन्यास से करना चाहिए ।

मानसार के अनुसार कुन्तल नामक केश-साधन का अकन लक्ष्मी और सरस्वती की मूर्ति के मस्तक पर किया जाता है ।^{१६}

केशपाश—यशस्तिलक में शिखण्डित केशपाश का उल्लेख हुआ है ।^{१७} 'केशपाश' में पाश शब्द समूहवाची भी है और उत्कृष्टवाची भी ।^{१८}

केशपाश बालों के उस विन्यास को कहते थे, जिसमें पुष्प और पत्तों युक्त मजरी से सजाकर बालों को इस तरह से बाँधा जाता था, जिससे वे मुकुट की तरह दिखने लग । यशस्तिलक के संस्कृत टीकाकार ने इस अर्थ को समझाने का प्रयत्न किया है—'मह्वकोद्भेदै सुगन्धपत्रमजरीभिर्विर्दिभिता गुम्फिता ये दमन-काण्डा - सुगन्धपत्रस्तम्भा तै शिखण्डितो मुकुटितः केशपाश ।'^{१९} सम्भवतया

१३ कुटजकुड्मलोत्त्रणमल्लिकानुगतकुतलकलापेन ।—यश० स० पृ०, पृ० १०६

१४ शिरीषकुसुमदाममदामितकुन्तलकलापभि ।—वही, पृ० ५३२

१५ अग्रवाल—राजघाट के खिलौनों का एक अध्ययन,

कला और संस्कृति पृ० २४८-४९

१६ उद्धृत, जे० एन० वनर्जी—दी डवलपमेंट ऑव हिन्दू आइकोनोग्राफी, पृ० ३१४

१७ शिखण्डितकेशपाशेन ।—यश० स० पृ०, पृ० १०६

१८ प्रशस्ता केशा केशपाश ।—अमरकोष, २, ६, ९७, स० टी०

पाश पक्षश्च हस्तश्च कलापार्थ ।—वही २, ६, ९८

१९ यश० स० पृ०, पृ० १०६

केशपाश में पुष्प और पत्र युक्त मजरियो से बनाए गये गुलदस्तेनुमा पुष्पालकार केशो में खोस लिए जाते थे, जिममे वे शिखडित अर्थात् मुकुट की तरह दिखने लगते थे ।

मानमार के अनुसार इस तरह के केश-विन्यास का अकन सरस्वती और सावित्री की मूर्तियों के मस्तक पर किया जाता है ।^{२०}

चिकुरभग—केशो के लिए चिकुर शब्द का भी प्रयोग सोमदेव ने कई बार किया है । सम्भवतया पतले केशो को चिकुर कहते थे । अमरकोपकार ने चञ्चल का पर्याय चिकुर दिया है ।^{२१} चिकुरो को जब पत्र, पुष्प और मालाओं द्वारा सजा लिया जाता था तब उसे चिकुरभग कहते थे । सोमदेव ने शतपत्री पुष्पो की मालाओं से बाँधे गये तथा तमाल पुष्पो के गुच्छों से सजाए गये चिकुरभग का वर्णन किया है ।^{२२}

चिकुरो की कृष्णता की ओर भी सोमदेव ने विशेष रूप से ध्यान दिलाया है । प्रमदवन मे सप्तच्छद वृक्षो की छाया कामियो के चिकुरो की कान्ति से कलुपित-सी हो गयी थी ।^{२३} एक अन्य प्रसंग मे चिकुरो को निसर्ग कृष्ण कहा है ।^{२४}

धम्मिल्लविन्यास—यशस्तिलक मे धम्मिल्लविन्यास का उल्लेख दो बार हुआ है । सोमदेव ने मुनिमनोहर नामक मेखला को नागनगरदेवता के धम्मिल्ल-विन्यास की तरह कहा है ।^{२५}

धम्मिल्लविन्यास मालिवद्ध केश रचना को कहते थे ।^{२६} इस प्रकार से सभाले गये पुरुष के दान मालि तथा स्त्री के धम्मिल्ल कहलाते हैं (शिवराममूर्ति-अमरावती०, पृ० १०६) । वालो का जूडा बनाकर उसे माला से बाँध दिया जाता था । जूडा के भीतर भी माला रूंधी जाती थी । कालिदास ने 'मुत्तागुराणोन्नद्ध अन्तर्गतस्रजमौलि' का उल्लेख किया है ।^{२७} वारा ने माला के छूट जाने से

२० उद्धृत, जे० एन० बनर्जी—दी डवलपमेंट ऑव हिन्दू आइकोनोग्राफी, पृ० ३१४

२१ चपलचिकुर समौ ।—अमरकोष, ३, १, ४६

२२ तापिच्छगुलुच्छविच्छुरितशानपश्रीन्नकमन्नद्धचिकुरभगिना ।

—यश० रा० पृ० १०२

२३. चिकुरकान्तिकलुपितसप्तच्छदछायामि ।—वही, पृ० ३८

२४ कामिनीना चिकुरेषु निमर्गकृष्णता ।—वही, पृ० २०७

२५ धम्मिल्लविन्यास इव नागनगरदेवताया ।—पृ० १३२

२६ धम्मिल्ल मयता कन्ना ।—अमरकोष, २, ६, ९७

२७ सुवश १७, २३

धम्मिल्लो के खुल जाने का वर्णन किया है।^{२८} सोमदेव ने एक प्रसंग में पाटली के पुष्पो से सुगन्धित धम्मिल्ल का उल्लेख किया है।^{२९}

धम्मिल्लविन्यास की इस कला का चित्रण अजन्ता के चित्रों में भी हुआ है। कुछ चित्रों में स्त्री मस्तको पर बाँधे हुए केशों का एक बड़ा जूड़ा मिलता है।^{३०}

राजघाट (वाराणसी) से प्राप्त खिलौनों में धम्मिल्लविन्यास के अनेक प्रकारों का अंकन हुआ है। कुछ खिलौनों में दाएँ-बाएँ और ऊपर तीन जूड़े या त्रिमौलि विन्यास पाया जाता है। किन्हीं मस्तको में सिर के ऊपर शृङ्गाटक या सिंघाड़े की तरह त्रिमौलि की रचना करके माँग के बीच में सिरमौर, माथे पर मौलिबन्ध और उसके नीचे दोनों ओर अलकावली छिटकी हुई दिखाई गयी है।^{३१}

गुप्तकाल की पत्थर की मूर्तियों में धम्मिल्लविन्यास का एक और प्रकार मिला है। सिर के ऊपर गोल टोपी की तरह मौलिबन्ध और दक्षिण-वाम पार्श्व में उससे निसृत दो माल्यदाम लटकते रहते हैं। राजघाट के एक मृण्मय स्त्री मस्तक में जो इस समय लखनऊ के अजायब घर में है, भी यह रचना मिली है। कुछ मस्तक ऐसे भी मिले हैं जिनमें दक्षिणभाग में जटाजूट तथा वाम में अलकावली का प्रदर्शन है।^{३२}

मौली—मौली बन्ध केश रचना का एक उपमा में उल्लेख है (ईशानमौलि-मिव, सं० पू०, पृ० ९५)।

सीमन्तसन्तति—यशस्तिलक में सीमन्त का उल्लेख कई बार हुआ है, किन्तु सीमन्तसन्तति का उल्लेख केवल एक बार ही हुआ है।^{३३}

सीमन्त वालों को बीच से विभक्त करके दोनों ओर सँवारने को कहते हैं। सोमदेव ने 'सीमन्तेषु द्विधा भावो'^{३४} कहकर इसकी सूचना भी दी है।

सीमन्तसन्तति सम्भवतया केशविन्यास के उस प्रकार को कहने में जिममें मुख्य

२८ विस्त्र समानैर्धम्मिल्लतमालपल्लवै ।—हर्ष० ४।१३३

२९ पाटलीप्रसवसुरभितधम्मिल्लमध्याभि ।—यश० सं० पू० ५३२

३०. राजा सा० औषकृत अजन्ता फलक ६६

उद्धृत, अग्रवाल—कला और संस्कृति, पृ० २५१

३१. अग्रवाल—राजघाट के खिलौनों का एक अध्ययन, कला और संस्कृति, पृ० २५१

३२ वही, पृ० २५२

३३ सीमन्तसन्ततिना ।—यश० सं० पू० पृ० १०५

३४ वही पृ० २०७

रूप से सीमन्त (मांग) पर ध्यान दिया जाता था। मस्तक के बीच से केशों को द्विधा विभक्त करके इस तरह नवारा जाता था जिमसे बीच में राजपय के समान माफ और सीधी मांग दिवने लगे। मांग या सीमन्त निकालने के बाद उनमें विभिन्न पुष्पों से निम्नलि गये पराग को मिलाकर का स्थानीय करके भरा जाता था। सोमदेव ने प्रियालम्बजरी के कर्णों को कर्णिकार के केशर में मिलाकर सीमन्त को प्रभावित करने का वर्णन किया है।^{३५}

वेणुदण्ड — वेणुदण्ड का एक बार उल्लेख है।^{३६} वालों को सवारकर या विना सवारे ही डकहरी चोटी बाँधना वेणुदण्ड कहलाता था।

जूट — बालों को ऊपर को समेट कर कपड़े की पट्टी से बाँधना जूट कहा जाता था। बालों को डकहरी करके बाँधने को आजकल भी जूडा बाँधना कहा जाता है। सोमदेव ने लिखा है कि दक्षिणात्य सैनिक उत्कट जूट बाँधे थे जो गेड़े के सींग की तरह लगता था।^{३७}

कवरी — कवरी का एक बार उल्लेख है।^{३८} बालों को नावारणतया समालकर बाँधने को कवरी कहते थे।

प्रसाधन-सामग्री

यद्यस्त्रिलक में प्रसाधन-सामग्री की जानकारी इस प्रकार की है—

- १ अजन — (लोचनाजनमांगेषु, पृ० १, उक्त०)
- २ कज्जल — (नेत्रैः कज्जलपामुलैः, पृ० ६११),
(नेत्रैः कज्जलित, वही, स० पृ० ६१६)
३. अगुह — (१) दृष्यागुह — (दृष्यागुहर्षिजस्तिकर्णपालीपु, पृ० ९ उक्त०)
(२) कालागुह — (कालागुह्वपधूमधूमरित्त, वही, पृ० २८)
- ४ अलक्तक — (अत्रालक्तकमण्डन विरचितम्, पृ० १२६)
(यावत्पुनस्तकान्निप्रभावेपु पादपल्लवेपु, पृ० ९ उक्त०)
- ५ कुकुम — (कुकुमपक्वगणे, पृ० ६१)
(काश्मीरैः कीरतायः, पृ० ४८०)
(धुमृणारसात्सित, पृ० २८ उक्त०)

३५ प्रियालम्बजरीकणिकल्पितकर्णिकारकेशरविराजितमीमन्तस्ततिना । पृ० १०५

३६. गौर्यश्रीवेणीदण्डानुकारिणा ।—पृ० २७

३७ पृ० ४६१

३८ कवरीनिगूढेनासिपत्रेण ।—पृ० १५३, उक्त०

६. कर्पूर— (कर्पूरदलदन्तुरित, पृ० २८ उक्त०)
(कर्पूरपरागरुचो, पृ० २१२)
७. चन्द्रकवल—(अमरसुन्दरीवदनचन्द्रकवला, पृ० ३३८)
(चिताभसितानि चन्द्रकवला, पृ० १५०)
८. तमालदलधूलि—(तमालदलधूलिधूसरितरोमराजिनि, पृ० ९ उक्त०)
९. ताम्बूल— (हस्ते कृत्य च ताम्बूलम्, पृ० ८१ उक्त०)
१०. पटवास— (वनदेवतापटवासा, पृ० ३३८)
११. पिष्ठातक— (कुकुभगनालकप्रसाधनपिष्ठातकचूर्णाः पृ० ३३८)
(प्रसवपरागपिष्ठातकितदिग्देवतासीमन्तसतानम्, पृ० ९४)
१२. मन सिल— (मन सिलाधूलिलीले, पृ० ४ उक्त०)
१३. मृगमद— (मृगमदैरेष नैपालपालः, पृ० ४७०)
१४. यक्षकर्दम— (यक्षकर्दमखचितजातरूपभित्तिनि, पृ० २८ उक्त०)
यक्षकर्दम कर्पूर, कस्तूरी, अगुरु और ककोल को मिलाकर बनाए गये अनुलेपन द्रव्य को कहते हैं (अमरकोष २।६।१३३)। अमृतमति के अन्तःपुर की सुवर्ण-भित्तियों पर यक्षकर्दम का लेप किया गया था (यक्षकर्दमखचितजातरूप-भित्तिनि, २८।२ उक्त०)। धन्वन्तरि ने कुकुम, कस्तूरी, कपूर, चन्दन और अगुरु से बनी महासुगन्धि को यक्षकर्दम कहा है (उद्धृत-अग्रवाल-कादम्बरी एक सा० अध्ययन)। काव्यमीमांसा में इसे चतुःसमसुगन्धि कहा है (१८।१००)। दोहाकोश (पृष्ठ ५५) और पदमावत (२७६।४) में भी इसे चतुःसमसुगन्धि कहा है।
१५. हरिरोहरा—गोशीर्षचन्दन (तपश्चर्यानुरागेणैव हरिरोहणेनागरागम्, पृ० ८१ उक्त०)
१६. सिन्दूर— (पृ० ५ उक्त०, पृ० ७८)

पुष्प-प्रसाधन

पुष्प, प्रसाधन-माम्ग्री का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। दक्षिण भारत में प्राचीन काल से ही पुष्प-प्रसाधन की कोमल कला चली आयी है। अभी भी वहाँ इसके अनेक रूप देखे जाते हैं। मोमदेव ने यशस्तिलक में दक्षिण भारतीय संस्कृति का विशेष चित्रण किया है। इसलिए सहज ही पुष्प-प्रसाधन सम्बन्धी साम्ग्री भी

प्रचुर मात्रा में आयी है। सोमदेव ने पुष्प और पत्तों से बने निम्नलिखित आभूषणों का उल्लेख किया है—

१. अवतंसकुवलय^{३९}—कुवलय पुष्प को अवतंस के स्थान पर कान में पहना जाता था। आभूषणों के प्रकरण में लिखा जा चुका है कि यशस्तिलक में पल्लव, चम्पक, कचनार, उत्पल तथा कैरव के बने अवतंसों के उल्लेख हैं।^{४०}

२. कमलकेयूर^{४१}—कमल को केयूर के स्थान पर पहना जाता था। केयूर का उल्लेख यशस्तिलक में दो बार आया है। एक स्थान पर लाल कमल में द्रवत-कमल लगा कर केयूर बनाने का उल्लेख है। आभूषणों के प्रकरण में इस सम्बन्ध में विशेष लिखा जा चुका है।

३. कदलीप्रवालमेखला—सिन्धुवार की माला लगा कर केले के कोमल पत्तों की मेखला बनाई जाती थी। इसे कदलीप्रवालमेखला कहते थे।^{४२} कटि के आभूषणों में मेखला का महत्त्वपूर्ण स्थान था। सोमदेव ने चार प्रकार के कटि के आभूषणों का वर्णन किया है जिसे आभूषणों के प्रसंग में लिख चुके हैं।

४. कर्णोत्पल^{४३}—कान में पहने जाने वाले आभूषणों में अधिकांश फूल और पत्तों के ही बनाए जाते थे। उत्पल नीले कमल को कहते हैं। नीले कमल को कान में पहनने का रिवाज था।

५. कर्णपूर^{४४}—कर्णपूर का उल्लेख यशस्तिलक में चार बार हुआ है। उसमें से एक प्रसंग में मरुवे के फूल से बने कर्णपूर का उल्लेख है। कर्णपूर को देशी भाषा में कनफूल कहा जाता है। (कर्णपूर > कर्णफूल > कनफूल) अलकारों के प्रकरण में इस सम्बन्ध में और भी लिखा है।

६. मृणालवलय—मृणाल के बने हुए वलय हाथों में पहनते थे। सोमदेव ने दो बार मृणालवलय का उल्लेख किया है।^{४५}

३६. ८१८ उक्त०

४०. २७२, हिन्दी

४१. वही, हिन्दी

४२. सिन्धुवारसरसुन्दरकदलीप्रवालमेखलेन, वही २७२ हिन्दी

४३. रा० पू० पृ०, १५

४४. कर्णपूरमरुवकीदुन्दरगण्डमण्डलाभि पृ० ३५६।८

४५. २७१ हिन्दी ३५६।८, हिन्दी

७ पुन्नागमाला^{४६}—पुन्नाग के फूलों की माला बनाकर गले में पहनी जाती थी ।

८ बन्धूकनूपुर^{४७}—बन्धूक पुष्पों के नूपुर बना कर पहने जाते थे ।

९ शिरीषजघालंकार^{४८}—शिरीष पुष्पों का कोई अलंकार बना कर सम्भवतः जाँघों में पहना जाता था, जिसे शिरीषजघालंकार कहते थे ।

१० शिरीषकुसुमदाम^{४९}—शिरीष के फूलों की एक प्रकार की माला बना कर गले में पहनी जाती थी ।

११. विचकित्तहारयष्टि—मोगरे के पुष्पों की एक प्रकार की माला जिसे हारयष्टि कहा जाता था गले में पहनते थे । मोगरे के कुड्मलो की हारयष्टि^{५०} बनती थी तथा फूले हुए मोगरो के फूलों को बालों में सजाया जाता था ।^{५१}

१२. कुरवक मुकुलस्रक^{५२}—कुरवक के कुड्मलो की चमचमाती हुई लम्बी माला बना कर पहनी जाती थी जिसे 'कुवलयमुकुलस्रकतारहार' कहते थे । हार के विषय में विशेष आभूषणों के प्रकरण में लिखा गया है ।

०

४६. २७।१, हिन्दी

४७. २७।३, हिन्दी

४८. २७।२, हिन्दी

४९. ३२६।७, हिन्दी

५०. ३२६।७, हिन्दी

५१. ३२७।६, हिन्दी

५२. वही

शिक्षा और साहित्य

शिक्षा और साहित्य विषयक सामग्री यशस्तिलक में पर्याप्त एवं महत्वपूर्ण है। बाल्यावस्था शिक्षा की उपयुक्त अवस्था मानी जाती थी।^१ गुरुकुल प्रणाली शिक्षा का आदर्श था। मारिदत्त के माता-पिता उसकी छोटी अवस्था में ही सन्यस्त हो गये थे, इस कारण गुरुकुल में जाकर मारिदत्त की शिक्षा नहीं हो पायी थी।^२ यशोधर की शिक्षा समान वय वाले सचिव पुत्रों के साथ हुई थी।^३ विद्यार्थी के लिए यह आवश्यक था कि खूब मन लगाकर पढ़े, विनयपूर्वक रहे और नियम सम्पन्न हो।^४ विद्याध्ययन समाप्त होने के बाद गोदान किया जाता था।^५

शिक्षा के अनेक विषय थे। सोमदेव ने अमृतमति महारानी की द्वारपालिका को समस्त देशों की भाषा तथा वेष का जानकार कहा है।^६ आचार्य सुदत्त के सघ में जो विद्वान् मुनि थे उनमें कोई समस्त शास्त्रों के ज्ञाता थे, कोई पुराणों में पारंगत थे। कोई तर्कविद्या में निष्णात थे, कोई नव्यानव्यकाव्य में। कोई ऐन्द्र, जैनेन्द्र, चन्द्र, आपिशल, पाणिनीय आदि व्याकरण के पंडित थे।^७ यशोधर ने जिन विद्याओं में नैपुण्य प्राप्त किया था उनका विवरण सोमदेव ने इस प्रकार दिया है—प्रजापति की तरह सब वर्णों में, पारिरक्षक की तरह प्रसख्यान में, पूज्यपाद की तरह शब्दशास्त्र में, स्याद्वादेश्वर की तरह धर्मख्यान में, अकलक की तरह प्रमाणशास्त्र में, पणिपुत्र की तरह पैदप्रयोग में, कवि की तरह राजनीति में, रोमपाद की तरह गजविद्या में, रैवत की तरह अश्वविद्या में,

१. बाल्य विद्यागमैर्यत्र ।—पृ० १६८

२. कुलवृद्धानां च प्रतिपन्नपितृष्वनतपोवनलोक्त्वादसजातविद्यावृद्धगुरुकुलोपासन ।

—पृ० २६

३. सवय सचिवकुलकृतानुशीलन ।—पृ० २३६

४. स्वाध्यायधीर्नियमवान्विनयोपपन्न ।—पृ० २३७

५. सकलविद्याविदाश्चर्यप्रवणनैपुण्यमहमाश्रित परिप्राप्तगोदानावसरश्च ।—वही

६. नि.शेषविषयभाषावेषधिषण्यथा ।—पृ० २५ उक्त०

७. पृ० ८९-९०

अरुण की तरह रथविद्या में, परशुराम की तरह शस्त्रविद्या में, शुकनाश की तरह रत्नपरीक्षा में, भरत की तरह सगीतक मत में, त्वष्टकि की तरह चित्रकला में, काशीराज की तरह शरीरोपचार में, काव्य की तरह व्यूहरचना में, दत्तक की तरह कामशास्त्र में तथा चन्द्रायणीश की तरह अपर कलाओं में।^८

अन्य प्रसंगों में भी विभिन्न शास्त्र और शास्त्रकारों के उल्लेख हैं। सबका सक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है—

व्याकरण

व्याकरण शास्त्रकारों में सोमदेव ने इन्द्र, जैनेन्द्र, चन्द्र, आपिशल, पाणिनि तथा पतञ्जलि का उल्लेख किया है। इस प्रसंग में पणिपुत्र नाम भी आया है।

इनमें कुछेक नाम वर्तमान में अपरिचित से हो गये हैं और उनके शास्त्र भी उपलब्ध नहीं होते। वास्तव में ये सभी प्राचीन महान् वैयाकरण थे और सोमदेव के उल्लेखानुसार कम से कम दशमी शती तक तो इनके शास्त्रों का अध्ययन-अध्यापन होता ही था। १०५३ ई० के मूलगुण्ड शिलालेख में चान्द्र, कातन्त्र, जैनेन्द्र शब्दानुशासन तथा ऐन्द्र व्याकरण और पाणिनि का उल्लेख है।^९ तेरहवीं शती में बोपदेव ने अपने कविकल्पद्रुम के प्रारम्भ में आठ वैयाकरणों का उल्लेख किया है, जिनमें इन्द्र, चन्द्र, आपिशल, पाणिनि और जैनेन्द्र का नाम आता है। कल्पसूत्र की टीका में समयसुन्दरगणि (१७वीं शती) ने अठारह वैयाकरणों में इन्द्र और आपिशल को भी गिनाया है। यद्यपि बाद के इन उल्लेखों से यह कहना कठिन है कि सत्रहवीं शती तक उपर्युक्त सभी व्याकरण उपलब्ध थे, फिर भी इतना निश्चित है कि ये सब व्याकरण के महान् आचार्यों माने जाते थे। सोमदेव ने जिनका उल्लेख किया है उनके विषय में किञ्चित् और जानकारी इस प्रकार है—

८ प्रजापतिरिव सर्ववर्णार्थमेपु, पारिरिचक इव प्रसंख्यानोपदेशेषु, पूज्यपाद इव शब्दतिष्ठेषु, स्याद्वादेश्वर इव धर्माख्यानेषु, अकलंकदेव इव प्रमाणशास्त्रेषु, पणिपुत्र इव पदप्रयोगेषु, कविरिव राजराद्धान्तेषु, रोमपाद इव गजविद्यापु, रैवत इव हयनयेषु, अरुण इव रथचर्यासु, परशुराम इव शब्दाधिगमेपु, शुकनाश इव रत्नपरीक्षसु, भरत इव मगीतकमतेपु, त्वष्टकिरिव विचित्रकर्मसु, काशीराज इव शरीरोपचारेषु, काव्य इव व्यूहरचनासु, दत्तक इव कन्तुसिद्धान्तेषु, चन्द्रायणीश इवापरास्वपिकलासु।—पृ० २३६-३७

९ पणिप्राफिया इडिका, जिब्द १६, भाग २

इन्द्र और उनका ऐन्द्र व्याकरण

ऐन्द्र व्याकरण अब तक उपलब्ध नहीं हुआ, किन्तु कातन्त्र व्याकरण को ऐन्द्र व्याकरण के आधार पर रचा गया माना जाता है। इन्द्र का वैयाकरण के रूप में सर्वप्रथम उल्लेख तैत्तरीयसहिता में आता है।^{१०} नैषधकार ने भी नैषध (१०।१३५) में इन्द्र का उल्लेख किया है। तेरहवीं शताब्दी के अन्त में चण्डुपडित ने भी इन्द्र का उल्लेख किया है।^{११}

तिब्बती परम्परा में इन्द्रगोमिन् के इन्द्रव्याकरण की जानकारी मिलती है और नेपाल के बौद्धों में इसका पठन-पाठन बताया जाता है।^{१२} वास्तव में इन्द्र-व्याकरण के विषय में अभी पर्याप्त छानबीन की आवश्यकता है।

आपिशल और उनका आपिशलि व्याकरण

आपिशल का उल्लेख पाणिनि ने 'वा सुप्यापिशले' कहकर अष्टाध्यायी में किया है। महाभाष्य (४।२।४५, ४।१।१४) काशिका (६।२।३६, ७।३।९५) तथा न्यास में भी आपिशल के कई उल्लेख आये हैं। आपिशल का अध्ययन करने वाली ब्राह्मणी आपिशला कहलाती थी।^{१३} आपिशल को पढ़ने वाले छात्र भी आपिशल कहलाते थे।^{१४} काशिका की वृत्ति (१।३।२२) में जैनेन्द्र बुद्धि ने भी आपिशल का उल्लेख किया है। कातन्त्र सम्प्रदाय के व्याकरण में भी आपिशल का उल्लेख मिलता है।^{१५} आपिशल का कोई ग्रन्थ अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ है।

चन्द्र और उनका चान्द्रव्याकरण

बौद्ध चन्द्रगोमिन् का चन्द्रवृत्तिक ही सोमदेव द्वारा उल्लिखित चान्द्रव्याकरण ज्ञात होता है। यह ५वीं शती की रचना मानी जाती है। लिपजिग से इसका प्रकाशन भी हो चुका है।^{१६}

१०. वेलवलकर—सिस्टम्स ऑव सस्कृत ग्रामर, पृ० १०

११. तादृक्कृतव्याकरण. तादृक्कृत ऐन्द्र व्याकरणम्।

१२. विंटरनिन्स, उल्लिखित हन्दिकी।—यश० पृ० ४४३

१३. आपिशलमधीते ब्राह्मणी आपिशला ब्राह्मणी, महाभाष्य ४।१।९४

१४. अधीयतेऽन्तेवासिनस्तेऽप्यापिशला।—आपिशलैर्वा छात्रा आपिशला इत।

—काशिका ६।२।३६

१५. "द्वितीयैनेन" की टीका में दुर्गासिंह—आपिशलीयव्याकरणे समयादीना कर्म-प्रवचनीयत्व दृष्टमिति मतम्।

१६. वेलवलकर, वही पृ० ५८

परिणुत्र या पाणिनि

सोमदेव ने यशोधर को परिणुत्र की तरह पदप्रयोग में निपुण कहा है। श्रीदेव तथा श्रुतसागर दोनों ने ही परिणुत्र का अर्थ पाणिनि किया है। अष्टा-व्यायी के रचयिता पाणिनि की माँ का नाम दाक्षी था। सोमदेव के उल्लेखानुसार उनके पिता का नाम परिण या पाणि था। तेलुगु के श्रीनाथ और पेदन के ग्रन्थों में पाणिनि को पाणिसुनु कहा है।^{१७}

इस प्रकार यह यशस्तिलक का सन्दर्भ पाणिनि के सम्बन्ध में ज्ञात तथ्यों में एक और नयी कड़ी जोड़ता है।

पूज्यपाद देवनन्दि और उनका जैनेन्द्र व्याकरण

पूज्यपाद का सोमदेव ने दो बार उल्लेख किया है। पूज्यपाद देवनन्दि का जैनेन्द्र व्याकरण प्रसिद्ध है। इनका समय पाँचवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध माना जाता है। जैनेन्द्र व्याकरण के अतिरिक्त पूज्यपाद कृत सर्वार्थसिद्धि प्रसिद्ध है। यह उमास्वातिकृत तत्त्वार्थसूत्र की प्रथम संस्कृत टीका है।

पूज्यपाद देवनन्दि एक अच्छे दार्शनिक भी थे, किन्तु व्याकरणाचार्य के रूप में वे और भी अधिक प्रसिद्ध हुए। एक स्वतन्त्र व्याकरण-सिद्धान्त-निर्माता के रूप में उन्हें माना जाता था और इसीलिए 'पूज्यपाद की तरह व्याकरणविशेषज्ञ' एक कहावत-सी चल पड़ी थी। श्रवणवेलगोला के शिलालेखों में इस तरह के उल्लेख मिलते हैं। शक सवत् १०३७ के एक शिलालेख में मेघचन्द्र को पूज्यपाद की तरह सर्वव्याकरण विशेषज्ञ कहा है। इसी तरह जैनेन्द्र और श्रुतमुनि को भी पूज्यपाद की तरह व्याकरणविशेषज्ञ कहा गया है।^{१८} स्वयं सोमदेव ने यशोधर को शब्दशास्त्र में पूज्यपाद की तरह कहा है।

पतंजलि

पतंजलि का उल्लेख एक श्लेष में आया है।^{१९}

१७ राघवन्—ग्लोनिंग फ्राम सोमदेव सूरिज यशस्तिलकचम्पू, दी जरनल ऑफ़ दी गगानाथ भा रिसर्च इंस्टीट्यूट, इलाहाबाद, जिल्द १, भाग ३, मई १९४४

१८ सर्वव्याकरणे विपरिचदधिप श्रीपूज्यपाद. स्वयम्—श्लो० ३०

—जैनेन्द्रे पूज्य (पाद), श्लो० २३

—शब्दे श्रीपूज्यपाद, श्लो० ४०

—जैन शिलालेख संग्रह, पृ० ६२, ११९, २०२

१९. शब्दशास्त्रविद्याधिकरणव्याकरणपतंजलि।—पृ० ३१६, उक्त०

गणितशास्त्र

गणितशास्त्र को सोमदेव ने प्रसख्यान शास्त्र कहा है। पारिरक्षक प्रसख्या-नोपदेश के अधिकारी विद्वान् माने जाते थे। श्रीदेव तथा श्रुतसागर दोनो ने पारिरक्षक का अर्थ यति या सन्यासी किया है। मम्भवतः पाणिनि द्वारा उल्लिखित भिक्षुसूत्र के कर्ता का नाम पारिरक्षक रहा हो।

प्रमाणशास्त्र और अकलंक

सोमदेव ने यशोधर को प्रमाणशास्त्र मे अकलंक की तरह कहा है। अकलक जैन-न्याय या प्रमाणशास्त्र के प्रतिष्ठापक विद्वान् माने जाते हैं। ८वीं शती के यह एक महान् आचार्य थे। अनेक ग्रन्थो तथा शिलालेखो में अकलक के उल्लेख मिलते हैं। तत्त्वार्थवार्तिक, अष्टशती, लघीयस्त्रय, न्यायविनिश्चय, सिद्धि-विनिश्चय तथा प्रमाणसग्रह अकलक की महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं। सीभाग्य से सभी के समालोचनात्मक सस्करण प्रकाशित हो चुके हैं।^{२०}

राजनीतिशास्त्र

सोमदेव ने यशोधर को नीतिशास्त्र और व्यूहरचना में कवि की तरह कहा है।^{२१} श्रीदेव ने कवि का अर्थ बृहस्पति तथा श्रुतसागर ने शुक्र किया है।

एक अन्य प्रसंग में गुरु, शुक्र, विशालाक्ष, परीक्षित, पाराशर, भीम, भीष्म तथा भारद्वाजरचित नीतिशास्त्रो का उल्लेख है।^{२२} दुर्भाग्य से अभी तक इनमें से किसी का भी स्वतन्त्र ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हुआ, किन्तु सोमदेव के उल्लेख से यह सुनिश्चित है कि दशमी शती में सभी ग्रन्थ प्राप्त थे और उनका पठन-पाठन भी होता था।

गजविद्या तथा रोमपाद

यशोधर को गजविद्या में रोमपाद की तरह कहा है। अग नरेश रोमपाद को पालकाप्य मुनि ने हस्त्यायुर्वेद की शिक्षा दी थी।^{२३}

रोमपाद के अतिरिक्त सोमदेव ने गजशास्त्रविशेषज्ञ आचार्यों में इभचारी,

२०. भारतीय ज्ञानपीठ काशी द्वारा प्रकाशित

२१. कविरिव राजराक्षान्तेषु, काव्य इव व्यूहरचनासु ।—पृ० २३६

२२. गुरुशुक्रविशालाक्षपरीक्षितपाराशरभीमभीष्मभारद्वाजादिप्रणीतनीतिशास्त्रश्रवण-सनाथसु ।—पृ० ४७१

२३. हस्त्यायुर्वेद, आनन्दाश्रम सीरीज २६, मातंगलीला १०

याज्ञवल्क्य, वाद्वलि (वाहलि), नर, नारद, राजपुत्र तथा गौतम का उल्लेख किया है ।^{२४}

दुर्भाग्य से इनमें से किसी का भी स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं मिलता, पर सोमदेव के उल्लेख से यह महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है कि इन सभी के गजशास्त्र उपलब्ध थे ।

अश्वविद्या और रैवत

रैवत अश्वविद्या-विशेषज्ञ माने जाते थे, इसीलिए सोमदेव ने यशोधर को अश्वविद्या में रैवत के समान कहा है । यशस्तिलक के दोनो टीकाकारो ने रैवत को सूर्य का पुत्र बताया है । मार्कण्डेयपुराण (७५।२४) में भी रैवत या रैवन्त को सूर्य और बडवा का पुत्र कहा गया है तथा गुह्यक मुख्य और अश्ववाहक बताया है । अश्वकल्याण के लिए रैवत की पूजा भी की जाती है (देखिए, जयदत्त—अश्वचिकित्सा, विद्व० इडिका १८८६, ८, पृ० ८५-८) ।

अश्वविद्या विशेषज्ञों में सोमदेव ने शालिहोत्र का भी उल्लेख किया है (१७३ हि०) । शालिहोत्रकृत एक सक्षिप्त रैवत-स्तोत्र प्राप्त होता है (तजौर ग्रन्था-गार, पुस्तक सूची, पृ० २०० तथा कीथ का इडिया आफिस केटलाग पृ० ७५८)।^{२५}

रत्नपरीक्षा और शुकनाश

सोमदेव ने यशोधर को रत्नपरीक्षा में शुकनाश की तरह कहा है । श्रीदेव तथा श्रुतसागर दोनो ने शुकनाश का अर्थ अगस्त्य किया है । रत्नपरीक्षा का एक उद्धरण भी यशस्तिलक में आया है—

“न केवल तच्छुभकृन्नृपस्य मन्ये प्रजानामपि तद्धिभूत्यै ।

यद्योजनाना परत शताद्धि सर्वाननर्थान् विमुखी करोति ॥”

यह पद्य बुद्धभट्टकृत रत्नपरीक्षा में उपलब्ध होता है । गरुडपुराण (पूर्व खण्ड अध्याय ८ से ८०) में यह ग्रन्थ शामिल है । भोजकृत युक्तिकल्पतरु में उद्धृत गरुडपुराण के उद्धरणों में भी यह पद्य मिलता है ।

वैद्यक और काशिराज

सोमदेव ने यशोधर को शरीरोपचार में काशिराज की तरह कहा है । श्रुतसागर ने काशिराज का अर्थ घन्वन्तरि किया है ।

^{२४} पृ० २६१

^{२५} राघवन्—ग्लो० फ्रा० यश०, वही

अन्य प्रसंगों में चारायण, निमि, धिपण तथा चरक के भी उल्लेख हैं।

इन विद्वानों के वैद्यक ग्रन्थ दशमी शती में उपलब्ध थे और उनका पठन-पाठन भी होता था। स्वास्थ्य, रोग और उनकी परिचर्या परिच्छेद में इनके विषय में और भी जानकारी दी गयी है।

संसर्गविद्या या नाट्यशास्त्र

भरत और उनके नाट्यशास्त्र का उल्लेख यशस्तिलक में कई बार आया है। एक श्लेष में नाट्यशास्त्र को सोमदेव ने संसर्गविद्या कहा है (भावसकरः ससर्ग-विद्यासु, पृ० २०२)। श्रीदेव और श्रुतसागर दोनों ने ही ससर्गविद्या का अर्थ भरत अर्थात् नाट्यशास्त्र किया है। कला-परिच्छेद में भरत तथा नाट्यशास्त्र के उल्लेखों के विषय में विचार किया गया है।

चित्रकला तथा शिल्पशास्त्र

चित्रकला तथा शिल्पशास्त्रविषयक उल्लेख भी यशस्तिलक में यत्र-तत्र आये हैं। कला और शिल्प अध्याय में उनका विवेचन किया गया है।

कामशास्त्र

कामशास्त्र को सोमदेव ने कन्तुसिद्धान्त कहा है और दत्तक को उसका विशेषज्ञ बताया है (दत्तक इव कन्तुसिद्धान्तेषु, वही)। वात्स्यायन ने कामसूत्र में दत्तक का उल्लेख किया है।

सोमदेव ने कामसूत्र का दो बार और भी उल्लेख किया है।^{२६} वास्तव में कामसूत्र में वर्णित विभिन्न चेष्टाओं तथा कामक्रीडाओं आदि का विवरण यशस्तिलक की अनेक उपमा-उत्प्रेक्षाओं तथा श्लेषों में आया है।

रति-रहस्य और उसकी रत्नदीप टीका

एक श्लेष में सोमदेव ने कोकककृत रतिरहस्य और उस पर रत्नदीप नामक टीका का उल्लेख किया है।^{२७}

चौसठ कलाएँ

यशस्तिलक में चौसठ कलाओं का एक साथ तो उल्लेख नहीं है, किन्तु विभिन्न

२६. न क्षमद्विचरपरिचितकामसूत्राया ।—पृ० ४५ हि०

शृङ्गारवृत्तिभिरुदाहृतकामसूत्रम् ।—१।७३

२७ चरणनखसपादितरतिरहस्यरत्नदीपविरचनै ।—पृ० २५

याज्ञवल्क्य, वाहलि (वाहलि), नर, नारद, राजपुत्र तथा गौतम का उल्लेख किया है ।^{२४}

दुर्भाग्य से इनमें से किसी का भी स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं मिलता, पर सोमदेव के उल्लेख से यह महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है कि इन सभी के गजशास्त्र उपलब्ध थे ।

अश्वविद्या और रैवत

रैवत अश्वविद्या-विशेषज्ञ माने जाते थे, इसीलिए सोमदेव ने यशोधर को अश्वविद्या में रैवत के समान कहा है । यशस्तिलक के दोनो टीकाकारो ने रैवत को सूर्य का पुत्र बताया है । मार्कण्डेयपुराण (७५।२४) में भी रैवत या रैवन्त को सूर्य और बडवा का पुत्र कहा गया है तथा गुह्यक मुख्य और अश्ववाहक बताया है । अश्वकल्याण के लिए रैवत की पूजा भी की जाती है (देखिए, जयदत्त—अश्वचिकित्सा, विव० इडिका १८८६, ८, पृ० ८५-८) ।

अश्वविद्या विशेषज्ञो में सोमदेव ने शालिहोत्र का भी उल्लेख किया है (१७३ हि०) । शालिहोत्रकृत एक सक्षिप्त रैवत-स्तोत्र प्राप्त होता है (तजौर ग्रन्थागार, पुस्तक सूची, पृ० २०० तथा कीथ का इडिया आफिस केटलाग पृ० ७५८)।^{२५}

रत्नपरीक्षा और शुकनाश

सोमदेव ने यशोधर को रत्नपरीक्षा में शुकनाश की तरह कहा है । श्रीदेव तथा श्रुतसागर दोनो ने शुकनाश का अर्थ अगस्त्य किया है । रत्नपरीक्षा का एक उद्धरण भी यशस्तिलक में आया है—

“न केवल तच्छुभकृन्पस्य मन्ये प्रजानामपि तद्विभूत्यै ।

यद्योजनाना परत. शताद्धि सर्वाननर्थान् विमुखी करोति ॥”

यह पद्य बुद्धभट्टकृत रत्नपरीक्षा में उपलब्ध होता है । गरुडपुराण (पूर्व खण्ड अध्याय ८ से ८०) में यह ग्रन्थ शामिल है । भोजकृत युक्तिकल्पतरु में उद्धृत गरुडपुराण के उद्धरणों में भी यह पद्य मिलता है ।

वैद्यक और काशिराज

सोमदेव ने यशोवर को शरीरोपचार में काशिराज की तरह कहा है । श्रुतसागर ने काशिराज का अर्थ घन्वन्तरि किया है ।

२४. पृ० २६१

२५. राघवन्—ग्लो० फ्रा० यश०, वही

अन्य प्रसंगों में चारायण, निमि, विषण तथा चरक के भी उल्लेख हैं।

इन विद्वानों के वैद्यक ग्रन्थ दशमी शती में उपलब्ध थे और उनका पठन-पाठन भी होता था। स्वास्थ्य, रोग और उनकी परिचर्या परिच्छेद में इनके विषय में और भी जानकारी दी गयी है।

संसर्गविद्या या नाट्यशास्त्र

भरत और उनके नाट्यशास्त्र का उल्लेख यशस्तिलक में कई बार आया है। एक श्लेष में नाट्यशास्त्र को सोमदेव ने संसर्गविद्या कहा है (भावसकरः संसर्ग-विद्यासु, पृ० २०२)। श्रीदेव और श्रुतसागर दोनों ने ही संसर्गविद्या का अर्थ भरत अर्थात् नाट्यशास्त्र किया है। कला-परिच्छेद में भरत तथा नाट्यशास्त्र के उल्लेखों के विषय में विचार किया गया है।

चित्रकला तथा शिल्पशास्त्र

चित्रकला तथा शिल्पशास्त्रविषयक उल्लेख भी यशस्तिलक में यत्र-तत्र आये हैं। कला और शिल्प अध्याय में उनका विवेचन किया गया है।

कामशास्त्र

कामशास्त्र को सोमदेव ने कन्तुमिद्धान्त कहा है और दत्तक को उसका विशेष-पज्ञ बताया है (दत्तक इव कन्तुसिद्धान्तेषु, वही)। वात्स्यायन ने कामसूत्र में दत्तक का उल्लेख किया है।

सोमदेव ने कामसूत्र का दो बार और भी उल्लेख किया है।^{२६} वास्तव में कामसूत्र में वर्णित विभिन्न चेष्टाओं तथा कामक्रीडाओं आदि का विवरण यशस्तिलक की अनेक उपमा-उत्प्रेक्षाओं तथा श्लेषों में आया है।

रति-रहस्य और उसकी रत्नदीप टीका

एक श्लेष में सोमदेव ने कोकककृत रतिरहस्य और उस पर रत्नदीप नामक टीका का उल्लेख किया है।^{२७}

चौसठ कलाएँ

यशस्तिलक में चौसठ कलाओं का एक साथ तो उल्लेख नहीं है, किन्तु विभिन्न

२६. न क्षमश्चिरपरिचितकामसूत्राया ।—पृ० ४५ हि०

शृङ्गारवृत्तिभिरुदाहृतकामसूत्रम् ।—१।७३

२७ चरणखलपादितरतिरहस्यरत्नदीपविरचनै ।—पृ० १५

प्रसंगों पर उनमें से कई का उल्लेख है। सोमदेव ने यशोधर को चन्द्रायणीश की तरह अपरकलाओं में निष्णात कहा है।^{२८} सम्भवतः अपर कलाओं से तात्पर्य यहाँ ६४ कलाओं से है।

पत्रच्छेद

चौसठ कलाओं में पत्रच्छेद भी एक कला मानी जाती है। पत्तों में कैंची से तरह-तरह के नमूने काटना पत्रच्छेद है। वात्स्यायन ने कामसूत्र (१।३।१६) में इसे विशेषकच्छेद्य कहा है। विशेषकर प्रणय-प्रसंगों में इस कला का उपयोग किया जाता था। वात्स्यायन ने लिखा है—पत्रच्छेद्य में अपने अभिप्राय के सूचक मिथुन का अंकन करके प्रेमी या प्रेमिका के पास भेजना चाहिए।^{२९}

भोगावलि या राजस्तुतिविद्या

राजा की स्तुति में लिखी गयी प्रशंसात्मक कविता भोगावलि, विरुदावलि या रगघोषणा कहलाती है। यशस्तिलक में भोगावलि का तीन बार उल्लेख है (पृ० २४९, ३५१, ३९९)। राजदरबारों में भोगावली पाठक हुआ करते थे।

काव्य और कवि

यशस्तिलक में सोमदेव ने बीस से भी अधिक महाकवियों का उल्लेख किया है—ऊर्व, भारवि, भवभूति, भर्तृहरि, भर्तृमेण्ठ, कण्ठ, गुणादय, व्यास, भास, वीस, कालिदास, वाण, मयूर, नारायण, कुमार, माघ और राजशेखर। इनमें कई-एक कवि जितने प्रसिद्ध और परिचित हैं उतने ही कई-एक अप्रसिद्ध और अपरिचित। नारायण सम्भवतः वेणीसहार के कर्ता भट्टनारायण है और कुमार जानकीहरण के कर्ता कुमारदास। भास के विषय में निश्चित रूप से कहना कठिन है कि ये प्रसिद्ध नाटककार भास हैं अथवा अन्य। भास का महाकवि के रूप में एक अन्य प्रसंग (पृ० २५१ उक्त०) में भी उल्लेख है और उनका एक पद्य भी उद्धृत किया है।

कण्ठ कवि का प्राचीन कवियों में कोई पता नहीं चलता। क्षीरस्वामीकृत क्षीरतरंगिणी में कण्ठ को संस्कृत धातु विशेषज्ञ के रूप में अनेक बार उद्धृत किया है। सम्भव है ये यही कण्ठ महाकवि हों। ऊर्व सम्भवतः वल्लभदेवकृत सुभाषितावलि में उल्लिखित और्व हैं।

२८. चन्द्रायणीश इव अपरास्वपि कलासु।—पृ० २३७

२९. पत्रच्छेद्यक्रियाया च स्वाभिप्रायसूचकं मिथुनमस्या दर्शयेत्।—३।४।^३

वाणभट्ट तथा उनकी कादम्बरी का एक स्थान पर श्रीर भी उल्लेख है । कादम्बरी से एक वाक्य भी उद्धृत किया गया है ।^{३०}

माघ का भी एक वार उल्लेख है । यशोधर को माघ के समान बताया है ।^{३१}

भर्तृहरि के नीतिशतक और शृङ्गारशतक से एक-एक पद्य विना उल्लेख के उद्धृत किया गया है ।^{३२}

जिन कवियों के विषय में हमें अन्यत्र जानकारी नहीं मिलती ऐसे कवियों में निम्नलिखित उल्लेख्य हैं—

ग्रहिल के नाम से शिव-स्तुति रूप दो पद्य (पृ० २५५ उक्त०) उद्धृत हैं ।

नीलपट के नाम से (पृ० २५२ उक्त०) एक पद्य उद्धृत है । सम्भवत यह नीलपट सदुक्तिकर्णामृत में उल्लिखित नीलभट्ट हैं ।

वररुचि के नाम से (पृ० १९ उक्त०) एक पद्य उद्धृत है । यद्यपि यह पद्य निर्णयसागर द्वारा प्रकाशित भर्तृहरि के नीतिशतक में पाया जाता है, किन्तु वास्तव में यह नीतिशतक का प्रतीत नहीं होता, क्योंकि एक तो अन्य सस्करणों में भी नहीं है, दूसरे जब सोमदेव को भर्तृहरि और उनके साहित्य की जानकारी थी तो वे भर्तृहरि का पद्य वररुचि के नाम से क्यों उद्धृत करते ।

अन्य उल्लेख

एक पद्य में त्रिदश, कोहल, गणपति, शंकर, कुमुद तथा कैकट का उल्लेख है ।^{३३} इनके विषय में अन्यत्र कोई जानकारी अभी नहीं मिलती ।

दार्शनिक और पौराणिक साहित्य

दार्शनिक और पौराणिक साहित्य के अनेक उल्लेख यशस्तिलक में आये हैं । प्रो० हन्दिकी ने इनका विस्तार से विवेचन किया है, इसलिए उसे यहाँ पुनरुद्धृत नहीं किया गया ।

३० आहार. साधुजनविनिन्दितो मधुमांसादिरिति वाणेश ।—पृ० १०१ उक्त०

३१. सुकविकाव्यकथाविनोददोषदमाघ ।

३२ श्रीमुद्रा भूषकेतनस्य—इत्यादि

नमस्यामोदेवान्ननुहतविधे, इत्यादि ।—पृ० २५२ उ०

३३ वृत्तिच्छेदस्त्रिदशविदुष कोहलत्यार्थहानि-

मानग्लानिर्गणपतिकवे शंकरस्याशुनाश ।

धर्मध्वंस कुमुदकृतिन कैकटेश्च प्रवासः

पापादत्मादिति समभवद्देव देशे प्रसिद्धि ॥—पृ० ४५९

गज-विद्या

यशस्तिलक में गज-विद्या विषयक प्रचुर सामग्री है। गजोत्पत्ति की पीराणिक अनुश्रुति, उत्तम गज के गुण, गजों के भद्र, मन्द, मृग तथा सकीर्ण भेद, गजों की मदावस्था, उसके गुण, दोष और चिकित्सा, गजशास्त्र के विशेषज्ञ आचार्य, गज परिचारक, गज-शिक्षा इत्यादि का विस्तृत वर्णन मिलता है। यह वर्णन मुख्य रूप से तीन प्रसंगों में आया है—

- (१) मारिदत्त हाथियों के साथ खेला करता था (सामजैः सह चिक्रीड, ३१)।
- (२) यशोधर के पट्टबन्ध उत्सव पर अनेक गुण सयुक्त गज उपस्थित किया गया (आकरस्थानमिव गुणरत्नानाम्, २९९)।
- (३) सम्राट् यशोधर ने स्वयं गजशिक्षाभूमि पर जाकर गजों को शिक्षित किया (करिविनयभूमिपु स्वयमेव वारणान्विनित्ये, ४८२)। हथिनि पर सवारी की (कृतकरेणुकारोहराः, ४९२), गजक्रीडास्थली में गजक्रीडा देखी (प्रघावधरणिषु करिकेलिरदर्शम्, ५०५) तथा दन्त-वेष्टन किया (कोशारोपणमकरवम्, ५०६)।

प्रथम प्रसंग में गजशास्त्र सम्बन्धी अनेक पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग हुआ है।

यशोधर के पट्टबन्धोत्सव के लिए जो हाथी लाया गया उसका वर्णन निम्न-प्रकार किया गया है (पृष्ठ २९१-२९९)—

हे राजन्, यह गज कर्लिंगवन मे उत्पन्न, ऐरावत कुल, प्रचार से सम, देश से साधारण, जन्म से भद्र, सस्थान से समसम्बद्ध, उत्सेध (ऊर्ध्वता), आयाम (दीर्घता) तथा परिणाह (वृत्तता) से सम-सुविभक्त शरीर, आयु से दो दशाश्रो को भोगता हुआ, अग से स्वायत्त-व्यायत्त छवि, वर्ण, प्रभा और छाया से आशसनीय, आचार, शील, शोभा और आवेदिता से कल्याण, लक्षण और व्यजन से प्रशस्त, बल, वर्ष्म (शरीर), वय और वेग से उत्तम, ब्रह्माश, गति, सत्त्व, स्वर और अन्नूक से प्रियालोक, विनायक (गणेश) की तरह मोटा-चौड़ा मुँह, तालु में अशोक पुष्प की तरह अरुण, अन्तर्मुख में कमलकोश की तरह शोण प्रकाश, उरोमणि, विक्षोभ-कटक, कपोल तथा सृक्व में पीन और उपचितकाय, सुप्रमाण कुभ, ऋजु-पूर्ण तथा ह्रस्व कन्धरा, अलि के समान नीले और मेघ के समान घने तथा स्निग्ध केश, समसूद्गतव्यूह मस्तक, अनल्प आसनस्थान, डोरी चढाये गये घनुष की तरह अनुवश (रीढ़), अजकुक्षि, अनुपदिग्ध पेचक, कुछ उठी हुई, जमीन को छूती हुई वैल की पूँछ के समान पूँछ, अभिव्यक्त पुष्कर (शुण्डाग्रभाग), वराह के जघन के

समान अपरदेश (पश्चिम भाग), आम्र-पल्लव के समान कोश, समुद्रग्री और कूर्म की आकृति के समान गात्र और अपर तल, अष्टमी के चन्द्रमा की तरह निश्चल एव परस्पर सलग्न विंशतिनखमयूख वाला है। क्रम से पृथु, वृत्त, आयत और कोमलता से पूर्ण, होनेवाले अनेक युद्धो मे प्राप्त विजय की गणना-रेखाओ के समान कतिपय बलियो (सिकुडनो) द्वारा अलकृत, मद भरते, मृदु, दीर्घ और विस्तृत अगुली वाले कर (सूड) से यहाँ-वहाँ बिखरे गये वमथु (मुख के) जल की फुहार से मानो इस पट्टबन्ध उत्सव के सुअवसर पर दिग्पालो की पुरन्धियो को मुक्ताफल के उपहार बाँट रहा हो। निरन्तर उड़ रहे मलयज, अगुरु, कमल, केतकी, नीलकमल और कुमुद की सुगधि सरीखे मद और वदन की सुगधि से मानो, आपके ऐश्वर्य को देखने के लिए अवतीर्ण देवकुमारो को अर्घ दे रहा हो। मेघ की तरह गभीर और मधुर ध्वनि तुल्य वृहित द्वारा समस्त यागनागो में श्रेष्ठता प्रमाणित कर रहा हो। घन और स्निग्ध भाँह वाले स्थिर, प्रसन्न, आयत, व्यक्त, रक्त, शुक्ल, कृष्ण दृष्टि वाले मणि की कान्ति सदृश नेत्र-युगल के अरविन्द-पराग सदृश पिगल कटाक्षपात द्वारा मानो ककुभागनाओ के लिए पिष्टातक चूर्ण बिखेर रहा हो। किञ्चित् दक्षिण की ओर उठे हुए, ताम्रचूड (मुर्गा) के पिछले पैरो की पिछली अंगुलियो की तरह सुशोभित स्रम, सुजात और मधु की कान्ति सदृश दोनो खीसो द्वारा मानो स्वर्गदर्शन के कुतूहलवाली आपकी कीर्ति के लिए सोपान बना रहा हो। असिर, अतल, प्रलम्ब और सुकुमार उदय वाले कर्णताल द्वय के द्वारा मानो आनन्द द्दुभि के नाद को पुनरुक्त (द्विगुणित) कर रहा हो। ऊँचाई के कारण पर्वत की चोटियो को नीचा दिखा रहा हो। सरस्वती के हास का उपहास करने वाले देह प्रभापटल के द्वारा स्वकीय शरीराश्रित वीरलक्ष्मी के निकट मे श्वेत कमल का मानो उपहार चढा रहा हो। ध्वज, शख, चक्र, स्वस्तिक, नद्यावर्त विन्यास तथा प्रदक्षिणावर्त वृत्तियो वाली सूक्ष्ममुख स्निग्ध रोमराजि द्वारा अति सूक्ष्म विन्दुमाला द्वारा यथोचित शरीरावयवो पर विन्यस्त है। महोत्सव पूजा युक्त विजयलक्ष्मी के निवास की तरह है। इस प्रकार अन्य बहल, विपुल, व्यक्त, सनि-वेश से मनोहर मान, उन्मान, प्रमाण युक्त चारो प्रकार के प्रदेशो द्वारा अनून और अनतिरिक्त, सप्तप्रकार की स्थिति द्वारा नृप तथा महामात्य के सप्त समुद्र पर्यंत शासन की घोषणा करता हुआ, द्वादश क्षेत्रो मे शुभ फल को व्यक्त करने वाले अवयव वाला, सिद्ध योगी की तरह रूपादि विषयो में शान्त, दिव्यर्षि की तरह सर्वज्ञ, असितर्ति (अग्नि) की तरह तेजस्वी, कुलीन की तरह उदय और प्रत्यय से विशुद्ध, अधोक्षज (विष्णु) की तरह कामवन्त, अमृत की कान्ति की तरह असताप,

आयोधनाग्रेसर की तरह मनस्वी, अनाद्यून(अल्पभोजी) की तरह सुभग तथा अन्य गुणरत्नों की भी खान है ।'

इस विवरण के बाद करिकलाभ नामक बन्दी ने गजप्रशसापरक चौबीस पद्य पढ़े ।

उपर्युक्त वर्णन में गज-शास्त्र सम्बन्धी अनेक सिद्धान्तों की जानकारी दी गयी है । गजशास्त्र में गज के निम्नलिखित बाह्य और अंतरग गुणों का विचार किया जाता है—

(१) उत्पत्ति-स्थान—किस वन में पैदा हुआ है ।

(२) कुल—ऐरावत आदि किस कुल का है ।

(३) प्रचार—सम या विषम कैसा प्रचार है, अर्थात् केवल सम प्रदेश में गमन कर सकता है या विषम में भी ।

(४) देश—किसी देश विशेष में ही रह सकता है या कहीं भी ।

(५) जाति—भद्र, मन्द, मृग आदि में से किस जाति का है ।

(६) संस्थान—शारीरिक गठन कैसा है ।

(७-९) उत्सेध, आयाम, परिणाह—ऊँचाई, लम्बाई तथा मोटाई कैसी है ।

(१०) आयु—आयु की द्वादश दशाओं में से किसमें है (दस वर्ष की एक दशा होती है, स० टी०) ।

(११) छवि—शरीर में स्वायत्त-व्यायत्त (ऊँची तथा तिरछी) बलि रहित छवि (त्वचा) है ।

(१२) वर्ण—शुद्ध, व्यामिश्र तथा अन्तर्वर्ण के तीन-तीन भेदों में से कौन सा वर्ण है ।

(१३) प्रभा—प्रभा कैसी है ।

(१४) छाया—पार्थवी, श्रौदकी, आग्नेयी, वायव्य तथा तामसी छाया में से कौनसी छाया है ।

(१५) आचार—कायगत आचार कैसा है ।

(१६) शील—मनोगत शील (स्वभाव) कैसा है ।

(१७) शोभा—लोहित, प्रतिच्छन्न, पक्षलेपन, समकक्ष, समतल्प, व्यतिकर्ण तथा द्रोणिका (स० टी०) में से कौन सी है । चौथी शोभा श्रेष्ठ मानी जाती है ।

(१८) आवेदिता—अर्थवेदिता ।

(१९-२०) लक्षण-व्यंजन—कर, रदन आदि लक्षण तथा विन्दु, स्वस्तिक आदि व्यंजन (स० टी०) कैसे हैं ।

- (२१-२४) वल, धर्म, वय और जव—उत्तम, मध्यम तथा श्रवम वल ।
 (२५) अंश—ब्रह्मादि अंशों में से किस अंश वाला है ।
 (२६) गति—कैसा चलता है ।
 (२७) रूप—रूप कैसा है ।
 (२८) सत्त्व—सत्त्व कैसा है ।
 (२९) स्वर
 (३०) अनूक
 (३१) तालु
 (३२) अन्तरास्य—मुँह का भीतरी भाग
 (३३) उरोमणि—हृदय
 (३४) विक्षोभकटक—श्रोणिफलक
 (३५) कपोल
 (३६) सृक्व
 (३७) कुम्भ—सिर
 (३८) कन्धरा—ग्रीवा
 (३९) केश
 (४०) मस्तक
 (४१) आसनावकाश—बैठने का स्थान (पीठ)
 (४२) अनुवंश—रीढ़
 (४३) कुक्षि—कांख
 (४४) पेचक—पूँछ का मूल भाग
 (४५) वालधि—पूँछ
 (४६) पुष्कर—शुण्डाग्रभाग
 (४७) अपर—पुट्टे
 (४८) कोश—भेद

करिकलाभ नामक वन्दी ने जो चौबीस पद्य पढ़े उनमें भी गजशास्त्र सम्बन्धी कई सिद्धान्त प्रतिफलित होते हैं ।

गजोत्पत्ति

गजोत्पत्ति के सम्बन्ध में यशस्तिलक में तीन पौराणिक तथ्यों का उल्लेख हुआ है—

(१) जिस अण्डे से सूर्य उत्पन्न हुआ था, उसी के एक टुकड़े को हाथ में लेकर ब्रह्मा ने सामवेद के पदों को गाते हुए गजों को उत्पन्न किया । ३४

(२) गजों की उत्पत्ति साम से हुई । ३५

(३) अमित बल वाले तथा विशालकाय होने पर भी गजों के शान्त रहने का कारण मुनियों का शाप तथा इन्द्र की आज्ञा है । ३६

उक्त बातों का समर्थन पालकाप्य के गजशास्त्र से पूर्णरूपेण हो जाता है । उसमें अग नरेश के पूछने पर गजोत्पत्ति इस प्रकार बतायी गयी है—'ब्रह्मा ने पहले जल रचा, फिर उसमें वीर्य डाला, वह सोने का अण्डा बन गया, उससे भूत (पच भूत) उत्पन्न हुए, अण्डे का सबसे देदीप्यमान अंश अदिति को दिया, उसने सूर्य को जना । आघे कपाल को दायें हाथ में लेकर सामवेद को गाते हुए गजों को उत्पन्न किया । ३७

पालकाप्यचरित्र के प्रसंग में सामगायन नामक महर्षि द्वारा पालकाप्य के जन्म की एक अद्भुत कथा आयी है—सामगायन महर्षि के आश्रम के पास एक वार एक गजयूथ पहुँच गया । रात्रि में महर्षि को स्वप्न में एक सुन्दर यक्षिणी दिखी । महर्षि ने उठकर आश्रम के बाहर जाकर पेशाब किया । एक हथिनी ने वह पी लिया । उसके गर्भ रह गया । वह हथिनी वास्तव में एक कन्या थी, जो मातंग महर्षि के शाप के कारण हथिनी हो गयी थी । उसने पालकाप्य को

३४. यस्माद्मानुरभूत्ततोऽण्डशकलाद्धस्ते धृतादात्मभू-

र्गायन्सामपदानि यान्गणपतेर्वक्त्रानुरूपाकृतीन् ।—पृ० २६६, पू०

३५ सामोद्भवाय शुभलक्षणलक्षिताय ।—पृ० ३००

३६ महान्तोऽमी सन्तोऽप्यमितबलसंपन्नवपुषो,
यदेवं तिष्ठन्ति क्षितिपशरणे शान्तमतय ।

तदत्र श्रद्धेय गजनयवुधे कारणमिद,

मुनीन्द्राणां शाप सुरपतिनिदेशश्च नियतम् ॥—पृ० ३०७

३७ अथ दक्षिणहस्तस्थात्कपालादसृजन्मृगम् ।

अभिगायन्नचिन्त्यात्मा सप्तभिस्सामभिर्विधि ॥—गजशास्त्र, गजोत्पत्ति, १२१

सूर्यस्याण्डकपालमादिमुनिभि सदशित तेजस,

पाथिभ्या परिगृह्य सप्रणववाक् सव्ये कपालं करे ।

धृत्वा गायति सप्तधा कमलजे सामानि तेभ्योऽभवन्,

मत्तास्सप्तमतगना प्रणवतश्चान्योऽष्टधा सम्भव ॥—वही, पृ० १८, श्लोक २०

जन्म दिया ।^{३८} सोमदेव ने 'सामोद्भवाय' कहकर इसी पौराणिक अनुश्रुति की ओर ध्यान दिलाया है ।

पालकाप्यचरित्र के ही प्रसंग में मुनियों के शाप तथा इन्द्र की आज्ञा का भी उल्लेख है—'प्राचीन काल में हाथी स्वेच्छा से मनुष्य तथा देवलोक में विचरते थे । उन्ही दिनों हिमालय की तराई में एक वटवृक्ष के नीचे दीर्घतपा महर्षि तप करते थे । एक बार गजयूथ वटवृक्ष पर उतरा । सारे हाथी एक ही शाखा पर बैठ गये । शाखा टूट पड़ी और हाथियो सहित नीचे आ गिरी । महर्षि ने क्रोधित होकर शाप दिया—'यथेच्छ विहार से च्युत होकर मनुष्यो की सवारी होओ' ।^{३९}

उपर्युक्त कन्या के शाप के विषय में पालकाप्य में कहा गया है कि इन्द्र ने^{४०} मतंग महर्षि को तप से डिगाने के लिए गुणवती नाम की कन्या भेजी थी, जिसे महर्षि ने हस्तिनी होने का शाप दे दिया ।^{४०} इसके अतिरिक्त पालकाप्य के गजशास्त्र में दीर्घतप, अग्नि, वरुण, भृगु तथा ब्रह्मा के शाप का विस्तार के साथ विवेचन किया है ।^{४१}

सोमदेव ने 'मुनीद्राणा शाप', 'सुरपतिनिदेशश्च' पद में इन्ही बातों की सूचनाएँ दी हैं ।

गज के भेद—गज के निम्नलिखित भेदों के विषय में सोमदेव ने विशेष जानकारी दी है—

भद्र—भद्र जाति के हाथी में सोमदेव ने निम्नलिखित लक्षण बताए हैं—

- (१) चौड़ा सीना, (२) मस्तक में अनेक रत्न, (३) स्थूल या बृहत्काय, (४) निश्चल और सुढील शरीर, (५) ललित गति, (६) अन्वर्थवेदिता, (७) लम्बी

३८. तं मा विदिष महाराज प्रसूत सामगायनात् ।—इत्यादि,

गजशास्त्र, श्लो० ६६-६१

३९ बलदर्पोच्छ्रयाः नागा मम शापपरिग्रहात्,

विमुक्ता कामन्वारेण भविष्यथ न सशयः ।

नराणा वाहनत्व च तस्मात् प्राप्स्यथ वारणा ।—इत्यादि,

वही, श्लो० ४६-५५

४० धर्मविघ्नकरी मत्वा शक्रेण प्रहिता स्वयम् ।

तत शशाप सक्रुद्धस्तापसस्तु स कन्यकाम् ॥

अरण्ये विचरस्येका यस्मान्मानुषवर्धिते ।

तस्मादरण्यनिचये करेणुत्वं भविष्यति ॥—वही, श्लोक ७३, ७४

४१. गजशास्त्र, तृतीय प्रकरण

सूँड, (८) सुगन्धित श्वासोच्छ्वास, (९) सुन्दर कोश (पोते), (१०) रक्तोष्ठ, (११) कुलीन, (१२) स्वयं के चिंघाडने की प्रतिध्वनि से मुदित होने वाला, (१३) सुन्दर मस्तकवाला, (१४) क्षमाशील, (१५) अपूर्व शोभायुक्त तथा, (१६) पैरो में भुर्रियाँ रहित । ४२

पालकाप्य के गजशास्त्र में भी भद्र हस्ति के प्रायः यही लक्षण बताए हैं । ४३
प्राकृत ग्रन्थ णाणाग में भी चार प्रकार के हाथियों का वर्णन आया है । वहाँ भी भद्र गज के प्रायः यही लक्षण बताये हैं । ४४

मन्द—यशस्तिलक के अनुसार मन्द गज में निम्न लक्षण होने चाहिए—

(१) निविड बन्ध, (२) भयरहित, (३) विनम्र, (४) उन्नत मस्तक, (५) कार्यभारक्षम, (६) बहुत कम थकने वाला, (७) मण्डल-युक्त, (८) गम्भीरवेदी, (९) पृथु, (१०) भुर्रियो युक्त तथा, (११) सान्द्रपर्व । ४५

पालकाप्य के गजशास्त्र में भी किञ्चित् परिवर्तन के साथ यही लक्षण दिये हैं । ४६

मृग—मृग जाति के गज में सोमदेव के अनुसार निम्न लक्षण पाये जाते हैं—

(१) कुटिलहृदय, (२) दुष्टबुद्धि, (३) ह्रस्व हृदयमणि, (४) छोटी सूँड,

४२. व्यूढोरस्क प्रभूतान्तरमणिरतनु सुप्रतिष्ठागबन्ध

स्वाचारोऽन्वर्थवेदी सुरभिमुखमरुद्धीर्घहस्त सुकोश ।

आताम्रोष्ठ. सुजात प्रतिरवमुदितश्चारुशीर्षोद्गमश्री

घान्तस्तत्कान्तलक्ष्मी शमितवलिमद शोभते भूप भद्र ॥

—यश० स० पू० पृ० ४६२

४३. धैर्ये शौर्ये पटुत्व च विर्नातत्व सुकर्मता ।

अन्वर्थवेदिता चैव भयरूपेष्वमूढता ॥

सुभगत्व च वीरत्व भद्रस्यैते गुणास्मृता ।—गजशास्त्र, पृ० ६३, श्लोक १, २

४४ मधुगुलियपिगलकखो, अणुपुव्वसुजायदीहलगूलो ।

पुरओ उदग्गधीरो सव्वग समाहिओ भद्दो ।—णाणाग अ० ४, उ० २, पृ० १६६

४५ योऽच्छिद्रस्त्वयि वीतभीरवनत पश्चात्प्रसादात्पुन.

किञ्चित्ते पुरत समुच्छ्रितशिरा कार्येषु भारक्षम ।

सोऽत्यश्रम प्व मण्डलयुतो गम्भीरवेदी पृथु,

मन्देभानुकृतिर्वलीरितवपु स्यात्साद्रपर्वा नृप ॥—यश०, वही, पृ० ४९३

४६ विपुलतरकर्णवदना महोदरा स्थूलपेचकविषाया ।

वहुबललम्बमासा हर्यक्षा कुजरा मन्दा ॥—गजशास्त्र, पृ० ६७, श्लोक १६

(५) स्थूल दृष्टि, (६) अल्पकान्ति, (७) शोकालु, (८) भार ढोने में असमर्थ, (९) हीन और दुर्बल शरीर तथा (१०) मृग के समान गमन करने वाला ।^{४७}

पालकाप्य ने भी इसी प्रकार के लक्षण किञ्चित् परिवर्तन के साथ बताये हैं ।^{४८}

संकीर्ण—भद्र, मन्द और मृग जाति के गजों के कुछ-कुछ लक्षण जिसमें पाये जायें उसे संकीर्ण गज कहते हैं ।^{४९} सोमदेव ने लिखा है कि यशोधर की गजशाला में शारीरिक और मानसिक गुणों से संकीर्ण अनेक प्रकार के गज थे ।^{५०} पालकाप्य के गजशास्त्र में अठारह प्रकार के संकीर्ण गज बताये गये हैं ।^{५१}

यागनाग—यशोधर के राज्याभिषेक के अवसर पर यागनाग का उल्लेख है ।^{५२} यागनाग उस श्रेष्ठ गज को कहते थे जिसमें निम्नलिखित चौदह गुण पाये जायें—

(१) कुल, (२) जाति, (३) अवस्था, (४) रूप, (५) गति, (६) तेज, (७) बल, (८) आयु, (९) सत्त्व, (१०) प्रचार, (११) सस्थान, (१२) देश, (१३) लक्षण, (१४) वेग ।^{५३}

४७ ये वारत्वयि बह्वलीकमनस सेवापु दुर्मेधसो,
ह्रस्वोरोमण्य करंपु तनव स्थूलेक्षया शत्रव ।
तैर्नाथाल्पतनुच्छविप्रभृतिभि शोकांलुभिर्दुमरै ,
सक्षिप्तैरगुर्वशकैर्मृगसम प्राय समाचर्यते ॥—यश० वही, पृ० ४६४

४८. कुशागुलीवालधिवक्त्रमेढो लवूदर क्षामकपोलकण्ठ ।
विस्तीर्णकर्णस्तनुदीर्घदन्त स्थूलेक्षणो यस्स गजो मृगाख्य ॥

—गजशास्त्र, श्लो० ३२

४९. संकीर्णस्त्रिगुणो मत ।—गजशास्त्र, पृ० ७५, श्लोक ४२

एर सिहृत्थीय थोव थोव तु जो अणुहरइ हत्थी ।
रूवेण व सीलेण च सो सकिरणोत्ति णायब्बो ॥

—ठाण्णाग, अ० ४, उच्छे० २, सू० ३४८

५०. द्वारि तव देव बद्धा संकीर्णाश्चेतसा च वपुषा च ।

शत्रव इव राजन्ते बहुमेदा कुंजराश्चेते ॥—यश० वही, पृ० ४६४

५१ गजशास्त्र पृ० ७१, श्लोक ४२ से ७४

५२ यागनागस्य तुरगस्य च ।—स० पृ०, पृ० २८८

५३. कुलजातिवशोरूपैश्चारवर्षबलायुषाम् । सत्त्वप्रचारसस्थानदेशलक्षणरहसा ॥

पषा चतुर्दशाना तु यो गुणाना समाश्रय । स राज्ञो यागनाग स्याद्भूरिभूतिसमृद्धये ॥

—गजशास्त्र, पृ० १२

मदावस्थाएँ तथा उनका उपचार

यशस्तिलक में हाथियों की सात मदावस्थाओं का वर्णन किया गया है—

(१) सजाततिलका, (२) आर्द्रकपोलका, (३) अधोनिबन्धिनी, (४) गन्ध-चारिणी, (५) क्रोधिनी, (६) अतिवर्तिनी, (७) सभिन्नमदमर्यादा ।^{५४}

संस्कृत टीकाकार ने इनके समर्थन में एक पद्य उद्धृत किया है ।^{५५} पालकाप्य के गजशास्त्र में किञ्चित् परिवर्तन के साथ उक्त नाम आये हैं तथा उनका विस्तार से वर्णन किया गया है ।^{५६} यशोधर महाराज के वसुमत्तिलक, पट्टवर्धन, उद्धताकुश, परचक्रप्रमर्दन, अहितकुलकालानल, चर्चरीवतस तथा विजयशेखर नामक गज क्रम से इन मदावस्थाओं में विद्यमान थे ।^{५७}

उपचार—मदावस्थाओं के उपचार के लिए यशस्तिलक में चिकित्सा का निम्नप्रकार बताया है—

(१) सोत्तालवृहण, (२) सचय, (३) व्यास्तार, (४) मुखवर्धन, (५) कटवर्धन, (६) कटशोधन, (७) प्रतिभेदन, (८) प्रवर्धन, (९) वर्णकर, (१०) गन्धकर, (११) उद्दीपन, (१२) ह्रासन, (१३) विनिवर्तन, (१४) प्रभेदन ।^{५८}

एक-एक मदावस्था के लिए क्रमशः दो-दो उपचार किये जाते थे ।

पालकाप्य ने गजशास्त्र में मद चिकित्सा के यही प्रकार बताये हैं ।^{५९}

गजशास्त्र-विशेषज्ञ आचार्य

गजशास्त्र के प्राचीन आचार्यों में सोमदेव ने इभचारी, याज्ञवल्क्य, वाङ्मिल

५४ यश० स० पू० पृ० ४६५

५५ सजाततिलकापूर्वा द्वितीयार्द्रकपोलका । तृतीयाधोनिबन्धा च चतुर्थीगन्धचारिणी ॥
पचमीक्रोधनी श्रेया षष्ठो चैव प्रधर्तिका । स्यात्सभिन्नकपोला च सप्तमी सर्वकालिका ॥
प्राहुः सप्तमदावस्था मदविज्ञानकोविदा ।—स० टी० पृ० ४६५

५६ गजशास्त्र पृ० ११६, श्लोक ८३ १०४

५७ यश० पू० पृ० ४६५

५८ पृ० ४६५

५९ बृहस्पै कवलैर्वृष्यैस्तथा सचयकारकैः । विस्तारकारकैश्चान्यैर्मुखवर्धनकरैः ॥
करवृद्धिकरैर्योगैः कटवृद्धिकरैरपि । प्रभेदनैर्बन्धनैश्च गन्धवर्णकरैस्तथा ॥
दोषात्पादनकैः पिण्डैर्जातिधास्वनुसारतः । गजानुपचरेद्राजा प्रथलादन्नपानकैः ॥

—गजशास्त्र, पृ० १२४, श्लोक १३-१५

(बाहलि), नर, नारद, राजपुत्र तथा गौतम का उल्लेख किया है।^{६०} इभचारी से प्रयोजन सभवतया पालकाप्य से है। पालकाप्य के चरित मे गजो के साथ में सचरण की विशेषता का उल्लेख किया गया है।^{६१} नीलकठ ने मातगलीला में एक आचार्य को 'मातगचारी' कहा है (श्लो० ५), सभवतया वहाँ भी नीलकठ का प्रयोजन पालकाप्य से ही है।

सोमदेव ने यशोधर को गजविद्या में रोमपाद की तरह कहा है (रोमपाद इव गजविद्यामु, २३६)। अग नरेश रोमपाद को पालकाप्य ने हस्त्यायुर्वेद की शिक्षा दी थी। हस्त्यायुर्वेद में इस प्रसंग का विस्तृत वर्णन है।^{६२}

गज परिचारक

गज-परिचारको में सोमदेव ने निम्नलिखित पाँच का उल्लेख किया है—

- (१) अमृतगराधिप या गज वैद्य (२९१),
- (२) महामात्र (३३३ हि०),
- (३) अनीकस्य (३३३ हि०),
- (४) आधोरण (३०) तथा
- (५) हस्तिपक या लेसिक (४५ उक्त०)।

गज शिक्षा

गजो को गजशिक्षाभूमि में (करिविनयभूमिषु, ४८२) ले जाकर शिक्षित किया जाता था। सोमदेव ने इसका विस्तार से वर्णन किया है (४८२ से ४९१)।

गज-दर्शन और उसका फल

सोमदेव ने लिखा है कि गजशास्त्र के अनुसार ब्रह्मा ने साम पदो का गायन करते हुये गरीश के मुँह की आकृति वाले गजो का निर्माण किया था। अतएव जो राजा ब्रह्मपुत्र गजो का पूजन-दर्शन करता है उसकी केवल युद्ध में विजय ही नहीं होती, प्रत्युत वह निश्चय ही सार्वभौम राजा होता है। इसलिए साम से उत्पन्न, शुभ लक्षण युक्त, दिव्यात्मा, समस्त देवो के निवासस्थान, कल्याण, मगल और महोत्सव के कारण गजश्रेष्ठ को नमस्कार हो, यह कहकर नमस्कार करे।

६०. इभचारियाश्वस्वथवाद्धलिनरनारदराजपुत्रगौतमादिमहामुनिप्रणीतमतगजेतिह्य।

—यश० पृ० २६१

६१. दीर्घकालतपोवीर्यान्मौनमास्थायसुव्रत । चरिष्यति गजै सार्धम् .।

—गजशास्त्र, पृ० १३, श्लो० ७९

६२. हस्त्यायुर्वेद, आनन्दाश्रम सीरिज २६, मातगलीला १०

उषःकाल में जागे हुए प्रसन्न इन्द्रिय और शरीर वाले गज का प्रातःकाल दर्शन करने से, सूर्य के दर्शन की तरह दुःस्वप्न, दुष्टग्रह तथा दुष्टचेष्टा का नाश होता है। जो नृप यज्ञ-दीक्षित तथा जिसके कानों में मन्त्रोच्चार किया गया है, ऐसे गज की पूजा करते हैं, उनके मगल को तथा शत्रु के नाश को गज अपने मद, वृंहित, कान्ति, चेष्टा तथा छाया इत्यादि के द्वारा व्यक्त करता है (पृ० २९९ से ३०१)।

मजशास्त्र के कतिपय अन्य विशिष्ट शब्द

वल्लिका (३०, ५००)	= लोहे की सांकल
वाहरिका (३०)	= पिछाड़ी लगाने की खूँटी
आलानस्तभ (३०)	= हाथी को बाँधने का खभा
अर्गला (३१)	= आगर (लबी लकड़ी)
निकाच (३१)	= शरीर बाँधने की रस्सी
दमकलोक (४८५)	= गज शिक्षक
स्थापना (४८५)	= गज शिक्षा के समय की गयी एक विशिष्ट विधि
वीत (५००)	= अकुश का बार
सृणि (५००)	= अंकुश
वश (५०१)	= हाथी दौड़ने का मैदान, प्रभाव भूमि
कल्पना (५०५)	= खीसो का मढना, इसे ही कोशारोपण भी कहते हैं (५०६)।

दान (५०३)	= मद
हस्त (४८४, ५०३)	= सूँड, इसे कर भी कहते हैं (२८)।
वमुथु (२७)	= सूँड के द्वारा उछाले गये जल कण

यशस्तिलक में हाथी के निम्नलिखित नाम आये हैं—

- (१) हस्ती (३०४, ३०२, २६८, ४९७)
- (२) गज (२९०, २९९, ३०२, ३०५, ३०६, ३०७, ४८२, ४८४, ४८८, ४९१, ४९७, ४९९, ५००, ५०१, ५०६)
- (३) नाग (२८८)
- (४) मातग (३०४)
- (५) कुजर (४९१, ४९४, ५०५)
- (६) करि (२९, २१४, २५३), ३००, ३०१, ३०३, ३०५, ३०६, ४८२, ४८९, ४९६, ४९७, ४९८, ५०१, ५०५, ५०६

- (७) इभ (४९७, ४९९, ५०३)
 (८) मतगज (३०६)
 (९) वारणा (२९९, ३०२, ३०४, ४९७)
 (१०) द्विरद (२९, ४८५, ४९५, ४९८)
 (११) द्विप (२९, ४८६)
 (१२) मृग (४९४)
 (१३) सामज (३१, ३५३, ४८४, ४८६, ४८८, ४९१)
 (१४) सिन्धुर (३०४)
 (१५) करटी (१७, ४९, ३०१, ४९९)
 (१६) वेदण्ड (२६१, ४९४)
 (१७) सकीर्णा (४९४)
 (१८) स्तम्बेरम (५०५)
 (१९) कुजर (४९१, ४६४, ५०५)
 (२०) रदनि (४९८)
 (२१) कुभी (५०३)
 (२२) भद्र (४६२)
 (२३) मन्द (४९३)
 (२४) शुण्डाल (३०५)
 (२५) सारग (३४९)
 (२६) वामन (१९६ उत्त०)
 (२७) दन्ति (१९४ उत्त०)

इनमें से निम्नलिखित पन्द्रह नाम हस्त्यायुर्वेद में भी आये हैं—

- (१) हस्ती, (२) दन्ति, (३) गज, (४) नाग, (५) मातग, (६) कुजर,
 (७) करि, (८) इभ, (९) मतगज, (१०) वारणा, (११) द्विरद, (१२) द्विप,
 (१३) मृग, (१४) सामज, (१५) अनेकप ।

द३. हस्ती दस्ती गजो नागो मातग कुजर करी ।

इभो मतगजश्चैव वारणो द्विरदद्विप ॥

मृगोऽथ सामजश्चैव तथा चानेकप स्मृत ।

इति पंचदशैतानि नामान्युक्तानि पण्डितै ॥

—हरत्यायुर्वेद, पृ० ४५३, श्लो० ३८, १६

अश्व-विद्या

पट्टवन्व उत्सव के उपरान्त महाराज यशोधर के समक्ष विजयवैनतेय नामक अश्व उपस्थित किया गया। इस अश्व के वर्णन में अश्वशास्त्र विषयक पर्याप्त जानकारी दी गयी है। शालिहोत्र नामक अश्वसेना-प्रमुख इस अश्व का वर्णन निम्नप्रकार करता है—

राजन्, आश्चर्यजनक शौर्य द्वारा समस्त शत्रुसमूह को जीतने वाले अश्व-विद्याविदो की परिषद् ने तत्रभवान् देव के योग्य अश्व के विषय में इस प्रकार कहा है—यह अश्व आपके ही सदृश सत्त्व से वासव, प्रकृति से सुभगालोक, सस्थान से सम, द्वितीय दशा को प्राप्त, दशो दशाओ का अनुभव करने वाला, छाया से पार्थिव, बल से वरीयास, अनूक से कठीरव, स्वर से समुद्रघोष, कुल से काम्बोज, जब (वेग) में वाजिराज, आपके यश की तरह वर्ण में श्वेत, चित्त की तरह बालधि (पूँछ) में रमणीय, कीर्तिकुलदेवता के कुतलकलाप की तरह केसर में मनोहर, प्रताप की तरह ललाट, आसन, जघन, वक्ष और त्रिक में विशाल, मयूर-कण्ठ की तरह कन्धरा में कान्त, गज-कुभार्ध की तरह शिर में परार्ध्यं, वटवृक्ष के सिकुड़े हुए छद्म पृष्ठ की तरह कानो से कमनीय, हनु (चिबुक), जानु, जघा, वदन और घोणा (नासिका) में उल्लिखित की तरह, स्फटिकमणि द्वारा बने हुए की तरह आँखों में सुप्रकाश, सूक, श्रोष्ठ और जिह्वा में कमलपत्र की तरह तलिन (पतला), आपके हृदय की तरह तालु में गम्भीर, अन्तरास्य (मुखमध्य) में कमलकोश की तरह शोभन, चन्द्रमा की कलाओ से बने हुए के समान दशानो (दाँतो) में सुन्दर, कुचकलश की तरह स्कन्ध में पीवर, कृपीट में वीरपुरुष के जटाजूट की तरह उद्बद्ध, निरन्तर जवाम्यास के कारण सुविभक्त शरीर, गधे के अवलीक (रेखा रहित) खुरो की आकृति वाली टापो द्वारा गमनकाल में रजस्वला (धूल युक्त) पृथ्वी को न छूते हुए की तरह, अमृतसिन्धु में प्रतिबिम्बित पूर्ण-चन्द्र की तरह नितिलपुण्ड्र (ललाटतिलक) के द्वारा सम्पूर्णां पृथ्वीमण्डल में सम्राट के एक छत्र राज्य की घोषणा करते हुए के समान, उचित प्रदेश में आश्रित अहीन, अविच्छिन्न, अविचलित, प्रदक्षिणा वृत्तियों के द्वारा, देवमणि, निश्रेणी श्रीवृक्ष, रोचमान आदि आवर्तों के द्वारा तथा शुक्ति, मुकुल, अवलीढ आदि के द्वारा सम्राट की कल्याण-परम्परा को व्यक्त करते हुए के समान, इसी प्रकार यह विजयवैनतेय नामक अश्व अन्य लक्षणों के द्वारा दशो क्षेत्रों में प्रशस्त है।

इस विवरण के बाद वाजिविनोदमकरन्द नामक बन्दी ने अश्वप्रशसापरक अठारह पद्य पढ़े। सम्पूर्णां सामग्री का तुलनात्मक विश्लेषण निम्नप्रकार है—

अश्व के गुण

सोमदेव के अनुसार अश्व के निम्नलिखित गुणों की परीक्षा करनी चाहिए—

(१) सत्त्व, (२) प्रकृति, (३) सस्थान, (४) वय, (५) आयु, (६) दशा, (७) छाया, (८) बल, (९) अतूक, (१०) स्वर, (११) कुल, (१२) जव (वेग), (१३) वर्ण, (१४) तनुरुह (रोमराशि), (१५) पृष्ठ, (१६) बालधि (पूँछ), (१७) केसर, (१८) ललाट, (१९) आसन, (२०) जघन, (२१) वक्ष, (२२) त्रिक, (२३) कन्वरा, (२४) शिर, (२५) कर्ण, (२६) हनु (चिबुक), (२७) जानु, (२८) जघा, (२९) वदन, (३०) घोणा (नासिका), (३१) लोचन, (३२) सृक, (३३) ओष्ठ, (३४) जिह्वा, (३५) तालु, (३६) अन्तरास्य; (३७) दशन, (३८) स्कन्ध, (३९) कृपीट (पेट), (४०) गात्र, (४१) शफ (टाप या खुर), (४२) पुण्ड्र, (४३) आवर्त ।

उत्तम अश्व में ये गुण विजयवैनतेय के उपर्युक्त विवरण के अनुसार प्रशस्त होने चाहिए । अश्वशास्त्र में भी इन्हीं गुणों की परीक्षा आवश्यक बतायी गयी है । ६४ अग्नि सोमदेव ने यह भी लिखा है कि उपर्युक्त गुणों में से अन्यत्र किंचित् दोष भी रहे तो भी यदि बाल, बालधि, तनुरुह, पृष्ठ, वक्ष, केसर, शिर, श्रवण वक्त्र, नेत्र, हृदय, उदर, कण्ठ, कोश, खुर, जानु और जव (वेग) में दोष नहीं हैं तथा आवर्त, छवि और छाया में शुभ है, तो ऐसा अश्व भी विजयकारक होता है । ६५

अश्वों के अन्य गुणों के विषय में सोमदेव के विवरण की तुलनात्मक जानकारी इस प्रकार है—

जव (वेग)—वाजिविनोदमकरद कहता है कि श्रेष्ठ वेगवाला अश्व जब चौकड़ी भरता है तो पहाड़ों को गेंद-सा, नदियों को नालियों-सा और समुद्रों को

६४ ओष्ठयोऽसृक्पिर्णश्चैव जिह्वाया दशनेषु च । वक्त्र तालु नि नासाया गण्डयो नेत्रयोस्तथा ॥
ललाटे मस्तके चैव केशकर्णपुटे तथा । त्रीवाया केसरे चापि स्कन्धे वक्षसि बाहुके ॥
जघाया जानुनोश्चाथ कूर्पे पादे तथैव च । पार्श्वयो पृष्ठभागे च कुक्षौ कट्या च बालधौ ॥
मेहने मुश्कयोश्चापि तथैवोखद्वयेऽपि च । आवर्ते च खुरे पुच्छे गतौ वर्णे स्वरे तथा ॥
महादोष त्यजेत् प्राज्ञश्छायाया गतिसत्वयो । प्रधानस्यैव वाहाना लक्षण तत्प्रतिष्ठितम् ॥

—अश्वशास्त्र, पृ० १८, श्लोक० ३७

६५. बालबालधितनुरुहपृष्ठे वंशकेसरशिर श्रवणेषु ।

वक्त्रनेत्रहृदयादरदेशे कण्ठकोशखुरजानुजवेषु ॥

अन्यत्र स्वल्पदोषोऽपि यद्येतेषु न दोषवान् । शुभावर्तं विच्छाद्यो ह्य स्याद्विजयोदय ॥

—यश० पृ० ३१२

तलैयो-सा लाघता जाता है। चारो दिशाएँ चार डगो में नप कर गोपुर-भांगन-सी निकट लगती हैं। घुडसवार खुद छोड़े बाण को भी घरती में गिरने के पूर्व ही पकड़ सकता है। लगता है जैसे घरती और पहाड़ उसकी टापो के साथ भागे जा रहे हो। ६६

वर्ण—मुक्ताफल, इन्दीवर, काचन, किजल्क (पराग), अजन, भृग, बालारुण, अशोक और शुक की तरह वर्ण वाले अश्व विजयप्रद होते हैं। ६७

ह्येषित—गज, सिंह, वृषभ, भेरी, मृदग, आनक और मेघ की ध्वनि के सदृश ह्येषित वाले अश्व उत्कर्ष योग्य माने जाते हैं। ६८

गन्ध—कमल, नीलकमल, मालती, घृत, मधु, दुग्ध तथा गजमद के समान जिन अश्वो के स्वेद, मुख और श्रोत्रो की गन्ध होती है, वे अश्व कामदुह होते हैं। ६९

६६. गिरयो गिरिकप्रख्या सरिता सारिणीसमा । भवन्ति लघने यस्य कासारा इव सागरा ॥
पता दिशश्चतस्रोऽपि चतुश्चरणगोचरा । स्यदे यस्य प्रजायन्ते गोपरागणसन्निभा ॥
प्राप्नुवन्ति जवे यस्य भूमावपतिता अपि । निषादिना पुराचिन्ता शल्यवाला करग्रहम् ॥
यस्य प्रवेगवेलाया सकाननधराधरा । धरणि खुरलग्नेव सार्धमध्वनि धावति ॥

—यश० पृ० ३११, ३१२

६७. मुक्ताफलेन्दीवरकांचनाभा किजल्कभिन्नाजनभृ गशोभा ।

बालारुणाशोकशुकप्रकाशारतुरङ्गमा भूमिसुजा जयेशा ॥—यश० पृ० ३१३

६८ गजेन्द्र कण्ठीरवतानकाना भेरीमृदगानकनीरदानाम् ।

समस्वरा स्वामिनि ह्येषितेन भवन्ति वाहा परमुस्सवेहा ॥—यश० पृ० ३१३।३-४

तुलना—गम्भीरस्तु महान्स्वर सुमधुर स्निग्धो घन सहत,

सिंहव्याघ्रगजेन्द्रदुदुभिधना कौचस्वराभ शुभ ।

येषा ते तुरग यशोऽर्थसुखदा सौभाग्यराज्यप्रदा,

सत्रामे विजय च तै सह शुभ सैन्य च संवर्धते ॥—अश्व० ४८।६

६९. नीरेजनीलोत्पलमालतीना सर्पिर्मधुक्षीरमदै समान ।

स्वेदे मुखे श्रोतसि येषु गन्धास्ते वाजिन कामदुहो नृपेषु ॥—यश० पृ० ३१३

तुलना—कमलकुसुमसर्पिश्च दनक्षीरगन्ध, दधिमधुकुटजाना चम्पकरयन्दनानाम् ।

अगुरुगजमदाना तद्वदेवार्जुनाना मधुसमयवनाना पुष्पिताना च गन्ध ॥

पुत्रागाशोकजातिसरसकुवलयो शौरपत्रात्रगन्धा,

पानोयप्रोक्षितोर्ध्वकुसुमितबकुलामोदिनो ये च वाहा ।

धन्या पुण्या मनोशाः सुतसुखधनदा मर्तुरानन्ददास्ते,

मागल्या पृजनीयाः प्रमुदितमनसो राजवाहास्तुरगा ॥—अश्व० ४६।२-३

अनूक (पुट्टे)—हंस, वानर, सिंह, गज और शार्दूल के समान पुट्टे वाले अश्व विजयप्रद होते हैं ।^{७०}

वृत्ति या पुण्ड्र—प्रपाण या कान के नीचे जो सफेद छपके होते हैं वे वृत्ति या पुण्ड्र कहलाते हैं । अश्वो में ध्वज, हल, कलश, कमल कुलिश (वज्र) अर्धचन्द्र, चक्र, तोरण तथा तरवारि के सदृश वृत्तियाँ या पुण्ड्र श्रेष्ठ माने जाते हैं ।^{७१}

समुद्र में प्रतिबिंबित चन्द्र के सदृश पुण्ड्र जिस अश्व के ललाट पर होता है, उस अश्व का स्वामी राजा होता है ।^{७२}

आवर्त—अश्वो के वक्ष, वाहू, ललाट, शफ (टाप), कर्णमूल तथा केशान्त (ग्रीवा के दोनो ओर) में शुक्ति की तरह के आवर्त प्रशस्त माने जाते हैं ।^{७३}

देवमणि, नि श्रेणी, श्रीवृक्ष, रोचमान, शुक्ति, मुकुल, अवलीढ आदि आवर्त होते हैं । ये अहीन, अविच्छिन्न, अविचलित और प्रदक्षिणा वृत्तिवाले होने पर अश्व

७० हंसप्लवगपचास्यद्विपशार्दूलसन्निभै । मिनद्रव क्षितीन्द्राणामानूकैर्विजयप्रदा ॥

—यश० पृ० ३१४

७१ ध्वजहलकलशकुशेशयकुलिशशाशांकार्धचक्रसमा ।

तोरणतरवारिनिभास्तुरगोऽङ्गजवृत्तयः श्रेष्ठा ॥—यश० पृ० ३४१

तुलना—प्रपाणोर्ध्वं तु कर्णाव श्वेत श्वेततर च यत् ।

तत् पुण्ड्रमिति विज्ञेय तस्य सस्थानत फलम् ॥

कमलदलकलशहलमुसलपनाकाध्वजांकुशादर्शा ।

श्रीवृक्षप्रशाखस्वस्तिकमृ गारवज्रनिभै ॥

चामरकूर्माष्टापदवेदोखड्गोपमै हया ।

पुण्ड्रैर्कथयन्ति जय भर्तु विभव पुत्राश्च पौत्रांश्च ॥—अश्व० ४३१

७२ अमृतजलनिधिप्रतिबिम्बितेन्दुमंवादिना नितिलपुण्ड्रकेण कथयन्तमिव

सकलायामिलायामवनिपालस्यैकातपत्रवर्यम् ।—यश० पृ० ३१०

तुलना—चन्द्रार्धचन्द्रदिनकरतारावद्द्योतते ललाटं तत् ।

यस्य तुरगस्य भवेत् तस्य स्वामी भवेद् राजा ॥—अश्व० ४४।१०

७३ वक्षसि बाह्वोरलिके शफदेशे कर्णमूलयोश्चैव ।

आवर्तास्तुरगाणा शस्ता केशान्तयोस्तथा शुक्ति ॥ —यश० पृ० ३१४

तुलना—आवर्त पूजितो नित्य शिरोमध्ये व्यवस्थित ।

स्थानमेक तु विज्ञेय स्थाने द्वे कर्णमूलयोः ॥—अश्व० २५, १४

श्रीवृक्षो वक्षसि प्रोक्तो ह्यावर्तै पंचभिर्भवेत् । अन्ये द्वे वक्षसि स्थाने चतुर्भिस्त्रिभिरेव च ॥

बाह्वो स्थानद्वय प्रोक्त तत्रावर्तद्वयं विदुः । द्वे चोपरन्ध्रयो स्थाने द्वौ स्थितौ रोमजौ तयो ॥

—अश्व० २५ २६, १६-१७

के स्वामी को कल्याणप्रद होते हैं ।^{७४} अश्वशास्त्र में आवर्तों का विस्तार से अलग-अलग फल बताया है (पृ० २६-२७) ।

कामकृत अश्व

जिन अश्वों का ललाट विशाल, मुँह आगे को झुका हुआ, चमड़ी पतली, आगे के पैर स्थूल, जघाएँ लम्बी, पीठ या बैठने का स्थान चौड़ा तथा पेट कृश होता है, वे अश्व इष्टफल देने वाले होते हैं ।^{७५}

वाहन योग्य अश्व

मेघ के सदृश वर्ण, मेघ के घोष के समान ह्वेषित, गज की क्रीडा की तरह गति, घृत की तरह गन्ध वाले तथा माला और विलेपनप्रिय अश्व वाहन योग्य होते हैं ।^{७६}

अश्व-प्रशस्ति

युद्ध रूपी गेद खेलने में आसक्त, शत्रुसैन्य को रोकने में परिघा के समान तथा समस्त पृथ्वीमण्डल के अवलोकन की दृष्टि वाले अश्व युद्धकाल में मनोरथ की सिद्धि करने वाले होते हैं ।

अन्यूनधिक देह (न अधिक छोटे न अधिक बड़े), सुषड शरीर, सुशिक्षित तथा अच्छी तरह कसे हुए घोड़े वाञ्छित फल देने वाले होते हैं ।

७४ अहीनाविच्छिन्नाविचलितप्रदक्षिणवृत्तिभिर्देवमखिनि श्रेणिश्रीवृत्तरोचमानादिनामभिरावर्तैः शुक्तिमुकुलावलीढकादिभिश्च तद्विशेषैराश्रितोचितप्रदेशम् ।

—यश० पृ० ३१०

तुलना—आवर्तशुक्तिमघातमुकुलान्वयलीढकम् ।

शतपादी पादुकार्धपादुका चाष्टमी स्मृता ॥

आवर्तार्कतयश्चैता अष्टौ सपरिक्रीतिना ।—अश्वशा० २३।१-२

पते स्वस्थानस्था प्रदक्षिणा सुप्रभा शस्ता ।

एतैर्विनातुरंग स्वल्पायु पापलक्षणस्त्वशुभ ॥—वही, ३४।८

अहीन = शस्ता, अविचलिन = स्वस्थानस्थ, अविच्छिन्न = सुप्रभा

७५. विशालमाला बहिरानतास्या सूक्ष्मत्वचः पीवरबाहुदेशा ।

सुदीर्घजघा पृथुपृष्ठमध्यास्तनूदरा कामकृतास्तुरगा ॥—यश० पृ० ३१४

७६. जीमूतकान्तिर्धनघोषहेषा करीन्द्रलीलागतिराज्यगन्ध ।

प्रिय पर माल्यविलेपनानामारोहणार्हस्तुरगो नृपस्य ॥—वही, पृ० ३५५

तुलना—जीमूतवर्णा धनघोषहेषी मध्वाज्यगन्धो गजहसगामी ।

प्रियश्च माल्यस्य विलेपनस्य सोऽप्यश्वराजो नृपवाहन स्यात् ॥

—अश्व० १०६।३६

जिस राजा के एक भी प्रशस्त अश्व होता है, युद्ध में उसकी विजय सुनिश्चित है, उसी के राज्य में समय पर पानी बरसता है और उसी के राज्य में प्रजा के धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पुरुषार्थ सघते हैं ।

जिस राजा के श्रेष्ठ अश्व होते हैं उसके लिए यह धरती उस स्त्री के समान है जिसके कुलाचल कुच हैं, समुद्र नितब, नदियाँ भुजाएँ तथा राजधानी मुख है ।^{७७}

अश्व के लिए यशस्तिलक में निम्नलिखित शब्द आये हैं—

- (१) गन्धर्व (पृ० १२),
- (२) तुरग (पृ० २९, ३१४, ३१५),
- (३) तुरगम (पृ० ३१३, ३१४, ३१६),
- (४) अश्व (पृ० ३२),
- (५) वाहा (पृ० ७०, ३१३),
- (६) वाजि (पृ० १८६, ३१३ उक्त०)
- (७) मितद्रव (पृ० ३१४),
- (८) अर्वन्त (पृ० ३०७),
- (९) हय (पृ० ३१२, ३१५),
- (१०) जुहुराण (पृ० २१४) ।

अश्वचालक या घुडसवार को अभिषादी कहते थे (पृ० ३१२) ।

अश्वविद्याविद्

सोमदेव ने यशोधर को अश्वविद्या में रैवत के समान कहा है ।^{७८} ऊपर लिखा जा चुका है कि रैवत अश्वविद्या-विशेषज्ञ माने जाते थे । इसीलिए

- ७७ कदनकन्दककेलिविलाभिन परबनस्खलने परिघ हया ।
 मकलभूवलयेक्षणवृष्टय समरकालमनोरथसिद्धय ॥
 अन्धूनाधिकदेहा समसु विभक्ताश्च वर्णभि सर्वे ।
 सघतघनांगबन्धा कृतविनया कामदास्तुरगा ॥
 जय' करे तस्य रयोपु राश. काने पर वर्षति वासवश्च ।
 धर्मार्थकामाभ्युदय प्रजानामेकोऽपि यस्यास्ति हय प्रशस्त ॥
 कुलाचलकुचाम्भोधिनितम्बा वाहिनी भुजा ।
 धरा पुरानना स्त्रीव तस्य यस्य तुरंगमा ॥

—यश० पृ० ३१५, ३१६

७८. रैवत इव हयनयेषु, वही, पृ० २३६

सोमदेव ने यशोधर को अश्वविद्या में रैवत के समान कहा है। यशस्तिलक के दोनो टीकाकारो ने रैवत को सूर्य का पुत्र बताया है। मार्कण्डेयपुराण में भी रैवत या रैवन्त को सूर्य और वडवा का पुत्र कहा है (७५।२४) तथा गुह्यक मुख्य और अश्ववाहक बताया है। अश्वकल्याण के लिए रैवत की पूजा भी की जाती है (जयदत्त—अश्व-चिकित्सा, विव० इडिका १८८६,७, पृ० ८५-६)।

अश्वविद्या-विशेषज्ञो में सोमदेव ने शालिहोत्र का भी उल्लेख किया है (१७३ हि०)। शालिहोत्रकृत एक सक्षिप्त रैवतस्तोत्र प्राप्त होता है (तजोर ग्रन्थागार, पुस्तक सूची, पृ० २०० बी तथा कीथ का इडिया आफिस केटलाग पृ० ७५८)।^{७९}



कृषि तथा वाणिज्य आदि

यशस्तिलककालीन भारतवर्ष आर्थिक दृष्टि से पर्याप्त समृद्ध था। जिस प्रकार साहित्य और कला के क्षेत्र में उस युग में प्रगति हुई, उसी प्रकार आर्थिक जीवन में भी। सोमदेव ने कृषि, वाणिज्य, सारथवाह, नौसन्तरण और विदेशी व्यापार, विनिमय के साधन, न्यास इत्यादि के विषय में पर्याप्त जानकारी दी है। संक्षेप में उसका परिचय निम्नप्रकार है—

कृषि

कृषि के लिए अच्छी और उपजाऊ जमीन, सिंचाई के साधन, सहज प्राप्य श्रम और साधन आवश्यक हैं^१। सोमदेव ने यौघेय जनपद का वर्णन करते हुए लिखा है कि वहाँ की जमीन काली थी।^२ सिंचाई के लिए केवल वर्षा के पानी पर निर्भर नहीं रहना पड़ता था।^३ श्रमिक भी सहज रूप में उपलब्ध हो जाते थे। कुछ श्रमिक ऐसे होते थे जो अपने-अपने हल इत्यादि कृषि के औजार रखते थे तथा बुलाये जाने पर दूसरों के खेत जोत-बो जाते थे। सोमदेव ने ऐसे श्रमिकों के लिए समाश्रित प्रकृति पद का प्रयोग किया है।^४ श्रुतसागर ने इसका अर्थ अठारह प्रकार के हलजीवी किया है। इस प्रकार के हलजीवियों की कमी नहीं थी।^५

खेती करने में विशेषज्ञ व्यक्ति क्षेत्रज्ञ कहलाता था और उसकी पर्याप्त प्रतिष्ठा भी होती थी।^६ कृषि की समृद्धि का एक कारण यह भी था कि सरकारी लगान उतना ही लिया जाता था जितना कृषिकार सहज रूप में दे सके।^६ यही सब कारण थे कि कृषि की उपज पर्याप्त होती थी और वसुध्वरा पृथ्वी चिन्तामणि के

१ कृष्णमूमय ।—पृ० १३

२ अदेवमातृका ।—वही । सुलमजलः ।—वही

३ समाश्रितप्रकृतयः ।—वही

४. हलबहुलः ।—वही

५. क्षेत्रज्ञप्रतिष्ठा ।—वही

६ भर्तृ करसंवाधसहाः ।—पृ० १४

समान शस्य सम्पत्ति लुटाती थी ।^७ इतनी उपज होती थी कि बोये हुए खेत की लुनाई करना, लुने धान्य की दौनी करना और दौनी किये धान्य को बटोर कर संग्रह करना मुश्किल हो जाता था ।^८

खेत में बीज डालने को वृत्त कहा जाता था । पके खेत को काटने के लिए लवन कहते थे तथा काटी गयी धान्य की दौनी करने को विगाढना कहा जाता था ।

पर्याप्त धान्य से समृद्ध प्रजा के मन में ही यह विचार सम्भव था कि हमारी यह पृथ्वी मानो स्वर्ग के कल्पद्रुमों की शोभा को लुट रही है ।^९

अनुपजाऊ जमीन ऊपर कहलाती थी । जैसे भूखों को तत्त्व का उपदेश देना व्यर्थ है, उसी प्रकार ऊपर जमीन को जोतना, बोना और उसमें पानी देना व्यर्थ है ।^{१०}

वाणिज्य

वाणिज्य की व्यवस्था प्रायः दो प्रकार की होती थी—स्थानीय तथा जहाँ दूर-दूर तक के व्यापारी जाकर घघा करें ।

स्थानीय व्यापार के लिए हर वस्तु का प्रायः अपना-अपना बाजार होता था । केसर, कस्तूरी आदि सुगन्धित वस्तुएँ जिस बाजार में विकती थी वह सौगन्धियों का बाजार कहलाता था ।^{११} वास्तव में यह बाजार का एक भाग होता था, इसलिए इसे विपणि कहते थे । इस बाजार में केसर, चन्दन, अगुरु आदि सुगन्धित वस्तुओं का ही लेन-देन होता था ।^{१२}

जिस बाजार में माली पुष्पहार बेचते थे, उसे सोमदेव ने स्रग्-जीवियों का

७ वपत्रचेत्रसजातसस्यसपत्तिबधुरा ।

चित्तामणिसमारभा सन्ति यत्र वसुधरा ॥—पृ० ३६

८ लवने यत्र नोप्तस्य लूनस्य न विगाहने ।

विगाढस्य च धान्यस्य नाल संग्रहणे प्रजा ॥—पृ० १६

९ प्रजाप्रकामसस्याढ्याः सर्वदा यत्र भूमय ।

मुष्णन्तीवाभरावासकरूपद्रुमवनश्रियम् ॥—पृ० १६८

१० यद्भवन्मुग्धबोधानामृषरे कृषिकर्मवत् ।—पृ० २८२ उक्त०

११ नौगन्धिकानां विपणिविस्तारेण ।—पृ० १८ उक्त०

१२ परिवर्तमानकाश्मीरमलयजागुरुपरिमलोद्गारसारेणु ।—वहाँ

आपण कहा है ।^{१३} स्रग्जीवी मालाएँ हाथो में लटका-लटकाकर ग्राहको को अपनी ओर आकृष्ट करते थे ।^{१४}

बाजार प्रायः आम रास्तो पर ही होते थे । सोमदेव ने लिखा है कि सायकाल होते ही राजमार्ग खचाखच भर जाते थे ।^{१५} भीड में कुछ ऐसे नागरिक होते थे, जो रात्रि के लिए सभोगोपकरणो का इन्तजाम करने उत्साहपूर्वक इधर-उधर घूम रहे होते ।^{१६} कुछ रूप का सौदा करने वाली वारविलासिनियाँ घमण्डपूर्वक अपने-हाव-भाव प्रदर्शित करती हुई कामुको के प्रश्नो की उपेक्षा करती टहल रही होती ।^{१७} कुछ ऐसी दूतियाँ जिनके हृदय अपने पतियो द्वारा सुनायी गयी किसी अन्य स्त्री के प्रेम की घटना से दुःखी होते, अपनी सखियो की बातो का उत्तर दिये बिना ही चहलकदमी कर रही होती ।^{१८}

पैण्ठास्थान

व्यापार की बड़ी-बड़ी मडियाँ पैण्ठास्थान कहलाती थी । पैण्ठास्थानो में व्यापारियो को सब प्रकार की सुविधाओ का प्रबन्ध रहता था । यहाँ दूर-दूर तक के व्यापारी आकर अपना घन्घा करते थे । सोमदेव ने एक पैण्ठास्थान का सुन्दर वर्णन किया है । उस पैण्ठास्थान में अलग-अलग अनेक दुकानें बनायी गयी थी । सामान की सुरक्षा के लिए बड़ी-बड़ी खोड़ियाँ या स्टोर हाउस थे । पोखरो के किनारे पशुधन की व्यवस्था थी । पानी, अन्न, ईन्धन तथा यातायात के साधन सरलता से उपलब्ध हो जाते थे । सारा पैण्ठास्थान चार मील के घेरे में फैला था । चारो ओर सुरक्षा के लिए अहाता और खाई थे । आने-जाने के लिए निश्चित दरवाजे और मुख्य द्वार थे । सैनिक सुरक्षा का समुचित प्रबन्ध था । हर गली में प्याऊ, भोजनालय, सभाभवन पर्याप्त थे । जुआड़ी, चोर-चपाटो और बदमाशो पर

१३ स्रगाजीविनामापणरंगभागेषु ।—पृ० १८ उ०

१४ करविलवितकुसुमसरसौरभसुमगेषु ।—वही

१५ समाकुलेषु समन्ततो राजवीथिमयटलेषु ।—वही

१६ ससभ्रममितस्तत परिसर्पता सभोगोपकरणाहितादरेण पौरनिकरेण ।—वही

१७ निजविलासदर्शनाहकारिमनोरथाभिरवधीरितवितमुधाप्रश्नसकथामि पण्यागना-समितिभि ।—पृ० १६ उक्त०

१८ आत्मपतिसंदिष्टघटनाकुलुतदृदयेनावधीरितसखीजनसभापयोत्तरदानसमयेनसच-रिता सचारिकानिकायेन ।—वही

खास निगाह थी कि वे भीतर न आने पायें। शुल्क भी यथोचित लिया जाता था। नाना देशों के व्यापारी वहाँ व्यापार के लिए आते थे।^{१९}

यह पैण्ठास्थान श्रीभूति नामक एक पुरोहित द्वारा संचालित था और उसकी व्यक्तिगत सम्पत्ति प्रतीत होता है, किन्तु प्राचीन भारत में राज्य द्वारा इस प्रकार के पैण्ठास्थानों का संचालन होता था। स्वयं सोमदेव ने नीतिवाक्यामृत में लिखा है कि न्यायपूर्वक रक्षित पिण्ठा या पैण्ठास्थान राजाओं के लिए कामधेनु के समान हैं।^{२०} नीतिवाक्यामृत के टीकाकार ने पिण्ठा का अर्थ 'शुल्क-स्थान' किया है तथा शुक्राचार्य का एक पद्य उद्धृत किया है कि व्यापारियों से शुल्क अधिक नहीं लेना चाहिए और यदि पिण्ठा से किसी व्यापारी का कोई माल चोरी चला जाये तो उसे राजकीय कोष से भरना चाहिए।^{२१}

सोमदेव ने पिण्ठा को पण्यपुटभेदिनी कहा है। टीकाकार ने इसका अर्थ वणिगों की कुकुम, हिंगु, वस्त्र आदि वस्तुओं को संग्रह करने का स्थान किया है।^{२२} यशस्तिलक के विवरण से ज्ञात होता है कि पैण्ठास्थान व्यापार के बहुत बड़े साधन थे और व्यापारिक समृद्धि में इनका महत्त्वपूर्ण योगदान था।

सार्थवाह

यशस्तिलक में सार्थवाह के लिए सार्थ (१६), सार्थपार्थिव (२२५ उक्त०) तथा सार्थानोक (२९३ उक्त०) शब्द आये हैं। समान या सहयुक्त अर्थ (पूँजी) वाले व्यापारी जो बाहरी मंडियों से व्यापार करने के लिए टाडा बाँधकर चलते थे,

१६ स किल श्रीभूतिविश्वासरसनिष्कतया परोपकारनिष्कतया च विभक्तानेकापवरकर-
चनाशालिनीभिर्मदाभाण्डवाहिनीभिर्गाशालोपशल्याभिः कुल्याभिः समन्वितम्,
अनिसुलभजलयसेन्धनप्रचारम्, भाण्डनारम्भोज्झटभीरपेटकपत्तरवासारम्, गोरुत-
प्रमाणवप्रभाकारप्रतोलिपरिखास्रत्रितत्राय प्रपासत्रसभासनाथवीथिनिवेशन पण्यपुट-
भेदन विदूरित कितवनिटविदूषकभीठमदावस्थान पैण्ठास्थान विनिर्माप्य नाना-
दिग्देशोपसर्पणयुजां वणिजां प्रशान्तशुल्कभाटकभागहारव्यवहारमचीकरत् ।

—पृ० ३४५ उक्त०

२०. न्यायेनरक्षिता पण्यपुटभेदिनि पिण्ठा राज्ञां कामधेनुः ।—नीति० १६।२१

२१ तथा च शुक्रः — ग्राह्यं नैवाधिकं शुल्कं चौरैर्यद्वाहृतं भवेत् ।

पिण्ठाया भुभुजा देय वणिजा तत् स्वकोशतः ॥ वही, टीका

२२. पण्यानि वणिगजनानां कुकुमहिंगुवस्त्रादीनि क्रयाणकानि तेषां पुटाः स्थानानि भिद्यन्ते यस्यां सा पण्यपुटभेदिनी । —वही, टीका

सार्थ कहलाते थे । उनका नेता ज्येष्ठ व्यापारी सार्थवाह कहलाता था ।^{२३} इसका निकटतम अंगरेजी पर्याय 'कारवान लीडर' है । हिन्दी का सार्थ शब्द सस्कृत के सार्थ से ही निकला है, किन्तु उसका वह प्राचीन अर्थ लुप्त हो गया है । प्राचीन-काल में यात्रा करना उतना निरापद नहीं था, जितना अब हो गया है । डाकुओं और जगली जानवरों से घनघोर जगल भरे पडे थे, इसलिए अकेले-दुकेले यात्रा करना कठिन था । मनुष्य ने इस कठिनाई से पार पाने के लिए एक साथ यात्रा करने का निश्चय किया, और इस तरह किसी सुदूर भूत में सार्थ की नींव पडी । बाद में तो यह दूर के व्यापार का एक साधन बन गया ।^{२४}

सार्थवाह का कर्तव्य होता था कि वह सार्थ की सुरक्षा करते हुए उसे गन्तव्य स्थान तक पहुँचाए । सार्थवाह कुशल व्यापारी होने के साथ-साथ अच्छा पथ-प्रदर्शक भी होता था । आज भी जहाँ वैज्ञानिक साधन नहीं पहुँच सके हैं, वहाँ सार्थवाह अपने कारवा वैसे ही चलाते हैं, जैसे हजार वर्ष पहले । कुछ ही दिनों पहले शिकारपुर के साथ (सार्थके लिए सिन्धी शब्द) चीनी तुर्किस्तान पहुँचने के लिए काराकोरम को पार करते थे और आज दिन भी तिब्बत का व्यापार सार्थों द्वारा होता है ।^{२५}

प्राचीन काल में कोई एक उत्साही व्यापारी सार्थ बनाकर व्यापार के लिए उठता था । उसके सार्थ में और भी लोग सम्मिलित हो जाते थे । इसके निश्चित नियम थे । सार्थ का उठना व्यापारिक क्षेत्र की बडी घटना होती थी । धार्मिक यात्रा के लिए जिस प्रकार सघ निकलते थे और उनका नेता सघपति (सघवई, सप्रवी) होता था, वैसे ही व्यापारिक क्षेत्र में सार्थवाह की स्थिति थी । डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने लिखा है कि भारतीय व्यापारिक जगत् में जो सोने की खेती हुई उसके फूले पुष्प चुनने वाले सार्थवाह थे । बुद्धि के घनी, सत्य में निष्ठावान्, साहस के भण्डार, व्यापारिक सूक्ष्म-दूक्ष में पगे, उदार, दानी, धर्म और सस्कृति में रुचि रखने-वाले, नयी स्थिति का स्वागत करने वाले, देश-विदेश की जानकारी के कोष, यवन, शक, पल्लव, रोमक, ऋषिक, हूण आदि विदेशियों के साथ कन्धा रगडने वाले, उनको भाषा और रीति-नीति के पारखी भारतीय सार्थवाह महोदधि के तट पर स्थित ताम्रलिप्ति से सीरिया की अन्ताखी नगरी तक यवद्वीप-कटाहद्वीप (जावा

२३ समानधनचारित्रैर्वणिक्पुत्रैः । - पृ० ३४५ उक्त०

तुलना- सार्थान् सधनान् सरतो वा पान्थान् वदति सार्थवाह* ।

- अमरकोष ३।६।७८ स० टी०

२४ अग्रवाल - सार्थवाह, प्रस्तावना, पृ० २

२५ मोतीचन्द्र - सार्थवाह, पृ० २६

और वेडा) से चौलमण्डल के सामुद्रिक पट्टनो और पश्चिम में यवन, बर्बर देशो तक के विशाल जल, थल पर छा गये थे ।^{२६}

यशस्तिलक में सुवर्णद्वीप और ताम्रलिप्ति के व्यापार का उल्लेख है। पद्मिनी-खेटपट्टन का निवासी भद्रमित्र अपने समान धन और चारित्र वाले वणिकपुत्रो के साथ सुवर्णद्वीप गया। वहाँ उसने बहुत धन कमाया और मनोवाञ्छित सामग्री लेकर लौट पडा। रास्ते में दुर्दैव से असमय में ही समुद्र में तूफान आ गया और उसका जहाज डूब गया। आयु शेष होने के कारण वह अकेला जिन्दा बच गया और एक फलक के सहारे जैसे तैसे पार लगा।^{२७}

दूसरी कथा में पाटलिपुत्र के महाराज यशोध्वज के लडके सुवीर ने घोषणा की कि जो कोई ताम्रलिप्ति पत्तन के सेठ जिनेन्द्रभक्त के सतखण्डा महल के ऊपर बने जिन-भवन में से छत्रत्रय के रूप में लगे अद्भुत वैडूर्य मणियो को ला देगा, उसे मनोभिलपित पारितोषिक दिया जायेगा। सूर्य नाम का एक व्यक्त साधु का वेप बना कर जिनदत्त के यहाँ पहुँचा और एक दिन वहाँ से रत्न चुराकर भाग निकला।^{२८}

इसी कथा के अन्तर्गत जिनभद्र की विदेश-यात्रा का भी उल्लेख है। सोमदेव ने इसे बहित्रयात्रा कहा है। जिनभद्र बहित्रयात्रा के लिए जाना चाहता था। घर किस के भरोसे छोडे, यह समस्या थी। अन्त में वह उसी सूर्य नामक छद्म वेपधारी साधु पर विश्वास करके उसके जिम्मे सब छोडकर विदेश यात्रा के लिए चल देता है।^{२९}

अमृतमति का जीव एक भव में कलिंग देश में भैसा हुआ। किसी सार्थवाह ने उसके सुन्दर और मजबूत शरीर को देखकर खरीद लिया और अपने सार्थ के साथ उज्जयिनी ले गया।^{३०}

सोमदेव ने लिखा है कि यौधेय जनपद की कृषक बधुएँ अपनी नटखट चाल और नाना विलासो के द्वारा परदेशी सार्थो के नेत्रो को क्षण भर के लिए सुख देती हुई खेतो में काम करने चली जाती थी।^{३१}

२६ अग्रवाल, वही पृ० २

२७ यरा० पृ० ३४५ उक्त०

२८ वही, पृ० ३०२ उक्त०

२९. वही

३०. पृ० २२५ उक्त०

३१ पृ० १६

चम्पापुर के प्रियदत्त श्रेष्ठी की रूपसी कन्या विपत्ति की मारी शंखपुर के निकट पर्वत की तलहटी में पहुँची। वहाँ पुष्पक नाम के वणिक्-पति का सार्थ पडाव ढाले था। पुष्पक कन्या के रूय-सौन्दर्य को देखकर मोहित हो गया। अनेक तरह के लोभ देकर उसे वश में करने लगा, किन्तु जब वश में नहीं हुई तो अयोध्या में लाकर एक वेदया को दे दिया।^{३२}

जिस तरह भारतीय सार्थ विदेशी व्यापार के लिए जाते थे उसी तरह विदेशी सार्थ भारत में भी व्यापार करने के लिए आते थे। सोमदेव ने एक अत्यन्त समृद्ध पैण्डास्थान (बाजार) का वर्णन किया है, जहाँ पर अनेक देशों के व्यापारी व्यापार के लिए आते थे।^{३३} ऊपर इसका विशेष वर्णन किया गया है।

विनिमय के साधन

सोमदेव ने विनिमय के दो प्रकार बताये हैं . (१) वस्तु का मूल्य मुद्रा या मिक्के के रूप में देकर खरीदना या (२) वस्तु का वस्तु से विनिमय। मुद्रा या मिक्को में सोमदेव ने निष्क, कार्षापण और सुवर्ण का उल्लेख किया है।^{३४} इनके विषय में सक्षिप्त जानकारी इस प्रकार है -

निष्क

निष्क के प्राचीनतम उल्लेख वेदों में मिलते हैं। उस समय निष्क एक प्रकार के सुवर्ण के बने आभूषण को कहा जाता था जो मुख्य रूप से गले में पहना जाता था और जिसे स्त्री-पुरुष दोनों पहनते थे।^{३५}

वैदिक युग के बाद निष्क एक नियत सुवर्ण मुद्रा बन गयी, ऐसा बाद के साहित्य से ज्ञात होता है। जातक, महाभारत तथा पाणिनि में निष्क के उल्लेख आये हैं।^{३६}

मनुस्मृति में निष्क को चार सुवर्ण या तीन सौ बीस रत्तों के बराबर कहा है।^{३७}

३० पृ० २६३ उक्त०

३३ पृ० ३४५ उक्त०

३४ वर सागयिकान्त्रिकादसारायिक कार्षापण.। -पृ० ६२ उक्त०

पलव्यवहार. सुवर्णदक्षिणासु। -पृ० २०२

३५ अग्रवाल - पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० २५०

३६ बही, पृ० २५१-५२

३७ मनुस्मृति ८।१३७

कार्षापण

कार्षापण प्राचीन भारत का सबसे प्रसिद्ध सिक्का था। यह चाँदी का बनता था। मनुस्मृति में इसे ही धरण और राजतपुराण (चाँदी का पुराण) भी कहा है।^{३८} पाणिनि ने इन सिक्को को आहत कहा है।^{३९} उसी के अनुसार ये अँगरेजी में पंच मार्क के नाम से प्रसिद्ध है। ये सिक्के बुद्ध-युग से भी पुराने हैं तथा भारतवर्ष में ओर से छोर तक पाये जाते हैं। अब तक लगभग पचास सहस्र से भी अधिक चाँदी के कार्षापण मिल चुके हैं।^{४०}

मनुस्मृति के अनुसार चाँदी के कार्षापण या पुराण का वजन बत्तीस रत्ती था। सोने या ताँबे के कर्ष का वजन अस्सी रत्ती था।

कार्षापण की फुटकर खरीज भी होती थी। अष्टाध्यायी, जातक तथा अर्थशास्त्र में इसकी सूचियाँ आयी हैं। अष्टाध्यायी में कार्षापण को केवल पण कहा है। इसके अर्ध, पाद, त्रिमाष, द्विमाष, अर्धघर्ष या डेढ माष, माष और अर्धमाष का उल्लेख है। कात्यायन ने इन में काकणी और अर्धकाकणी नाम और जोड़े हैं। जातको में कहापण, अड्ड, पाद या चत्तारोमासक, तयोमासक, द्वैमासक, एकमासक और अड्डमासक नाम आये हैं। अर्थशास्त्र में पण, अर्धपण, पाद, अष्टभाग, माणक, अर्धमाणक, काकणी तथा अर्धकाकणी नाम आये हैं।^{४१}

सुवर्ण

निष्क की तरह सुवर्ण एक सोने का सिक्का था। अनगढ़ सोने को हिरण्य कहते थे और उसी के जब सिक्के ढाल लेते तो वे सुवर्ण कहलाते थे।^{४२}

सुवर्ण का वजन मनुस्मृति के अनुसार अस्सी रत्ती या सोलह माषा होता था। कौटिल्य ने एक कर्ष अर्थात् अस्सी गुजा (लगभग १५० ग्राम) के बराबर सुवर्ण का वजन बताया है। बहुत प्राचीन सुवर्ण उपलब्ध नहीं होते फिर भी गुप्त युग के जो सुवर्ण सिक्के मिले हैं उनका वजन प्रायः इतना ही है।^{४३}

३८ द्वे कृष्णले समधृते विज्ञेयो रौप्यमापकः ।

ते पोटश स्याद्धरण पुराणश्चैव रानत ॥ ८।१३५-३६

३९ अष्टाध्यायी, ५। २। १२०

४० अग्रवाल - पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० २५६

४१. वही

४२ भण्डारकर - प्राचीन भारतीय मुद्राशिल्प, पृ० ५१

४३ अग्रवाल - पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० २५३

सुवर्ण के उल्लेख प्राचीन साहित्य और शिल्प में समान रूप से पाये जाते हैं। श्रावस्ती के अनाथपिंडक की कथा प्रसिद्ध है। अनाथपिंडक बौद्ध सघ के लिए एक बिहार बनाना चाहता था। इसके लिए उसने जो जमीन पसन्द की वह जैत नामक एक राजकुमार की सम्पत्ति थी। अनाथपिंडक ने जब जैत से उस जमीन-का दाम पूछा तो उसने उत्तर दिया कि आप जितनी जमीन लेना चाहें उतनी जमीन पर मूल्यस्वरूप सुवर्ण बिछाकर ले लें। अनाथपिंडक ने अठारह करोड़ सुवर्ण बिछाकर जमीन को खरीद लिया।

भरहुत के बौद्ध स्तूप में इस कथा का अंकन हुआ है। एक परिचारक छकडे पर से सिक्के उतार रहा है, एक दूसरा उन सिक्को को किसी चीज में उठाकर ले जा रहा है। दूसरे दो परिचारक उन सिक्को को जमीन पर बिछा रहे हैं।^{४४} बोधगया के महाबोधि मन्दिर के स्तम्भों में भी इसी तरह के चित्र हैं।^{४५}

सोमदेव के उल्लेख से ज्ञात होता है कि दशमी शती तक सुवर्ण मुद्रा का प्रचार था। सोमदेव ने लिखा है कि पल का व्यवहार सुवर्णदक्षिणा में था।^{४६}

वस्तु-विनिमय

वस्तु विनिमय में एक वस्तु दे कर लगभग उसी मूल्य की दूसरी वस्तु ली जाती थी। भद्रमित्र सुवर्ण-द्वीप के व्यापार के लिए गया तो वहाँ से अपनी पसन्द की अनेक वस्तुओं को वस्तु-विनिमय में सगृहीत किया।^{४७}

एक अन्य प्रसंग में आया है कि एक गडरिया एक बकरा लिये था। यज्ञ करने के इच्छुक एक पण्डित ने पूछा — 'अरे भाई, बेचना हो तो इसे इधर लाओ।' 'सरकार, बेचना ही तो है। आप अपनी अगूठी बदले में मुझे दे दें, तो मैं इसे दे दूँ।' उसने उत्तर दिया। और उस पण्डित ने अगूठी देकर बकरा ले लिया।^{४८} वस्तु-विनिमय की सबसे बड़ी कठिनाई यही थी कि जो वस्तु विक्रेता के पास है उस वस्तु की आवश्यकता उस व्यक्ति को हो जिस व्यक्ति की वस्तु आप लेना चाहते हैं। इसी आवश्यकता की तीव्रता या मन्दता के आधार पर वस्तु-विनिमय का आधार बनता था।

४४. कनिषम — स्तूप श्रॉव भरहुत, पृ० ८४

४५. कनिषम — महाबाधि, पृ० १३

४६. पलव्यवहार सुवर्णदक्षिणासु।—पृ० २०२

४७. अगण्यपण्यविनिमयेन तत्रत्यमचिन्त्यमात्माभिमतवस्तुस्वन्धमादाय।—पृ० ३४५ उक्त०

४८. अरे मनुष्य, समानीयतामित इतोऽय द्यागरतव चेदस्ति विक्रेतुमिच्छ्या इति। पुरुष.

भट्ट, विचिक्रीपुरेवेन यदि भवानिद मे प्रसादी करोत्यगुलीयकम्।—पृ० १३१ उक्त०

घर्म भी समाप्त हो जाता है, केवल नीच वृत्तियों के साथ पाप ही शाप की तरह चिपटा फिरता है।^{५३}

सोमदेव ने लिखा है कि वास्तव में बात यह है कि नौकरी तो एक प्रकार का सौदा है। नौकर अपने सौजन्य, मैत्री और करुणा रूप मणियों को देता है तो मालिक से उसके बदले में धन पाता है। यदि न दे तो उसे धन भी न मिले क्योंकि धन ही धन कमाता है।^{५४}



-
५३. सत्य दूरे विहरति सप साधुभावेन पुसा,
 धर्मश्चिन्तात्सहकरुणया याति देरान्तराणि ।
 पाप शापादिव च तनुते नीचवृत्तेन सार्धं,
 सेवावृत्तौ परमिह परं पातक नास्ति किञ्चित् ॥ वही
५४. सौजन्यमैत्रीकरुणामणीना व्यय न चेत् श्रुत्यजनं करोति ।
 फल महीशादपि नैव तस्य यतोऽर्थमेवार्धनिमित्तमाहुः ॥ -वही

शस्त्रास्त्र

यशस्तिलक में सोमदेव ने छत्तीस प्रकार के शस्त्रास्त्रों की जानकारी दी है। इससे अधिकांश शस्त्रास्त्रों का स्वरूप, उनके प्रयोग करने के तरीके तथा कतिपय अन्य आवश्यक बातों पर भी प्रकाश पड़ता है।

शस्त्रास्त्रों के उल्लेख मुख्य रूप से तीन प्रसंगों पर हुए हैं - (१) चण्डमारी के मन्दिर में आयोजित समारोह के वर्णन में, (२) विविध देशों की सेनाओं का परिचय कराते समय तथा (३) पाचाल नरेश के दूत के सम्राट् यशोधर के दरबार में पहुँचने पर। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य प्रसंगों पर भी कतिपय शस्त्रास्त्रों का उल्लेख प्रसंगवश हो गया है। उन सबके सम्बन्ध में विशेष जानकारी निम्नप्रकार है -

१. धनुष

धनुष के विषय में सोमदेव ने विशेष रूप से ध्यान आकर्षित किया है तथा सप्ताह के सभी अस्त्रों में श्रेष्ठ बताया है।^१ आयुध-सिद्धान्त में धनुर्वेद अपने आप में एक पूरा विज्ञान है। शराम्यासभूमि में जाकर धनुष चलाने की विधिवत् शिक्षा ली जाती थी।^२ यदि धनुष चलाना आ गया तो अन्य अस्त्र चलाना आ ही जाता है, किन्तु अन्य सभी अस्त्र चलाना आ जाने पर भी धनुष चलाना नहीं आ सकता।^३

धनुष की अटनि को जमीन पर टिकाकर उस पर ज्या (डोरी) चढ़ायी जाती थी।^४ ज्या चढ़ाने में जमीन पर अत्यधिक दबाव पड़ता था। सोमदेव ने अतिश-

१. यावन्ति भुवि रास्त्राणि तेषां श्रेष्ठतरं धनुः ।

धनुषा गोचरे तानि न तेषां गोचरो धनुः ॥—पृ० ५६६, श्लो० ४६५

२. आयुधसिद्धान्तमध्यासादितसिंहनादाद्भनुर्वेदाद्गुपश्रुत्य समाश्रितशराम्यासभूमिः ।

—पृ० ५५६

३. धनुषा गोचरे तानि न तेषां गोचरो धनुः ॥—पृ० ५६६

४. कर्म. पातालमूल श्रयति फण्यपति पिरटते न्यञ्चदरद.,

योजित में उसे इतना अधिक बताया है कि - धनुष पर डोरी चढाते समय जैसे भूकम्प की स्थिति आ जाती हो ।^{१५}

धनुष की ध्वनि भी बहुत तेज होती थी । सोमदेव ने उसे आनन्द दुंदुभि के समान कहा है ।^{१६}

कुशल योद्धा जब धनुष चलाता है तो शीघ्रता के कारण यह पता नहीं लग पाता कि धनुष बायें हाथ में है अथवा दाहिने में या दोनों हाथों से ही बाण छोड़ रहा है । प्रयत्न-लाघव की इस क्रिया को 'खुरली' कहा जाता था । महावीर-चरित में भी दो बार (२ ३४, ५५) खुरली का उल्लेख आया है ।^{१७}

धनुष-बाण के द्वारा अत्यन्त दूरस्थ शत्रु को भी मारा जा सकता है । लगातार छोड़े गये बाण वध्य व्यक्ति तथा मोर्ची (धनुष की डोरी) के बीच में ऐसे लगते हैं जैसे पृथ्वी को नापने के लिए डोरा डाला गया हो ।^{१८}

लक्ष्य यदि इतनी दूर हो कि दिखाई भी न पड़े तो भी पुंख-अनुपुख के क्रम से भेद कर बाण गुणस्यूत (सूई के घागे) की तरह आगे निकल आता है । इसे सोमदेव ने 'सद्गुण्ययोग्याविधि' कहा है ।^{१९}

आगे, पीछे, दाहिनें, बायें, ऊपर, नीचे अत्यन्त शीघ्र निरवधि (अनवरत) धनुष चलाने की क्रिया 'कोदण्डाचनचातुरी' कहलाती थी ।^{१९} इस क्रिया में धनुर्धर ऐसा लगता है जैसा उसके पूरे शरीर में हाथ और आंखें लगी हो ।^{१९}

धनुष के प्राचीन इतिहास के विषय में भी यशस्तिलक से पर्याप्त जानकारी मिलती है -

कर्ण का धनुष कालपृष्ठ, विष्णु का शार्ङ्ग, अर्जुन का गाण्डीव तथा महादेव

५. खर्वन्सुर्वीध्ररन्प्राण्यपि दधति षकुप्सिन्धुराः साध्वसानि ।

गाधन्तेऽभोधयोऽपि क्षितितलविरसद्वीचयस्ते महीदा,

ज्यारोपासगसीदद्भ्रनुरटनिभरभ्रस्यभूगोलकाले ॥—पृ० वही,

६. आनन्ददुन्दुभिरिव * * चापस्य ते ध्वनि ।—पृ० ६००

७. शस्त्रप्रपञ्चखुरली खलु क करोतु ।—वही,

८. सद्भूत आप्टे - सस्कृत इंग्लिश टिकरानरी ।

९. यश० पृ० वही,

१०. एव चापविजृम्भितानि भवतः सद्गुण्ययोग्याविधौ ।—पृ० ६०१,

११. कोदण्डाचनचातुरी रचयतः प्राक्पृष्ठपद्मप्रोर्ध्वाधोविषयेषु ।—पृ० ६०१,

१२. प्रत्यङ्गविनिमित्तेक्षणमुजाः ।—वही

का पिनाक कहलाता था । गागेय (भीष्म), द्रोण, राम, अर्जुन, नल तथा नहुष आदि राजा भी धनुष विद्या के पारंगत योद्धा रहे हैं ।^{१३}

सोमदेव ने शब्दवेधी बाण का भी उल्लेख किया है । यशोमति महाराज ने शब्दवेधित्व कौशल दिखाने के लिए कुक्कुट की आवाज सुनकर उन्हें तीर का निशाना बनाया ।^{१४}

यशस्तिलक में धनुष-विद्या से सम्बन्धित जितनी सामग्री आयी है उसका सम्मिलित परिचय इस प्रकार है —

पृष्ठ

- ५९९ (१) धनुर्वेद-धनुष चलाने की विद्या का विश्लेषण करने
वाला शास्त्र
- ५९९ (२) शराभ्यासभूमि-वह स्थान जहाँ धनुष-विद्या सिखायी
जाती
- ६०१ (३) धन्वी-धनुष चलाने वाला
- ३३२ (४) धनुर्धर-धनुष धारण करने वाला सैनिक
- ६०१ (५) पिनाक-महादेव का धनुष
- ६०१ (६) शार्ङ्ग-विष्णु का धनुष
- ६०१ (७) गाण्डीव-अर्जुन का धनुष
- ६०१ (८) कालपृष्ठ-कर्ण का धनुष
- ६०० (९) धनु-धनुष
- ५७२-७३, ६००-१ (१०) चाप-धनुष
- ५५५, ७४, ७६, १२४, ३६६
- ५५९, ५७०, ६०१, ६०२ (११) कोदण्ड-धनुष
- ५५५, ५७३ (१२) खरदण्ड-धनुष
- ४६५ (१३) त्राणासन-धनुष
- ५७१ (१४) शरासन-धनुष
- ७४ (१५) अजगव-धनुष

१३ त्व कर्णं कालपृष्ठे भवसि बलिरिपुस्त्व पुन साधु शार्ङ्गं,
गाण्डीवेऽग्रस्त्वमिन्द्र तिनिरमण इरस्त्व पिनाके च साक्षात् ।
बालास्यप्रयत्नापाञ्चनचतुरविधेस्तस्य किं शलाघनीयम् ।
शार्ङ्गे यद्द्रोणरामार्जुननलनहुषपद्मापसांग्ये तव स्यात् ॥—पृ० ६०२,

- ५५५,५९९ (१६) ज्या-घनुष की डोरी
 ५९,५९९ (१७) अटनि-घनुष का साचेदार सिरा—किनारा
 ५७३ (१८) गुण-घनुष की डोरी
 ६०० (१) मौर्वी-घनुष की डोरी
 ५५८ (२०) नाराच-बाण
 ७६,११४,५५६ (२१) काण्ड-बाण
 ५५८ (२२) विशिख-बाण
 २५९ उत्त० (२३) सायक-बाण
 ६००-६०१ (२४) बाण-बाण
 ५५८ (२५) नाराचपंजर-तरकस
 ४६७ (२६) मस्त्रा-तरकस
 ६०० (२७) पुंख-बाण का पिछला भाग
 ३३२ (२८) गोधा-घनुष की डोरी की रगड से रक्षा करने के लिए हाथ में लपेट गया चमड़े का खोल ।
 २५९ उत्त० (२९) शरकुरली-तरकस
 ६०० (३०) खुरली-प्रयत्न-लाघवपूर्वक घनुष चलाना
 ५९९ (३१) ज्यारोम-घनुष पर डोरी चढाना
 ६०० (३२) पुखानुपुंखक्रम-इतने जल्दी बाण छोडना कि एक बाण दूसरे बाण की पूछ को छूता जाये ।
 ६०१ (३३) चापविजृम्भित-घनुष चलाने के प्रकार
 ६०१ (३४) कोदण्डाञ्जनचातुरी-घनुष खीचने की चतुराई
 ६०० (३५) शरव्य-जिस पर निशाना लगाया गया है ।
 ६०० (३६) लक्ष्य-निशाना
 ६०२ (३७) कोदण्डविद्या-घनुष-विद्या
 ६०२ (३८) मार्गणमल्ल-घनुर्घारी योद्धा
 २२२ उत्त० (३९) अयोमुख पुख-लोहे के मुँह वाला बाण

२. असिधेनुका

छोटी तलवार या छुरी असिधेनुका कहलाती थी । सोमदेव ने इसे असिधेनुका और शस्त्री दो नाम दिये हैं । अमरकोपकार (२,८,९२) ने शस्त्री, अम्पिपुत्री, छुरिका और असिधेनुका ये चार नाम दिये हैं । असिधेनुका की धार पर पानी

का पिनाक कहलाता था । गागेय (भीष्म), द्रोण, राम, अर्जुन, नल तथा नहुष आदि राजा भी धनुष-विद्या के पारगत योद्धा रहे हैं ।^{१३}

सोमदेव ने शब्दवेधी वाण का भी उल्लेख किया है । यशोमति महाराज ने शब्दवेधित्व कौशल दिखाने के लिए कुक्कुट की आवाज सुनकर उन्हें तीर का निशाना बनाया ।^{१४}

यशस्तिलक में धनुष-विद्या से सम्बन्धित जितनी सामग्री आयी है उसका सम्मिलित परिचय इस प्रकार है —

पृष्ठ

- ५९९ (१) धनुर्वेद—धनुष चलाने की विद्या का विश्लेषण करने वाला शास्त्र
- ५९९ (२) शराभ्यासभूमि—वह स्थान जहाँ धनुष-विद्या सिखायी जाती
- ६०१ (३) धन्वी—धनुष चलाने वाला
- ३३२ (४) धनुर्धर—धनुष धारण करने वाला सैनिक
- ६०१ (५) पिनाक—महादेव का धनुष
- ६०१ (६) शार्ङ्ग—विष्णु का धनुष
- ६०१ (७) गाण्डीव—अर्जुन का धनुष
- ६०१ (८) कालपृष्ठ—कर्ण का धनुष
- ६०० (९) धनु—धनुष
- ५७२-७३, ६००-१ (१०) चाप—धनुष
- ५५५, ७४, ७६, १२४, ३६६
- ५५९, ५७०, ६०१, ६०२ (११) कोदण्ड—धनुष
- ५५५, ५७३ (१२) खरदण्ड—धनुष
- ४६५ (१३) बाणासन—धनुष
- ५७१ (१४) शरासन—धनुष
- ७४ (१५) अजगव—धनुष

१३ त्व कर्ण कालपृष्ठे भवसि बलिरिपुस्त्व पुन साधु शार्ङ्गे,
गाण्डीवेऽग्रस्त्वमिन्द्र. चिनिरमण हरस्त्व पिनाके च साक्षात् ।
वालास्त्रप्रयचापाञ्चनचतुरविधेस्तस्य किं श्लाघनीयम् ।
गार्ङ्गेयद्रोणरामार्जुननलनहुषद्विमापसाग्ये तव स्यात् ॥—पृ० ६०२,
१४. पृ० ५६१,

- ५५५,५९९ (१६) ज्या-घनुष की डोरी
 ५९,५९९ (१७) अटनि-घनुष का साचेदार सिरा—किनारा
 ५७३ (१८) गुण-घनुष की डोरी
 ६०० (६) मौर्वी-घनुष की डोरी
 ५५८ (२०) नाराच-बाण
 ७६,११४,५५६ (२१) काण्ड-बाण
 ५५८ (२२) विशिख-बाण
 २५९ उक्त० (२३) सायक-बाण
 ६००-६०१ (२४) बाण-बाण
 ५५८ (२५) नाराचपंजर-तरकस
 ४६७ (२६) मस्त्रा-तरकस
 ६०० (२७) पुंख-बाण का पिछला भाग
 ३३२ (२८) गोधा-घनुष की डोरी की रगड से रक्षा करने के लिए हाथ में लपेट गया चमड़े का खोल ।
 २५९ उक्त० (२९) शरकुरली-तरकस
 ६०० (३०) खुरली-प्रयत्न-लाघवपूर्वक घनुष चलाना
 ५९९ (३१) ज्यारोम-घनुष पर डोरी चढाना
 ६०० (३२) पुखानुपुंखक्रम-इतने जल्दी बाण छोडना कि एक बाण दूसरे बाण की पूछ को छूता जाये ।
 ६०१ (३३) चापविजृम्भित-घनुष चलाने के प्रकार
 ६०१ (३४) कोदण्डाञ्जनचातुरी-घनुष खीचने की चतुराई
 ६०० (३५) शरव्य-जिस पर निशाना लगाया गया है ।
 ६०० (३६) लक्ष्य-निशाना
 ६०२ (३७) कोदण्डविद्या-घनुष-विद्या
 ६०२ (३८) मार्गणमल्ल-घनुषधारी योद्धा
 २२२ उक्त० (३९) अयोमुख पुख-लोहे के मुँह वाला बाण

२. असिधेनुका

छोटी तलवार या छुरी असिधेनुका कहलाती थी । सोमदेव ने इसे असिधेनुका और शस्त्री दो नाम दिये हैं । अमरकोषकार (२,८,९२) ने शस्त्री, असिपुत्री, छुरिका और असिधेनुका ये चार नाम दिये हैं । असिधेनुका की धार पर पानी

का पिनाक कहलाता था । गागेय (भीष्म), द्रोण, राम, अर्जुन, नल तथा नहुष आदि राजा भी धनुष-विद्या के पारंगत योद्धा रहे हैं ।^{१३}

सोमदेव ने शब्दवेधी वाण का भी उल्लेख किया है । यशोमति महाराज ने शब्दवेधित्व कौशल दिखाने के लिए कुक्कुट को आवाज मुनकर उन्हें तीर का निशाना बनाया ।^{१४}

यशस्तिलक में धनुष-विद्या से सम्बन्धित जितनी सामग्री आयी है उसका सम्मिलित परिचय इस प्रकार है -

पृष्ठ

- ५९९ (१) धनुर्वेद-धनुष चलाने की विद्या का विश्लेषण करने वाला शास्त्र
- ५९९ (२) शराभ्यासभूमि-वह स्थान जहाँ धनुष-विद्या सिखायी जाती
- ६०१ (३) धन्वी-धनुष चलाने वाला
- ३३२ (४) धनुर्धर-धनुष धारण करने वाला सैनिक
- ६०१ (५) पिनाक-महादेव का धनुष
- ६०१ (६) शार्ङ्ग-विष्णु का धनुष
- ६०१ (७) गाण्डीव-अर्जुन का धनुष
- ६०१ (८) कालपृष्ठ-कर्ण का धनुष
- ६०० (९) धनु-धनुष
- ५७२-७३, ६००-१ (१०) चाप-धनुष
- ५५५, ७४, ७६, १२४, ३६६
- ५५९, ५७०, ६०१, ६०२ (११) कोदण्ड-धनुष
- ५५५, ५७३ (१२) खरदण्ड-धनुष
- ४६५ (१३) त्राणासन-धनुष
- ५७१ (१४) शरासन-धनुष
- ७४ (१५) अजगव-धनुष

१३ त्व कर्ण कालपृष्ठे भवसि बलिरिपुस्त्व पुनः साधु शार्ङ्गं,
गाण्डीवेऽग्रस्त्वमिन्द्र. तिनिरमण हरस्त्व पिनाके च साक्षात् ।
वालास्त्रप्रयत्नापान्चनचतुरविधेस्तस्य किं श्लाघनीयम् ।
गार्ङ्गेयद्रोणरामार्जुननलनहुषचमापसाग्ये तव स्यात् ॥—पृ० ६०२,
१४. पृ० ५६१,

- ५५५,५९९ (१६) ज्या-घनुष की डोरी
 ५९,५९९ (१७) अटनि-घनुष का साचेदार सिरा—किनारा
 ५७३ (१८) गुण-घनुष की डोरी
 ६०० (६) मौर्वी-घनुष की डोरी
 ५५८ (२०) नाराच-बाण
 ७६,११४,५५६ (२१) काण्ड-बाण
 ५५८ (२२) विशिख-बाण
 २५९ उत्त० (२३) सायक-बाण
 ६००-६०१ (२४) बाण-बाण
 ५५८ (२५) नाराचपंजर-तरकस
 ४६७ (२६) मस्त्रा-तरकस
 ६०० (२७) पुंख-बाण का पिछला भाग
 ३३२ (२८) गोधा-घनुष की डोरी की रगड से रक्षा करने के लिए हाथ में लपेट गया चमड़े का खोल ।
 २५९ उत्त० (२९) शरकुरली-तरकस
 ६०० (३०) खुरली-प्रयत्न-लाघवपूर्वक घनुष चलाना
 ५९९ (३१) ज्यारोप-घनुष पर डोरी चढाना
 ६०० (३२) पुखानुपुंखक्रम-इतने जल्दी बाण छोडना कि एक बाण दूसरे बाण की पूछ को छूता जाये ।
 ६०१ (३३) चापविजृम्भित-घनुष चलाने के प्रकार
 ६०१ (३४) कोदण्डाञ्जनचातुरी-घनुष खीचने की चतुराई
 ६०० (३५) शरव्य-जिस पर निशाना लगाया गया है ।
 ६०० (३६) लक्ष्य-निशाना
 ६०२ (३७) कोदण्डविद्या-घनुष-विद्या
 ६०२ (३८) मार्गणमल्ल-घनुर्घारी योद्धा
 २२२ उत्त० (३९) अयोमुख पुंख-लोहे के मुँह वाला बाण

२. असिधेनुका

छोटी तलवार या छुरी असिधेनुका कहलाती थी । सोमदेव ने इसे असिधेनुका और शस्त्री दो नाम दिये हैं । अमरकोपकार (२,८,९२) ने शस्त्री, असिपुत्री, छुरिका और असिधेनुका ये चार नाम दिये हैं । असिधेनुका की धार

चढाकर उसे तेज बनाया जाता था।^{१५} इसे मूठ में हाथ डालकर पकड़ते थे। दूत के द्वारा जब पाचाल नरेश की युद्धेच्छा का पता लगा तो असिधेनुका के प्रयोग में विशेषज्ञ, जिसे सोमदेव ने असिधेनुधनजय कहा है, ने ईर्ष्या के साथ अपने हाथ को असिधेनुका की मूठ में डाला।^{१६}

सोमदेव के अनुसार असिधेनुका का प्रयोग प्रायः सिर पर किया जाता था तथा इसके प्रयोग से तडतड शब्द भी होता था।^{१७}

असिधेनुका कमर में लटकायी जाती थी। यशस्तिलक में दाक्षिणात्य सैनिक नाभिपर्यन्त असिधेनुका लटकाये हुए थे।^{१८}

हर्षचरित में असिधेनुका सहित पदातियों का वर्णन है। उन्होंने कमर में कपड़े की दोहरी पेटो की मजबूत गाँठ लगा कर उसी में असिधेनुका खोस रखी थी।^{१९} अहिच्छत्रा से प्राप्त गुप्तकालीन मिट्टी की मूर्तियों में एक ऐसे पदाति सैनिक की मूर्ति मिली है, जो कमर में असिधेनु बांधे हुए है।^{२०}

३. कर्तरी

यशस्तिलक में कर्तरी का उल्लेख कैची तथा युद्धास्त्र दोनो के अर्थ में हुआ है। कैची का प्रयोग दाढी आदि बनाने के लिए किया जाता था (कर्तरीमुखबुम्बिता-मूलश्मश्रुबालम्, पृ० ४६१)। उत्तरापथ के सैनिक अपने हाथों में जिन विभिन्न हथियारों को उठाये हुए थे उनमें कर्तरी भी थी।^{२१} अमरकोषकार ने कर्तरी और कृपाणी को पर्याय बताया है (कृपाणीकर्तरीसमे, २, १०, ३४)। हेमचन्द्र ने कर्तरी के लिए कृपाणी, कर्तरी और कल्पनी नाम दिये हैं।^{२२} वर्णरत्नाकर में दण्डायुधों में इसकी गणना नहीं है, किन्तु हेमचन्द्र के टीकाकार ने जो छत्तीस आयुधों की सूची दी है, उसमें कर्तरी की गणना है।^{२३} सम्भवतया एक विशेष प्रकार की

१५ यस्यासिधारापयः । -पृ० ५५४, शस्त्रीष्विव पयोलवः । -पृ० १५२ उक्त०

१६ असिधेनुधनजयः सेष्यमसिमातृमुष्टौ पञ्चशाख विधाय । -पृ० ५६१

१७. नडतडिति तरयैषा शस्त्री त्रोटयते शिर । -पृ० ५६१

१८ आनाभिदेशोत्तम्बितासिधेनुकम् । -पृ० ४६२

१९ द्वियुगपट्टपट्टिकागाढप्रन्थिग्रथितासिधेनुना । -हर्ष० २१

२० अग्रवाल - हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, फलक, २, चित्र १२

२१ करोत्तम्बितकर्तरीक्षणय औत्तरपथ बलम् । -यश० पृ० ४६४

२२ कृपाणी कर्तरी कल्पन्यपि । -अभिधानचिन्तामणि, ३।५७५

२३. दयाश्रयमहाकाव्य, सर्ग ११, श्लोक ५१, स० टी०

तलवार को कर्तरी कहते थे। पृथ्वीचन्द्रचरित (१४२१ ई०) में अस्त्रों की सूची में कर्तरी की गणना है।^{१८}

४. कटार

गुर्जर सैनिक कमर में कटार बांधे हुए थे जिसकी मूठ भैंसे के सींग की बनी हुई थी।^{१५} संस्कृत टीकाकार ने इमका अर्थ छुरिका विशेष किया है (कटारकश्च छुरिकाविशेष)। कटार को यदि छुरिका मान लिया जाये तो सोमदेव के द्वारा प्रयोग किये गये असिधेनुका, शम्भो और कटार इन तीनों शब्दों को पर्यायवाची मानना चाहिए, किन्तु स्वयं सोमदेव ने असिधेनुका और कटार का पृथक्-पृथक् उल्लेख किया है। असिधेनुका और कटार में क्या अन्तर था यह स्पष्ट नहीं होता, फिर भी इनमें कुछ न कुछ अन्तर था अवश्य। सम्भवतया दोनों ओर धारवाली छोटी तलवार को कटार कहते थे।

५. कृपाण

उत्तरापथ के कुछ सैनिक हाथों में कृपाण उठाये हुए थे।^{१३} यशोधर के जुलूम में भी कृपाणधारी सैनिक थे।^{१७} संस्कृत टीकाकार ने कृपाण का अर्थ खड्ग किया है।^{१८}

६. खड्ग

तिरहुत की सेना अपने हाथों में खड्ग उठाये हुए थी, जिनसे निकलने वाली किरणों से आकाश तरंगित-सा हो उठा।^{१९} चण्डमारी देवी के मन्दिर में मारिदत्त खड्ग उठाये खड़ा था।^{२०}

एक स्थान पर खड्गयष्टि का उल्लेख है। सोमदेव ने लिखा है कि स्त्री पुष्प की मुट्ठी में स्थित खड्गयष्टि की तरह अपने अभिमत को सिद्ध कर लेती है।^१

१४ उदभृत, अग्रवाल-मध्यकालीन शस्त्रास्त्र, कला और संस्कृति, पृ० २६१

१५. माहिषविपाणयष्टिनमुष्टिकटारकोत्कटकटोभागम् गौर्जर बलम् । -पृ० ४६७

१६ कर्णेच्छ भित्तकर्त्रीकणयकृपाण । अंतरपथवलम् । -पृ० ४२४

१७ कृपाणपाणिभि । -पृ० ३३१

१८ कृपाणपाणिभि उत्प्रातखड्गकरै । -सु० टी०

१९ उत्प्रातखड्गवलानविसारिधाराकरनिकरतरंगितगगनभागम् । -पृ० ४६६

२० उत्प्रातखड्गो मुनिवालकांश्वा व्यलोकि । -पृ० १४७

२१ स्त्री तु पुश्यमुष्टिस्थिता खड्गयष्टिग्वि साधयत्यभिमतमर्थम् । -पृ० १३६ दत्त०

७. कौक्षेयक या करवाल

सोमदेव ने कौक्षेयक और करवाल दोनो को एक माना है। करवालवीर करवाल को लपलपाता हुआ कहता है कि मेरा यह कौक्षेयक युद्ध में सीने में से झरते हुए खून के लिए राक्षसों की प्रतीक्षा करता है।³² इस प्रसंग से यह भी स्पष्ट है कि करवाल का प्रहार प्रायः सीने पर किया जाता था।

यशस्तिलक में करवाल का उल्लेख दो बार और भी हुआ है। मारिदत्त को कौलाचार्य विद्याधर लोक को जीतने वाले करवाल की प्राप्ति का उपाय बताता है।³³

चण्डमारी के मन्दिर में कुछ लोग यमराज की दाढ़ के समान वक्र करवाल लिये हुए थे।³⁴

८. तरवारि

तरवारि को सोमदेव ने यमराज की जीभ के समान तरल कहा है।³⁵ यशस्तिलक में तलवार का भी उल्लेख है जो सम्भवतया तरवारि धारण करने वाले पुरुष के लिए प्रयुक्त हुआ है। सबेरे एक चोर को साथ पकड़ कर तलवार राज-दरबार में आता है।³⁶

९. भुसुण्डि

भुसुण्डि का केवल एक बार उल्लेख है। चण्डमारी के मन्दिर में कुछ सैनिक भुसुण्डि भी लिये थे।³⁷ संस्कृत टीकाकार ने भुसुण्डि का पर्याय गर्जक दिया है।³⁸ भुसुण्डि सम्भवतया छोटी तलवार का ही एक प्रकार था।

१०. मण्डलाग्र

मण्डलाग्र का एक बार उल्लेख है। यह एक प्रकार की अत्यन्त तीक्ष्ण

३२ करवालवीर सक्रोध करेण करवाल तरलयन्—

विषक्षपक्षयदक्षदीक्षः कौक्षेयको मामक एष तस्य ।

रक्षासि वक्ष. क्षतजै क्षरद्भिः प्रतीक्षतेऽन्तुगणतया रणेपु ॥ —पृ० ५५७

३३ विद्याधरलोकविजयिनः करवालस्य सिद्धिर्भवतीति ।—पृ० ४४

३४ कैश्चित् कृतान्तदष्टाकोटिकुटिलकरवाल ।—पृ० १४३

३५ कीनाशरसनातरलतरवारि ।—पृ० १४४

३६, राजकुलानां सेवावसरेपु कृनास्थानस्य प्रविश्य तलवार ।—पृ० २४५ उक्त०

३७ अपरैश्च यमावासप्रवेश भुसुण्डि ।—पृ० १४५

३८ भुसुण्डिश्च गर्जकाः । --वही, स० टी०

तलवार थी, जिसकी धार पर पानी चढ़ाया जाता था।^{३९} म० म० गणपति शास्त्री ने इसे सीधी तथा वृत्ताकार अग्रभाग वाली तलवार कहा है।^{४०}

११. असिपत्र

असिपत्र का एक बार उल्लेख है। सम्भवतया यह एक प्रकार की छोटी छुरी थी। सोमदेव ने लिखा है कि पाण्डु देश में चण्डरसा ने मुण्डीर नाम के राजा को कबरी (केशपाश) में छिपाये हुए असिपत्र से मार डाला था।^{४१}

१२. अशनि

अग्नि के लिए सोमदेव ने अशनि और वज्र, दो शब्दों का प्रयोग किया है। एक उपमा से इसकी भयकरता का पता लगता है। सोमदेव ने हाथियों के पैरों को वज्रपात की उपमा दी है।^{४२} दूसरे प्रसंग में सिर पर उगे हुए सफेद बाल को वज्रदण्ड के गिरनेके समान कहा गया है।^{४३} इससे प्रतीत होता है कि यह वज्रदण्ड या डण्डे के आकार का शस्त्र था जिसका प्रहार प्रायः सिर पर किया जाता था।

प्राचीन शिल्प और चित्रकला में वज्र का अकन दो रूपों में मिलता है— एक डण्डे के आकार का, बीच में पतला और दोनों किनारों पर चौड़ा। दूसरा दो मुँह वाला जिसमें दोनों ओर नुकीले दाँते बने होते हैं।^{४४}

प्राचीन काल से अशनि या वज्र इन्द्र का हथियार माना जाता रहा है।^{४५} बाद के चित्र और शिल्प में अनेक अन्य देवी-देवताओं के हाथ में भी यह हथियार देखने को मिलता है। ईडर के शास्त्र-भण्डार में सुरक्षित सचित्र कल्पसूत्र की ताडपत्रीय प्रति के अनेक चित्रों में इन्द्र हाथ में वज्र लिये दिखाया गया है।^{४६} बुद्ध-देवी वज्रतारा की मूर्तियों में एक हाथ में वज्र का अकन मिलता है।^{४७} बुद्ध-देवता

३९ मण्डलाग्रधाराजलनिम्ननिखिलारातिसतान १—पृ० ५६५

४० मण्डलाग्र ऋजुवृत्ताकाराग्र १—अर्थशास्त्र २।१८, स० टी०

४१ कबरीनिगूढेनासिपत्रेण चण्डरसा पाण्डुपु मुण्डीरम् १—पृ० १५३ उक्त०

४२ पादेषु सम्पादितवज्रसम्पातैरिव १—पृ० २८

४३ प्रपदशनिदण्डाटम्बर. केश पप. १—पृ० २५०

४४ वनर्जा—डी डेवलपेन्ट आफ हिन्दू आइकोनोग्राफी, पृ० ३३०, फलक ८, चित्र ८, फलक ९, चित्र २, ६

४५ वही, पृ० ३३०

४६ मोतीचन्द्र—जैन मिनिस्चर पेंटिंग्ज फ्रॉम वेस्टर्न इण्डिया, चित्र ६०, ६१, ६२, ६६, ७२

४७ भटशाली—आइकोनोग्राफी आफ बुद्धिस्ट स्कार्पचर्च इन दी टाका म्युजियम, पृ० ४६

वज्रहार के दाहिने हाथ में दो वज्र हैं, जिन्हें सीने से चिपकाया गया है।^{४८} वज्रसत्त्व के हाथ में भी वज्र है, किन्तु वह एक है। गौतम बुद्ध की एक मूर्ति के नीचे दस प्रकार की वस्तुओं का अंकन है, उनके ठीक मध्य में वज्र है। यह ऊपर बताये गये दो प्रकार के वज्रों में दूसरे प्रकार का है।^{४९}

साहित्य में वज्र का सबसे प्राचीन उल्लेख ऋग्वेद (३, ५६, २) में आया है। यहाँ अशनि या वज्र को इन्द्र का वज्र कहा गया है (शक्रस्य महाशनिध्वजम्)। सिद्धान्तकौमुदी में एक सूत्र (२।१।१५) के उदाहरण में आया है - अनुवनमश-निर्गतः - अर्थात् अशनि वन की ओर चला गया। वहाँ अशनि का अर्थ बिजली गिरने से है। रामायण (सुन्दरकाण्ड ४।२१) में अशनिधारी राक्षस सैनिकों का वर्णन है। महाभारत में अशनि को अष्टचक्र वाला महाभयकर तथा रुद्र के द्वारा बनाया गया कहा है।^{५०} कालिदास ने रघुवश (८।४७) और कुमारसम्भव (४।४३) में अशनि का उल्लेख किया है। इन्दुमति के लिए विलाप करता हुआ अज कहता है कि ब्रह्मा ने इस पुष्पमाला को इन्दुमति के लिए अशनि बनाया।^{५१} नागानन्द में गरुण अपनी चोच को अशनिदण्डकठोर वताता है।^{५२}

प्राकृत ग्रन्थों में अशनि का असणि रूप पाया जाता है। उत्तराध्ययन (२०, २१) में इन्द्र के आयुध के अर्थ में, प्रज्ञापना (१) में आकाश से गिरनेवाली बिजली के अर्थ में तथा भगवती (७, ६) में ओलों की वर्षा के अर्थ में अशनि का उल्लेख हुआ है।

शिल्प, चित्र और साहित्य के इतने उल्लेखों के बाद भी रामायण के साक्ष्य के अतिरिक्त यह पता नहीं लगता कि अशनि केवल कल्पित शस्त्र था या व्यवहार में इसका प्रयोग भी होता था। हनुमान जब लका पहुँचे तो वहाँ राक्षस-सैन्य में अशनिधारी सैनिकों को भी देखा।^{५३} इससे प्रतीत होता है कि अशनि व्यवहार में भी अवश्य था। सोमदेव ने अशनि का उल्लेख युद्ध के आयुधों के प्रसंग में नहीं किया। वर्णरत्नाकर की सूची में भी अशनि या वज्र की गणना नहीं है। द्रुचाश्रय महाकाव्य के संस्कृत टीकाकार ने दण्डायुधों की सूची में वज्र को गिनाया है।^{५४}

४८ वही, पृ० २३

४९ वही, पृ० ३०, फलक ८, चित्र १-५ (३)

५० अष्टचक्रा महाधोरामशनि रुद्रनिर्मिताम् । -महा० ७, १३५, ६६

५१ अशनिः कल्पित एष वेधसा । -रघु० ८।४७

५२ अशनिदण्डचण्डतरया । -नागानन्द, ४।२७

५३ शक्तिवृद्धायुधाश्चैव पट्टिशाशनिधारिणः । -सुन्दरकाण्ड ४।२१

५४ द्रुचाश्रय महाकाव्य सर्ग ११, श्लोक ५१, सं० टी०

किन्तु इससे यह मानना कठिन है कि अशनि का हथियार के रूप में व्यवहार उस समय (१३वीं शती) तक होता था । लगता है, इस आयुध का प्रयोग व्यवहार से बहुत पुराने समय में ही उठ गया था तथा इन्द्र देवता और कतिपय अन्य देवी-देवताओं के साथ सम्बद्ध होकर कला और शिल्प में शेष रह गया ।

१३. अंकुश

यशस्तिलक में अंकुश के लिए अंकुश^{५५} और वेणु शब्द आये हैं । संस्कृत टीकाकार ने वेणु का अर्थ वशयष्टि किया है, जो कि गलत है ।^{५६} अंकुश सम्पूर्ण लोहे का बना करीब एक हाथ लम्बा होता है, जिसके एक किनारे एक सीधा तथा दूसरा मुड़ा हुआ नुकीला फन होता है ।

अंकुश का प्रयोग प्रारम्भ से हाथियों को वश में करने के लिए किया जाता रहा है । सोमदेव ने हाथियों को 'अंकुशमर्यादा' (पृ० २१४) कहा है । यशस्तिलक का नायक अंकुश लेकर स्वयं ही हाथियों को शिक्षित किया करता था ।^{५७} सोमदेव ने मफेद वालों को इन्द्रियरूप हाथियों के निग्रह के लिए अंकुश के समान बताया है ।^{५८}

अंकुश की गणना सोमदेव ने युद्धास्त्रों के साथ नहीं की, किन्तु वर्णरत्नाकर में इसे छत्तीस दण्डायुधों में गिनाया गया है ।^{५९}

शिल्प और चित्रों में अंकुश देवी-देवताओं के हाथों में उनके चिह्न के रूप में देखा जाता है ।^{६०} ढाका के समीप मिली महिषमर्दिनी की दस हाथ वाली मनोज्ञ मूर्ति एक हाथ में अंकुश भी लिये है ।^{६१} छानी (बडौदा स्टेट) के एक शास्त्र-भण्डार के ओघनिर्युवित नामक सचित्र ताडपत्रीय ग्रन्थ में अंकुश लिये अनेक देवियों के चित्र हैं । चतुर्भुज वज्राकुशी देवी अपने ऊपर के दोनों हाथों में, काली देवी ऊपर के बायें हाथ में, महाकाली ऊपर के दायें हाथ में, गान्धारी ऊपर के बायें हाथ में, महाज्वाला ऊपर के दायें हाथ में तथा मानमी ऊपर के दायें हाथ में

५५. यश० पृ० २१४

५६. वही, पृ० २५३, ४६१

५७. स्वयमेव दृष्टितवेणुवारिण्यान्विनिये । -पृ० ४६१

५८. करणकरिणा दर्पोद्वक्प्रदारणवेणव । -पृ० २५३

५९. वर्णरत्नाकर, पृ० ६१

६०. बनर्जी - डेवलपमेंट आफ दिन्दू आरकोनोग्राफी, फलक ८, चित्र २, ६

६१. भटशाली - माझे निकल स्कलचर्स इन द ढाका न्युजियम, फलक १६

वज्रहार के दाहिने हाथ में दो वज्र हैं, जिन्हें सोने से चिपकाया गया है।^{४८} वज्रसत्त्व के हाथ में भी वज्र है, किन्तु वह एक है। गौतम बुद्ध की एक मूर्ति के नीचे दस प्रकार की वस्तुओं का अंकन है, उनके ठीक मध्य में वज्र है। यह ऊपर बताये गये दो प्रकार के वज्रो में दूसरे प्रकार का है।^{४९}

साहित्य में वज्र का सबसे प्राचीन उल्लेख ऋग्वेद (३, ५६, २) में आया है। यहाँ अशनि या वज्र को इन्द्र का ध्वज कहा गया है (शक्रस्य महाशनिध्वजम्)। सिद्धान्तकौमुदी में एक सूत्र (२।१।१५) के उदाहरण में आया है - अनुवनमश-निर्गतः - अर्थात् अशनि वन की ओर चला गया। वहाँ अशनि का अर्थ बिजली गिरने से है। रामायण (सुन्दरकाण्ड ४।२१) में अशनिधारी राक्षस सैनिकों का वर्णन है। महाभारत में अशनि को अष्टवक्र वाला महाभयकर तथा रुद्र के द्वारा बनाया गया कहा है।^{५०} कालिदास ने रघुवंश (८।४७) और कुमारसम्भव (४।४३) में अशनि का उल्लेख किया है। इन्दुमति के लिए विलाप करता हुआ अज कहता है कि ब्रह्मा ने इस पुष्पमाला को इन्दुमति के लिए अशनि बनाया।^{५१} नागानन्द में गरुण अपनी चोब को अशनिदण्डकठोर बताता है।^{५२}

प्राकृत ग्रन्थों में अशनि का असणि रूप पाया जाता है। उत्तराध्ययन (२०, २१) में इन्द्र के आयुध के अर्थ में, प्रज्ञापना (१) में आकाश से गिरनेवाली बिजली के अर्थ में तथा भगवती (७, ६) में ओलो की वर्षा के अर्थ में अशनि का उल्लेख हुआ है।

शिल्प, चित्र और साहित्य के इतने उल्लेखों के बाद भी रामायण के साक्ष्य के अतिरिक्त यह पता नहीं लगता कि अशनि केवल कल्पित शस्त्र था या व्यवहार में इसका प्रयोग भी होता था। हनुमान जब लका पहुँचे तो वहाँ राक्षस-सैन्य में अशनिधारी सैनिकों को भी देखा।^{५३} इससे प्रतीत होता है कि अशनि व्यवहार में भी अवश्य था। सोमदेव ने अशनि का उल्लेख युद्ध के आयुधों के प्रसंग में नहीं किया। वर्णरत्नाकर की सूची में भी अशनि या वज्र की गणना नहीं है। द्वयाश्रय महाकाव्य के संस्कृत टीकाकार ने दण्डायुधों की सूची में वज्र को गिनाया है।^{५४}

४८ वही, पृ० २३

४९ वही, पृ० ३०, फलक ८, चित्र १-२ (३)

५० अष्टचक्रा महाधोरामशनि रुद्रनिर्मिताम्। -महा० ७, १३५, ६६

५१ अशनि कल्पित एव वेधसा। -रघु० ८।४७

५२ अशनिदण्डचण्डतरया। -नागानन्द, ४।२७

५३ शक्तिवृत्तायुधाश्चैव पट्टिशाशनिधारिण। -सुन्दरकाण्ड ४।२१

५४ द्वयाश्रय महाकाव्य सर्ग ११, श्लोक ५१, सं० टी०

किन्तु इससे यह मानना कठिन है कि अशनि का हथियार के रूप में व्यवहार उस समय (१३वीं शती) तक होता था । लगता है, इस आयुध का प्रयोग व्यवहार से बहुत पुराने समय में ही उठ गया था तथा इन्द्र देवता और कतिपय अन्य देवी-देवताओं के साथ सम्बद्ध होकर कला और शिल्प में घोष रह गया ।

१३. अंकुश

यशस्तिरुक्त में अंकुश के लिए अंकुश^१ और वेणु शब्द आये हैं । सम्स्कृत टीकाकार ने वेणु का अर्थ वज्रगण्डि किया है, जो कि गलत है ।^२ अंकुश सम्पूर्ण लोहे का बना करीब एक हाथ लम्बा होता है, जिसके एक किनारे एक सीधा तथा दूसरा मुड़ा हुआ नुकीला फन होता है ।

अंकुश का प्रयोग प्रारम्भ में हाथियों को बंध में करने के लिए किया जाता रहा है । सोमदेव ने हाथियों को 'अंकुशमयीद' (पृ० २१४) कहा है । यशस्तिरुक्त का नायक अंकुश लेकर स्वयं ही हाथियों को शिक्षित किया करता था ।^३ सोमदेव ने सफेद बालों को इन्द्रियरूप हाथियों के निग्रह के लिए अंकुश के समान बताया है ।^४

अंकुश की गणना सोमदेव ने युद्धास्त्रों के साथ नहीं की, किन्तु वर्णरत्नाकर में इसे छत्तीस दण्डायुधों में गिनाया गया है ।^५

शिल्प और चित्रों में अंकुश देवी-देवताओं के हाथों में उनके चिह्न के रूप में देखा जाता है ।^६ ढाका के समीप मिली महिषमर्दिनी की दस हाथ वाली मनोज्ञ मूर्ति एक हाथ में अंकुश भी लिये है ।^७ छानी (बड़ौदा स्टेट) के एक शाम्भु-भण्डार के ओवननिर्युक्ति नामक सचित्र ताडपत्रीय ग्रन्थ में अंकुश लिये अनेक देवियों के चित्र हैं । चतुर्भुज वज्रांकुशी देवी अपने ऊपर के दोनों हाथों में, काली देवी ऊपर के बायें हाथ में, महाकाली ऊपर के दायें हाथ में, गान्धारी ऊपर के बायें हाथ में, महाज्जाला ऊपर के दायें हाथ में तथा मानमी ऊपर के दायें हाथ में

५५. यग० पृ० २१४

५६. वहीं, पृ० २५३, ४६१

५७. स्वयंभुवर्गुर्धनवेणुर्वाग्णान्निनिन्दे । -पृ० ४६१

५८. करणकरिणा दण्डैकप्रदारणवेणव । -पृ० २५३

५९. वर्णरत्नाकर, पृ० ६१

६०. बनर्जी - डेवलपमेड आफ हिन्दू आइकोनोग्राफी, फलक ८, चित्र २, ६

६१. मटगाली - ब्राह्मणिकल स्तम्भचर्च इन द ढाका म्युजियम, फलक १६

अकुश लिये है।^{६२} ईडर के मण्डार में स्थित कल्पसूत्र की सचित्र ताडपत्रीय प्रति में चतुर्भुज इन्द्र भी ऊपर के बायें हाथ में अकुश लिये चित्रित किया गया है।^{६३}

अकुश का प्रयोग इतने प्राचीन काल से चले आने के बाद भी इसके स्वरूप और उपयोगिता में कोई अन्तर नहीं आया। महावत हाथियों के लिए अभी भी अकुश का प्रयोग करते हैं।

१४. कणय

कणय का यशस्तिलक में दो बार उल्लेख है। उत्तरापथ के सैनिक अन्य हथियारों के साथ कणय भी उठाये हुए थे।^{६४} सोमदेव ने कणय चलाने वाले योद्धाओं के प्रधान को कणयकोणप अर्थात् कणय चलाने में राक्षस के समान कहा है।^{६५}

संस्कृत टीकाकार ने एक स्थान पर कणय का अर्थ लोहे का बाण विशेष^{६६} तथा दूसरे स्थान पर भूषणनिबन्धन आयुध विशेष किया है।^{६७} प्रो० हन्दिकी ने कणय का अर्थ बरछी किया है।^{६८} म० म० गणपति शास्त्री ने अर्थशास्त्र की व्याख्या में कणय के सम्बन्ध में विशेष जानकारी दी है — कणय सम्पूर्ण लोहे का बनता था। दोनों ओर तीन-तीन कंगूरे तथा बीच में मट्टी से पकड़ने का स्थान होता था। २० अंगुली का कनिष्ठ, २२ का मध्यम तथा २४ का उत्तम, इस तरह तीन प्रकार के कणय बनते थे।^{६९}

कणय का प्रहार शत्रु पर फेंककर किया जाता था (व्यत्यासन)। यदि कणय का प्रहार करने वाला कुशल हो तो युद्ध से हाथी, घोड़े, रथ, पदाति, सभी सैनिक ऐसे भागते हैं कि उनकी भगदड़ से उत्पन्न हवा से पृथ्वी घूमने-सी लगती है।^{७०}

६२. मोतीचन्द्र — जैन मिनिस्कर पेंटिंग्स फ्राम वेस्टर्न इण्डिया, चित्र २०, २३, २४, २६, २७, ३१

६३. वही, चित्र ६०

६४. करात्तम्भितकर्तरीकणय • श्रौत्तरपथबलम् । -पृ० ४६४

६५. काणयकोणप सामर्ष विहरय । -पृ० ५६०

६६. कणय लोहवाणविशेष । -पृ० ४६४, स० टी०

६७. कणय. भूषणनिबन्धनायुधविशेष । -पृ० ५६०, स० टी०

६८. हन्दिकी — यशस्तिलक एण्ड इण्डियन कलचर, पृ० ६०

६९. कणय सर्वलोहमय उभयतस्त्रिकण्टकाकारमुखो मध्यमुष्टि ।

कनिष्ठो विशति स्यात् तदङ्गुलानां प्रमाणत ।

द्वाविंशतिमध्यम स्याच्चतुर्विंशतिरुत्तम ॥-अर्थशास्त्र, अधि० २, अध्याय १८

७०. हृत्यस्वरथादातिव्यत्यासनवातघूर्णितक्षोणि । -पृ० ५६०

१५. परशु या कुठार

परशु का उल्लेख एक बार हुआ है। सोमदेव ने परशु के प्रयोग में कुशल सैनिक को परशुपराक्रम कहा है।^{७१} सम्भवतया इस नाम का प्रयोग परशुराम की कथा को स्मृति में रखकर किया गया है।

सोमदेव परशु और कुठार को एक मानते हैं। गणपति शास्त्री ने लिखा है कि परशु पूरा लोहे का बना चौबीस अगुल का होता था।^{७३} परशु और कुठार को यदि एक मान लिया जाये तो वर्तमान में जिसे कुल्हाड़ी कहते हैं उसे ही अथवा उसके समान ही किसी हथियार को परशु कहते थे। अमरावती के चित्रों में भी इसका अकन हुआ है।^{७४}

सोमदेव ने कुठार का भी चार बार उल्लेख किया है।^{७५} संस्कृत टीकाकार ने सभी स्थानों पर उसका पर्याय परशु दिया है। परशु या कुठार का प्रहार गर्दन पर किया जाता था (कुठार कण्ठपीठी छिनत्ति, पृ० ५५६)।

शिल्प में परशु भगवान् शंकर के अस्त्र के रूप में अंकित किया गया है।^{७६} प्रारम्भिक शिल्प में शूल और परशु का संयुक्त अकन मिलता है।

१६. प्रास

प्रास का उल्लेख तीन बार हुआ है। चण्डमारी के मन्दिर में कुछ लोग प्रास लिये थे। उत्तरापथ की सेना में भी कुछ सैनिक प्रास लिये थे।^{७७} पाचाल नरेश के दूत के सामने प्रासवीर प्रास को उछालते हुए कहता है कि सूतकार के शब्द से दिग्गजों को भयभीत करता हुआ मेरा यह प्रास युद्ध में कवच सहित योद्धा को तथा उसके घोड़े को भेदकर दूत की तरह नागलोक में चला जायेगा।^{७८}

७१ परशुपराक्रम सावख्य पाणिना परश्वध निनेनिजान. ।—पृ० ५५६

७२. जयजरठितमूर्तिर्मांमकस्तस्य तूर्यम् । रणशिरसि कुठार कण्ठपीठी छिनत्ति ।—वही

७३. परशु सर्वलोहमयश्चतुर्विंशत्यङ्गुल. ।—अर्थशास्त्र २।१८, सं० टी०

७४ शिवराममूर्ति—अमरावती० फलक १०, चित्र ३

७५. यश० पृष्ठ ४३३, ४६६, ५५६, ५६७

७६. वनर्जा—वही, पृ० ३३०, फलक १, चित्र १६, १६, २१

७७ यश० पृ० १४५, ६६५

७८ प्रासप्रसर. ससौष्ठव प्रास परिवर्तयन्,

सूतकारवित्रासिनदिवक्ररीन्द्र प्रामो मदीय ममराज्ञेषु ।

सककट त्वा च ह्य च भित्वा यास्यत्यय दूत इवाहिलोके ॥—पृ० ५६१

म०म० गणपति शास्त्री ने लिखा है कि प्रास चौबीस अंगुल व दो पीठ का बनता था। यह सम्पूर्ण लोहे का होता था तथा बीच में काठ भरा रहता था।^{५१}

१७. कुन्त

कुन्त का उल्लेख पाचाल नरेश के दूत के प्रसंग में हुआ है। कुन्त-विशेषज्ञ को सोमदेव ने कुन्तप्रताप कहा है।^{५०}

कुन्त सीधे और अच्छे बास की लकड़ी लगाकर बनाया जाता था। इसे कपा कर दूर से वक्षस्थल पर प्रहार करते थे।^{५१}

संस्कृत टीकाकार ने कुन्त का पर्याय प्रास दिया है।^{५२} किन्तु सोमदेव इन दोनों को भिन्न-भिन्न मानते हैं, क्योंकि उन्होंने एक ही प्रसंग में दोनों का अलग-अलग उल्लेख किया है।^{५३} कौटिल्य ने भी दोनों को भिन्न माना है।^{५४} सात हाथ लम्बा कुन्त उत्तम, छह हाथ लम्बा मध्यम तथा पाँच हाथ लम्बा कनिष्ठ, इस तरह तीन प्रकार के कुन्त बनाये जाते थे—

हस्ताः सप्तोत्तमः कुन्तः पद्धस्तैश्चैव मध्यमः ।

कनिष्ठः पचहस्तैस्तु कुन्तमान प्रकीर्तितम् ॥

— अर्थशास्त्र २। १८, स० टी०

१८. भिन्दिपाल

भिन्दिपाल का एक बार उल्लेख है। चण्डमारी के मन्दिर में कुछ सैनिक भिन्दिपाल लिये थे।^{५५} म०म० गणपति शास्त्री के अनुसार बड़े फनवाले कुन्त को ही भिन्दिपाल कहते थे।^{५६} मत्स्यपुराण (१६०, १०) के अनुसार भिन्दिपाल लोहे का (अयोमय) होता था तथा फेंककर इसका प्रहार किया जाता था। वैजयन्ती (पृ० ११७, १, ३३१) में इसे लम्बे सिरे वाली लम्बी बर्छी कहा है।^{५७}

७६ प्रासश्चतुर्विंशत्यङ्गुलो द्विपीठः सर्वलोहमयः काष्ठगर्भश्च ।

— अर्थशास्त्र २। १८ स० टी०

८० कुन्तप्रतापः सकोप कुन्तमुत्तालयन् । —पृ० ५५६

८१. ऋजु सुवशोऽपि मदीय एष कुन्त शकुन्तान्तकतर्पणाय ।

निर्भिध वक्षः पिठरप्रतिष्ठा तस्यासृजाजन्मभुव विभर्ति ॥ —वही

८२ कुन्त प्रासः । —वही, स० टी०

८३ पृ० ५६१

८४ अर्थशास्त्र, २। १८

८५ अपरैश्च भुपुटिभिन्दिपालः । —पृ० १४५

८६. भिन्दिपाल कुन्त एव पृथुफलः । —अर्थशास्त्र २। १८, स० टी०

८७ चक्रवर्ती पी० सी० — दी आर्ट आफ वार इन पेंशियट इण्डिया, पृ० १६०

१६. करपत्र

करपत्र दाँते बनी हुई लोहे की लम्बी पत्ती होती है, जिसे आजकल करौत कहा जाता है। करपत्र या करौत छोटी-बड़ी अनेक प्रकार की होती है और लकड़ी चोरने के काम में आती है। सोमदेव ने दन्तपंक्ति को करपत्र की उपमा दी है।^८

२०. गदा

गदा का भी एक बार उल्लेख है। सोमदेव ने गदा चलाने में कुशल योद्धा को गदाविद्याधर कहा है^९। गदाविद्याधर गदा को घुमाता हुआ कहता है कि हे दूत, जाकर अपने स्वामी से कह दे कि हमारे सम्राट से दो तीन दिन में ही आकर मिल ले, अन्यथा गदा से सिर फोड़ दूँगा।^{१०}

गदा एक प्रकार का मोटा और भारी डण्डानुमा हथियार होता था। शिल्प और कला में इसके अनेक प्रकार मिलते हैं।^{११} भारतीय साहित्य में बलराम, भीम और दुर्योधन गदा के उत्कृष्ट चलाने वाले माने जाते हैं। विष्णु के भी शख, चक्र और कमल के अतिरिक्त एक हाथ में गदा का अंकन मिलता है।^{१२} गदा का निशाना प्रायः सिर को बनाया जाता था जिससे सिर चूर-चूर हो जाये।^{१३}

सोमदेव के वर्णन से स्पष्ट है कि गदा को जोर से घुमाकर फँका जाता था। गदा को बार-बार घुमाने से हवा का जो तीव्र वेग होता, उससे हाथी भी भागने लगते।

२१. दुस्फोट

दुस्फोट का उल्लेख चण्डमारी देवी के मन्दिर के प्रमग में हुआ है^{१४}। सस्कृत

८ सा दन्तपक्ति करपत्रवक्त्रश्यामच्छवि । पृ० १२३

९ गदाविद्याधर सर्ग्व गदामुत्तम्भयन् ।—पृ० ५६२

१० दूतैव विनिवेद्यात्मविभवे द्वित्रैर्दिनैर्मत्प्रभु,

पश्यागत्य यदि श्रियस्तत्र मना नो चेदिय दास्यति ।

भ्रान्त्यावृत्तिवृत्तिभ्रिता निलङ्गोत्तालीकृताशागजा,

मूर्धान भटिति स्फुटच्छलदल त्वत्क मदीयगदा ॥—पृ० ५६०

११ शिवराममूर्ति—अमरावती स्फुटच्छल, पृ० १६६

१२ वही, पृ० १०६

१३ देखो, फुटनोट सख्या ६०

१४ यमावाप्तप्रवेशपरप्राप्तपट्टिस्फुट ।—पृ० १४५

टीकाकार ने इसका अर्थ मूसल किया है।^{१५} मूसल लकड़ी का बना एक लम्बा तथा पैना उपकरण होता था। यह प्रायः खदिर की लकड़ी का बनाया जाता था। कौटिल्य ने इसकी गणना चल यन्त्रो मे की है।^{१६}

मूसल का अकन शिल्प में सकर्षण बलराम के एक हाथ में किया जाता है।^{१७} वर्तमान में मूसल एक घरेलू उपकरण बन गया है। घान आदि को ओखली में कूटने के लिए इसका उपयोग किया जाता है।

२२. मुद्गर

मुद्गर का उल्लेख दो बार हुआ है। सम्राट यशोधर के यहाँ मुद्गरधारी सैनिक भी थे।^{१८} चण्डमारी के मन्दिर में भी कुछ लोग मुद्गर लिये खड़े थे।^{१९} संस्कृत टीकाकार ने मुद्गर का अर्थ लोहे का घन किया है।^{१००} अमरावती की कला में इसका अकन मिलता है।^{१०१}

२३. परिघ

परिघ का उल्लेख एक उपमा में हुआ है। घोड़ों को सोमदेव ने शत्रु सेना के डिगाने में परिघ के समान कहा है।^{१०२} यह डण्डे जैसा लोहे का बना अस्त्र था। महाभारत में इसका उल्लेख कई बार हुआ है।^{१०३} यह भी गदा की जाति का हथियार था।

२४. दण्ड

सोमदेव ने दण्डधारी योद्धाओं का उल्लेख किया है।^{१०४} सभवतया दण्ड

६५ दु स्फोटोश्च मुमलानि ।—वही, स० टी०

६६ मुमलयष्टि खादिर शूल ।—अर्थशास्त्र २।१८, स० टी०

६७ बनर्जी — वही, पृ० ३३०

६८ मुद्गरप्रहार — सपदि मम रणाग्रे मुद्गरस्याग्रतः स्या ।—पृ० ५५७

६९ अपरैश्च यमावासप्रवेश मुद्गर—। स० पृ० १४५

१०० मुद्गरस्य लोहघनस्य ।—वही, स० टी०

१०१ शिवराममूर्ति, अमरावती स्कल्पचर्च, फलक १०, चित्र १२

१०२ परवलस्खलने परिघा हया ।—पृ० ३०५

१०३ चक्रवर्ती—द आर्ट आफ वार इन पेंशियेट इण्डिया, फुटनोट, ३

१०४ उदात्तदोर्घट्टविडम्बितदोर्घट्टमण्डलै प्रशारतुभि ।—पृ० ३३१

दण्डपाशिकभटानादिदेश ।—पृ० ५०

गदा के समान ही हथियार होता था। भारतीय सिक्को में गदा और दण्ड का इतना साम्य है कि उनको पृथक्-पृथक् करना कठिन है।^{१०९}

२५. पट्टिस

पट्टिस का दो बार उल्लेख है। उत्तरापथ की सेना में^{१०६} तथा चण्डमारी देवी के मन्दिर में^{१०७} कुछ योद्धा पट्टिस लिये हुए थे। गणपति शास्त्री ने पट्टिस को उभयान्त त्रिशूल कहा है।^{१०८} सभवतया पट्टिस लोहे का बना होता था, जिसके दोनो ओर त्रिशूल की तरह तीन-तीन नुकीले दाते बनाये जाते थे।

२६. चक्र

चक्र का दो बार उल्लेख है।^{१०९} चक्र पहिए की तरह गोल आकार का लोहे का अस्त्र था। सोमदेव के विवरण से ज्ञात होता है कि चक्र को जोर से घुमा कर इस प्रकार फेंका जाता था कि सीधा शत्रु के सिर पर गिरे। कुशलतापूर्वक फेंके गये चक्र से हाथियो तक के सिर फट जाते थे।^{११०}

चक्र की कई जातियाँ होती थी। सुदर्शन चक्र भगवान् विष्णु का आयुध माना जाता है। कला में इसके दो रूप अंकित मिलते हैं। कहीं-कहीं चक्र का अकन पूर्ण विकसित कमल की तरह भी मिलता है जिसमें पखुडियाँ आरो का कार्य करती हैं।^{१११}

२७. भ्रमिल

चण्डमारी के मन्दिर में कुछ सैनिक भ्रमिल घुमाकर पक्षियों को भयभीत कर रहे थे।^{११२} संस्कृत टीकाकार ने भ्रमिल का अर्थ चक्र किया है।^{११३}

१०५ वनजाँ—वही, पृ० ३२६

१०६. करोत्तम्भिन—प्रासपट्टिस—श्रौत्तरपथवलम् ।—पृ० ४६५

१०७ अपरैश्च यामावासप्रवेशपरप्रासपट्टिस ।—पृ० १४५

१०८ पट्टिस उभयान्तत्रिशूल ।—अर्थशास्त्र २।१८ स० टी०

१०९. पृ० ५५८, ३६०

११०, निपाजीव इव स्वामिन्स्थिरीकृतनिजासन* ।

चक्र भ्रमय दिक्पालपुरभाजनसिद्धये ॥—पृ० ३६०

चक्रविक्रम साक्षेप चक्र परिक्रमयन्,

नो चेद्वैरिकरीन्द्रकुम्भदलनव्यासत्तरक्त मुहु-

सुक्त चक्रमकालचक्रमिव ते मूर्ध्नि प्रपाति ध्रुवम् ॥—पृ० ५५८

१११ वनजाँ—वही पृ० ३२८, फलक ७, चित्र ४, ७। फलक ६, चित्र १

११२ भ्रमिलभ्रमिर्भाषित—। पृ० १४४

११३. भ्रमिल चक्रम् ।—वही, १० टी०,

२८. यष्टि

सोमदेव ने याष्टीक सैनिकों का उल्लेख किया है।^{११४} संस्कृत टोकाकार ने याष्टीक का पर्याय प्रतिहारी दिया है।^{११५} यष्टि धारण करने वाले प्रतिहारी याष्टीक कहलाते थे। म० म० गणपति शास्त्री ने यष्टि को मूसल की तरह नुकीली तथा खदिर की लकड़ी से बनने वाली बताया है।^{११६} सोमदेव ने भी एक स्थान पर हाथी की सूड़ को यष्टि से उपमा दी है, इससे भी यष्टि के स्वरूप की पहचान हो जाती है।^{११७}

शिवमारत (२५, २२) तथा भट्टीकाव्य (५, २४) में भी याष्टीक सैनिकों के उल्लेख आये हैं।^{११८}

२९. लांगल

पाचाल नरेश के दूत के प्रसंग में लागलधारी सैनिक का उल्लेख है।^{११९} लागल सभवतया सम्पूर्ण लोहे का बनता था। सोमदेव के वर्णन से ज्ञात होता है कि लागल का आकार ठीक वैसा ही होता था जैसा वर्तमान में खेत जोतने के काम में लिया जाने वाला हल। सोमदेव ने लिखा है कि लागल का प्रयोक्ता यदि कुशल हो तो अवेला ही सम्पूर्ण युद्धरूपी खेत को जोत डालता है। विपक्षियों के शरीर को नसें चरमरा जाती हैं, चमड़ा फटकर अलग हो जाता है, खून सहस्रधार होकर बहने लगता है और शरीर की हड्डियाँ घनुष की कोटि की तरह चटपट शब्द करती हुई सौ टुक हो जाती हैं।^{१२०}

हल सकर्षण बलराम का आयुध माना जाता है।^{१२१}

११४ इतस्तत्प्रीकमानैर्याष्टीकैर्विनीयमानानुक्सेवकम् ।—पृ० ३७२

११५ याष्टीकै प्रतिहारे ।—वही, स० टी०

११६ मुसलयष्टि खादिर शूल ।—अर्थशास्त्र २।१८, स० टी०

११७ यष्टिरद ।—पृ० ३०१

११८ उद्धृत, आष्टे - संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी, पृ० १३१२

११९ स० पू०, पृ० ५५६

१२० लागलगरल सोल्लुण्ठालाप लागलमुदानयमानः— हे धीराः, कृत भवता समरसरम्भण, यस्मादिदमेकमेव—

त्रुट्टतनुशिरान्ना कीर्णकृत्तिप्रताना ,

चरदविरलरलस्फारधरामहसा ।

स्फुट्टनिकठोरष्टाकृतास्थी समीके

मम रिपुहृदयालोलांगल लेलिखाति ॥ —पृ० ५५६

१२१ वननी - वही, पृ० ३०८

३०. शक्ति

शक्ति के प्रयोग में कुशल सैनिक को सोमदेव ने शक्तिकार्तिकेय कहा है।^{१२२} शक्ति सम्पूर्ण रूप से लोहे का बना भाले के समान अत्यन्त तीक्ष्ण आयुध था।^{१२३} यह स्कन्दकार्तिकेय तथा दुर्गा का अस्त्र माना जाता है। कार्तिकेय की मूर्ति के बायें हाथ में शक्ति का अकन देखा जाता है।^{१२४} सोमदेव के द्वारा प्रयोग किये गये शक्तिकार्तिकेय पद में भी यही ध्वनि है।

३१. त्रिशूल

त्रिशूल का भी उल्लेख पाचाल नरेश के दूत के प्रसंग में हुआ है।^{१२५} स्वयं सोमदेव के वर्णन से त्रिशूल के विषय में पर्याप्त जानकारी प्राप्त हो जाती है। त्रिशूल की तीन शिखाएँ होती हैं। इसका प्रहार वक्षस्थल पर किया जाता है। त्रिशूल भैरव का अस्त्र माना जाता है।^{१२६}

शिल्प में भी त्रिशूल महादेव का अस्त्र माना गया है। कहीं-कहीं परशु के साथ तथा कहीं कहीं केवल त्रिशूल का अकन मिलता है।^{१२७}

३२ शंकु

शकुधारी सैनिक को सोमदेव ने शकुशार्दूल कहा है।^{१२८} शकु लोहे या खदिर की लकड़ी का बना एक प्रकार का भाला या बर्छी जैसा शस्त्र होता था। इसका प्रयोग फेंक कर करते थे।^{१२९}

१२२ पृ० ५६२

१२३ सर्वलौहमयीशक्तिरायुधविशेष०।—वही, स० टी०

तुलना—शक्तिश्च विविधास्तीक्ष्णा।—महाभारत, आदि पर्व, ३०, ४६

१२४ भटशाली—द आइकोनोग्राफी आफ बुद्धिस्ट एण्ड ब्राह्मोनिकल स्कल्पचर्स, पृष्ठ १४७, फलक ५७, चित्र ३ (ए)

१२५ पृ० ५६०

१२६ त्रिशूलभैरव मास्य त्रिशूल वलयन्—

इद त्रिशूल तिसृभि गिखाभिर्भागत्रय वक्षसि ते विधाय—पृ० ५६०

१२७ वनजी—वरी पृ० ३३०, फलक १, चित्र १६, १९, २१ (केवल त्रिशूल) फलक १, चित्र १५, फलक ८, चित्र १, ३, फलक ६, चित्र १, २

१२८ पृ० ५६३

१२९ श्य गकुचिता रजा शतवन्तीमथ शत्रवे (ऋक्षिपत्)।—रघुवग, १०/५६

३३. पाश

पाश का उल्लेख भी एक बार हुआ है। लक्ष्मी-प्राप्ति की इच्छा को आशा-पाश कहा गया है। सोमदेव के वर्णन से लगता है कि पाश का प्रयोग पैरो में रुकावट डाल कर गत्यवरोध के लिए किया जाता था।^{१३०}

पाश के सम्बन्ध में डाक्टर पी० सी० चक्रवर्ती ने निम्नप्रकारसे विशेष जानकारी दी है -

ऋग्वेद (९, ८३, ४ - १०, ७३ ११) में पाश बरुण तथा सोम का अस्त्र बताया गया है। कर्णपर्व (५३, २३) में इसे शत्रु के पैरो को बाँधने वाला, अतएव पादबन्ध कहा है। अग्निपुराण (२५१, २) के अनुसार पाश दस हाथ लम्बा तथा किनारों पर फन्दे युक्त होना चाहिए। इसका सामना हाथ की ओर रहना चाहिए। पाश सन (जूट), मूज, भाग, तात, चमड़ा अथवा किसी अन्य मजबूत घागे से बनी रस्सी का बनाना चाहिए, इत्यादि।

नीतिप्रकाशिका (४, ४५, ६) के अनुसार पाश पीतल की बनी छोटी पत्तियों से बनाया जाता था। शुक्रनीति (४।७) के अनुसार पाश तीन हाथ लम्बा डण्डे के आकार का बनाया जाता था, जिसमें तीन नुकीले दाँते तथा लोहे की रस्सी (तार या साकल) लगी होती थी। सम्भवतया प्राचीन पाश का विकास इस रूप में हुआ हो।^{१३१}

३४. वागुरा

श्वेत वेशों को सोमदेव ने मनरूपी मृग की चेष्टा नष्ट करने के लिए वागुराके समान कहा है।^{१३२} स० टीकाकार ने वागुरा का अर्थ वधनपाश किया है।^{१३३}

वागुरा भी एक प्रकार का पाश ही था। पाश और वागुरा में अन्तर यह था कि पाश द्वारा शत्रु के चलते-फिरते कूट यन्त्र फँसाए जाते थे तथा वागुरा से गज या हाथी पर सवार सैनिकों को खींच लिया जाता था।^{१३४}

१३० लक्ष्मीलवलाभाशापाशस्खलितमतिमृगोप्रचारस्य।—पृ० ४३३

१३१ चक्रवर्ती - द आर्ट ऑफ वार इन ऐशियेंट इंडिया, पृ० १७२

१३२ हृदयहरिणस्येहाध्वसप्रसाधनवागुरा।—पृ० २५३

१३३ वागुरा वन्धनपाशा।—स० टी०, वही

१३४ अश्ववाल - दर्पचरित, पृ० ४०, फलक ४, चित्र २०

३५. क्षेपणिहस्त

क्षेपणिहस्त का एक वार उल्लेख है। यह एक लम्बी रस्सी में बीच में चमडा या रस्सी का ही बिना हुआ चौडा पट्टा-सा लगाकर बनाया जाता है। इस पट्टे में पत्थर के टुकड़े रख कर जोर से घुमाकर छोड़ते हैं। वर्तमान में इसे 'गुथनियाँ' कहते हैं। इसके द्वारा फेंका गया पत्थर का टुकड़ा बन्दूक की गोली की तरह चोट करता है। पक्षियों से खेत की रखवाली करने के लिए रखवाला एक ऊँचे मचान पर से क्षेपणिहस्त द्वारा चारों ओर दूर-दूर तक पत्थर फेंकता है। जोर से क्षेपणिहस्त छोड़ने से मन्न-न-न की आवाज होती है। सोमदेव ने भी इसी भाव को व्यक्त किया है। वे कहते हैं कि हे राजन्, राजधानीहृषी खेत में स्थित होकर दूरस्थ भी शत्रुरूपी पक्षियों को सेनारूपी पत्थरों के द्वारा महान् शब्द करते हुए क्षेपणिहस्त को तरह भगाओ (या मारो)।^{१३५}

३६. गोलधर

गोलधर का एक वार यगोधर के जुलूस के प्रसंग में उल्लेख है।^{१३६} संस्कृत टीकाकार ने इसका पर्याय गोफणहस्त किया है।^{१३७} आप्टे साहब ने गोलासन का एक अर्थ एक प्रकार की बन्दूक भी किया है।^{१३८}



१३५ दूरस्थानपि भूपाल नेत्रेऽस्मिन्नरिपक्षिण ।

बलोपन्नमहाघोषं क्षिप क्षेपणिहस्तवत् ॥—पृ० ३६

१३६ गोलधनुर्धरगोधाधिष्ठितवृत्तिभि ।—पृ० ३३०

१३७ गोलधराश्च गोफणहस्ता ।—ब०, स० टी०

१३८ ए कास्ट आफ गन, आप्टे - संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी, पृ० ६७५

अध्याय तीन
ललित कलाएँ और शिल्प-विज्ञान

गीत, वाद्य और नृत्य

गीत, वाद्य और नृत्य के लिए प्राचीन शब्द तीर्यत्रिक था। अमरकोषकार ने लिखा है कि तीर्यत्रिक शब्द से गीत, वाद्य और नृत्य का ग्रहण होता है (अमरकोष, १।६।११)। सोमदेव ने लिखा है कि मारिदत्त राजा ने तीर्यत्रिक में गन्धर्व-लोक को जीत लिया था (तीर्यत्रिकातिशयविशेषविजितगन्धर्वलोकः, १९।६, हिन्दी)। सोमदेव के युग में गीत, वाद्य और नृत्य का खूब प्रचार था। सम्राट् यशोधर को गीतगन्धर्वचक्रवर्ती, वाद्यविद्याबृहस्पति तथा नृत्तवृत्तान्तभरत (३७६-३७७ हिन्दी) कहा गया है। गन्धर्व जाति संगीत में सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। बृहस्पति द्वारा वाद्यविद्या पर लिखित कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता। वे विद्या के देवता अवश्य माने जाते हैं। भरतमुनि का नाट्यशास्त्र प्रसिद्ध है। सोमदेव ने भरतमुनि का अनेक बार स्मरण किया है। सहस्रकूट चैत्यालय को भरतपदवी के समान विधि, लय और नाट्य से युक्त बताया है (भरतपदवी इव विधिलयनाट्याडम्बर २४६।२३, उक्त०)। नृत्त, नाट्य, ताण्डव, अभिनय आदि के विशेषज्ञ भरत-गुप्तों का भी सोमदेव ने स्मरण किया है (३२०।२-३, हिन्दी)।

दशवीं शताब्दी में संगीत, वाद्य और नृत्य का विशेष प्रचार था। यशोधर का हस्तिक इतना अच्छा गाता था कि महारानी भी पाशाकृष्ट की तरह उसकी ओर खिंच गयीं। छठे आश्वास की दशवीं कथा में धन्वन्तरी नगर-नायक के घर रात्रि में नृत्य देखते रहने के कारण देर से घर लौटता है। महाराज यशोधर स्वयं नाट्यशाला में जाकर रंगपूजा करते हैं तथा नृत्य आदि के विशेषज्ञों के साथ नाट्यशाला में अभिनय आदि देखते हैं (३२०, हिन्दी)।

गीत

यशस्तिलक में गीत के विषय में पर्याप्त जानकारी आयी है। यशोधर कहता है—'उसका गला इतना मधुर है कि उसके गाने से सूखे वृक्ष भी पल्लवित और पुष्पित हो जाते हैं। ललित कलाओं में गीत का विशेष महत्त्व है। गाने में उस्ताद मनुष्य यदि स्वभाव से क्रूर भी हो तो भी स्त्रियाँ उसकी ओर आकर्षित होती हैं। गायक यदि कुरूप भी हो तो भी वह स्त्रियों के लिए कामदेव के समान

सुन्दर और प्रियदर्शन होता है । जिन स्त्रियो का दर्शन भी दुर्लभ हो वे भी गीत-से आकर्षित होकर ऐसी चली आती हैं जैसे पाश से खिंची चली आती हो । कुशल गीतकार के द्वारा गाया गया गीत मनस्विनी स्त्रियो के मन में भी एक विचित्र-सी स्थिति पैदा कर देता है ।^१

गीत और स्वर का अनन्य सम्बन्ध है । सोमदेव ने सप्त स्वरोका उल्लेख किया है (सप्तस्वरैः, पृ० ३१९) । अमरकोषकार ने वीणा के सात स्वर बताए हैं—(१) निषाद, (२) ऋषभ, (३) गान्धार, (४) षड्ज, (५) मध्यम, (६) धैवत, (७) पचम (१।३।१) । हस्ति के वृहित-जैसे स्वर को निषाद, बैल-जैसे स्वर को ऋषभ, घनुष्टकार-जैसे स्वर को गान्धार, मयूर-जैसे स्वर को षड्ज, काँवज-जैसे स्वर को मध्यम, घोड़े के ह्लेषित जैसे स्वर को धैवत तथा कोयल के कूकने-जैसे स्वर को पचम स्वर कहते हैं ।^२

वाद्य

यशस्तिलक में वाद्यविषयक बहुमूल्य और प्रचुर सामग्री के उल्लेख हैं । सब का सक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है .

आतोद्य

यशस्तिलक में वाद्यो के लिए सामान्य शब्द आतोद्य आया है । सोमदेव ने लिखा है कि नन्दिगण आतोद्य के द्वारा सरस्वती का पूजन करते थे ।^३ नाट्यशास्त्र तथा अमरकोष में भी चार प्रकार के वाद्यो के लिए सम्मिलित शब्द आतोद्य ही दिया है ।^४

१ एष हि किल निसर्गकलकण्ठनया शुष्कानपि तरुन् पल्लवयतीत्यनेकरा. कथित कुमारेण । गृणन्ति च कलासु गीतस्यैव पर महिमानमुपाध्याथा । सुप्रयुक्त हि गीत स्वभावदुर्भगमपि नर करोति युवतीना नयनमनोविश्रामस्थानम् । भवति कुरूभोऽपि गायन. कामदेवादपि कामिनीना प्रियदर्शिन । गानेन हि दुर्दर्शा अपि योषित पाशेनाकृष्टा इव सुतरा सगच्छन्ते । कुशलै. कृतप्रयोग हि गेयमपर्नाय मानग्रःमपरमेव कचिदनन्यजनसाध्यमाधिमुत्पादयति मनस्विनीनाम् ।—पृ० ५५ उक्त०

२ अमरकोष, स० टी० १।३।१

३ आतोद्येन च नन्दिभि । पृ० ३१६

४ नाट्यशास्त्र २।१, अमरकोष १।१।६

घन, सुपिर, तत और अवनद्ध, ये चार प्रकार के वाद्य हैं।^५ जो वाद्य ठोकर लगा कर बजाये जाते हैं, वे घन कहलाते हैं। जैसे घंटा आदि। जो वाद्य वायु के दबाव से बजाये जाते हैं, वे सुपिर कहलाते हैं। जैसे वेणु आदि। जो वाद्य तन्तु, तार या तौत लगाकर बनाये जाते हैं, वे तत कहलाते हैं। जैसे वीणा आदि। और जो वाद्य चमड़े से मढ़े होते हैं, वे अवनद्ध कहलाते हैं। जैसे मृदंग आदि।

यशस्तिलक में विभिन्न प्रसंगों में तेईस प्रकार के वादित्तों के उल्लेख हैं :

१ शख,	२. काहला,	३ दुदुभि,	४ पुष्कर,
५ ढक्का,	६ आनक,	७ भम्भा,	८ ताल,
९ करटा,	१० त्रिविला,	११ डमरुक,	१२ हंजा,
१३ घटा,	१४ वेणु,	१५ वीणा,	१६ झल्लरी,
१७. वल्लकी,	१८ पणव,	१९ मृदग,	२०. भेरी,
२१. तूर,	२२ पटह,	२३ डिण्डिम।	

इनमें से प्रथम सोलह का उल्लेख युद्ध के प्रसंग में एक साथ भी हुआ है। इनके विषय में विशेष जानकारी निम्नप्रकार है

१. शख

यशस्तिलक में शख का उल्लेख कई वार हुआ है। युद्ध के प्रसंग में सोमदेव ने लिखा है कि शख बजे तो दशो दिशाएँ मुखरित हो उठी।^६ एक प्रसंग में सन्ध्याकाल में मृदग और आनक के साथ शख के कोलाहल की चर्चा है।^७ एक स्थान पर पूजा के अवसर पर अन्य वाद्यों के साथ शख का भी उल्लेख है (पृष्ठ ३८४. उक्त०)।

शख की सर्वश्रेष्ठ जाति पाञ्चजन्य मानी जाती है। भगवद्गीता के अनुसार श्रीकृष्ण के हाथ में पाञ्चजन्य शख रहता था। सोमदेव ने इन दोनों तथ्यों का उल्लेख किया है।^८

संगीतशास्त्र में शख की गणना सुपिर वाद्यों में की जाती है। यह शख नामक जलकीट का आवरण है और जलस्थानों - विशेषकर समुद्रों में उपलब्ध

५ घनसुपिरतनावनद्धवादनाद।—पृ० ३८४ उक्त०

६ पृ० ५८०-८१

७ तारतर स्वनत्तु मुखरितनिखिलाशामुखेषु शखेषु।—पृ० ५८०

८ मृदगानकशखकोलाहले।—पृ० ११ उक्त०

९ कन्नुकुलमान्ये च पाञ्चजन्ये कृष्णकपरिग्रहरिवर्धनि व्यधाद्रहानि।—पृ० ७६

होता है। वाद्यो में शख ही ऐसा है जो पूर्णतया प्रकृति द्वारा निर्मित है और अपने मौलिक रूप में भी वादन योग्य होता है। सगीत-पारिजात में लिखा है कि वाद्योपयोगी शख का पेट बारह अंगुल का होता है तथा मुखविवर बेर के बराबर। वादन-सुविधा के लिए मुखविवर पर घातु का कलश लगाकर बनाये गये भी शख उपलब्ध होते हैं। भारतवर्ष में शख का प्रयोग प्राचीन काल से चला आया है और आज भी मंगल कार्यों के अवसर पर शख फूकने का रिवाज है।

साधारणतया शख से एक ही स्वर निकलता है, किन्तु इससे भी राग-रागनियाँ उत्पन्न की जा सकती है। श्री चुन्नोलाल शेष ने अपने एक लेख में लिखा है कि मैसूर राज्य के राज्यगायक स्वर्गीय पण्डित प्रभुदयाल ने काकरोली नरेश गोस्वामी श्री ब्रजभूषणलाल जी महाराज के सम्मुख इस वाद्य का प्रदर्शन किया था और उससे सब राग-रागनियाँ निकाल कर सुनायी थी। इस शख के पेट का परिमाण बारह अंगुल के ही लगभग था। मुखविवर पर मोम से स्वर्ण कलश चिपकाया हुआ था। मुख और स्वर्ण कलश के बीच मकड़ी के जाले की झिल्ली लगी थी।^{१०}

२. काहला

काहला का उल्लेख यशस्तिलक में दो बार हुआ है। एक प्रसंग में सोमदेव ने लिखा है कि जब काहलाएँ बजने लगीं तो उनके नाद की प्रतिध्वनि से दिशाएँ, पर्वत तथा गुफाएँ शब्दायमान हो उठी।^{११} संस्कृत टीकाकार ने काहला का अर्थ घतूरे के फूल की तरह मुँहवाली भेरी किया है।^{१२}

सगीतरत्नाकार में भी काहला को घतूरे के फूल की तरह मुँहवाला वाद्य कहा गया है।^{१३} किन्तु यशस्तिलक के टीकाकार का काहला को भेरी कहना उपयुक्त नहीं, क्योंकि भेरी स्पष्ट ही अवनद्ध वाद्य है और काहला सुपिर वाद्य। जातक साहित्य तथा जैन कल्पसूत्र (पृ० १२०) में भेरी का उल्लेख अवनद्ध वाद्यो में हुआ है।

काहला तीन हाथ लम्बा, छिद्र युक्त तथा घतूरे के फूल की तरह मुँहवाला सुपिर वाद्य है। यह सोना, चाँदी तथा पीतल का बनाया जाता है। इसके

१० चुन्नोलाल शेष—अष्टद्वाप के वाद्य-यन्त्र, ब्रजमाधुरी, वर्ष १३, अंक ४

११ ध्यायमानासु प्रतिशब्दनादितदिगन्तरगिरिगुहामण्डलासु ।—पृ० ५८०

१२ काहलासु घत्तूरपुष्पाकारमुखमेरिपु ।—वही, स० टी०

१३ घत्तूरकुसुमाकारवदनेन विराजिता ।—६।७६४

वजाने से हानू शब्द होते हैं।^{१४} उड़ीसा में अभी भी इस वाद्य का प्रचलन है।

३. दुंदुभि

यशस्तिलक में दुंदुभि का दो बार उल्लेख है। युद्ध के प्रसंग में लिखा है कि जब दुंदुभि वजने लगे तो उनकी ध्वनि से समुद्र क्षोभित हो उठे।^{१५} यशोधर के जन्म के समय भी दुंदुभि वजने के उल्लेख हैं।^{१६}

दुंदुभि अवनद्ध वाद्य है। यह एक मुँहवाला तथा मुँह पर चमड़ा मढ़कर बनाया जाता है और डडे से पीट पीटकर वजाया जाता है।^{१७} विशेषकर मगल और विजय के अवसर पर दुंदुभि बजाने का प्राचीन काल से ही प्रचलन रहा है। वेदकाल में भूमि दुंदुभि और दुदुभि का प्रचुर प्रचार था।

४. पुष्कर

पुष्कर का यशस्तिलक में दो बार उल्लेख है। युद्ध के समय सुर-सुन्दरियों के कानों को कष्ट देने वाले पुष्कर वजे।^{१८} श्रुनसागर ने पुष्कर का अर्थ एक स्थान पर मर्दल और दूसरे स्थान पर मृदग किया है।^{१९}

अवनद्ध वाद्यों के लिए पुष्कर का सामान्य अर्थ में प्रयोग होता है। कभी-कभी अवनद्ध वाद्य विशेष के लिए भी प्रयोग किया जाता है। सोमदेव ने सामान्य अर्थ में प्रयोग किया है। नाट्यशास्त्र में मृदग, पणव और दर्दुर को पुष्करत्रय कहा गया है।^{२०} सगीतरत्नाकरकार ने भी उसी का सन्दर्भ दिया है।^{२१} महाभारत में पुष्कर का सामान्य अर्थ में प्रयोग हुआ है।^{२२} कालिदास ने

१४ ताभ्रजा राजती यद्वा कांचनी सुषिरान्तरा ।

धत्तूरकुसुमाकारवदनेन विराजिता ॥

हस्तत्रयमिता वैद्ये काहला वाद्यते जनै ।

हाह्वर्णवती वीरविरुदोच्चारकारिणी ॥

—सगीतरत्नाकर ६।७६४-६५

१५ ध्वनत्सु क्षोभितान्भोनिधिनाभिपु दुन्दुभिपु ।—पृ० ५८०

१६ दुन्दुभिध्वनिरुत्तस्ये ।—पृ० २२८

१७ सगीतरत्नाकर, ६।११४५-४७

१८ शब्दायमानेषु सुरसुन्दरीश्रवणारुहरेषु पुष्करेषु ।—पृ० ५८१

१९ पुष्करेषु मर्दलेषु ।—वही, स० टी०

पुष्करवत् मृदगमुखवत् ।—पृ० २०६ उक्त०, स० टी०

२० नाट्यशास्त्र ३३।२४, २५

२१. प्रोक्तं नृदगरावदेन मुनिना पुष्करत्रयम् ।—स० २० ६।१००७

२२ श्रवाद्यन् दुदुभीश्च शनगरश्चैव पुष्करान् ।—महा० ६।१३।१०३

भी रघुवश और मेघदूत में पुष्कर का उल्लेख किया है।^{२३}

५. ढक्का

यशस्तिलक में ढक्का का उल्लेख युद्ध के प्रसंग में हुआ है। ढक्काएँ पीटी जाने लगी तो सेना के हाथियों के बच्चे डर गये।^{२४} श्रुतसागर ने ढक्का का अर्थ ढोल किया है।^{२५}

ढक्का या ढोल एक अवनद्ध वाद्य है। काशिकाकार ने भी अवनद्ध वाद्यों में इसका उल्लेख किया है।^{२६} यह लकड़ी का बना वर्तुलाकार वाद्य है, जिसके दोनों मुँह पर चमड़ा मढ़ा रहता है।^{२७} आजकल भी ढक्का या ढोल का प्रचलन है। बड़े ढोल डण्डे से पीटकर बजाये जाते हैं, छोटे ढोल हाथ से भी बजाये जाते हैं। छोटे ढोल को ढोलकी या ढुलकिया कहा जाता है।

६. आनक

आनक का यशस्तिलक में कई बार उल्लेख है। श्रुतसागर ने आनक का अर्थ पटह किया है।^{२८}

आनक एक मुँहवाला अवनद्ध वाद्य है, जिसके बजाने से मेघ या समुद्र के गर्जन के समान भयानक आवाज होती है। सोमदेव ने लिखा है कि प्रलयकाल के कारण क्षुभित सप्तार्णव के शब्द की तरह घोर शब्द करनेवाले आनक बजे।^{२९} संस्कृत में आनक की व्युत्पत्ति इस प्रकार होगी—आनयति उत्साहवत् करोति, अनु-णिच्-णवुल। प्राचीन साहित्य में आनक के अनेक उल्लेख मिलते हैं। महा-भारत में आनक का कई बार उल्लेख है।^{३०} आजकल के नौबत या नगरा से इसको पहचान करना चाहिए।

२३. तूर्यराहतपुष्करैः।-रघुवश १७।११

पुष्करैश्वाहतेषु।-मेघदूत ६८

२४. प्रद्वितासु वित्रामितसैन्यसामनचिक्कासु ढक्कासु।-पृ० ५८०

(चिक्का : करिगिगव , श्रीदेव)

२५. ढक्कासु ढोल्लवादित्रेषु।-बही, म० टी०

२६. काशिका ४।१।३५

२७. म० २० ६।१०६०-६४

२८. मदानकेषु महापटहेषु।-पृ० ३८४ ६०

२९. प्रलयकालक्षुभितसप्ताण्वयोरानकस्वानविर्भावितमुवनान्तरालम्।-पृ० ४४

३०. महाभारत ३।१।१७, १। २।४। २५

७. भम्भा

यशस्तिलक में भम्भा का दो बार उल्लेख है। एक प्रसंग में सोमदेव ने लिखा है कि जभाती भुजग-भामिनियो में खलवली मत्रानेवाली भम्भाएँ वजी।^{३१} श्रुतसागर ने भम्भा का अर्थ वराग या सुषिर वादित्र विशेष किया है।^{३२}

यशस्तिलक में भम्भा का उल्लेख विशेष महत्त्वपूर्ण है। सगीतगल्ताकर या सगीतराज में इसके उल्लेख नहीं मिलते। प्राचीन साहित्य में भी इसके अत्यल्प उल्लेख हैं। रायपसेणियसुत्त में अवनद्ध वाद्यो के साथ भम्भा का उल्लेख मिलता है।^{३३} श्रुतसागर ने स्पष्ट शब्दों में इसे सुषिर वाद्य कहा है। वास्तव में सर्पों को जगाने-रिझाने में अभी तक सुषिर वाद्यो का ही प्रयोग देखा जाता है। इसलिए सोमदेव के उल्लेख और श्रुतसागर की व्याख्या से भम्भा को सुषिर वाद्य मानना चाहिए, किन्तु रायपसेणियसुत्त के उल्लेखों के आधार पर विचार करने से ज्ञात होता है कि यह एक अवनद्ध वाद्य ही था। सोमदेव के उल्लेख के विषय में कहा जा सकता है कि सोमदेव ने भम्भा को सर्पों को जगाने या रिझानेवाला वाद्य नहीं कहा, प्रत्युत उनमें खलवली पैदा करनेवाला कहा है। यद्यपि यह ठीक है कि सर्पों को रिझाने आदि में अवनद्ध वाद्यो का प्रयोग नहीं देखा जाता, किन्तु यह तो सम्भव है ही कि उनके द्वारा खलवली पैदा की जा सकती है। इस दृष्टि से सोमदेव के उल्लेख से भी भम्भा को अवनद्ध वाद्य माना जा सकता है, पर उम स्थिति में श्रुतसागर की व्याख्या गलत होगी।

८. ताल

ताल का उल्लेख यशस्तिलक में दो बार हुआ है। युद्ध के प्रसंग में लिखा है कि डरे हुए हाथियों ने कान फडफडाये तो तालो की आवाज दुगुनी हो गयी।^{३४}

घन वाद्यो में ताल का सर्वप्रथम उल्लेख किया जाता है।^{३५} ताल का जोडा होता है। ये छ हजगुल व्यास के, गोल कांसे के बने हुए बीच में से दो अगुल गहरे होते हैं। मध्यमें छेद होता है, जिसमें एक डोरी द्वारा वे जुड़े रहते हैं और दोनो हाथो से पकडकर बजाये जाते हैं। ताल की ध्वनि बहुत देर तक गूँजती है, सोमदेव ने इसीलिए इसका प्रगुणित विशेषण दिया है।

३१. सञ्जितानु विजृ भित्तुजगभामिनीसरम्भासु भम्भासु १-पृ० ५२?

३२. भम्भासु वरागासु, सुषिरवादित्रविशेषेषु १-वही, स० दी०

३३. रायपसेणियसुत्त, पृ० ६०, ६८

३४. प्रगुणितेषु भयोत्तभितामरकरिकर्णतालेषु १-पृ० ५२?

३५. सगीतराज, ३।३।४।६-१६

६. करटा

यशस्तिलक में करटा का उल्लेख युद्ध के प्रसंग में है। सोमदेव ने लिखा है कि रणवीरो को उत्साहित करने वाली करटाएँ बजीं।^{३१} करटा का अर्थ श्रुतसागर ने वादित्र विशेष किया है।

करटा एक प्रकार का अवनद्ध वाद्य है। इसका खोल असन वृक्ष की लकड़ी का दो मुँह का बनता है। दोनो ओर चौदह अगुठ वर्तुलाकार चमड़े से मढा जाता है। यह कमर में बाँध कर अथवा कन्धे पर लटका कर दोनो हाथो से बजाया जाता है।^{३७}

१०. त्रिविला

यशस्तिलक में त्रिविला का दो बार उल्लेख है। युद्ध के प्रसंग में सोमदेव ने लिखा है कि समरदेवता की छाती फुलाने वाली त्रिविलाएँ विलंबित लय में बज रही थीं।^{३८}

त्रिविली को संगीतरत्नाकर में अवनद्ध वाद्यो में गिनाया है। त्रिविला और त्रिविली एक ही वाद्य ज्ञात होता है। यह दोनो ओर चमड़े से मढा तथा मध्य में मुष्टिप्राह्य होता है। सूत की डोरियो से कषाव लाया जाता है। इसके मुँह सात अगुल के होते हैं और दोनो ओर हाथो से बजाया जाता है।^{३९} यह डमरुक से मिलता-जुलता प्रकार है।

११. डमरुक

डमरुक का यशस्तिरुक में युद्ध के प्रसंग में एक बार उल्लेख है। सोमदेव ने लिखा है कि निरन्तर बज रहे डमरुओ की ध्वनि सुनते-सुनते युद्ध में राक्षसियाँ जमुहाई लेने लगीं।^{४०}

डमरुक का प्रचलन आज भी है और इसे डमरु कहा जाता है। डमरु दोनो ओर चमड़े से मढा हुआ काठ का वाद्य है जो बीचमें पकडने के लिए पतला रहता है। वजाने के लिए दोनो ओर रस्मी में छोटी छोटी लकडियाँ बंधी रहती हैं। डमरु बीच में पकडकर हिला हिलाकर बजाते हैं।

३६ प्रोत्तालितामु रणरसोत्साहितमुभट्टघटामु करटामु ।-पृ० ५८१

३७ नर्गानरत्नावर ६।१०७८-८४

३८ विन्मन्नीसु विलम्बलयप्रमोदितकदनदेवनावन्तरथलानु त्रिविलानु ।-पृ० ५८१

३९ संगीतरत्नाकर ६।११४०-४४

४० प्रवर्तितेषु निरन्तरध्वनिप्रवर्तिताश्चररात्तर्मीनेषु डमरुनेषु ।-पृ० ५८१

१२. रुंजा

रुजा का यशस्तिलक में केवल एक बार उल्लेख है। युद्ध के प्रसंग में सोमदेव ने लिखा है कि रुजाओं की बहुत देर तक की गूज से वीरलक्ष्मी के गृह-निकुज जर्जरित हो गये।^{४१}

रुजा की गणना अवनद्ध वाद्यों में की जाती है। यह काठ अथवा धातु का अठारह अगुल लम्बा तथा ग्यारह अगुल के दो मुह वाला वाद्य है। मुह पर कोमल चमड़ा मढ़ा जाता है तथा दोनों ओर के मुखों का चमड़ा डोरी से कसा हुआ होता है, जिसमें छल्ले या कड़े पड़े रहते हैं। इसके दाहिने मुख को एक टेढ़े बास से घिस कर तथा बायें को एक लकड़ी से पीट कर बजाया जाता है।^{४२}

१३. घंटा

घंटे का उल्लेख भी युद्ध के प्रसंग में है। सोमदेव ने लिखा है कि शत्रु-कटकों की चेष्टाओं को लूटने वाले जयघंटे बजे।^{४३}

घंटा एक प्रकार का घन वाद्य कहलाता है।^{४४} इसका प्रचलन अब भी है। विजय या युद्ध के अवसर पर जो घंटा बजाया जाता था, उसे जयघंटा कहते थे। घंटे छोटे-बड़े अनेक प्रकार के बनते हैं।

१४. वेणु

यशस्तिलक में वेणु का उल्लेख दो बार हुआ है।^{४५} यह एक सुपिर वाद्य है जो बास में छिद्र करके बनाया जाता है। बास का बनने के कारण ही इसे वेणु कहा गया। वेणु के उल्लेख प्राचीन साहित्य में बहुत मिलते हैं। आज भी इसका प्रचलन है और इसे वासुरी कहा जाता है।

१५. वीणा

यशस्तिलक में वीणा का एक बार उल्लेख है।^{४६} संगीत शास्त्र में तत

४१ स्फारितासु प्रदीर्घकृतजर्जरितवीरलक्ष्मीनिकेतनिकुजासु रञ्जामु १-५० ५८१

४२ संगीतरत्नाकर ६।११०२-८

मगीतराज ३, ४, ४, ६८-७४

संगीतपारिजात २, १०७-१०६

४३ जयनीपु विद्विष्टकटकचेष्टितलु ठासु जयघटानु १-५० ५८२

४४ संगीतरत्नाकर ६।१५

४५ पृ० ५८२, पृ० ३८४ टक्त०

४६ पृ० ५८१

वाद्यो के लिए वीणा नाम का सामान्य प्रयोग होता है। सोमदेव ने भी सामान्य अर्थ में प्रयोग किया है। वीणाएँ तार तथा बजाने के प्रकार भेद से अनेक प्रकार की होती हैं। सगीतरत्नाकर में दस भेद आये हैं।

१६. झल्लरी

झल्लरी का यशस्तिलक में दो बार उल्लेख है।^{४७} भरत ने नाट्यशास्त्र में झल्लरी का उल्लेख किया है।^{४८} सगीतरत्नाकर में इसे अवनद्ध वाद्यो में गिनाया गया है। यह एक ओर चमड़े से मढा वाद्य है, जो बायें हाथ में पकड़कर दायें हाथ से बजाया जाता है।^{४९} इसके बहुत छोटे आकार को भाण कहते हैं।

अहोबल ने झालर का उल्लेख किया है। श्री चुन्नोलाल शेष ने झालर और झल्लरी को एक माना है।^{५०} किन्तु यह मानना ठीक नहीं। झालर एक प्रकार का घन वाद्य है जब कि झल्लरी अवनद्ध वाद्य।

१७. वल्लकी

यशस्तिलक में वल्लकी का एक बार उल्लेख है।^{५१} सगीतरत्नाकर में भी इसका उल्लेख आता है, किन्तु विशेष विवरण नहीं है।^{५२}

वल्लकी लौकी शब्द का अपभ्रंश रूप प्रतीत होता है। गोल लौकी या तूबी लगाकर बनायी गयी वीणा विशेष को वल्लकी कहा जाता था।

१८. पणव

यशस्तिलक में पणव का एक बार उल्लेख है।^{५३} यह एक प्रकार का छोटा ढोल है। भरत ने अवनद्ध वाद्यो में इसका उल्लेख किया है।^{५४} बाद में इसका लोप हो गया लगता है। सगीतरत्नाकर तथा सगीतराज में इसके उल्लेख नहीं हैं।

४७ पृ० ५८२, पृ० ३८४ उक्त०

४८ नाट्यशास्त्र ३३।१३, १६

४९. सगीतरत्नाकर ६।११३८

५० नृनमाधुरी, वर्ष १३, अंक ४, पृ० ४७

५१ पृ० ५८१

५२ सगीतरत्नाकर १।२१३

५३. पृ० ३८४ उक्त०

५४ नाट्यशास्त्र ३३।१०, १२, १६, ५८

१६. मृदंग

सोमदेव ने मृदंग का दो बार उल्लेख किया है।^{५५} भरत ने इसे पुष्करत्रय में गिनाया है।^{५६} इसका खोल मिट्टी का बनता है इसीलिए इसका नाम मृदंग पडा। इसके दोनो मुँह चमड़े से मढे जाते हैं। मृदंग खडे होकर गले में डालकर तथा बैठकर मामने रखकर हाथो से बजाते हैं। सगीतरत्नाकर में मर्दल का वर्णन करते हुए कहा है कि मर्दल के ही प्रकार विशेष को मृदंग कहते हैं।^{५७} बगाल में अभी जिसे खोल कहा जाता है, उसी से मृदंग की पहचान करना चाहिए।

२०. भेरी

सोमदेव ने भेरी का एक बार उल्लेख किया है।^{५८} यह मृदंग जाति का वाद्य है जो तीन हाथ लम्बा दो मुँह वाला, घातु का बनता है। मुख का व्यास एक हाथ का होता है। दोनो मुँह चमड़े से मढे होकर डोरियो से कसे रहते हैं और उनमें कासे के कडे पडे रहते हैं। सगीतरत्नाकर में लिखा है कि यह ताँवे की बनी तीन वालिस्त लम्बी होती है। यह दाहिनी ओर लकडी तथा बायी ओर हाथ से बजायी जाती है।^{५९}

२१. तूर्य या तूर

यशस्तिलक में तूर्य के लिए तूर्य^{६०} और तूर^{६१} दो शब्द आये हैं। यशोवर के राज्याभिषेक के समय तूर्य बजाये गये।

तूर एक प्रकार का सुपिर वाद्य है। आजकल इसे तुरही कहा जाता है। तुरही के अनेक रूप देखने में आते हैं। दो हाथ से चार हाथ तक की तुरही बनती है। इसका रूप भी कलात्मक होता है।

५५ पृ० ४८६, पृ० ३८४ उक्त०

५६ नाट्यशास्त्र ६३।१४-१५

५७ सगीतरत्नाकर ६।१०२७

५८ पृष्ठ ३८४ उक्त०

५९ सगीतरत्नाकर ६।११४८-५७

६० सतूर्यनिन्दम् ।-पृ० १८४ हि०

६१ तूरवर. परुष ।-पृ० ६३ हि०

गवतूरम् ।-३० वही

२२. पटह

यशस्तिलक में पटह का एक बार उल्लेख है।^{६२} यह एक प्रकार का अवनद्ध वाद्य है। सगीतपारिजात में इसे ढोलक कहा है। सगीतरत्नाकर में इसके म.गं पटह और देशी पटह दो भेद आये हैं और दोनों का ही विस्तृत विवेचन किया गया है।^{६३}

२३. डिण्डिम

डिण्डिम का यशस्तिलक में एक बार उल्लेख है। सोमदेव ने इसकी ध्वनि को व्यालो को जगानेवाली कहा है।^{६४}

डिण्डिम डमरु की तरह का वाद्य है। इसका भाङ मिट्टी का बना होता है और दोनो मुँहों पर पतली झिल्ली मढ़ी जाती है। झिल्ली को किसी डोर से नहीं बाँधा जाता किन्तु वह मुख पर सरेस जैसी किसी चिपकनेवाली वस्तु से चिपकी रहती है। बजाने के लिए बीच में डोरा बँवा रहता है जिसके अन्त में दो छोटी गाँठें होती हैं। आजकल इसे डिमडिमी कहते हैं।

नृत्य

यशस्तिलक में नृत्य या नाट्यशास्त्र से सम्बन्धित सामग्री भी पर्याप्त मात्रा में है। सबका विवेचन निम्नप्रकार है

नाट्यशाला

दरबार से उठकर सम्राट् नाट्यशाला में पहुँचे (कदाचित् नाट्यशालासु, २१७।३, हि०)। नाट्यशाला का फर्श कामिनियो के चरणालक्तक से रागरजित हो रहा था (कामिनोजनचरणालक्तकरसरागरजितरगतलासु, ३१६।३, हि०)।

भरतमुनि ने नाटक खेलने के लिए नाट्यशाला, नाट्यमण्डप या प्रेक्षागृह का विधान किया है। ये नाट्यमण्डप तीन प्रकार के बनाये जाते थे :—(१) विकृष्ट, (२) चतुरश्र और (३) त्रयश्र। इन तीनों का प्रमाण क्रम से उत्तम, मध्यम और अवर (जघन्य) होता था। भरत ने लिखा है कि देवों के लिए

६२. पृ० ५८

६३. सगीतरत्नाकर ६।८०५

६४. डिण्डिमध्वनिरिव ध्यसन्व्यालप्रबोधनकर* । -पृ० ६७ उक्त०

ज्येष्ठ या उत्तम, राजाओं के लिए मध्यम तथा जनसाधारण के लिए अवर प्रेक्षा-गृह की रचना होनी चाहिए।^{६५} मध्यम प्रेक्षागृह में पाठ्य और गेय अधिक सरलता से सुने जा सकते हैं। इसलिए अन्य दोनों की अपेक्षा मध्यम प्रेक्षागृह अधिक अच्छा है।^{६६}

अभिनय

नाट्यशाला के प्रसंग में अभिनय का भी उल्लेख यशस्तिलक (३२०।३) में आया है। यशोधर ने प्रयोगभग तथा अनेक प्रकार के विचित्र आंगिक, वाचिक, आहार्य और सात्त्विक अभिनय करने में सिद्धहस्त (प्रयोगभगीविचित्रा-भिनयतन्त्रैर्भरतमुत्रै , ३२०।३) अभिनेताओं के साथ नाट्यशाला में अभिनय देखा।

रंगपूजा

अभिनय प्रारम्भ होने के पूर्व सर्वप्रथम रंगपूजा की जाती थी। रंगपूजा न करने वाले को तिर्यग्योनि का भागी तथा करने वाले को स्वर्गप्राप्ति और शुभ अर्थ प्राप्ति होना कहा गया है।^{६७} यशस्तिलक में रंगपूजा का विस्तार से वर्णन है। सम्राट् यशोधर के नाट्यशाला में पहुँचने पर रंगपूजा प्रारम्भ होती है (पृ० ३१८-३२२, हि)। इस प्रसंग में सरस्वती को सम्बोधित करके आठ पद्य निबद्ध किये गये हैं (इति पूर्वरंगपूजाप्रक्रमप्रवृत्त सरस्वतीस्तुतिवृत्तम्, पृ० ३२२, हि.)।

‘सफेद कमल पर आसन, अवर पर मन्द स्मित, केतकी के पराग से पिंजरित सुभग अगयष्टि, धवल दुकूल, चारुलोचन, सिर पर जटाजूट, कानों में बाल चन्द्रमा के समान अवतम, श्वेतकमलो का हार, एक हाथ में ध्यान मुद्रा, दूसरे में अक्षमाला, तीसरे में पुस्तक और चौथा हाथ वरद मुद्रा में।’^{६८}—यह है सरस्वती का पूर्ण स्वरूप। भरत ने नाट्यशास्त्र में रंगपूजा के प्रसंग में देवी-देवताओं को जो लम्बी सूची दी है, उसमें सरस्वती भी है। प्राचीन साहित्य तथा पुरातत्त्व में सरस्वती के क्वचित् भिन्न-भिन्न अनेक रूप मिलने हैं।^{६९} विद्या

६५ नाट्यशास्त्र, २।७, ८, ११

६६ वही, २।२१

६७ नाट्यशास्त्र, १।१२०-१२६

६८ यग० पृ० ३१८, श्लो० २६०-६३, हि०

६९ भट्टगार्गी—ड आइकोनोग्राफी ऑब् युद्धिस्ट एस्ट द्राफोनिक्ल म्क् पचर्म इन द द्राक्ता न्युजियम, पृ० १८१-१८६

और सस्कृति की अधिष्ठात्री यह देवी वैदिक, जैन तथा बौद्ध तीनों धर्मों में समान रूप से पूज्य रही है (स्मिथ—जैन स्तूप आफ मयुरा, पृ० ३६) । ऋग्वेद से लेकर बाद के अधिकांश साहित्य में सरस्वती का वर्णन मिलता है (मेरुडानल—वैदिक माहथोलोजी, पृ० ८७) ।

नृत्य के भेद

यशस्तिलक में नृत्य के लिए कई शब्द आये हैं । जैसे नृत्य (६२०), नृत्त (३७७।१), नाट्य (३२०), लास्य (३५५), ताण्डव (३२०) और विधि (२४६ उ०) । कतिपय अन्य शब्दों और वर्णनों से भी नृत्य-विधान का परिचय मिलता है ।

नृत्य, नृत्त और नाट्य शब्द देखने में समानार्थक से लगते हैं, किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है । घनजय ने इन तीनों के भेद को स्पष्ट किया है,^{७०} जिसे आगे दिखाएँगे । लास्य और ताण्डव नृत्य के भेद हैं । विधि का अर्थ यशस्तिलक के सस्कृत टीकाकार ने नृत्य किया है । यह नाट्यशास्त्र का कोई प्राचीन पारिभाषिक शब्द प्रतीत होता है, जिसका अब ठीक अर्थ नहीं लगता । सहस्रकूट-चैत्यालय को भरत पदवी की तरह विधि, लय और नाट्य से युक्त कहा गया है (भरतपदवीव विधिलयनाट्याडम्बर, २४६।२३ उक्त०) ।

नाट्य

काव्यों में वर्णित धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीरललित और धीरप्रशान्त प्रकृति के नायको तथा उस उस प्रकृति की नायिकाओं एवं अन्य पात्रों का आगिक, वाचिक, आहार्य तथा सात्त्विक अभिनयो द्वारा अवस्थानुकरण करना नाट्य कहलाता है ।^{७१} अवस्थानुकरण से तात्पर्य है — चाल-ढाल, वेश-भूषा, आलाप-प्रलाप, आदि के द्वारा पात्रों की प्रत्येक अवस्था का अनुकरण इस ढंग से किया जाये कि नटों में पात्रों की तादात्म्यापत्ति हो जाये । जैसे नट दुष्यन्त की प्रत्येक प्रवृत्ति की ऐसी अनुकृति करे कि सामाजिक उसे दुष्यन्त ही समझे ।

नाट्य दृश्य होता है, इसलिए इसे 'रूप' भी कहते हैं और रूपक अलंकार की तरह आरोप होने के कारण रूपक भी कहते हैं । इसके नाटक आदि दस भेद होते हैं ।^{७२}

७० दशरूपक १।७, ६, १०

७१ दशरूपक १।७

७२. वही, १।७—८

नाट्य प्रधान रूप से रस के आश्रित रहता है। सामाजिक को रसानुभूति कराना ही नाट्य का चरम लक्ष्य है। शृंगार, वीर या करुण रस की परिपुष्टि नायक की प्रकृति के अनुसार, नाटक में की जाती है।

नृत्य

भावो पर आश्रित अनुकृति को नृत्य कहते हैं (अन्यद्भावाश्रय नृत्यम्, दश० १।८)। नाट्य प्रधान रूप से रस के आश्रित होता है, किन्तु नृत्य प्रधान रूप से भावाश्रित होता है। घनजय के टीकाकार घनिक ने इन दोनों के भेद को और भी अधिक स्पष्ट किया है जो इस प्रकार है^{७३} —

१. नाट्य रसाश्रित है, नृत्य भावाश्रित, इसलिए इन दोनों में विषय भेद है।
२. नाट्य में आंगिक आदि चारों प्रकार का अभिनय रहता है, जबकि नृत्य में केवल आंगिक अभिनय की प्रधानता है।
३. नाट्य दृश्य और श्रव्य दोनों होता है, जबकि नृत्य में श्रव्य कुछ भी नहीं होता। इसमें कथनोपकथन का अभाव रहता है।
४. नाट्य-कर्ता नट कहलाता है, नृत्य कर्ता नर्तक।
५. नाट्य 'नट् अवस्पन्दने' धातु से बना है और नृत्य 'नृत् गात्रविक्षेपे' धातु से बना है।

एक व्यर्थक पद्य में सोमदेव ने नृत्य की मुद्रा का पूरा चित्र खींचा है।^{७४}
तीनों अर्थ इस प्रकार हैं—

१. नृत्य के पक्ष में।
२. प्रमदारति अर्थात् स्त्रीसम्भोग के पक्ष में।
३. सभामण्डप या दरवार के पक्ष में।

नृत्य के पक्ष से

जिसमें कुन्तल चँवर कम्पित हो रहे हैं, कावी का कन्ध-कल शब्द हो रहा है, कटाक्ष पात द्वारा भाव निवेदन किया गया है, ऊह और चरणों के यथावसर

७३. वही, १।६

७४. चन्द्रकुन्तलचामर कलरगन्वाचीलयाटन्वग्म्,
त्रुभगापितभावञ्जमचरगन्वासासनानिदितम्।
खिलत्वाधिपताकर्मज्ञणपथानीनांगहारोत्सवम्,
नृत्य च प्रमदारति च नृपतिम्यान च ते स्नान् मुदे ॥ -प्रा०१, श्लोक १७४

न्यास से सामाजिको को आनन्दित किया गया है, जिसमें हस्तपताकाएँ संचालित हो रही हैं तथा आगिक अभिनय द्वारा नृत्य का आनन्द दृष्टिपथ में अवतरित हो रहा है, ऐसा नृत्य तुम्हारी प्रसन्नता के लिए हो ।

उस अर्थ में कुन्तल पर चँवर का आरोप तथा पाणि पर पताका का आरोप विशिष्ट है, अन्य अर्थ श्लेष से निकल आते हैं ।

प्रमदारति के पक्ष में

जिसमें केश कम्पित हो रहे हैं, काची का शब्द हो रहा है, कटाक्षपात द्वारा रति का भाव प्रकट किया गया है, ऊरु और चरण न्यास के विशेष आसन द्वारा रति का आनन्द प्रकट किया गया है, हाथ हिल रहे हैं, अंगहार पर जिसमें दृष्टि गड़ी है, ऐसी प्रमदारति आपको आनन्द प्रदान करे ।

इस पक्ष में 'ऊरुवरणन्यासासनानन्दितम्' तथा 'ईक्षणथानीतागहारोत्सवम्' पदों के अर्थ विशेष बदले हैं ।

सभामण्डप के पक्ष में

जिसमें चंचल वेशो के चँवर ढोरे जा रहे हैं, सचरणशील वारविलासिनी अथवा दासियों की काची का कलकल शब्द हो रहा है, जिसमें भ्रूक्षेप मात्र से आज्ञा या कार्य निर्देश किया गया है, आसन पर ऊरु और चरणों का न्यास किया गया है, हाथों में ली हुई पताकाएँ उड़ रही हैं, तथा जिसमें मन्त्री, पुरोहित, सेनापति आदि राज्याग का समूह आनन्दित किया गया है, ऐसा सभामण्डप आपको प्रसन्नता के लिए हो ।

इस पक्ष में 'भ्रूभगार्पितभाव' तथा 'अगहार' पद का अर्थ विशेष बदला है ।

एक अन्य स्थल पर (पृ० १९६।११, हिन्दी) पैरो में घुँघुळ बाँधकर नृत्य करने का उल्लेख है । यशोधर के राज्यभवन में नृत्य हो रहा था जिसमें पवन की तरह चंचल हस्त-सचालन और बीच बीच में घुँघुळों की मधुर ध्वनि हो रही थी ।^{७५}

नृत्त

ताल और लय के आधार पर किये जाने वाले नर्तन को नृत्त कहते हैं (नृत्त ताललयाश्रयम्) ।^{७६}

७५. नृत्यङ्गस्तैरिव पवमानचंचलचलनसंगतागसुभगवृत्तिभिर्विधिवर्णविनिर्माणमनोहरा-
डम्बरैरन्तरान्तरमुक्तकलक्वणन्मणिक्रिक्रिणीजालमालाभिः ।—१६५।११, हिन्दी

७६. दशा० १।६

नृत्य में अभिनय का सर्वथा अभाव होता है। केवल ताल और लय के आधार पर द्रुत, मन्द या मध्यम पादविक्षेप किया जाता है। ताल संगीत में स्वर की मात्रा का तथा नृत्य में पादविक्षेप की मात्रा का नियामक होता है। लय नृत्य की गति को तीव्र, मन्द या मध्यम करने की सूचना देता है। इस प्रकार नृत्य और नृत्य के भेदक तत्त्व ये हैं—

- १ नृत्य में आंगिक अभिनय रहता है, नृत्य अभिनय शून्य है।
२. नृत्य भावाश्रित है, जबकि नृत्य ताल और लय के आश्रित।
- ३ नृत्य शास्त्रीय पद्धति के अनुसार चलता है, जबकि नृत्य ताल और लय के आश्रित होकर भी शास्त्रीय नहीं। इसीलिए नृत्य मार्ग (शास्त्रीय) कहलाता है तथा नृत्य देशी।
- ४ नृत्य के उदाहरण 'भरतनाट्यम्,' 'कथक' या उदयशकर के भावनृत्य हैं। नृत्य के उदाहरण लोकनृत्य हो सकते हैं।

नृत्य के भेद

नृत्य के दो भेद हैं—(१) मधुर, (२) उद्धत। मधुर नृत्य को लास्य तथा उद्धत नृत्य को ताण्डव कहते हैं। नृत्य के भी यही भेद हैं। नृत्य और नृत्य के ये दोनों प्रकार लास्य और ताण्डव नाट्य के उपस्कारक होते हैं।^{७७} नाट्य में पदार्थाभिनय के रूप में नृत्य का तथा शोभाजनक होने के कारण नृत्य का प्रयोग किया जाता है। वस्तु, नेता और रस इनके भेदक तत्त्व हैं। (वस्तुनेतारसस्तेषा भेदक, दश० १।११)।

लास्य

नृत्य तथा नृत्य में सुकुमार तथा उद्धत भावों की व्यञ्जना के लिए भिन्न सरणी का आश्रय लिया जाता है। भावों की सुकुमार व्यञ्जना को लास्य कहते हैं। सावन आदि के अवसर पर किये जाने वाले कामिनियों के मधुर तथा सुकुमार नृत्य लास्य कहे जा सकते हैं। मयूर का कोमल नर्तन लास्य के अन्तर्गत आता है। यशस्तिरु में यन्त्रद्वारा गृह का वर्णन करते हुए भवन-मयूर के लास्य का उल्लेख है। यन्त्र के बने हुए अनेक हाथी, सिंह, सर्प आदि के मूँड़ में घर्घर शब्द करता हुआ पानी निकलता या जिससे क्रीडा-मयूरी को मेघवर्जन का भ्रम होता और वे आनन्दविभोर होकर नाचने लगते हैं।^{७८}

७७ दश० १।१०

७८ त्रिविधशालवदनविनिर्गजलधाराध्वनितनयलास्यमानभवनागणवर्दिणम्।

दशरूपककार ने लिखा है कि नाट्यशास्त्र में सुकुमार नृत्यका सनिवेश भगवती पार्वती ने किया था।^{७३}

ताण्डव

उद्धत नृत्य को ताण्डव कहते हैं। नृत्य और नृत्त दोनों ही लास्य और ताण्डव के भेद से दो दो प्रकार के होते हैं।^{८०} सोमदेव ने ताण्डव का उत्ताल विशेषण दिया है (उत्तालताण्डव, ३५६।१, हिन्दी)। ताण्डव नृत्य में सिद्धहस्त अभिनेताओं को 'ताण्डवचण्डीश' कहा गया है (३२०।२, हिन्दी)। महादेव का ताण्डव नृत्य प्रसिद्ध है। घनजय के अनुसार नाट्य में ताण्डव का सनिवेश महादेव ने किया था।^{८२} महादेव की नटराज मुद्रा की अनेक मनोज्ञ मूर्तियाँ मिलती हैं।^{८२}



७६ दश० १।४

८० वही १।१०

८१. दश० १।४

८२ मटशाली—द आइकोनोग्राफी ऑव् बुद्धिस्ट एण्ड ब्राह्मेनिकल स्कल्पचर्स इन द टाका म्युजियम

चित्र-कला

यशस्विनलरु में चित्रकला के उल्लेख भी कम नहीं है और जितने हैं वे कला की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं ।

भित्ति-चित्र

पांचवें उच्छ्रवाम में एक जैन मन्दिर का अतीव रोचक वर्णन है । उसी प्रसंग में सोमदेव ने अनेक भित्ति-चित्रों का उल्लेख किया है ।'

कला की दृष्टि से भित्ति चित्रों की अपनी विशेषता है । भित्ति-चित्र बनाने के लिए भीतर का उपलेप (प्लास्टर) कँषा होना चाहिए और उसे कैसे बनाना चाहिए, उस पर लिखाई करने के लिए जमीन कैसे तैयार करनी चाहिए, इत्यादि बातों का मविस्तर वर्णन अभिलपितार्थचिन्तामणि तथा मानसोल्लास में आया है । जमीन तथा रंगों में पकड़ के लिए मरेम दिया जाता था, जिसे वज्रलेप कहते थे । उपलेप पर जमीन तैयार करके भावुक एव मूक्ष्म रेखा-विशारद चित्रकार चिन्तन द्वारा अर्थात् अन्तर्दृष्टि से देखकर उम पर अनेक भाव तथा रम वाले चित्र अच्छी रेखाओं और समुचित रंगों से बनाता था । आलेखन के लिए वह कलम के अति-रिक्त पेंसिल की-भी किसी अन्य चीज का भी प्रयोग करता था जिसका नाम वतिका था । पहले हमी से आकार टीपता था फिर नेरु में सच्ची टिमाई करता था, तब समुचित रंग भरता था । ऊँचाई दिखाने के लिए उजाला (लाइट) तथा निचाई के लिए छाया (शेड) देता था । तैयार चित्र के हाशिए की पट्टी काले रंग से करता था और वन्द्य, वामरण, चेहरे आदि की लिखाई अलवतक से करता था ।

सोमदेव ने जिन भित्ति चित्रों का उल्लेख किया है वे दो प्रकार के हैं—
१-व्यक्ति-चित्र, २-प्रतीक चित्र । व्यक्ति चित्रों में बाहुवृत्ति, प्रद्युम्न, मुपाश्व, अगोक्रोहणो तथा यशमिथुन का उल्लेख है । प्रतीक-चित्रों में तीर्थंकरों की माता के द्वारा देखे जाने वाले सोलह न्वपनों का विवरण है ।

१. सुकविद्विरिव चित्रदुला ।-२४६।०० उच्छ०

व्यक्ति-चित्र

१. बाहुबलि (विजयसेनैव बाहुबलिविदिता, २४६।२० उक्त०)

जैन परम्परा में बाहुबलि एक महान् तपस्वी और मोक्षगामी महापुरुष माने गये हैं। ये आदि तीर्थंकर ऋषभदेव के पुत्र तथा चक्रवर्ती भरत के भाई थे। भरत के चक्रवर्तित्व प्राप्ति के बाद ये सन्यस्त हो गये और लगातार बारह वर्ष तक तप करते रहे। सुडौल, सौम्य और विशाल शरीर के धारक इस तपस्वी ने ऐसी समाधि लगाई कि वर्षा, जाड़ा और गर्मी किसी से भी विचलित नहीं हुआ। चारों ओर पेड़ पौधे और लताएँ उग आयीं और शरीर का सहारा पाकर कघो तक चढ़ गयी। बाहुबलि का यही चित्र शिल्प और ललित कला में कलाकार ने उकीरा है। दक्षिण भारत में अनेक मनोमूर्तियाँ बाहुबलि के उक्त स्वरूप की अभी भी विद्यमान हैं। संसार को आश्चर्यचकित करने वाली श्रवणबेलगोल (मैसूर) की मूर्ति इसी महापुरुष की है जो उन्मुक्त आकाश में निरालम्ब खड़ी चराचर विश्व को शान्ति का अमर सन्देश दे रही है।

२ प्रद्युम्न (प्रकटरतिजीवितेशा, २४६।२२ उक्त०)

प्रद्युम्न सौन्दर्य और कान्ति के सर्वश्रेष्ठ प्रतीक माने जाते हैं। इसीलिए इन्हें रतिजीवितेश अर्थात् कामदेव कहा गया है। प्रद्युम्न का पूरा चित्र दीवार पर उकीरा गया था।

३ सुपार्श्व (रूपगुणनिका इव सुपार्श्वगता, २४६।२० उक्त०)

सोमदेव ने लिखा है कि यह मन्दिर रूपगुणनिका की तरह सुपार्श्वगत था। रूपगुणनिका और पार्श्वगत दोनों ही चित्रकला के पारिभाषिक शब्द हैं। चित्र उकीरने के लिए व्यक्ति का अध्ययन रूपगुणनिका कहलाता है। इसी तरह पार्श्वगत चित्र के नव अंगों में से एक है। विष्णुधर्मोत्तर (३९, १ भाग ३) में इन नव अंगों का विवरण आया है (नव स्थानानि रूपाणाम्, वही)।

सोमदेव ने जिस मन्दिर का उल्लेख किया है उसमें सम्भवतया सुपार्श्वनाथ की मूर्ति थी जिसे कलाकार की दृष्टि से देखने पर केवल पार्श्वगत अंग ही दिखाई देता था। सुपार्श्वनाथ जैन परम्परा में सातवें तीर्थंकर माने गये हैं।

४ अशोक तथा रोहिणी (अशोकरोहणीपेशला, २४६।२१ उक्त०)

जैन परम्परा में अशोक राजा तथा रोहिणी रानी की कथा और चित्रों की परम्परा पुरानी है। प्राचीन पाण्डुलिपियों तक में इनके चित्र मिलते हैं (डॉ० मोतीचन्द्र - जैन मिनिएचर पेंटिंग्ज, चित्र १७)।

५ यक्षमिथुन (यक्षमिथुनसनाथा, २४६।२१ उक्त०)

तीर्थंकरों को पूजा-अर्चा के लिए यक्षमिथुनों के आने का शास्त्रों में बहुत जगह उल्लेख है। सम्भवतया ऐसे ही किसी प्रसंग में यक्षमिथुन चित्रित किये गये थे।

प्रतीक-चित्र

जैन साहित्य में ऐसे उल्लेख आते हैं कि तीर्थंकरों के गर्भ में आने के पहले उनकी माता सोलह स्वप्न देखती है। श्वेताम्बर परम्परा में चौदह स्वप्नों का वर्णन आता है। सोमदेव ने जिस मन्दिर का उल्लेख किया है उसमें ये सोलह स्वप्न भिति पर चित्रित किये गये थे -

- १ ऐरावत हाथी (मनिहितैरावता, २४६।२४ उक्त०)
- २ वृषभ (आसन्नसौरभेया, २४६।२४ उक्त०)
- ३ सिंह (निलीनोपकण्डीरव, २४६।२५ उक्त०)
- ४ लक्ष्मी (रमोपशोभिता, २४६।२५ उक्त०)
- ५ लटकती पुष्पमालाएँ (प्रलम्बितकुमुमशरा, २४६।२६ उक्त०)
- ६.७. चन्द्र, सूर्य (सवित्रविधुवृष्णमण्डला, २४७।१ उक्त०)
- ८ मत्स्ययुगल (शकुलीयुगलाकिता, २४७।१ उक्त०)
९. पूर्णकुम्भ (पूर्णकुम्भाभिरामा, २४७।२ उक्त०)
- १० पद्मरोवर (कमलाकरसेत्रिता, २४७।२ उक्त०)
- ११ मिहासन (प्रसाधितमिहासना, २४७।३ उक्त०)
१२. समुद्र (जलनिविमति, २४७।३ उक्त०)
- १३ फणयुवतसर्प (उन्मीलिताहिलोका, २४७।३ उक्त०)
- १४ प्रज्वलित अग्नि (प्रत्यक्षहृताशना, २४७।४ उक्त०)
- १५ रत्नों का ढेर (समणिनिचया, २४७।५ उक्त०)
- १६ देवविमान (प्रदर्शितदेवालय, २४७।५ उक्त०)

रंगावलि या घूलि-चित्र

रंगावलि या घूलि-चित्रों का यगश्चिह्नक में छह बार उल्लेख हुआ है। राज्याभिषेक के बाद महाराज यज्ञोत्तर राजभवन को लौट रहे थे। उस समय अनेक लोग मगल सामग्री जुटाने में लगे थे। किसी कुलवृद्धा ने किसी सेवित्रा कन्या को डपटने हुए कहा - तत्काल रंगावलि बनाने में जुट जाओ।^१ आस्थान-

मडप में कर्पूर की सफेद धूलि से रंगावलि बनाई गयी थी।^३ राजमहिषी के महल में एक स्थान पर मणि लगाकर स्थायी रूप से रंगावलि अंकित की गयी थी।^४ अन्यत्र कुकुम रंगे मरकत पराग से फर्श पर तह देकर अबखिले मालती के फूलों से रंगावलि बनाई गयी थी। एक अन्य प्रसंग में भी पुष्पो द्वारा रचित रंगावलि का उल्लेख है।^५

रंगावलि बनाने के लिए पहले जमीन को पतले गोबर से लीपकर अच्छी तरह साफ कर लिया जाता था। इसे परभागकल्पन कहते थे।^६ इस तरह साफ की गयी जमीन पर सफेद या रंगीन चूर्ण से रंगावलि बनाई जाती थी। आज-कल इसे रंगोली या अल्पना कहा जाता है। प्रायः प्रत्येक मासिक अवसर पर रंगावलि बनाने का प्रचलन भारतवर्ष में अब भी है।

चित्रकला में रंगावलि को क्षणिक-चित्र कहते हैं। क्षणिक-चित्र के दो प्रकार होते हैं — धूलि चित्र और रस-चित्र।^७

चित्रकर्म

सोमदेव ने एक विशेष सदर्थ में प्रजापतिप्रोक्त चित्रकर्म का उल्लेख किया है।^८ इसका एक पद्य भी उद्धृत किया है—

श्रमण तेजलिप्ताग नवभिर्भक्तिभिर्युतम् ।

यो लिखेत् स लिखेत्सर्वा पृथ्वीमपि ससागराम् ॥^९

श्रुतसागर ने यहाँ श्रमण का अर्थ तीर्थंकर और तेजलिप्ताग का अर्थ करोड़ों सूर्यों की प्रभा के समान तेजयुक्त किया है तथा मधुमाघवी के अनुसार नव-भक्तियों को इस प्रकार गिनाया है—

३ अनल्पकर्पूरपरागपरिकल्पितरंगावलि विधानम् । —पृ० ३६६

४ चरणनखस्फुटितेन रगवल्लीमणीन् इव असहमानया । —पृ० २४ उक्त०

५ दुसुणरसारुणितमरकतपरागपरिकल्पितभूमितलभागे मनामोदमानमालतीमुकुल-
विरचितरगवलिनि । —पृ० २८ उक्त०

६ पर्यन्तपादपै सपादितकुष्ठमोपहार प्रदत्तरंगावलि । —पृ० १३३

७ रगवल्लीपु परभागकल्पनम् । —पृ० २४७ उक्त०

८ वी० राघवन्—संस्कृत टेक्स्ट आन पेंडिंग, इंडियन इस्टॉरिकल क्वार्टरली, जिल्द ६ ।
पृ० ६०५-६

९ प्रजापतिप्रोक्ते च चित्रकर्मणि । —पृ० ११० उक्त०

१०. पृ० वही । मुद्रित प्रति का 'तेललिप्ताग' और 'भक्ति' पाठ गलत है ।

शालोऽथ वेदिरय वेदिरयोऽपि शाल-
वेदोव शाल इह वेदिरयोऽपि शालः ।
वेदो च भाति सदमि क्रमत यदीये,
तम्मै नमस्त्रिभुवनविभवे जिनाय ॥

स्पष्ट ही यह सन्दर्भ तीर्थकर के समवशरण को व्यक्त करता है। जैन शास्त्रों के अनुसार तीर्थकर को केवलज्ञान होने के उपरान्त इन्द्र कुबेर को आज्ञा देकर एक विराट सभामण्डप का निर्माण कराता है, जिसमें तीर्थकर का उपदेश होता है। इसी सभामंडप को समवशरण कहा जाता है। जैसा कि श्रुत-सागर ने लिखा है इसकी रचना गोलाकार होती है और शाल और वेदी, शाल और वेदी के क्रम से विन्यास किया जाता है। प्राचीन जैन चित्रों में समवशरण का सुन्दर अंकन मिलता है।

सोमदेव द्वारा उल्लिखित प्रजापति-प्रोक्त चित्रकर्म उपलब्ध नहीं होता। मभवतया यह ब्राह्मण्य चित्रकर्म शिल्पशास्त्र था, जिसका मार तजोर ग्रन्थालार की १५४३१ सस्या वाली पाण्डुलिपि में उपलब्ध है।

अन्य उल्लेख

चित्रकला के अन्य उल्लेखों में सोमदेव ने एक स्थान पर खम्भो पर बने चित्रों का उल्लेख किया है (केतुकाण्डचित्रं, १८।४ म० पू०)। एक अन्य स्थान पर भित्तियों पर बने हुए पिंडों का उल्लेख किया है (चित्रापितादिपैरिव, ९०।६ म० पू०)। शरोखों से झँकती हुई कामिनियों का वर्णन भी एक स्थान पर आया है (गत्राभ्रमार्गेषु विलासिनोता विलोचनैर्माकिनकत्रिवकान्तै ३४२।३-६ स० पू०)। सस्कृत साहित्य तथा कला एव शिल्प में अन्यत्र भी ऐसे उल्लेख आये हैं।



वास्तु-शिल्प

यशस्तिलक में वास्तु-शिल्प सम्बन्धी विविध प्रकार की सामग्री के उल्लेख मिलते हैं। विभिन्न प्रकार के शिखरयुक्त चैत्यालय (देवमन्दिर), गगनचुबी महाभागभवन, त्रिभुवनतिलक नामक राजप्रासाद, लक्ष्मीविलासतामरस नामक आस्थानमण्डप, श्रीसरस्वतीविलासकमलाकर नामक राजमन्दिर, दिग्बलय-विलोकनविलास नामक क्रीडाप्रासाद, करिविनोदविलोकनदोहद नामक प्रधाव-घरणिप्रासाद, मनसिजविलासहसनिवासतामरस नामक वासभवन, गुहदोषिका, प्रमदवन, यन्त्रत्रारागृह आदि का विस्तृत वर्णन विभिन्न प्रसंगों में आया है। सम्पूर्ण सामग्री का विवेचन इस प्रकार है -

चैत्यालय

देवमन्दिर के लिए यशस्तिलक में चैत्यालय शब्द का प्रयोग हुआ है। सोमदेव ने लिखा है कि राजपुरनगर विविध प्रकार के शिखरयुक्त चैत्यालयों से सुशोभित था।^१ शिखर क्या थे मानो निर्माणकला के प्रतीक थे।^२ शिखरों से विशेष कान्ति निकलती थी। सोमदेव ने इसे देवकुमारों को निरवलम्ब आकाश से उतरने के लिए अवतरण मार्ग कहा है।^३ शिखर ऐसे लगते थे मानो शिशिर-गिरि कैलाश का उपहास कर रहे हों।^४ शिखर की अटनि पर सिंह निर्माण किया गया था। सोमदेव ने लिखा है कि अटनि पर बने सिंहों को देख कर चन्द्रमृग चकित रह जाते थे।^५ शिखरों की ऊँचाई की कल्पना सोमदेव के इस कथन से की जा सकती है कि सूर्य के रथ का घोड़ा थक कर मानो क्षण भर विश्राम के लिए शिखरों पर ठिठक रहता था।^६ देवयानों को चक्कर काट कर ले जाना पड़ता था।^७ निरन्तर विहार करते हुए विद्याधरों की कामिनियों के

१ विचित्रक्रीडिभिः कूटैरुपशोभितम् । - पृ० २१ पृ०

२ घटनाश्रियां श्रियमुद्वहद्भिः । - वही

३ देवकुमारकाणामनालम्बे नभस्यवतरणमार्गचिह्नोचितरुचिभिः । - पृ० २७

४ उपहसितशिशिरगिरिहराचलशिखरैः । - वही

५ अटनितटनिविष्टविकटसटोत्कटकरटिरिपुसमीपसचारचकितचन्द्रमृग । - वही

६ अरुणरथतुरगचरणालुण्णक्षयमात्रविश्रमैः । - वही

७ अवरचरचमूविमानगतिविक्रमविधायिभिः । - वही

कपोलो का स्वेदजल चैत्यालयो के शिखरो पर लगी पताकाओ की हवा से सूख जाता था ।^८

ध्वज दण्डो में चित्र बनाये जाते थे । सोमदेव ने लिखा है कि सटकर चलती सुर-सुन्दरियो के चञ्चल हाथो से ध्वज-दण्डो के चित्र मिट जाते थे ।^९ ध्वजस्तम्भ की स्तम्भिकाओ में मणिमुकुर लगे थे^{१०} । शिखरो पर रत्नजटित काचनकलश लगाये गये थे, जिनसे निकलनेवाली कान्ति से आकाश-लक्ष्मी का चदोवा-सा बन रहा था ।^{११} पानी निकलने के लिए चन्द्रकान्त के प्रणाल बनाये गये थे ।^{१२} किपिरि (कगूरे) सूर्यकान्त के बने थे, जो सूर्य की रोशनी में दीपको की तरह चमकते थे ।^{१३} उज्ज्वल आमलासार पर कलहस श्रेणी बनायी गयी थी ।^{१४} उपरितल पर घूमते हुए मयूर-बालक दिखाये गये थे ।^{१५} सामने ही स्तूप बनाया गया था ।^{१६} विटको पर शुक-शावक बैठे हरित अरुणमणि का भ्रम पैदा कर रहे थे ।^{१७} चाष पक्षियो के पखो से मँचक रचना ढक गयी थी ।^{१८} पालिध्वजाओ में क्षुद्र घटिकाएँ लगायी गयी थी ।^{१९} चूने से ऐसी सफेदी की गयी थी मानो आकाशगंगा का प्रवाह उमड आया हो ।^{२०} चैत्यालय ऐसे लगते थे मानो आकाशवृक्ष के फूलो के गुच्छे हो, श्वेतद्वीपसृष्टि हो, आकाशदेवता के शिखण्डमण्डन का पुण्डरीक समूह हो, तीनों लोको के भव्य जनो के पुण्योपार्जन क्षेत्र हो, आकाश-समुद्र की फेनराशि हो, शकर का अट्टहास हो, स्फटिक के क्रीडाशैल हो, ऐरावत के कलभ हो । चारो ओर से पड रही माणिक्यो की कान्ति द्वारा मानो भवतो के स्वर्गारोहण के लिए सोपान परम्परा रच रहे हो, ससार-सागर से तिरने के लिए जहाज हो (पृ० २०, २१) ।

८. वही पृ० १८

९ अतिसविधसचरत्सुरसुन्दरीकरचापलविलुप्तकेतुकाण्डचित्रैः । - वही

१० अनेकध्वजस्तम्भस्तम्भिकोत्तमितमणिमुकुर । - वही

११ अप्रत्नरत्नचयनचित्काचनकलश । - वही

१२ चन्द्रकान्तमयप्रणाल । - वही

१३ दिनकृतकान्तकिपिरि । - वही

१४ अमलकामलामारविलसत्कलहसश्रेणी । - पृ० १४

१५ उपरितनतलचलत्प्रचलाक्निवालक । - वही

१६ उपान्नस्तूप । - वही

१७. १८ पृ० २०

१९. किंकिणीजालवाचालपालिध्वज । - वही

२०. अनवधिसुधाप्रधावद्धामसदिग्धस्वधुनीप्रवाहै । - वही

चैत्यालयो के इस वर्णन में सोमदेव ने प्राचीन वास्तुशिल्प के कई पारि-
भाषिक शब्दों का उल्लेख किया है। जैसे - अटनि, केतुकाण्डचित्र, ध्वज-
स्तम्भस्तम्भिका, प्रणाल, आमलासारकलश, किंपिरि, स्तूप, विटक।

प्राचीन वास्तुशिल्प में अटनि अर्थात् बाहरी छज्जे पर सिंह-रचना का विशेष रिवाज था। इसे झम्पासिंह कहते थे। केतुकाण्ड अर्थात् ध्वजा दण्डो पर चित्र बनाये जाते थे। ध्वजा देवमन्दिर का एक आवश्यक अंग था। ठक्कुर फेर ने वास्तुसार (३।३५) में लिखा है कि देवमन्दिर के अच्छे शिखर पर ध्वजा न हो तो उस मन्दिर में असुरों का निवास होता है। प्रासाद के विस्तार के अनुसार ध्वजा-दण्ड बनाया जाता था। एक हाथ के विस्तार वाले प्रासाद में पौन अगुल मोटा ध्वजादण्ड और उसके आगे क्रमशः आधा-आधा अगुल बढ़ाना चाहिए (३।३४ वही)। दण्ड की मर्कटी (पाटली) के मुख भाग में दो अर्द्धचन्द्र का आकार बनाने तथा दो तरफ घटी लगाने का विधान बताया गया है।^{२१} ध्वजस्तम्भों के आधार के लिए स्तम्भिकाएँ बनायी जाती थी। उनमें मणिमूकुर लगाने की प्रथा थी। स्तम्भिकाओं की रचना घण्टोदय के अनुसार की जाती थी।^{२२} चैत्यालय में देवमूर्ति के प्रक्षालन का जल बाहर निकालने के लिए प्रणाल की रचना की जाती थी। देवमूर्ति अथवा प्रासाद का मुख जिस दिशा में हो तदनुसार प्रणाल बनाया जाता था। प्रासादमण्डन तथा अपराजितपृच्छा में इसका व्योरेवार वर्णन किया गया है। शिखर के ऊपर और कलश के नीचे आमलासारकलश की रचना की जाती थी। शिखर के अनुपात से आमलासार बनाया जाता था। प्रासादमण्डन में लिखा है कि दोनों रथिकाओं के मध्य भाग जितनी आमलासारकलश की गोलाई करना चाहिए, आमलासार के विस्तार से आधी ऊँचाई, ऊँचाई का चार भाग करके पौन भाग का गला, सवा भाग का आमलासार, एक भाग की चन्द्रिका और एक भाग की आमलसारिका बनाना चाहिए (४।३२, ३३)। आमलासार के ऊपर काचन कलश स्थापित किया जाता था। कलश की स्थापना मागलिक मानी जाती थी (प्रासादमण्डन ४।३६)। मण्डन ने ज्येष्ठ, कनीय और अम्युदय के भेद से कलश के तीन प्रकार बताये हैं। सोम-
देव ने चैत्यालयो के मुडेर को किंपिरि कहा है। सूर्यकान्त के बने किंपिरि सूर्य की रोशनी में मणिदीपो की तरह चमकते थे। चैत्यालय के समीप ही स्तूप बनाये जाते थे। विटक को श्रुतसागर ने द्वाहर निकला हुआ काष्ठ कहा है।^{२३} वास्तु-

२१ अपराजितपृच्छा, सूत्र १४४, प्रासादमण्डन ४।४५

२२ घण्टोदयप्रमाणेन स्तम्भिकोदय कारयेत्। -वही

२३ वहिर्निर्गतानि काष्ठानि। -पृ० २०

शिल्प में अन्यत्र हम शब्द का प्रयोग देखने में नहीं आता। सम्भवतया छज्जे के नीचे लगी काठ की धरन विटंक कहलाती थी।

चैत्यालयो के अतिरिक्त राजपुर में श्रीमानो के गगनचुम्बी (अञ्जलिहै) प्रासाद थे। मणिजड़ित उत्तुगतोरण लगाये गये थे।^{२४} तोरणो से निकलती किरणो से देवताओ के भवन मानो पीले हो रहे थे।^{२५}

त्रिभुवनतिलक प्रासाद

सोमदेव ने लिखा है कि सिप्रा के तट पर राज्याभिषेक के बाद यशोधर ने लौट कर त्रिभुवनतिलक नामक प्रासाद में प्रवेश किया। त्रिभुवनतिलक प्रासाद श्वेत पाषाण या सगमर्मर (सुधोपलासार, ३४२) का बनाया गया था। शिखरो पर स्वर्णकलश (काचनकलश, ३४३) लगाये गये थे। पूरे प्रासाद पर चूने से सफेदी की गयी थी।^{२६} रत्नमय खम्भो वाले ऊँचे-ऊँचे तोरणो के कारण राजभवन कुबेरपुरी की तरह लगता था (पृ० ३४४)।

यहाँ सोमदेव ने तोरण को 'उत्तु गतरगतोरण' कहा है। तोरणो के रत्नमय खम्भो (रत्नमयस्तम्भ, ३४४ पृ०) पर मुक्ताफल की लम्बी-लम्बी मालाएँ लटकती हुई दिखाई गयी थी।^{२७} बड़े-बड़े प्रवालमणि (प्रवालप्रवाल, वही) तथा दिव्य दुकूल भी अंकित थे। ऊपर लगी ध्वजाओ से मरकतमणि लगे हुए थे, जिनसे नीली कान्ति निकल रही थी।^{२८} एक ओर महामण्डलेश्वर राजाओ के द्वारा उपहार में आये श्रेष्ठ हाथियो के मदजल से भूमि पर छिडकाव हो रहा था।^{२९} दूमरी ओर उपहार में प्राप्त उत्तम घोडे मुँह-से फेन उगलते श्वेत कमल बनाते-से बँधे थे।^{३०} दूतो के द्वारा लाये गये उपहार एक ओर रखे थे (वही ३४४)। राजमवन प्रजापतिपुर सदृश होने पर भी दुर्वासा (मलिनवस्त्रधारी) रहित था। इन्द्रभवन सदृश होने पर भी अपारिजात (शत्रुसमूहरहित) था। अग्निगृह सदृश होने पर भी अधूमश्यामल (मणिमाणिक्यो की प्रभायुक्त) था। धर्मधाम (यमराज का घर) होकर भी अदुरीहितव्यवहार (पापव्यवहार)

२४ उत्तु गतोरणमणि । -पृ० २१

२५ पिंजरितामरभवनै । -वही

२६ सुधार्दाधितिप्रबन्धैः धवलित्ताखिलदिग्बलयम् । -३४४

२७ आवलवितमुक्ताप्रलव । -३४४ पृ०

२८ उपरितनदेशोत्त भित्तध्वजप्रान्नप्रोतमरकतमणि । -वही

२९ महामडलेश्वरैरनवरतमु गायनीकृतकरीन्द्रमदलक्ष्मीजनितसमार्जनम् । -वही

३० उपाहूताजानेय हयाननोद्गीर्ण्यडिण्डोरिपिण्डपुण्डरीकविहितोपहारम् । -वही

शून्य था। पुण्यजनावास होकर भी अराक्षसभाव था। प्रचेत पस्त्य (वरुणगृह) होकर भी अजडाशय था। वातोदवसित (वायुभवन) होकर भी अचपलनायक (स्थिरस्वामी) था। घनदधिष्णघ (कुबेरगृह) होकर भी अस्थाणुपरिणत (ठूठरहित) था। शभूशरण होकर भी अव्यालावलीढ था। ब्रध्नसौघ होकर भी अनेकरथ था। चन्द्रमन्दिर होकर भी अमृदुप्रताप था। हरिगेह होकर भी अहिरण्यकशिपुनाश था। नागेशनिवास होकर भी अद्विजिह्वपरिजन (दोगलारहित) था, वनदेवता-निवास होकर भी अकुरग था।

कहीं घर्मराजनगर की तरह सूक्ष्मतत्त्ववेत्ता विद्वान् सम्पूर्ण ससार के व्यवहार का विचार कर रहे थे। कहीं पर ब्रह्मालय की तरह द्विजन्मा (ब्राह्मण) लोग निगमार्थ (नीति-शास्त्र) की विवेचना कर रहे थे। कहीं पर तण्डुभवन की तरह अभिनेता इतिहास का अभिनय कर रहे थे। कहीं पर समवशरण की तरह प्रमुख विद्वान् तत्त्वोपदेश कर रहे थे। कहीं सूर्य के रथ की तरह घोड़ों को सिखाने के लिए घसीटा जा रहा था। कहीं अगराज भवन की तरह सारंग (हाथी) शिक्षित किये जा रहे थे। कुलवृद्धाएँ दासियों तथा नौकर-चाकरो को नाना प्रकार के निर्देश दे रही थीं। ऊँचे तमगो के क्षरोखो से स्त्रियाँ झाँक रही थीं। कीर्तिसाहार नामक वैतालिक इस त्रिभुवनतिलक नामक भवन का वर्णन इस प्रकार करता है—

यह प्रासाद शुभ्रध्वजा-श्रेणियो द्वारा कहीं हवा से हिल रही हिलोरो वाली गंगा की तरह लगता है, तो कहीं स्वर्णकलशों की अरुण किरणों के कारण सुमेरु की छाया की तरह। कहीं अतिस्वेत भित्तियों के कारण समुद्र की शोभा धारण करता है तो कहीं गगनचुम्बी शिखरो के कारण हिमालय की सदृशता धारण करता है। यह भवन-लक्ष्मी का क्रीडास्थल, साम्राज्य का महान् प्रतीक, कीर्ति का उत्पत्तिगृह, क्षितिबधू का विश्रामघाम, लक्ष्मी का विलासदर्पण, राज्य की अधिष्ठात्री देवी का कुलगृह तथा धारदेवता का क्रीडास्थान प्रतीत होता है (पृ० ३५२-५३)।

त्रिभुवनतिलक प्रासाद के वर्णन में सोमदेव ने जो अनेक महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ दी हैं, उनमें पुरदरागार, चित्रभानुभवन, घर्मघाम, पुण्यजनावास, प्रचेत पस्त्य, वातोदवसित, घनदधिष्णघ, ब्रध्नसौघ, चन्द्रमन्दिर, हरिगेह, नागेशनिवास, तण्डु-भवन इत्यादि की जानकारी त्रिगेप महत्त्व की है। सूर्यमन्दिर, अग्निमन्दिर आदि बनाने की परम्परा प्राचीन काल से थी। इनके भग्नावशेष या उल्लेख आज भी मिलते हैं।

केवल सोमदेव के उल्लेखों के आधार पर यद्यपि यह कहना कठिन है कि दशमी शती में उपर्युक्त सभी प्रकार के मन्दिर विद्यमान थे, तो भी इतनी जानकारी तो मिलती ही है कि प्राचीन काल में इन सभी के मंदिर निर्माण की परम्परा रही होगी।

इसी प्रसंग में प्रासाद या भवन के लिए आये पुर, आगार, भवन, घाम, आवास, पस्त्य, उद्वसित, घिष्णघ, शरण, सौघ, मन्दिर, गेह और निवास शब्द भी महत्त्वपूर्ण हैं। भवन या मन्दिर के लिए इतने शब्दों का प्रयोग अन्यत्र एक साथ नहीं मिलता।

त्रिभुवनतिलक या इसी प्रकार के नामों की परम्परा भी प्राचीन है। भोज ने चौदह प्रकार के भवनों का उल्लेख किया है, उनमें एक भुवनतिलक भी है।

आस्थानमण्डप

सोमदेव ने यशोधर के लक्ष्मीनिवासतामरस नामक आस्थानमण्डप का विस्तृत वर्णन किया है। भोज ने भी (अ० ३०) लक्ष्मीविलास नामक भवन का उल्लेख किया है। गुजरात के वडोदा आदि स्थानों में विलास नामान्तक भवनों की परम्परा अभी तक प्रचलित है।

आस्थानमण्डप राजभवन का वह भाग कहलाता था, जिसमें बैठ कर राजा राज्य कार्य देखते थे।^{३१} इसे मुगलकाल में दरबारे आम कहा जाता था।

आस्थानमण्डप राजा के निवासस्थान से पृथक् होता था। प्रातः कालीन दैनिक कृत्यों से निवृत्त हो यशोधर ने आस्थानमण्डप की ओर प्रयाण किया। सबसे पहले उन्हें गजशाला या हाथीखाना मिला। उसमें बड़े-बड़े दिग्गज हाथी गोलाकार बँधे थे। उनके अरुण माणिक्यों से मढ़े गजदन्तों में पड़ रही परछाईं से उनके कुम्भस्थलों की सिन्दूर शोभा द्विगुणित हो रही थी। और गण्डस्थलों से झरते मद के सौरभ से भ्रमरियों के झुण्ड के झुण्ड खिंचे आते थे जिनसे आकाश नीला-नीला हो रहा था (पृ० ३६७)।

गजशाला के बाद यशोधर ने अश्वशाला या घुडसार देखी। घुडसार में यहाँ-वहाँ कई पक्षियों में घोड़े बँधे थे। उनको नेत्र, चीन, चित्रपटी, पटोल, रल्लिका आदि वस्त्रों की जीनें पहनायी गयी थी। घास के हर कौर के साथ उनके मुख-प्रकीर्णक हिल-हिल कर उनकी आँखों के कोने चूम रहे थे। अपने

दायें पैरो की टाप से वे बार-बार धरती खोद रहे थे मानो अपनी विजय पर-
म्पराओं का प्रतिपादन कर रहे हों। उनकी हिनहिनाहट से समीपवर्ती सौधों के
उत्सव गूँज रहे थे (पृ० ३६८)।

राजभवन के निकट ही गज तथा अश्वशाला बनाने की परम्परा प्राचीन
थी। इसका मुख्य कारण यह था कि प्रातःकाल गज व अश्वदर्शन राजा के लिए
मांगलिक माना जाता था। गजवर्णन के प्रसंग में स्वयं सोमदेव ने लिखा है
कि जो राजा प्रातःकाल गजपूजन-दर्शन करता है वह रण में कीर्तिशाली तो
होता ही है, निःसन्देह सार्वभौम भी होता है। प्रसन्नवदन गज का उषाकाल में
दर्शन करने से दुःस्वप्न, दुष्टग्रह तथा दुष्टचेष्टा का नाश होता है (पृ० ३००)।

राजभवन के निकट गज और अश्वशाला फतेहपुर सीकरी के प्राचीन
महलों में आज भी देखी जाती हैं।

आस्थानमण्डप कालागुरु की सुगन्धित धूप से महक रहा था। फड़फड़ाती
ढेरो पताकाएँ आकाश-सागर में हसमाला-सी लगती थीं। उच्च प्रासाद-शिखर
पर माणिक्य जटित कलशों से कान्ति निकल रही थी। फल, फूल और पल्लव
युक्त वन्दनवारों के बीच-बीच में कीर-कामिनियाँ बैठी थीं। बीच-बीच में तार
हार लटकाये गये थे। स्फटिक के कुट्टिमतल पर गाढी केशर का छिडकाव किया
गया था। कर्पूरधूलि से रंगोली बनायी गयी थी। मरकतमणि की बनी वित्तिका
पर कमल, मालती, वकुल, तिलक, मल्लिका, अशोक आदि के अधखिले फूलों
के उपहार चढाये गये थे। उदीर्ण मणिस्तम्भिका पर सिंहासन सजाया गया था
जो कल्पवृक्ष से वेष्टित सुमेरुशिखर-सा लगता था। दोनों पार्श्वों में उज्ज्वल
चमर ढोरे जा रहे थे। ऊपर सफेद दुकूल का वितान था। दीवारों में नीचे से
ऊपर तक रत्नफलक जड़े थे, जिनमें उपासना के लिए आये सामन्तों के प्रतिबिम्ब
पड रहे थे।

विविध प्रकार के मणियों से बनी विभिन्न प्रकार की आकृतियों को देख
कर डरे हुए भूपालवालक (राजकुमार) कचुकियों को परेशान कर रहे थे।
लगता था जैसे इन्द्र को सभा हो। याष्टीक सैनिक निकटवर्ती सेवकों को डाँट-
डपट कर निर्देश दे रहे थे अपनी पोशाक ठीक करो, धन और जवानी के
जोश में वक्तो मत, बिना अनुमति किसी को घुसने न दो, अपनी-अपनी जगह
सँभल कर रहो, भीड़ मत लगाओ, आपस में फिजूल की बकवास मत करो,
मन को न डुलाओ, इन्द्रियों को कावू में रखो, एकटक महाराज की ओर देखो
कि महाराज क्या पूछते हैं, क्या कहते हैं, क्या आदेश देते हैं, क्या नयी बात
कहते हैं (३७१-७२)।

सरस्वतीविलासकमलाकर

महाराज यशोधर ने रात्रि को जिस प्रासाद में शयन किया उसे सोमदेव ने सरस्वतीविलासकमलाकर नामक राजमन्दिर कहा है।^{३२} सोमदेव ने इसका विस्तृत वर्णन नहीं किया है। सम्भवतया यह त्रिभुवनतिलक नामक प्रासाद का ही एक भाग था।

दिग्बलयविलोकविलास

दिग्बलयविलोकविलास नामक भवन क्रीडा पर्वत की तलहटी में बनाया गया था।^{३३} सम्राट् इस भवन में बैठ कर प्रथम वर्षा का आनन्द लेते थे। परिवार से घिरे^{३४} महाराज यशोधर जब मेवा में आये सामन्त समाज के साथ^{३५} वर्षा ऋतु की शोभा का आनन्द ले रहे थे^{३६} तभी सचिविग्रही ने आकर सूचना दी कि पाचाल नरेश का दुकूल नामक दूत आया है, प्रतिहार भूमि में बैठा है (५४९)। इस प्रसंग में प्रासाद का तो विशेष वर्णन नहीं है किन्तु वर्षा ऋतु तथा राजनीति सम्बन्धी विवेचन है।

करिविनोदविलोकनदोहद

करिविनोदविलोकनदोहद नामक प्रासाद प्रभाववरणि (गजशिक्षाभूमि) में बनाया गया था, जिसमें गजविशेषज्ञ आचार्यों के साथ बैठ कर महाराज गजकेलि देखते थे।^{३७} इस प्रसंग में सोमदेव ने प्रासाद का तो विशेष वर्णन नहीं किया किन्तु गजशास्त्र विषयक महत्त्वपूर्ण सामग्री दी है जिसका अन्यत्र विवेचन किया गया है। आजकल जिम प्रकार स्पोर्ट्स स्टेडियम बनाये जाते हैं उसी प्रकार प्राचीन काल में करिविनोदविलोकनदोहद आदि भवनो का निर्माण किया जाता था।

मनसिजविलासहंसनिवासतामरस

अन्त पुर या रनिवास को सोमदेव ने मनसिजविलासहंसनिवासतामरस

३२ सरस्वतीविलासकमलाकरराजमन्दिरम् । - ३५६

३३. क्रीडाचलमेखलानिलयिनि दिग्बलयविलोकविलासनाग्नि धाम्नि । - पृ० ५४८

३४ प्रवीरपरिपदपरिवारित । - वही

३५. सम सेवासमागतसमस्तसामन्तसमाजेन । - वही

३६ वर्षर्तुश्रिय यावदहमनुभवन् । - वही

३७. प्रभावधरणिपु करिविनोदविलोकनदोहद प्रासादमध्यास्य प्रभिन्नकरिकेलीरदर्शम् ।

नाम दिया है। यह वासभवन सतखण्डा महल का सबसे ऊपरी भाग था।^{३८} यशोधर अधिरोहिणी (सोढ़ियो) से चढ कर वहाँ गया। सोमदेव का यह उल्लेख विशेष महत्त्व का है। इससे ज्ञात होता है कि दशमी शताब्दी में इतने ऊँचे-ऊँचे प्रासादों की रचना होने लगी थी। ग्वालियर जिले के चन्देरी नामक स्थान के खण्डित कुपक महल की पहचान सात खण्ड के प्रासाद से की जाती है। मालवा के मुहम्मद शाह ने १४४५ में इसके बनाने की आज्ञा दी थी। वर्तमान में इसके केवल चार खण्ड शेष रहे हैं।^{३९} सोमदेव ने एक स्थान पर और भी सप्ततल प्रासाद का उल्लेख किया है।^{४०} यशोधर सभा विसर्जित करके चल कर (चरणमार्गेणैव, २३) महादेवी के वासभवन में गया था। प्रतिहार-पालिका ने द्वार पर क्षण भर के लिए यह कह कर रोक लिया कि अन्य स्त्री-जनासक्ति जान कर महादेवी कुपित हैं। सम्राट् ने अपना प्रणयकोप जाहिर किया तब कही उसने रास्ता दिया। हँस कर देहली छोड़ दी^{४१} और कक्षान्तरो को पार कराती भवन में ले गयी।

इम वासभवन की सुनहरी दीवारों पर यक्षकर्म का लेप किया गया था और कर्पूर से दन्तुरित किया गया था।^{४२} रजत वातायनो पर कस्तूरी का लेप किया गया था, जिससे झरोखे से आने वाली हवा सुगन्धित होकर आ रही थी।^{४३} स्फटिक की देहली को गाढे स्यन्दरस से साफ किया था।^{४४} कुकुम रंगे मरकत-पराग से फर्श (तलभाग) पर तह देकर अघखिले मालती के फूलों से रंगोली बनायी गयी थी।^{४५} कालागुरु चन्दन की धूप निरन्तर जल रही थी, जिसके धुएँ से वितान पर्यन्त लटकती मुक्तामालाएँ धूसरित हो गयी थी।^{४६} कूर्चस्थान पर फूलों के गुलदस्ते रखे थे।^{४७} सचरणशील हेमकन्यका के कन्धे पर ताम्बूल-

३८ सप्ततलप्रासादोपरितनभागवर्तिनि । - पृ० २६ उत्त०

३९ इलियन आर्चिटेक्चर, भाग २, पृ० ६५

४०. सप्ततलागाराग्रिमभूमिभागिनि जिनसध्वनि । -पृ० ३०२, उत्त०

४१. सपरिहास समुत्सृष्टग्रहावग्रहणी । -पृ० २७, वही

४२ यक्षकर्मखचितकर्पूरदलदन्तुरितजातरूपमिच्छिनि । -पृ० २८

४३ मृगमदशकलोपलिसरजतवातायनविवरविहरमाशयसमीरसुरभिते । -वही

४४ सान्द्रस्यन्दसमार्जितामलकदेहलीशिरसि । -वही

४५. धुसुणरसारुणितमरकतरागपरिकल्पितभूमितलभागे मनाड्मोदमानमालतीमुकुल-विरचितरगवलिनि । -वही

४६ अनवरतदह्यमानकालगुरुधूपधूमधूसरितवितानपर्यन्तमुक्ताफलमाले । -वही

४७ कूर्चस्थानविनिवेशितप्रसूनसमूह । -पृ० २६

कपिलिका रखी थी।^{४८} तुहिनतरु के बने वलीको पर उपकरण टांगे गये थे।^{४९} मणि के पिंजडे में शुक-सारिका बैठी कामकथा में लीन थी।^{५०}

उपर्युक्त वर्णन में आये कूर्चस्थान, सचारिमहेमकन्यका, तथा वलीक आदि शब्द विशेष महत्त्व के हैं। कूर्चस्थान का अर्थ श्रुतसागर ने सभोगोपकरणस्थापन-प्रदेश किया है। सचारिमहेमकन्यका के विषय में यन्त्रशिल्प प्रकरण में विचार किया गया है। इस प्रकार की यान्त्रिक पुत्तलिकाओं के निर्माण की परम्परा सोमदेव के पूर्व से चली आ रही थी और बाद तक चलती रही। वलीक शब्द का अर्थ श्रुतसागर ने पट्टिका किया है। यह अर्थ पर्याप्त नहीं है। वृक्षो पर उपकरण टांगने की परम्परा का उल्लेख कालिदास ने भी किया है। जब शकुन्तला पतिगृह को जाने लगी तब वृक्षो ने उसे समस्त आभूषण दिये (शाकुन्तल, अ० ४)। सम्भवतया सोमदेव का उल्लेख इसी ओर सकेत करता है। कर्पूरवृक्ष के वलीक बनाये गये थे, जिनमें बीच-बीच में पुष्पमालाएँ टांगी थी और उपकरण टांगे थे।^{५१}

दीर्घिका

दीर्घिका का उल्लेख यशस्तिलक में कई बार हुआ है। दो स्थानों पर विशेष वर्णन भी है। जलक्रीडा के प्रसंग में प्रथम आश्वास में और यन्त्रधारागृह के वर्णन में तृतीय आश्वास में।

दीर्घिका प्राचीन प्रासाद-शिल्प का एक पारिभाषिक शब्द था। यह एक प्रकार की लम्बी नहर होती थी जो राजप्रासादों में एक ओर से दूसरी ओर दौड़ती हुई अन्त में प्रमदवन या गृहोद्यान को सींचती थी। बीच-बीच में जल के प्रवाह को रोक कर पुष्करणी, गन्धोदककूप, क्रीडावापी इत्यादि बना लिये जाते थे। कहीं जल को अदृश्य करके आगे विविध प्रकार के पशु-पक्षियों के मुँह से पानी झरता हुआ दिखाते थे। लम्बी होने के कारण इसका नाम दीर्घिका पडा। सोमदेव ने यशोवर्ष के महल की दीर्घिका का विस्तृत वर्णन किया है। इसका तलभाग

४८. सचारिमहेमकन्यकासोत्तसितमुखवासताम्बूलकपिलिके।—वही

४९. तुहिनतरुविनिमित्तवलीकान्तरमुक्त।—वही

५०. मण्यिपिंजरोपविष्टशुकसारिका।—वही

५१. तुहिनतरुविनिमित्तवलीकान्तरमुक्तकुसुमस्रसौरभाधिवास्यमानसुरतावसानिकोपकरणवस्तुनि।—पृ० २६ उक्त०

मरकत मणि का बना था।^{५२} भित्तिर्यां स्फटिक की थीं।^{५३} सीढियाँ स्वर्ण की बनायी गयी थीं।^{५४} तटप्रदेश मुक्ताफल के बने थे।^{५५} जल को कहीं हाथी, मकर इत्यादि के मुँह से झरता हुआ दिखाया गया था।^{५६} जल तरंगों पर कर्पूर का छिड़काव किया गया था।^{५७} किनारों पर चन्दन का लेप किया गया था, जिससे लगता था मानो क्षीर-सागर का फेन उसके किनारे पर जम गया है।^{५८} आगे जल के प्रवाह को रोक कर पुष्करणी बनायी गयी थी, जिसमें कमल खिले थे।^{५९} उसके आगे गधोदक कूप बनाया गया था जिसमें कस्तूरी और केसर से सुवासित शीतल जल भरा था।^{६०} कुछ आगे जल को मृणाल की तरह एकदम पतली धारा के रूप में बहता दिखाया गया था।^{६१}

आगे यान्त्रिक शिल्प के विविध उपादान—यन्त्रवृक्ष, यन्त्रपक्षी, यन्त्रपशु, यन्त्रपुत्तलिका आदि बने थे जिनसे तरह-तरह से पानी झरता हुआ दिखाया गया था।^{६२} यन्त्रशिल्प प्रकरण में इनका विशेष विवरण दिया गया है।

अन्त में दीर्घिका प्रमदवन में पहुँची थी जहाँ विविध प्रकार के कोमल पत्तों और पुष्पों से पल्लव और प्रसूनशय्या बनायी गयी थी।^{६३}

सोमदेव के इस वर्णन की तुलना प्राचीन साहित्य और पुरातत्त्व की सामग्री से करने पर ज्ञात होता है कि दीर्घिका निर्माण की परम्परा भारतवर्ष में प्राचीन काल से लेकर मुगलकाल तक चली आयी। प्राचीन साहित्य में इसके अनेक उल्लेख मिलते हैं। कालिदास ने रघुवश में (१६।१३) दीर्घिका का वर्णन किया है। बाणभट्ट ने हर्ष के राजमहल के वर्णन में हर्षचरित में और कादम्बरी में

५२ मरकतमणिविनिर्मितमूलासु। -पृ० ३८ पू०

५३ कनेलकोपलसम्पादितभित्तिभगिकासु। -वही

५४. काचनोपचितसोपानपरम्परासु। -वही

५५ मुक्ताफलपुलिनपेशलपर्यन्तासु। -वही

५६ करिमकरमुखमुच्यमानवारिभरिताभोगासु। -वही ३६

५७ कर्पूरपारोद-तुरिततरगसगमासु। -वही

५८ दुग्धोदधिवेलास्विव चन्दनधवलासु। -वही

५९ वनस्थलीष्विव सङ्गमलासु। -वही

६० मृगमदामोदमेदुरमध्यासु सकेसरासु। -वही

६१. विरहिणीशरीरस्थिष्विव मृणालवलयनीपु। -वही

६२ विविधयन्त्रशलाघनीपु। -वही

६३. विचित्रपल्लवप्रसूनफलस्फासाधिकासु। -वही

दीर्घिका का विस्तृत वर्णन किया है। डॉक्टर वासुदेवशरण अग्रवाल ने इस सामग्री का विस्तार से विवेचन किया है।^{६४}

मुगलकालीन राजप्रासादों में जो दीर्घिका बनायी जाती थी, उसका उर्दू नाम नहरे विहिश्त था। हारू रशीद के महल में इस प्रकार की नहर का उल्लेख आता है। देहली के लाल किले के मुगल महलों की नहरे विहिश्त प्रसिद्ध हैं।

वस्तुतः प्राचीन राजकुलों के गृह-वास्तु की यह विशेषता मध्यकाल में भी जारी रही। विद्यापति ने कीर्तिलता में प्रासाद का वर्णन करते हुए क्रीडाशैल, धारागृह, प्रमदवन तथा पुष्पवाटिका के साथ कृत्रिमनदी का भी उल्लेख किया है। यह भवन-दीर्घिका का ही एक रूप था।^{६५}

दीर्घिका का निर्माण केवल भारतवर्ष में ही नहीं पाया जाता, प्रत्युत प्राचीन राजप्रासादों की वास्तुकला की यह ऐसी विशेषता थी जो अन्यत्र भी पायी जाती है। ईरान में खुमरू परवेश के महल में भी इस प्रकार की नहर थी। कोहे विहिस्तून से कसरे शीरी नामक नहर लाकर उसमें पानी के लिए मिलायी गयी थी। ट्यूडर राजा हेनरी अष्टम के हेम्टन कोर्ट राज प्रासाद में इसे लांग वाटर कहा गया है। यह दीर्घिका के अति निकट है।

प्रमदवन

यशस्तिलक में प्रमदवन का दो प्रसंगों में वर्णन है — मारिदत्त युवतियों के साथ प्रमदवन में रमण करता था (३७-३८)। सम्राट् यशोवर ग्रीष्म ऋतु में मध्याह्नक समय मदनमद्रविनोद नामक प्रमदवन में बिताता था (५२२-३८)।

प्रमदवन राजप्रासाद का महत्त्वपूर्ण अंग होता था। यह प्रासाद से सटा हुआ बनता था। इसमें क्रीडाविनोद के पर्याप्त साधन रहते थे। अवकाश के क्षणों में राज्य-परिवार के सदस्य इसमें मनोविनोद करते थे। सोमदेव ने इसका विस्तार से वर्णन किया है।

प्रमदवन के अनेक महत्त्वपूर्ण अंग थे — उद्यान-तोरण, क्रीडाकुत्कील, खात-वलय, जलकैलवापिका, कुल्योपकण्ठ, मकरध्वजाराधनवेदिका, वनदेवताभवन, कदलीकानन, विहारघरा, सरित्सारणो, छायामण्डप तथा यन्त्रघारागृह। यन्त्र-घारागृह के विन्यास का विस्तृत वर्णन है।



६४ इर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० २०६

कादम्बरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ३७१

६५ कीर्तिलता, पृ० १३६

यन्त्रशिल्प

यशस्तिलक में अनेक प्रकार के यान्त्रिक उपादानों का उल्लेख है। उनमें से अधिकांश यन्त्रधारागृह के प्रसंग में आये हैं तथा कुछ अन्य प्रसंगों पर। यन्त्रधारागृह के प्रसंग में यन्त्रमेघ, यन्त्रपक्षी, यन्त्रपशु, यन्त्रव्याल, यन्त्र-पुत्तलिका, यन्त्रवृक्ष, यन्त्रमानव तथा यन्त्रस्त्री का उल्लेख है। अन्य प्रसंगों में यन्त्रपर्यंक तथा यन्त्रपुत्रिकाओं का उल्लेख है। विशेष वर्णन इस प्रकार है -

यन्त्रजलधर

यन्त्रधारागृह में यन्त्रजलधर या यान्त्रिकमेघ की रचना की गयी थी। उससे क्षरक्षर पानी बरस रहा था और स्थलकमलिनी की क्यारी सिंच रही थी।^१

यन्त्रधारागृह में मायामेघ या यन्त्रजलधर का निर्माण प्राचीन वास्तुकला का एक अभिन्न अंग था। भोज ने शाही घरानों के लिए पाँच प्रकार के वारि-गृहों का विधान किया है, जिनमें प्रवर्षण नाम के एक स्वतन्त्र गृह का उल्लेख है। इस गृह में आठ प्रकार के मेघों की रचना की जाती थी तथा उन मेघों में से हजार-हजार धाराओं के रूप में जल बरसता दिखाया जाता था।^२

सोमदेव के पूर्व वाणभट्ट ने भी यन्त्रमेघ या मायामेघ का एक सुन्दर दृश्य प्रस्तुत किया है - मायामेघ के पीछे से झाकता हुआ रग-विरगा चित्रलिखित इन्द्रधनुष, सामने से उड़ती हुई बलाकाओं की पक्षितियाँ और उनके मुखों से निकलती हुई सहस्रों धाराएँ, इन सबकी सम्मिलित छटा ऐसी प्रतीत होती थी मानो आकाश में मेघों की बदलचल हो रही हो।^३

हेमचन्द्र ने यन्त्रधारागृह में चारों ओर से उठते हुए जलधर का वर्णन किया

१ पर्यन्तयन्त्रजलधरवर्षाभिषिच्यमानस्थलकमलिनीकेदारम् । -स० पू० ५३०

२ धारागृहमेक न्यात्प्रवर्षणाख्य ततो द्वितीय च ।

प्राणाल जलमग्न नद्यावर्तं तथान्यदपि ॥

जलदकुनाष्टकयुक्त पूर्ववदन्यद्गृह समारचयेत् ।

वर्षद्वारानिकरं प्रवर्षणाख्य तदाप्नोति ॥ -समरागणसङ्ग्रह ३१।११७, १४२

३ स्फटिकत्रलाकावलीवान्तवारिधारालिखितेन्द्रायुधा सन्चार्यमाणाः मायामेघमाला ।

रट्टन - टॉ० अग्रवाल - कादम्बरी एक सारकृतिक अध्ययन, पृ० ३७२

है। सम्राट् जब यन्त्रवारागृह में पहुँचे तो उन्होंने देखा कि चारो ओर से निकल रहे दीर्घ जलप्रवाह से सारा वन-प्रान्त जलमय हो रहा है।^४

यन्त्रव्याल

यन्त्रवारागृह में यन्त्रजलधर की तरह विविध प्रकार के यन्त्र-व्यालो की भी रचना की गयी थी। इन हिंस्र जन्तुओं के मुँह से वमन होते हुए जल की धरधराहट से भवन-मयूर नाचने लगते थे।^५ विविध व्याल का अर्थ श्रुतदेव ने कृत्रिम गज, सर्प, मिह, व्याघ्र, चीता आदि किया है।^६ कादम्बरी में चन्द्रकान्त के प्रणाल से निकलने वाले निर्झर के शब्द से प्रमुदित होकर शब्द करते हुए मयूरो का वर्णन आया है।^७ भोज ने भी लिखा है कि यन्त्रवारागृह में नृत्य करते हुए मयूरो से मडित प्रदेश होना चाहिए।^८

यन्त्रहंस

यन्त्रवारागृह में चन्द्रकान्तमणियों के प्रणालों की रचना की गयी थी। उनसे झरझर पानी निकल रहा था जिससे क्रीडा-हम सतुष्ट हो रहे थे।^९ वाण ने ठीक यही दृश्य कादम्बरी में प्रस्तुत किया है — यन्त्रवारागृह में एक ओर चन्द्रकान्तमणि की टोटी से झरना झरता था और बीच में पुछार मोरो की मिली हुई ग्रीवाओं से निर्मित फव्वारे की जलधाराएँ छूट कर फुहार उत्पन्न करती थीं। शिशिरोपचारो के वर्णन में यन्त्रमय कलहंसों की पक्ति से जलधार छूटने का भी उल्लेख है (उत्क्रीलितयन्त्रमयकलहमपक्तिमुक्ताम्बुवारेण)।^{१०}

यन्त्रगज

यन्त्रवारागृह में यन्त्रगज की रचना की गयी थी। उसकी सूँड से जल-सीकर बरस कर स्त्रियों के अलकजाल पर मुक्ताफल की शोभा उत्पन्न कर रहे

४ रेल्लन्ता वणभागा तत्रो पलोष्टा जवा जलागोषा ।

वामाठ दक्षिणाओ समुद्रतो पच्छिमाहिन्तो ॥ —कुमारपालचरित ४।२६

५ विविधव्यालवदनविनिर्गलज्जलधाराध्वनितलयलास्यमानभवनागणवर्द्धिणम् ।—वही, ५३०

६. विविधा नानाप्रकारा ये व्याला. कृत्रिमगजसर्पासिन्ध्याधचित्रकादय । —स० टी०

७ शशिमणिप्रणालनिष्सरप्रमोदमुखरमयूरवरभ्ये ।

उद्धृत, डॉ० अग्रवाल — कादम्बरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ३७०

८ नृत्यङ्गि परमशुखैः शिखण्डिभिर्मण्डितोद्देशम् । —समरागणसूत्रधार ३।१२७

९ चन्द्रकान्तमयप्रणालविलस्रवत्स्रोत संतर्प्यमाणविनोदवारलम् । — बरटा हमिनी, स० पू० पृ० ५३०

१० डॉ० अग्रवाल — कादम्बरी • एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ३७६

थे ।^{११} वाणभट्ट ने भी कादम्बरी के हिमगृह में स्वर्णकमलिनियो से खेलते हुए करि-कलभो का वर्णन किया है ।^{१२}

समरागणसूत्रधार में भोज ने भी यान्त्रिक गजो की रचना का विधान किया है । भोज ने लिखा है कि जलक्रीडा करते हुए ऐसे करि-मिथुन की रचना करना चाहिए जो सूँड से परस्पर जल के सीकर उछाल रहे हो तथा सीकरो के आनन्द के कारण जिनके नेत्र मुद्रित हो गये हो ।^१

यन्त्रमकर

यन्त्रधारागृह मे यन्त्रमकरो की रचना की गयी थी । इनके मुँह से निकलने वाले झरनो के फुहार उडकर कामिनियो के स्तन-कलशो पर पडते थे जिससे उनका चन्दनलेप आर्द्र बना हुआ था ।^{१४}

भोज ने लिखा है कि कृत्रिम शफरी, मकरी तथा अन्य जलपक्षियो से युक्त कमलवापी बनाना चाहिए ।^{१५}

हेमचन्द्र ने यन्त्रधारागृह मे वेदी पर बने हुए मकरमुखो से पानी निकलने का वर्णन किया है ।^{१६} स्वयं सोमदेव ने एक अन्य प्रसंग में मकरमुखी प्रणालो का उल्लेख किया है (करिमकरमुखमुच्यमानवारिभरिताभोगामु, सं० पू० ३९) । प्राचीन वास्तुशिल्प में मकरमुखी प्रणालो का खूब चलन था । वाण ने प्रदोष के वर्णन में मकरमुखी प्रणाल का उल्लेख किया है ।^{१७} सारनाथ के संग्रहालय में इस तरह का एक मकरमुखी प्रणाल सुरक्षित है ।^{१८}

११. करटिकरविकीर्यमाणसीकरासारसूत्रितागनालकमुक्ताफलाभरणम् ।

— सं० पू० पृ० ५३०

१२. क्वचित् क्रीडितकृत्रिमकरिकलभयूथकाकुर्लीम्रियमाणा. काचनकमलिनिकाः ।

—कादम्बरी ११६, उद्धृत—डॉ० अग्रवाल—कादम्बरी • एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ३७३

१३. कार्याण्यस्मिन् करिणा मिथुनान्यभितोऽम्बुकैलियुक्तानि ।

अन्योन्यपुष्करोज्ज्वलसीकरमयपिहितनयनानि ॥ —समरागणसूत्रधार ३१।१३४

१४. मकरमुखमुक्तनिर्भरनीहारोल्लास्यमानकामिनीकुचकुम्भचन्दनस्थासकम् ।

—सं० पू० पृ० ५३०

१५. कृत्रिमशफरीमकरोपत्तिभिरपि चान्बुसम्भवैर्युक्ताम् ।

कुर्यादम्भोजवर्ती वापीमाहार्ययोगेन ॥ —समरागणसूत्रधार ३१।१६३

१६. वेदश्रमया-मुहादिश्रमा-मूल-सिर च फलिह-यम्भाश्रो ।

वारोत्तरगयाश्रो नीहरिया वारि-धाराश्रो ॥ —कुमारपालचरित ४।२७

१७. अग्रवाल — दर्पचरित, पृ० १७

१८. वर्दी, पृ० १७, फलक १, चित्र ६

यन्त्रवानर

यन्त्रधारागृह में एक ओर लतागृह में यन्त्रवानरो की रचना की गयी थी। उनके मुँह से पानी निकल रहा था, जिससे अभिमानिनी स्त्रियो के कपोलो की तिलकपत्र रचना घुली जा रही थी।^{१३} भोज ने भी हिमगृह में वानरमिथुन की रचना करने का विधान बताया है।^{२०}

यन्त्रदेवता

यन्त्रधारागृह में विविध प्रकार के यान्त्रिक जलदेवताओ की रचना की गयी थी। उनका विन्यास इस तरह किया गया था, जिससे वे जलकेलि में परस्पर झगडते हुए से प्रतीत होते थे। वही पास में कलहप्रिय नारद की हर्षोन्मत्त अवस्था का यन्त्र था। निकट ही मरीचि आदि सप्तर्षियो की यान्त्रिक पुत्तलिकाएँ थीं। उनके मुँह से निविड नीरप्रवाह निकल रहा था और विलासिनी स्त्रियो की जघाओ से टकरा रहा था। सोमदेव ने इस समूचे दृश्य को कल्पना के निम्नलिखित धागे में पिरोया है -

‘जलकेलि करते करते जलदेवता आपस में झगडने लगे। कलह देख कर आनन्दित होने के स्वभाव के कारण नारद उस झगडे को देख कर हर्षोन्मत्त हो नाचने लगे और उस नृत्य को देख कर सप्तर्षियो की मण्डली इतनी खुश हुई कि हसी में मुँह से फेन के फन्वारे फूट पडे और कामिनियो की जाँघो से आकर लगे।’^{२१}

यन्त्रवृक्ष

यन्त्रधारागृह में यन्त्रवृक्ष की रचना की गयी थी। उसके स्कन्ध पर बनी हुई देवियाँ हाथो से जल उछाल रही थीं। यह जल बल्लभाओ के अवतस किसलयो से आकर टकराता था, जिससे उनमे ताजगी बनी हुई थी।^{२२} भोज ने भी यन्त्रवृक्षो का विधान बताया है।^{२३}

१६ विलासवल्लरीवनवानराननोद्गीर्णपानीयापनीयमानमानिनीकपोलतलतिलकपत्रम् ।

—स० पू० ५३०

२०. मिथुनैश्च वानराणा जम्बकनिवहैश्चानेकविधै । —समरांगणसूत्रधार ३१।१४६

२१. तुमुलजलकेलिकलहावलोकनोन्मदनारदोत्तालताण्डवाढम्बरितशिखण्डिमण्डली - निष्ठयूतनिविडनीरप्रवाहविडम्ब्यमानविलासिनीजघनम् । —स० पू० ५३०

२२. कृतक्रनाकानोकइस्कन्धासीनसुरमुन्दरीहस्तोदस्तोदकापाथमानवल्लभावतसकिस - लयाश्वासम् । —स० पू० ५३१

२३. कल्पतरुभिर्विचित्रैः । —समरांगणसूत्रधार, ३१।१२८

यन्त्रपुत्तलिकाएँ

यन्त्रधारागृह में यान्त्रिक पुत्तलिकाओं का विन्यास किया गया था। ये पुत्तलिकाएँ दो प्रकार की थीं — (१) पवनकन्यकाएँ, (२) मेघपुरन्धियाँ।

पवनकन्यकाएँ चमर ढोर रही थीं, जिससे उत्पन्न हुए मन्द-मन्द पवन द्वारा सभोगक्रीडा से थकी हुई सीमन्तिनियो का मन आनन्दित हो रहा था।^{२४}

मेघपुत्तलिकाओं का विन्यास यन्त्रधारागृह में यहाँ-वहाँ कई स्थानों पर किया गया था। उनके स्तरूप कलशों से पानी क्षरता था, जिसमें स्नान किया जा सकता था।^{२५}

यन्त्रधारागृह के अतिरिक्त अन्य प्रसंगों पर भी यान्त्रिक पुत्तलिकाओं के उल्लेख आये हैं। महादेवी अमृतमती के पलग के समीप व्यजनपुत्रिकाएँ बनी थीं। ये पुत्रिकाएँ पखा झलती रहती थीं।^{२६} उज्जयिनी के वर्णन के प्रसंग में भी व्यजनपुत्रिकाओं का उल्लेख है। शिप्रा का शीतल पवन पखा झलने वाली पुत्तलिकाओं को व्यर्थ बना देता था।^{२७} ताम्बूलवाहिनी पुत्रिका का भी एक प्रसंग में उल्लेख आया है।^{२८}

भोजदेव ने अनेक प्रकार की यान्त्रिक पुत्तलिकाओं का विधान बताया है। ये पुत्तलिकाएँ हस्तावलम्बन, ताम्बूलप्रदान, जलसेचन, प्रणाम, दर्पण दिखाना, वीणा बजाना आदि कार्य करती थीं।^{२९}

यन्त्रस्त्री

यन्त्रधारागृह का सबसे बड़ा आकर्षण वहाँ की यन्त्रस्त्री थी, जिसके दोनों हाथ छूने पर नखाग्रों से, स्तन छूने पर दोनों चूचुकों से, कपोल छूने पर दोनों नेत्रों से, सिर छूने पर दोनों कर्णावतलों से, कटि छूने पर करधनी की डोरियों से तथा श्रिवली छूने पर नाभि से चन्दनचर्चित जल की शीतल धाराएँ फूट पड़ती थी —

२४ पवनकन्यक्रीडमचामरानिलविनोद्यमानसुरतश्रान्तसीमन्तिनीमानसम्।

—स० पू० ५३१

२५ पयोधरपुरध्रिक्कास्तनकलशविधीयमानमञ्जनावसरम्। —वही ५३१

२६ उपान्तयन्त्रपुत्रिकोत्क्षिप्यमानव्यजनपवनापनीयमानसुरतश्रमः। —पृ० ३७ उक्त०

२७ वृथा रतिपु पौराणां यन्त्रव्यजनपुत्रिका। —स० पू० २०५

२८ सचारिमहेमकन्यकासोत्तमितमुख्यासताम्बूलकपिलिके। —२६ उक्त०

२९ करग्रहणताम्बूलप्रदानजलसेचनप्रणामादि।

आदर्शपत्तिलोकनवीणावाद्यादि च करोति ॥ —समरांगणसङ्ग्रह ३१।१०४

हस्ते स्पृष्टा नखान्तै. कुचकलशतटे चूचुकप्रक्रमेण,
वक्त्रे नेत्रान्तराम्भ्या शिरसि कुत्रलयेनावतमार्पितेन ।
श्रोण्या काचीगुणाग्रैस्त्रिवलिपु च पुनर्नाभिरन्ध्रेण धोरा,
यन्त्रस्त्री यत्र चित्र विकिरति शिशिराश्चन्दनस्यन्दधारा ॥

—सं० पू० ५३१, ५३२

भोज ने भी इस वर्णन के बिलकुल तद्रूप ही यन्त्रस्त्री के निर्माण किये जाने का वर्णन किया है।^{३०}

भोज के करीब एक सौ वर्ष बाद हेमचन्द्र ने भी ठीक इसी तरह के यंत्रों का वर्णन किया है। कुमारपाल के यन्त्रधारागृह में शालभजिकाओं के विभिन्न अंगों से क्षरता हुआ पानी दिखाया गया था। सोमदेव के वर्णन के समान इन शालभजिकाओं के भी दोनों कानों से, मुँह से, दोनों हाथों से, दोनों चरणों से, दोनों कुचों से तथा उदर से, इस तरह दस अंगों से पानी निकलता था।^{३१} सोमदेव ने दस स्थानों में पैरों की गणना नहीं की उसके बदले दोनों आँखों की गणना की है। हेमचन्द्र ने आँखों की गणना नहीं की, बल्कि पैरों की गणना की है।

एक ही यन्त्र के दस स्थानों से क्षरता हुआ पानी अत्यन्त मनोज्ञ दृश्य प्रस्तुत करता होगा। सोमदेव ने तो उसकी यान्त्रिकता की विशेषता बता कर उस शिल्पी की ओर भी ध्यान खींचा है जिसने इस उत्कृष्ट शिल्प की रचना की थी।

यन्त्रपर्यंक

अमृतमति महादेवों के भवन में आकर यशोधर जिस पलग पर मोया उसका यान्त्रिक विधान इतना सुन्दर था कि मन्दाकिनी प्रवाह की तरह उच्छ्वास मात्र से तरलित हो उठता था।^{३२} भोजदेव ने ऐसी शय्या का विधान बताया है जो निश्चाम के साथ ऊपर उठ जाये और आश्वास के साथ नीचे आ जाये।^{३३}

३० स्तनयोर्युगेन सृजनी जलधारे तत्र कापि कार्या स्त्री ।

श्रानन्दाश्रुलवानिव सलिलकण्ठान् पद्मभि काचित् ॥

नाभिहृदनदिकामिव विनिर्गतां कापि विभ्रती धाराम् ।

काप्यगुलीनखांगुभिरिव योषित् सिञ्चती कार्या ॥

—समरांगणसूत्रधार, ३१।१३६, १३७

३१ पत्रालिङ्गहि मुक्क कन्नेसुन्तो जल मुहासुन्तो ।

दृष्येद्विनो चरणार्शितो वच्छाहि उश्ररेहि ॥ —कुमारपालचरित ४।२८

३२ मन्दाकिनिप्रवाहमुच्छ्वत्प्रमितमात्रेणापि तरलतरान्तरालविहितसुखमवेगम् यन्त्र सुन्दरम् । —उत्तगर्ध, ३१

३३ निश्वासेन वियथाति श्वामेनायाति मेदिनीम् । —समरांगणसूत्रधार ३१।६८

इस प्रकार यशस्तिलक में वर्णित यन्त्रशिल्प के उपर्युक्त तुलनात्मक विवेचन से प्राचीन वास्तुशिल्प का रमणीय दृश्य प्रस्तुत हो जाता है। बाण की साक्षी से यह विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि भारतीय वास्तुशिल्प में इस तरह का यान्त्रिक विधान छठी-सातवीं शती से प्रारम्भ हो गया था। हेमचन्द्र के विवरण से बारहवीं शती तक इसके स्पष्ट साक्ष्य प्राप्त होते हैं।

वारियन्त्रो के विषय में भोज ने कहा है कि इनके निर्माण करने के दो उद्देश्य होते हैं—एक तो क्रीडा निमित्त, दूसरे कार्य सिद्धयर्थ।^{३४} अन्य यन्त्रो के विषय में भी यही बात कही जा सकती है।

यन्त्रघारागृह में वारियन्त्रो से विभिन्न रूपों में जल झरते हुए दिखाकर मनोरजन के विविध उपादान उपस्थित किये जाते थे। इन वारियन्त्रो में जल पहुँचाने का एक विशेष प्रकार था। प्राचीन राजप्रासादों में बहते हुए जल की एक कृत्रिम नदी होती थी, जिसे संस्कृत साहित्य में दीघिका कहा गया है। दीघिका में या तो किसी पर्वतीय नदी आदि से जल का प्रबन्ध किया जाता था अथवा प्रायः राजभवन के ही एक भाग में जल को ऊपर किसी स्थान में संगृहीत कर लिया जाता था।^५ यही जल जब वारियन्त्रो में छोड़ा जाता था तो ऊपरी दबाव के कारण तेजी से निकलता था।



३४ क्रीडार्थं कार्यसिद्धयर्थम्- समरागणसूत्रधार ३१।१०६

३५ अग्रवाल-कादम्बरी . एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ३७२

अध्याय चार
यशस्तिलककालीन भूगोल

जनपद

यशस्तिलक में सैंतालिस जनपदों का उल्लेख है। विशेष जानकारों इस प्रकार है—

१. अवन्ति

यशस्तिलक में अवन्ति का विस्तृत वर्णन किया गया है।^१ अवन्ति मालव का प्राचीन नाम था, इसकी राजधानी उज्जैन थी। सोमदेव ने अवन्ति को स्वर्ग का उपहास करनेवाली^२ तथा समस्त लोगों की अभिलषित वस्तुओं का भाण्डार होने से सुर-पादपो (कल्पवृक्षो) के अहंकार का तिरस्कार करनेवाली कहा है।^३

अवन्ति जनपद में स्थान स्थान पर दान-शालाएँ,^४ प्रपा और तालाब,^५ वगीचे तथा धर्मशालाएँ^६ बनी थीं। वहाँ के लोग विशेष अतिथि-प्रिय थे।^७

२. अंग

यशस्तिलक में अंग मण्डल का दो बार उल्लेख हुआ है। एक विभिन्न देशों से आये हुए दूतों के प्रसंग में,^८ दूसरा छठे उच्छ्वास की आठवीं कथा में।^९ इनके अनुसार अंग देश की राजधानी चम्पा थी। वहाँ वसुवर्धन नामक राजा राज्य करता था।^{१०} उसकी लक्ष्मीमति रानी थी।^{११} प्राचीन भारत में, वर्तमान बिहार प्रान्त के भागलपुर, मुंगेर आदि जिलों का प्रदेश अंग कहलाता था।

१ पृ० १६६ से २०४

२ प्रहसितवसुवसतिकान्तय. 1-वही

३ निखिललोकाभिलाषविलागिवरतुसपत्तिनिररतसुरपादपमदो जनपद. 1 -वही

४ सपादितसत्रमैत्रीमनोभि । — पृ० १६६

५ प्रपानिवेशै सर प्रदेशै । — पृ० २००

६ वसतिमतानैलताप्रतानै । — पृ० २०१

७ कूनकूनार्थातिथय । — पृ० २०१, नित्य कूनार्थातिथेयेन धेनुकेन सुधारसै । — पृ० १६८

८ अन्यैश्चागकालिग । — पृ० ४६६ स० पू०

९ अंगमण्डलेपु—चम्पाया पुरि । — पृ० २६१ उत्त०

१० वसुवर्धनाभिधानो वसुधापते. 1 - वही

११ लक्ष्मीमतिमहादेवी । - वही

३. अश्मक

यशस्तिलक में अश्मक का दो जगह उल्लेख है।^{१२} एक स्थान पर अश्मक को अश्मन्तक कहा गया है। अश्मक और अश्मन्तक एक ही शब्द हैं।

यशस्तिलक के संस्कृत टीकाकार ने अश्मन्तक को सपादलक्षपर्वत बतलाया है।^{१३} एक अन्य प्रसंग में बर्बर नरेश का उल्लेख है।^{१४} संस्कृत टीकाकार ने बर्बर को सपादलक्ष के पहाड़ी प्रदेश का शासक कहा है।^{१५} इस तरह अश्मक, अश्मन्तक और बर्बर प्रदेश एक ही होना चाहिए। अश्मक की राजधानी पोदनपुर थी। पोदनपुर की पहचान हैदराबाद के निजामाबाद जिले में स्थित बोधन ग्राम से की जाती है। यह गोदावरी नदी की एक सहायक नदी के निकट बसा है।^{१६}

पोदनपुर का उल्लेख यशस्तिलक में भी आया है।^{१७} इसके अनुसार यह रम्यक देश में था।^{१८} पर्थनी शिलालेख के अनुसार चालुक्य सामन्त युद्धमल्ल प्रथम सपादलक्ष देश का शासक था और उसके हाथी पोदन में तेल भरे तालाब में नहाते थे।^{१९}

पालि साहित्य में अश्मक को अस्सक कहा है।^{२०} अस्सक की राजधानी पोदन बतायी गयी है। सुत्तनिपात (गा० ९७७) के अनुसार अस्सक गोदावरी के तट पर स्थित था।

इस विवरण से ज्ञात होता है कि हैदराबाद का निजामाबाद जिला तथा उससे सम्बद्ध प्रदेश अश्मक कहलाता था। बहुत सम्भव है कि वरार का सबसे

१२ अश्मन्तक वेशविहाय याहि । - पृ० ६८२ हि०

अश्मकवशवैश्वानर । - पृ० ३७७ २ हि०

१३. अश्मन्तक सपादलक्षपर्वतनिवासिन् । - पृ० १८८ स० टी०

१४. पृ० २५१।५ हि०

१५. पृ० ३६६ स० टी०

१६ सालेटोर—दी सदर्न अश्मक, जैन एन्टीक्वैरी, भा० ६, पृ० ६०

१७ आ० ७, क० २८

१८ रम्यकदेशाभिवेशोपेतपोदनपुरनिवेशिनः । - आ० ७, क० २८

१९ अस्त्यादित्यभवो वशश्चालुक्य इति विश्रुतः ।

तत्राभूद् युद्धमल्लाख्यो नृपतिर्विक्रमार्णवः ॥

सपादलक्षभूमर्ता तैलवाप्या च पोदने ।

अवगाहोत्सव चक्रे शक्रश्रीर्मददन्तिनाम् ॥

२० दीर्घनिकाय, महागोविन्द सुत्तन्त

दक्षिण प्रदेश तथा हैदराबाद का उत्तर भाग भी इसमें शामिल रहा है। डॉ० सरकार तथा डॉ० मिराशी ने इसके विषय में विशेष विवरण दिया है।^{२१}

४. अन्ध्र

यशस्तिलक में अन्ध्र का दो बार उल्लेख है। मारिदत्त को अन्ध्र प्रदेश की स्त्रियो के साथ क्रीडा करने वाला बताया है।^{२२} सोमदेव के उल्लेख से ज्ञात होता है कि अन्ध्र की स्त्रियाँ प्राचीन काल से ही पुष्प प्रसाधन की बहुत शौकीन रही हैं। मारिदत्त को अन्ध्र स्त्रियो के अलको में लगी चल्लरी को बढ़ाने के लिए मेघ के समान कहा है।^{२३} सोमदेव के कथन से उस समय के अन्ध्र की सीमाओं का पता नहीं चलता।

५. इन्द्रकच्छ

सोमदेव ने लिखा है कि इन्द्रकच्छ देश में रोहकपुर नाम का नगर था जिसे मायापुरी भी कहते थे।^{२४} मुद्रित प्रति में रोहकपुर नाम छूट गया है।

रोहकपुर बौद्ध ग्रन्थों का रोहक जान पड़ता है। दीर्घनिकाय, महागोविन्द सुत्त (पृ० १७५) के अनुसार रोहक सौवीर देश की राजधानी थी। कच्छ की खाड़ी में यह व्यापार का एक प्रमुख केन्द्र था।^{२५} सोमदेव ने रोहकपुर के औदायन नामक एक अत्यन्त सेवाभावी सम्राट् का वर्णन किया है। उसकी अतिथि-सत्कार को चर्चा इन्द्रपुरी तक में पहुँच गयी थी और दुनिया में उसका कोई भी सानी नहीं माना जाता था (आ० ६, क० ९)।

६. कम्बोज

यशस्तिलक में कम्बोज का तीन बार उल्लेख है। संस्कृत टीकाकार ने एक स्थान पर कम्बोज को वाल्हीक बताया है।^{२६} एक स्थान पर लिखा है कि कम्बोज

२१ सरकार—दी वाकाटकाज्ज एण्ड दी अश्मक कन्दरी, इण्डियन हिस्टॉरिकल क्वार्टरली, भा० २२, पृ० २३३

मिराशी—हिस्टॉरीकल डाटाज्ज इन दडिनाज्ज दशकुमारचरित, एनाल्स ऑव् भडारकर ओरियंटल रिसर्च इस्ट्यूट, भाग २६, पृ० २०

२२. अन्ध्रीकुचकुड्मलकृतविलास।—पृ० १८०। अन्ध्रोंणा तिलगदेशास्त्रीणा।—बही, स० टी०

२३ आन्ध्रीणा।मलकवल्लरीविकृ भणजलधर।—पृ० ३३

२४ इन्द्रकच्छदेशेषु रोहकदेशेषु, मायापुरीत्यपरनाम।—आ० ६, क० ९

२५ रै० डेविड—बुद्धिस्ट इण्डिया, पृ० ३८

२६ कम्बोज वाल्हीकदेशोद्भवम्।—पृ० ३०८ स० टी०

की स्त्रियों के सिर बड़े-बड़े होते हैं।^{२७} यहीं कम्बोज को टीकाकार ने कश्मीर आदि देश कहा है।^{२८} पर टीकाकार का यह कथन ठीक नहीं है। कम्बोज की पहचान गन्धार के एकदम उत्तर-पश्चिम में की जाती है।^{२९} वास्तव में कम्बोज के विषय में भारतीय इतिहासकारों के दो मत हैं।

कम्बोज के घोड़े अच्छी किस्म के माने जाते थे।^{३०} सोमदेव की सूचनानुसार यशोधर के अन्तःपुर में कम्बोज की भी कमनीय कामिनियाँ थीं।^{३१}

७. कर्णाट

यशस्तिलक में कर्णाट का उल्लेख तीन बार हुआ है। सस्कृत टीकाकार ने एक स्थान पर कर्णाट का अर्थ वनवास,^{३२} एक स्थान पर दक्षिणापथ^{३३} तथा एक अन्य स्थान पर विदर आदि देश किया है।^{३४} हैदराबाद जनपद का बीदर नामक स्थान प्राचीन विदर है।

गोदावरी और कावेरी के बीच का प्रदेश जो पश्चिम में अरब सागर तट के समीप है तथा पूर्व में ७८ अक्षांश तक फैला है, कर्णाट कहलाता था।^{३५}

८. करहाट

यशस्तिलक के अनुसार करहाट विन्व्यावल से दक्षिण की ओर एक अत्यन्त समृद्धिशाली जनपद था। सोमदेव ने इसे स्वर्ग की लक्ष्मी के निकट कहा है।^{३६} यहाँ की एक विशाल गोशाला का सोमदेव ने विस्तार से वर्णन किया है।

वर्तमान में करहाट की पहचान बम्बई प्रदेश के सतारा जिले में कोहना और कृष्णा नदी के सगम पर स्थित करहाट प्रदेश से की जाती है।

२७ कम्बोजपुरन्ध्रीणा वृहन्मुषटानाम् । -पृ० १८६, स० टी०

२८ कम्बोजपुरन्ध्रीणा कश्मीरादिदेशस्त्रीणाम् । -वही

२९ रे० डेविड, वही, पृ० २८

३० कुलेन कम्बोजम् । -पृ० ३०८

३१ कम्बोजीना नाभिवलभिगर्भसभोगमुजगः । -पृ० ३४ ।

कम्बोजपुरन्धीनिलक्षपत्र । -पृ० १८८

३२ कर्णाटाना वनवासयोपितानाम् । -पृ० ३४ स० टी०

३३ कर्णाटयुवतीना दक्षिणपश्चिमीणाम् । -पृ० १८०

३४ कर्णाटयुवतीना विदराविदेगम्ब्रीणाम् । -पृ० १८६

३५. सोसं शॉर्क् कर्णाटक डिस्ट्री भाग १, पृ० ७

३६ त्रिदशदेशाश्रयश्रीनिकट । -पृ० १८७

६. कर्लिंग

यशस्तिलक में कर्लिंग का उल्लेख कई बार हुआ है। संस्कृत टीकाकार ने इसे उत्कल देश और दक्षिण समुद्र तथा सह्य और विन्ध्य पर्वत के मध्य का भाग बताया है।^{३७}

कर्लिंग अच्छे किस्म के हाथियों के लिए प्रसिद्ध था। यशोधर के लिए कर्लिंगाधिपति ने उपहार में हाथी भेंट किये।^{३८}

सोमदेव ने सुदत्त को कर्लिंग के महेन्द्र पर्वत का अधिपति बताया है तथा महेन्द्र पर्वत को हाथियों की भूमि कहा है।^{३९}

समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति में महेन्द्र पर्वत का उल्लेख है। दक्षिण के पहाड़ी राज्यों में उसने कर्लिंग की भी विजय की थी। यह वर्तमान गजम जिले में है।^{४०}

१०. क्रथकैशिक

क्रथकैशिक को संस्कृत टीकाकार ने विराट देश बताया है।^{४१} विराट वर्तमान जयपुर और अलवर के आसपास का क्षेत्र कहलाता था। प्राचीन विदर्भ क्रथकैशिक कहलाता था।

११. कांची

कांची को यशस्तिलक के टीकाकार ने दक्षिण समुद्र के तट का देश कहा है।^{४२}

प्राचीन पल्लव को कांची या कांचीवरम् कहते थे।

१२. काशी

काशी का उल्लेख सोमदेव ने जनपद के रूप में किया है। जनपद का नाम काशी था और वाराणसी उसको राजधानी थी।^{४३} यशस्तिलक से काशी की

३७ उत्कलाना च देशस्य दक्षिणत्यार्यवस्य च ।

सह्यस्य चैव विन्ध्यस्य मध्ये कर्लिंगज वनम् ॥ -५० २६१ सं० टी०

३८ श्रवलगति कर्लिंगाधीश्वरन्त्वा करीन्द्र । -५० ४६६

३९ ५० २३५-३६, उक्तं

४० सरकार - सेलेक्टेट इज्जिप्शन, ५० २५६

४१ क्रथकैशिको विराटदेशः । -५० ३७७ सं० टी०

४२ कांचीनान दक्षिणसमुद्रतटदेशः । -५० ५६८

४३ काशिदेशेषु वाराणस्यान् । -५० ३६० उक्तं

सीमाओं की जानकारो नही मिलती । सोमदेव ने काशी के घर्षण नामक राजा, उसके उग्रसेन नामक सचिव तथा पुष्प नामक पुरोहित से सम्बन्धित एक कथा दी है ।^{४४}

१३. कीर

यशस्तिलक के संस्कृत टीकाकार ने कीर का अर्थ कश्मीर किया है ।^{४५} कीर देश का स्वामी उपहार में कश्मीर अर्थात् केसर भेजता है ।^{४६} वर्तमान में कीर की पहचान पंजाब की कुल्लू वेली से की जाती है ।

१४. कुरुजांगल

यह कुरु देश का एक भाग था । सोमदेव ने कुरुजांगल (९८।७, आ० ६, क० २०) तथा केवल जांगल नाम (आ० ७, क० २८) से इसका उल्लेख किया है । हस्तिनापुर इस प्रदेश की प्रसिद्ध नगरी थी । सोमदेव ने इसका दो बार उल्लेख किया है ।

१५. कुन्तल

संस्कृत टीकाकार ने कुन्तल का अर्थ पूर्व देश किया है ।^{४७} उत्तर कनारा जिले के वनवासी नामक प्रमुख नगर के चारों ओर का प्रदेश कुन्तल कहा जाता था । वनवासी के कदम्बों के अधीन प्रदेशों में उत्तर कनारा तथा मैसूर, बेलगाँव और धारवाड के भाग सम्मिलित थे ।^{४८} उत्तरकालीन कदम्बों के शिलालेखों में कदम्ब वंश के पूर्वज को कुन्तल देश का शासक बतलाया गया है ।

अन्यत्र कुन्तल के अन्तर्गत अपेक्षाकृत विस्तृत प्रदेश बतलाया है । नीलगुण्ड प्लेट में अंकित नीचे लिखे श्लोक में उत्तरकालीन चालुक्य सम्राट् जयसिंह द्वितीय का वर्णन है । उनका दूमरा नाम मल्लिकामोद था और वह कुन्तल देश के शासक थे, जहाँ कृष्णवर्णा नदी बहती थी ।

धिख्यातकृष्णवर्णे तैलस्नेहोपलब्धसरलत्वे ।

कुन्तलविषये नितरा विराजते मल्लिकामोदः ॥

४४ वही

४५ कीरनाथ . काश्मीरदेशाधिप । -पृ० ४७०

४६ काश्मीर कीरनाथ । -वही

४७ कुन्तलवान्ताना पूर्वदेशस्त्रीणाम् । -पृ० १८८

४८ सरकार - इण्डियन हिस्ट्री वॉल्यूम, जिल्द २२, पृ० २३३

राष्ट्रकूटों और उत्तरकालीन वदम्बों को समकालीन शिलालेखों में तथा सस्कृत ग्रन्थों में कुन्तल का शासक बतलाया है। राष्ट्रकूटों की राजधानी मान्यखेट थी। हैदराबाद दक्षिण के गुलबर्गा जिले में स्थित आधुनिक मलखेट ही पुराना मान्यखेट था। किन्तु उत्तरकालीन चालुक्यों की राजधानी कल्याण थी, जो बीदर के निकट और मलखेट के एकदम उत्तर में लगभग ५० मील दूर है। उदयमुन्दरी कथा में लिखा है कि कुन्तल देश की राजधानी प्रतिष्ठान (गोदावरी पर स्थित आधुनिक पैठण) थी। अतः कुन्तल के अन्तर्गत केवल वदम्बई प्रदेश का उत्तरकनारा जिला तथा मैसूर, बेलगाँव और धारवाड के प्रदेश ही सम्मिलित नहीं थे, किन्तु उत्तर में वह बहूत आगे तक फैला था और जिसे आज दक्षिण मराठा प्रदेश कहते हैं, वह भी उसमें सम्मिलित था।^{४१}

१६. केरल

यशस्तिलक में केरल का उल्लेख छह बार हुआ है।^{४०} सस्कृत टोकाकार ने पाँच स्थानों पर केरल को दक्षिण में कहा है। एक स्थान पर मलयाचल के निकट कहा है।^{४१} यशस्तिलक से केरल की प्राचीन सीमाओं का पता नहीं चलता।

१७. कोंग

कोंग का उल्लेख केवल एक बार हुआ है (पृ० ४३१, म० पू०)। मैसूर का दक्षिणी प्रदेश नन्दिदुर्ग पर्यन्त तथा कोयम्बटूर और सार्लेम का प्रदेश कोंग कहलाता था।^{४२}

१८. कौशल

यशस्तिलक में कौशल का दो बार उल्लेख हुआ है। यशोधर के दरबार में जो राजे उपहार लेकर उपस्थित हुए उनमें कौशल नरेश भी था।

४६. इडियन हिस्ट्री ० क्वा० जिल्द २२, पृ० ३१० पर प्रो० निरागी का लेख

५०. केरलीना नयनदीर्विज्ञानकेलिकनहम् । -पृ० ३४

केरलमहिलामुखकमलहस । -पृ० १८८

केरि केरल नहर । -पृ० ३६६

केरलेपु कराल । -पृ० ४३१

दूता. केरलचोलसिंहराक । -पृ० ४६६

केरलकुलकुलियापात । -पृ० ५६७

५१. केरलमलयाचलनिद्वयवर्तिन् । -पृ० ३६६

५२. रेफ्न-इडियन कोइन्स, पृ० ३६

वह कौशेय के वस्त्र उपहार में लाया था।^{५३} कौशल बुद्धकालीन षोडश महा-जनपदों में गिना जाता था। सोमदेव ने इस तरह की कोई विशेष जानकारी नहीं दी है।

१६. गिरिकूट पत्तन

गिरिकूट पत्तन का उल्लेख एक कथा के प्रसंग में हुआ है। वहाँ विश्व नाम का राजा था। उसके पुरोहित का नाम विश्वदेव था। विश्वदेव के नारद नामक पुत्र हुआ। नारद और डहाल के पुरोहित क्षीरकदम्ब के पुत्र पर्वत की शिक्षा-दीक्षा एक साथ हुई थी। सोमदेव की सूचनानुसार पुराणों के नारद मुनि और पर्वत यही हैं। इस प्रसंग से लगता है गिरिकूट पत्तन डहाल के आसपास रहा होगा।^{५४}

२०. चेदि

यशस्तिलक में चेदि जनपद का उल्लेख दो बार हुआ है। संस्कृत टीकाकार ने एक स्थान पर चेदि को कुण्डिनपुर^{५५} तथा दूसरे स्थान पर डहाल^{५६} देश कहा है।

चेदि मध्यदेश का एक महत्त्वपूर्ण जनपद था।

२१. चेरम

चेरम का उल्लेख दो बार हुआ है।^{५७} केरल और चेरम एक ही जनपद के नाम थे।

२२. चोल

यशस्तिलक में चोल का उल्लेख चार बार हुआ है। संस्कृत टीकाकार ने चोल को एक प्रसंग में मजिष्ठादेश^{५८} कहा है तथा एक अन्य स्थान पर सभग

५३ कौशेय कौगलेन्द्र । - पृ० ४७०, अ० ६, क० १५

५४ गिरिकूटपत्तनवसते विश्वनाम्नो विश्वभरापते । - पृ० ३५।३, उक्त०

५५ हे चेदीश कुण्डिनपुरपते । - पृ० १८८, म० टी०

५६ चैद्यो नाम टाहालदेश । - पृ० ५६८, स० टी०

५७ चेरम पर्यट मलयोपकण्ठ । - पृ० १८७

पल्लवपाट्यचोलचेरमहर्म्यविनिर्माण । - पृ० ५६५

५८ दूता केरलचोलमिहलशाक । - पृ० ४६६, चोलश्च मजिष्ठादेशभूप । - म० टी०

वह कौशेय के वस्त्र उपहार में लाया था।^{५३} कौशल बुद्धकालीन षोडश महाजनपदों में गिना जाता था। सोमदेव ने इस तरह की कोई विशेष जानकारी नहीं दी है।

१६. गिरिकूट पत्तन

गिरिकूट पत्तन का उल्लेख एक कथा के प्रसंग में हुआ है। वहाँ विश्व नाम का राजा था। उसके पुरोहित का नाम विश्वदेव था। विश्वदेव के नारद नामक पुत्र हुआ। नारद और डहाल के पुरोहित क्षीरकदम्ब के पुत्र पर्वत की शिक्षा-दीक्षा एक साथ हुई थी। सोमदेव की सूचनानुसार पुराणों के नारद मुनि और पर्वत यही हैं। इस प्रसंग से लगता है गिरिकूट पत्तन डहाल के आसपास रहा होगा।^{५४}

२०. चेदि

यशस्तिलक में चेदि जनपद का उल्लेख दो बार हुआ है। संस्कृत टीकाकार ने एक स्थान पर चेदि को कुण्डिनपुर^{५५} तथा दूसरे स्थान पर डहाल^{५६} देश कहा है।

चेदि मध्यदेश का एक महत्त्वपूर्ण जनपद था।

२१. चेरम

चेरम का उल्लेख दो बार हुआ है।^{५७} केरल और चेरम एक ही जनपद के नाम थे।

२२. चोल

यशस्तिलक में चोल का उल्लेख चार बार हुआ है। संस्कृत टीकाकार ने चोल को एक प्रसंग में मजिष्ठादेश^{५८} कहा है तथा एक अन्य स्थान पर सभग

५३ कौशेय कौशलेन्द्र । - मृ० ४७०, अ० ६, क० १५

५४ गिरिकूटपत्तनवसन्ते विश्वनाम्नो विश्वभगवते । - मृ० ३५।३, उक्त०

५५ हैं चेदीरा कुण्डिनपुरपते । - मृ० १८८, स० टी०

५६ चैद्यो नाम टाहालदेश । - मृ० ५६८, म० टी०

५७ चेरम पर्यट मलयोपवण्ठ । - मृ० १८७

पल्लवपाटयचोलचेरमहर्म्यविनिर्माण । - मृ० ५६५

५८ दृता केरलचोलमिहलगक । - मृ० ४६६, चोलश्च मजिष्ठादेशभूपः । - म० टी०

देव ।^{५०} मज्जिष्ठा और सभग दोनों एक ही है ।

एक स्थान पर टोकाकार ने चोल को गगापुर कहा है^{५०} जो गगकोण्डा कोलापुरम् का सम्मूह रूप लगता है । ११ और १२वीं शती में यह चोल की राजधानी रही है । इस प्रकार वर्तमान त्रिचनापल्ली और तजौर के जिले तथा पट्टुकोट्टा राज्य का भाग पहले चोल कहलाता था ।

२३. जनपद

जनपद का उल्लेख मात्र एक बार हुआ है । इसकी राजधानी भूमितिलकपुर थी । जनपद की पहचान अभी नहीं हो पायी है, फिर भी यशस्तिलक के आधार पर लगना है कि यह कुम्भक्षेत्र के आसपास का भाग रहा होगा । दो मित्र भूमितिलकपुर में चल कर कुम्भजागल के हस्तिनापुर में पहुँचते हैं ।^{५१}

२४. डहाल

यशस्तिलक में डहाल का उल्लेख एक बार हुआ है । डहाल या डहाल को चेशी राजाओं की राजधानी बताया जाता है । सोमदेव के अनुसार यहाँ बच्छी किन्म के गन्ने की खेती होती थी ।^{५२} डहाल की स्वस्तिमती नाम की नगरी में अबिनचन्द्र, द्वितीय नाम विश्वावन्तु, नामक राजा राज करता था ।^{५३}

२५. दशार्ण

सोमदेव ने दशार्ण का दो बार उल्लेख किया है ।^{५४} एक स्थान पर सम्कृत टोकारा ने दशार्ण को गोवाचल (ग्वालियर) से चालीस गव्यूति (८० फीस) दूर लिखा है ।^{५४} पूर्वी मालवा और उसमें सम्बद्ध प्रदेश दशार्ण कहलाता है ।

दशार्ण को राजधानी विदिशा थी। विदिशा और उदयगिरि पहाड़ी के मध्य में प्राचीन राजधानी के भग्नावशेष पाये जाते हैं। घसान और वेत्रवती इसकी प्रसिद्ध नदियाँ हैं। कालिदास के मेघ ने दशार्ण में पहुँच कर विदिशा का आतिथ्य स्वीकार किया था और वेत्रवती के निर्मल जल का पान किया था (मेघदूत १।६-७)।

२६. प्रयाग

सोमदेव ने प्रयाग का जनपद के रूप में उल्लेख किया है (प्रयागदेशेषु, पृ० ३४५ उक्त०)। प्रयाग के सिंहपुर नगर में सिहसेन नामक राजा राज करता था।^{६६}

२७. पल्लव

यशस्तिलक में पल्लव का उल्लेख तीन बार हुआ है।^{६७} प्राचीन समय में काची (काचीवरम्) प्रदेश को पल्लव कहते थे। इस पर पल्लवों का राज्य था। नवमी शताब्दी के अन्त में उन्हें चोलो ने हरा दिया। जब सोमदेव ने अपना यशस्तिलक लिखा तब तक इस घटना को घटे अर्ध शताब्दी से अधिक बीत चुकी थी, किन्तु पल्लव राज्य की स्मृतियाँ फिर भी शेष थी। चोलो के आधिपत्य में पल्लव सामन्त यत्र तत्र राज्य कर रहे थे।

२८. पांचाल

उत्तरप्रदेश का सहैलखण्ड प्राचीन पांचाल देश कहलाता था। यशस्तिलक में इसके दो स्थानों पर उल्लेख आये हैं।^{६८}

२९. पाण्डु या पाण्ड्य

पाण्डु या पाण्ड्य का उल्लेख दो बार हुआ है। सोमदेव ने लिखा है कि पाण्ड्य नरेश सुन्दर मध्यमणिवाला मोतियों का हार उपहार में लेकर यशोधर

६६ प्रयागदेशेषु सिंहपुरे सिहसेनो नाम नृपति । - पृ० ३४५ उक्त०

६७ पल्लवीषु निम्बस्थलीखेलनदुरग । - पृ० ३४

पल्लव लजुकेलीरममपेदि । - पृ० १८७

पल्लवरमणोकृत विरहखेद । - पृ० १८८

६८ पृ० ३६६, ४६६

के दरबार में उपस्थित हुआ।^{११} एक वृत्त पर बताया है कि चण्डरगा नामक स्त्री ने करी में दिखाये हुए अस्त्रों से मुन्डीर नामक राजा को मार डाला था।^{१२}

३०. भोज

भोज या भोजायनी का एक वार उल्लेख है।^{१३} विदर्भ या वरार भोजायनी कहा जाता था। भोजायनी दरने का प्रयोजन यही है कि यहाँ बहुत दाल तक भोज राजाओं का मादराज्य था। रघुवर्म में भी इस बात का उल्लेख है।^{१४}

३१. बरार

बरार का एक वार उल्लेख है।^{१५} हमारी व्याख्या लक्ष्मण के प्रसंग में की गयी है।

३२. मद्र

मद्र का भी एक वार उल्लेख है।^{१६} हमारी पहचान पञ्जाब प्रान्त में रावी और बेतास के बीच में स्थित म्याडकोट से की जाती है।

३३. मलय

दशमिन्दुकाञ्चीन में मलय का दो वार उल्लेख है। दोनों स्थानों पर मलय की अगमनाश का वर्णन किया गया है।^{१७} मलय पर्यत के आगमन का प्रदेश मलय नाम से प्रसिद्ध था।

३५ यौधेय

सोमदेव ने यौधेय का विस्तार से वर्णन किया है।^{७८} यह एक समृद्धिशाली जनपद था जिसे देख कर देवताओं का भी मन चल जाता था। यहाँ सभी प्रकार का गोधन — गाय, भैंस, घोड़े, ऊँट, बकरी, भेड़ — पर्याप्त था। स्वर्ण की कमी न थी। पानी के लिए मात्र वर्षा पर निर्भर नहीं रहना पड़ता था। यहाँ की जमीन काली थी। हल जोतने वाले बहुत थे। पानी सुलभ था। खेती के विशेषज्ञ पर्याप्त थे। खूब बाग-बगीचे थे। पेड़-पौधों की कमी न थी। सड़कें साफ-सुथरी थीं। गाँव इतने पास-पास बसे हुए थे कि एक गाँव के मुँहों उड़कर दूसरे गाँव में पहुँच जाते थे (कुक्कुटसपात्याग्रामा)। सब परस्पर सौहार्द से रहते थे।

३६. लम्पाक

यशस्तिलक में लम्पाक का मात्र एक बार उल्लेख हुआ है।^{७९} इसकी पहचान वर्तमान लाघमन से की जाती है। युवानच्चाग ने इसे लानपो लिखा है।^{८०}

३७. लाट

लाट का अर्थ यशस्तिलक के संस्कृत टीकाकार ने भृगुकच्छ किया है।^{८१} पालि में भरुकच्छ नाम आता है। वर्तमान भडौंच से इसकी पहचान की जाती है। नर्मदा के मुहाने पर यह एक अच्छा नगर तथा जिला है। प्राचीन समय में पूर्वी गुजरात को लाट कहते थे।

३८. वनवासी

बुहलर ने विक्रमाकदेव चरित के प्राक्कथन में लिखा है कि तुगभद्रा और वरदा के मध्य में एक कोने में वनवासी स्थित था। यशस्तिलक के संस्कृत टीकाकार ने वनवासी का अर्थ गिरिसोपानगरादि किया है।^{८२} अर्थात् वनवासी में गिरिसोपा (उत्तर कनारा जिले में स्थित गेरसोप्पा) तथा अन्य नगर थे। महावश (१२।३१) में भी वनवास का नाम आया है। गेगर ने लिखा है कि उत्तर कनारा जिले में वनवासी नाम का एक कस्बा आज भी वर्तमान है।^{८३}

७८ पृ० १० से २५

७९. लम्पाकपुरपुरधिकाधरमाधुर्यपश्यतो हरे । -- पृ० ५७४

८० वाटरम् आन युवानच्चाग, भाग १ पृ० १८१

८१ लाटीना भृगुकच्छदेशोद्भवाना स्त्रीणाम् । -- पृ० १८०, सं० टी०

८२ गिरिसोपानगरादिस्त्रीणाम् । -- पृ० १६६

८३. इन्पीरियल गजट ऑफ इन्डिया

३६ वंग या वंगाल

यशस्तिलक में दो बार वग^{६८} तथा एक बार वगाल का उल्लेख हुआ है। प्रो० हन्दिको ने दोनों को एक बताया है किन्तु सोमदेव ने स्पष्ट ही एव ही स्थान पर दोनों का अलग-अलग उल्लेख किया है। कल्चुरी विजयल (११५७-६७ई०) के अद्वर गिञ्जालेख में भी वंग और वगाल का अलग-अलग उल्लेख है।^{६९} प्राचीन वग का दक्षिणी प्रदेश ही बाद में वगाल नाम से प्रसिद्ध हुआ। चन्द्रद्वीप अर्थात् वाकरगज और उससे सम्बद्ध प्रदेश वगाल कहलाता था।^{७०} ग्यारहवीं शती में ढाका जिला वगाल में था। चौदहवीं शतब्दी में सोनारगांव वगाल की राजधानी के रूप में प्रसिद्ध था और वगाल ढाका से घटगांव तक फैला हुआ था।^{७१}

४० वंगी

वगी का यशस्तिलक में दो बार उल्लेख हुआ है।^{७२} वगी और वेंगी एक ही प्रतीत होते हैं। गोदावरी और कृष्णा नदी के मध्य में स्थित जिले, जहाँ पूर्वोक्त चालुक्यों का राज्य था, वेंगी कहलाता था। किन्तु यशस्तिलक की टीका में वगी को रतनपुर कहा है।^{७३} रतनपुर आजकल मध्यप्रदेश के विलासपुर के उत्तर में स्थित है। यह दक्षिण कौशुकी राजधानी थी और वहाँ त्रिपुरी के चेदे वंश की एक शाखा राज्य करती थी। टीकाकार का वगी को रतनपुर बताना उचित नहीं है।

४१ श्रीचन्द्र

श्रीचन्द्र का केवल एक बार उल्लेख है।^{७४} सस्त्रुत टीकाकार ने श्रीचन्द्र को कैलाश पर्वत का स्वामी बताया है। यह नम्राट् यशोधर के लिए चन्द्रकान्त के उपहार लेकर उपस्थित हुआ था।^{७५}

६४ अन्यैश्चागमलिगवगतिभि । - पृ० ४६६

वोपु स्फुलिग । - पृ० ४३१

६५. वगालेपु मण्डल । - वही

६६. इण्डियन हिस्टॉरीकल क्वार्टरली, भाग २२, पृ० २८०

६७. नरका—श्री मिर्ठी प्रो० वगाल भारतीय विद्या, जिल्द ५, पृ० ३६

६८. वगी

६९. वंग वन्तिनाश्रवणवत्स । - पृ० ६८ द्वि० । वगीमण्डले । - पृ० ६५ उत्त०

६०. वगी, पृ० ६०

६१. पृ० ३१४ द्वि०

६२. श्रीचन्द्रचन्द्रकान्त । - पृ० ३१४ द्वि०

३५ योधेय

सोमदेव ने योधेय का विस्तार से वर्णन किया है।^{७८} यह एक समृद्धिशाली जनपद था जिसे देख कर देवताओं का भी मन चल जाता था। यहाँ सभी प्रकार का गोवन — गाय, भैस, घोड़े, ऊँट, बकरी, भेड़ — पर्याप्त था। स्वर्ण की कमी न थी। पानी के लिए मात्र वर्षा पर निर्भर नहीं रहना पड़ता था। यहाँ की जमीन काली थी। हल जोतने वाले बहुत थे। पानी सुलभ था। खेती के विशेषज्ञ पर्याप्त थे। खूब वाग-वगीचे थे। पेड़-पौधों की कमी न थी। सड़कें साफ-सुथरी थीं। गाँव इतने पास-पास बसे हुए थे कि एक गाँव के मुर्गे उड़कर दूसरे गाँव में पहुँच जाते थे (कुक्कुटमपात्याग्रामा)। सब परस्पर सौहार्द से रहते थे।

३६. लम्पाक

यशस्तिलक में लम्पाक का मात्र एक बार उल्लेख हुआ है।^{७९} इसकी पहचान वर्तमान लाघमन से की जाती है। युवानच्वाग ने इसे लानपो लिखा है।^{८०}

३७. लाट

लाट का अर्थ यशस्तिलक के संस्कृत टीकाकार ने भृगुकच्छ किया है।^{८१} पालि में भरुकच्छ नाम आता है। वर्तमान भर्होच से इसकी पहचान की जाती है। नर्मदा के मुहाने पर यह एक अच्छा नगर तथा जिला है। प्राचीन समय में पूर्वी गुजरात को लाट कहते थे।

३८. वनवासी

बुहलर ने विक्रमाकदेव चरित के प्राक्कथन में लिखा है कि तुगभद्रा और वरदा के मध्य में एक कोने में वनवासी स्थित था। यशस्तिलक के संस्कृत टीकाकार ने वनवासी का अर्थ गिरिसोपानगरादि किया है।^{८२} अर्थात् वनवासी में गिरिसोपा (उत्तर कनारा जिले में स्थित गेरसोप्पा) तथा अन्य नगर थे। महावश (१२।३१) में भी वनवास का नाम आया है। गेगर ने लिखा है कि उत्तर कनारा जिले में वनवासी नाम का एक कस्बा आज भी वर्तमान है।^{८३}

७८ पृ० १० से २५

७९ लम्पाकपुरपुरधिकाधरमाधुर्यपश्यते इरे । -- पृ० ५७४

८० वाटरस् आन युवानच्वाग, भाग १ पृ० १८१

८१ लाटीना भृगुकच्छदेशोद्भवाना स्त्रीणाम् । -- पृ० १८०, सं० टी०

८२ गिरिसोपानगरादिस्त्रीणाम् । - पृ० १६६

८३ इन्पीरियल गजट ऑव इडिया

३६ बंग या बंगाल

यशस्तिलक में दो बार बग^{५४} तथा एक बार बंगाल का उल्लेख हुआ है। प्रो० हन्दिको ने दोनों को एक बताया है किन्तु सोमदेव ने स्पष्ट ही ए० ही स्थान पर दोनों का अलग-अलग उल्लेख किया है। कल्चुरी विज्जल (११५७-६७ई०) के अब्लूर शिलालेख में भी बंग और बंगाल का अलग-अलग उल्लेख है।^{५६} प्राचीन बग का दक्षिणी प्रदेश ही बाद में बंगाल नाम से प्रसिद्ध हुआ। चन्द्रद्वीप अर्थात् बाकरगज और उससे सम्बद्ध प्रदेश बंगाल कहलाता था।^{५७} ग्यारहवीं शती में ढाका जिला बंगाल में था। चौदहवीं शताब्दी में सोनारगाँव बंगाल की राजधानी के रूप में प्रसिद्ध था और बंगाल ढाका से चटगाँव तक फैला हुआ था।^{५८}

४०. बंगी

बगी का यशस्तिलक में दो बार उल्लेख हुआ है।^{५९} बगी और वेंगी एक ही प्रतीत होते हैं। गोदावरी और कृष्णा नदी के मध्य में स्थित जिले, जहाँ पूर्वीय चालुक्यों का राज्य था, वेंगी कहलाता था। किन्तु यशस्तिलक की टीका में बगी को रतनपुर कहा है।^{६०} रतनपुर आजकल मध्यप्रदेश के विलासपुर के उत्तर में स्थित है। यह दक्षिण कौशल की राजधानी थी और वहाँ त्रिपुरी के चेदी वंश की एक शाखा राज्य करती थी। टीकाकार का बगी को रतनपुर बताना उचित नहीं है।

४१ श्रीचन्द्र

श्रीचन्द्र का केवल एक बार उल्लेख है।^{६१} संस्कृत टीकाकार ने श्रीचन्द्र को कैलाश पर्वत का स्वामी बताया है। यह सम्राट् यशोधर के लिए चन्द्रकान्त के उपहार लेकर उपस्थित हुआ था।^{६२}

८४. अन्यैश्चागकलिंगवगवतिभि । - पृ० ४६६

वगेपु स्फुलिगः । - पृ० ४३१

८५. बंगालेपु मण्डल । - वही

८६. इडियन हिस्टॉरीकल क्वार्टरली, भाग २२, पृ० २८०

८७. सरकार—दी सिटी ऑव् बंगाल भारतीय विद्या, जिल्द ५, पृ० ३६

८८. वही

८९. बगीवनिताश्रवणावतस । —पृ० ६८ हि० । बगीमण्डले ।—पृ० ६५ उक्त०

९०. वही, स० टी०

९१. पृ० ३१४ हि०

९२. श्रीचन्द्रश्चन्द्रकान्तै । —पृ० ३१४ हि०

४२. श्रीमाल

श्रीमाल का भी एक बार उल्लेख है।^{९३} जोधपुर राज्य के भिनमाल नामक स्थान से इसकी पहचान की जाती है। कुवलयमाला कहा (८वीं शती) में भिल्लमाल का उल्लेख है। यह जैनो का एक गढ़ था। यहाँ से निकलने वाले जैन वर्तमान में राजस्थान, पश्चिम भारत तथा उत्तरप्रदेश में पाये जाते हैं। इनको श्रीमाल कहा जाता है, वे भी स्वयं अपने को श्रीमाल मानते हैं।^{९४}

४३. सिन्धु

सिन्धु देश का उल्लेख सोमदेव ने वहाँ के घोडो के साथ किया है। सिन्धु देश के राजा ने अच्छी किस्म के बहुत से घोडे लेकर अपने दूत को सम्राट् यशोवर् के पास भेजा।^{९५}

वहाँ से आने वाले घोडो का कालिदास ने भी उल्लेख किया है।^{९६}

सिन्धु देश सिन्धु नदी के दोनों किनारो पर इसके मुहाने तक विस्तृत था। कालिदास के अनुसार इसमें गन्धर्व निवास करते थे जिन्हें भरत ने पराजित किया।^{९७} इस देश में तक्षशिला और पुष्कलावती अवस्थित थे। इनका नाम भरत ने अपने दोनों पुत्रो तक्ष और पुष्कल के नाम पर रखा था और उन्हें वहाँ का राज्य सौंप दिया था।^{९८}

सिन्धु हमेशा घोडो के लिए प्रसिद्ध रहा है। अमरकोपकार ने इसी कारण सैन्धव और गन्धर्व घोडो के पर्याय दिये हैं।^{९९} सोमदेव ने सिन्धु के घोडों का उल्लेख किया है।

४४. सूरसेन

सूरसेन का भी एक बार उल्लेख है। सोमदेव ने लिखा है कि सूरसेन जनपद में वसन्तमति ने अपने अग्ररो में विपमिला अलवत्तक लगाकर सुरतविलास

९३ पृ० ३१४ दि०

९४ भारतीय विद्या जिल्द दो, भाग १-२ में श्री जिनविजय जी

९५ तुरगनिवह पप. प्रेषित सैन्धवैर्ने। — पृ० ३१४ दि०

९६ रघु० १५।२७

९७ बर्ही १५।२२

९८ बर्ही १५।२६

९९ अमरकोष २।४५

नामक राजा को मार डाला था ।^{१००} मथुरा का पुराना नाम सूरसेन था ।

४५. सौराष्ट्र

सौराष्ट्र का दो बार उल्लेख हुआ है ।^{१०१} संस्कृत टीकाकार ने सौराष्ट्र के गिरिनार का भी उल्लेख किया है ।^{१०२}

४६. यवन

सोमदेव ने यशोधर को यवनकुल के लिए वज्राग्नि के समान कहा है ।^{१०३} सोमदेव ने लिखा है कि यवनदेश में मणिकुण्डला नामक महारानी ने अपने पुत्र को राज्य दिलाने के लिए शराव में विष मिलाकर अजराज नामक राजा को मार डाला था ।^{१०४} एक अन्य प्रसंग में यवनी स्त्रियो का उल्लेख है ।^{१०५} श्रुतदेव ने यवन का अर्थ खुराशान देश किया है,^{१०६} जो उचित नहीं है । अजराज तक्ष-शिला में राज्य करता था ।

४७. हिमालय

हिमालय का जनपद तथा पर्वत दोनो रूपों में उल्लेख है । इसके लिए हिमाचल (पृ० २१३) के अतिरिक्त शिगिरगिरि (पृ० ४७०), तुपारगिरि (पृ० ५७४), तथा प्रालेयगैल (पृ० ३२२) नाम भी आये हैं ।

हिमाचल प्रदेश का अविपत्ति सम्राट् यशोधर के दरवार में ग्रन्थिपर्ण की भेंट ले कर उपस्थित हुआ ।^{१०७}



१००. सूरसेनेपु सुरतविलासम् ।—पृ० १५२

१०१. पृ० ३४ म० पू० तथा पृ० ३०० उक्त०

१०२. सौराष्ट्रोपु गिरिनारिसौराष्ट्रियोपित्तु ।—पृ० ३४ स० टी०

१०३. यवनकुलवज्रानिल. ।—पृ० ५६८ म० पू०

१०४. विषदूषितमद्यगरूपेण मणिकुण्डला महादेवी यवनेपु निजतनुजराज्यार्थमजराज जघान ।—पृ० १५० उक्त०

१०५. यवनी नितम्बनखपदविमुग्ध ।—पृ० १८०

१०६. यवनो नाम खुराशानदेश ।—वही, स० टी०

१०७. शिगिरगिरिपतिर्त्रिन्धिपर्णरुदीर्य ।—पृ० ४७०

नगर और ग्राम

सोमदेव ने यशस्तिलक में चालीस ग्राम और नगरो का उल्लेख किया है । इनके विषय में विशेष जानकारी इस प्रकार है —

१ अहिच्छत्र

अहिच्छत्र की पहचान उत्तरप्रदेश के बरेली जिले में स्थित रामनगर नामक ग्राम से की जाती है । जैन अनुश्रुति के अनुसार इस ग्राम में तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ ने कठोर तपस्या की थी । कमठ नामक व्यन्तर ने उनके ऊपर घोर उपसर्ग किया, फिर भी वे अपनी तपस्या में अडिग रहे । उनकी इस कठोर साधना का यश चारों ओर फैल गया । सोमदेव ने इसी भाव का संकेत किया है ।^१ यशस्तिलक के उल्लेख के अनुसार अहिच्छत्र पांचाल देश में था । पांचाल उत्तरप्रदेश के रुहेलखण्ड प्रदेश को माना जाता है । अन्यत्र इसकी विशेष चर्चा की गयी है । यशोधर महाराज को अहिच्छत्र के क्षत्रियो में शिरोमणि कहा गया है ।^२

२ अयोध्या

यशस्तिलक के उल्लेखानुसार अयोध्या कोशल में थी । कोशल देश का यशस्तिलक में अन्यत्र भी उल्लेख आया है । अयोध्या कोशल की राजधानी थी । रघु और उनके उत्तराधिकारियों ने बहुत समय तक अयोध्या को अपनी राजधानी बनाये रखा । रघुवश में इसके अनेक उल्लेख आते हैं ।

३ उज्जयिनी

उज्जयिनी का यशस्तिलक में एक अत्यन्त सुन्दर एवं पूर्ण चित्र प्रस्तुत किया गया है । उज्जयिनी अवन्ति जनपद में थी ।^४ यह नगरी पृथुवश में उत्पन्न होनेवाले

१ श्रीमत्पार्श्वनाथपरमेश्वरयश प्रकाशनामत्रे अहिच्छत्रे —आ० ६, क० १५

२ अहिच्छत्रत्रयसिद्धिमणि । —पृ० ३७५१= हिन्दी

३ कोशलदेशमहायागमयोध्यानापुरि । —आ० ६ क० ८

४ पृ० ३१४, ३ हिन्दी

५ अत्रन्तिगु विस्वता । —पृ० २०६

राजाओ की राजधानी के रूप में प्रसिद्ध रही है।^६ वहाँ के प्रासादों पर ध्वजाएँ लगायी गयी थीं।^७ सफेद पताकाओं के कारण सब ऐसे लगते थे जैसे हिमालय की चोटियाँ हो।^८ वहाँ पर नवीन पल्लव तथा मालाओं वाले तोरण बनाये गये थे।^९ वहाँ के लोग मयूर पालने के शौकीन थे जो कि मकानों पर खेळते रहते थे।^{१०} भवनो के साथ ही गृहोद्यान थे, जिनमें सभी ऋतुओं के फल-फूल लगे थे।^{११}

उज्जयिनी के पास ही सिप्रा नदी बहती थी जिसकी ठड़ी-ठड़ी हवा का नागरिक रात्रि में घर बैठे आनन्द लेते थे।^{१२} भवनो में गृहदीर्घिकाएँ बनायी गयी थी।^{१३} नगरी में देवालय, बगीचे, सत्र, धर्मशालाएँ, बापो, वसति, सार्वजनिक स्थान बनाये गये थे।^{१४} उज्जयिनी घन-धान्य से इतनी समृद्ध थी कि मानो वहाँ समुद्रों के सभी रत्न, राजाओं की सभी वस्तुएँ तथा सभी द्वीपों की सारभूत सामग्री इकट्ठी हो गयी हो।^{१५}

वहाँ की कामिनियाँ अतिशय रूपवती थी। लोग चरित्रवान् थे, त्यागी थे, दानी थे, धर्मात्मा थे।^{१६}

४. एकचक्रपुर

इसका एक वार उल्लेख है। सभवतया एकचक्रपुर विन्ध्याचल के समीप था। एकपाद नामक परिव्राजक गंगा (जाह्नवी) में स्नान करने के लिए एकचक्रपुर से चला और उसे रास्ते में विन्ध्याटवी मिली।^{१७}

६ पृथुवशीद्भवात्मनाम् विश्वभरेशानाम् ।-वही

७ सौधनद्धध्वजाप्रान्त ।-वही

८ सिनकेतुसमुच्छ्रय हराद्रिशिखराणीव ।-वही

९ नवपल्लवमालाकां यत्र तोरणपक्वतय ।-वही

१० क्रीडत्कलापिरम्याणि हर्म्याणि । पृ-२०५

११ सर्वतुश्रीश्रितच्छायाणिष्कुटोद्यानपादपां ।-वही

१२ नवन सिप्रानिलैर्यत्र जालमार्गानुगैः ।-वही

१३ गृहदीर्घिका ।-पृ० २०६

१४ पृ० २०८

१५ सर्वरत्नानि वाधीना सर्ववस्तूनि भृशुगाम् ।

द्वीपाना सर्वसाराणि यत्र सजग्मिरे मिथं ।-पृ० २०६

१६ पृ० २०६

१७ एकचक्रात्पुरादेकपान्नामपरिव्राजको जाह्नवीजलेषु मज्जनाय व्रजन् विन्ध्याटवी-
विषये ।-पृ० ३२७ उत्त०

५. एकानमी

एकानमी का अर्थ यशस्विलक के मस्तक टीकाकार ने उज्जयिनी किया है।^{१९} 'अम्ब' एकानमी को अवन्ति जनपद में बताया है। इससे टीकाकार के अर्थ की पुष्टि होती है।

६ कनकगिरि

यशस्विलक के मस्तक टीकाकार के अनुसार उज्जयिनी के समीप सुवर्णगिरि पर स्थित नगर का नाम कनकगिरि था।^{२०} उज्जयिनी से इसकी दूरी बेवल चार कोस (मन्वृन्दित्र) थी। यशोपर को कनकगिरि का स्वामी बताया गया है।^{२१}

७ कंकाहि

यह उज्जयिनी के निकट एक छोटा-सा गांव था। इसके निवासी नमदे तथा चमटे के जोन बनाते थे।^{२२}

८ काकन्दी

यशस्विलक में काकन्दी का उल्लेख तीन बार हुआ है। इन साक्ष्यों के स्थापान पर कहा जा सकता है कि काकन्दी काम्पिल्य के आस-पास था। काम्पिल्य की पहचान उत्तरप्रदेश के फार्मगाबाद जिले में स्थित काम्पिल्य नामक स्थान से की जाती है। यशस्विलक में कुपण मागरदत्त अपने भानजे की मृत्यु का समाचार प्राप्त काम्पिल्य से काकन्दी जाता है और जतरी लौट आता है। इससे ये दोनों पार नाम प्रचीत होते हैं। बाद के अनुसन्धान और उत्खनन में काकन्दी की स्थिति उत्तरप्रदेश के देवरिया जिले में मानी जाने लगी है। नोनगार स्टेशन से लगभग तीन मील दक्षिण गम्बुर्दा नामक ग्राम में इसकी पहचान की जाती है। यहाँ प्राचीन जैन मन्दिर भी है तथा उत्खनन में प्राचीन वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं।

यशस्विलक के उल्लेखानुसार काकन्दी व्यापार का एक बहुत बड़ा केन्द्र था। मोरेश ने इसे मम्बुर्दा नगर के व्यापार या व्यवहार का केन्द्र कहा है।^{२३}

जैन अनुश्रुति के अनुसार काकन्दो बारहवें जैन तीर्थंकर पुष्पदन्त की जन्मभूमि थी। सोमदेव ने इस तथ्य का समर्थन किया है।^{२४}

६. काम्पिल्य

काम्पिल्य की पहचान उत्तरप्रदेश के फर्रुखाबाद जिले में स्थित काम्पिल्य नामक स्थान से की जाती है। यशस्तिलक के अनुसार काम्पिल्य पाचाल देश में थी।^{२५}

१०. कुशाग्रपुर

कुशाग्रपुर मगध का केन्द्र तथा पुरानी राजधानी थी।^{२६} युवानच्याग ने भी कुशाग्रपुर का उल्लेख किया है और उसे मगध का केन्द्र तथा पुरानी राजधानी बताया है। वहाँ एक प्रकार की सुगन्धित घास बहुतायत से होती थी, उसी के कारण उसका नाम कुशाग्रपुर पडा। हेमचन्द्र के त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र में सुरक्षित परपरा के अनुसार प्रसेनजित कुशाग्रपुर का राजा था। कुशाग्रपुर में लगातार आग लगने के कारण प्रसेनजित ने यह आज्ञा दी थी कि जिसके घर में आग पायी जायेगी वह नगर से निकाल दिया जायेगा। इसके बाद राजमहल में आग पायी जाने के कारण प्रसेनजित ने नगर छोड़ दिया क्योंकि वह स्वयं राजघोषणा से बंधा था। इसके बाद उसने राजगृह नगर बसाया।^{२७} राजगृह बिहार प्रान्त में पटना के दक्षिण में स्थित आज का राजगिरि है। राजगिरि को पचशैलपुर भी कहते हैं। वह पाच पहाडियों से घिरा है। सोमदेव ने भी इसका दूसरा नाम पचशैलपुर लिखा है।^{२८}

११. किन्नरगीत

किन्नरगीत को सोमदेव ने दक्षिण श्रेणी का नगर बताया है।^{२९}

२४ श्रीमत्पुष्पदन्तभदन्तावतारावनीर्णत्रिदिवपतिसपादितो धावेन्द्रिरासत्या काकन्धा पुरि । - आ० ७, क० २४

२५ पांचालदेशेषु त्रिदशनिवेशानुकूलोपशाल्ये काम्पिल्ये । - आ० ७, क० ३२

२६ मगधदेशेषु कुशाग्रनगरोपान्तापात्तिनि । - आ० ६, क० ६

२७, नान्सन—इडियन हिस्टॉ० क्वा० जिल्द २२, पृ० २२८

२८. राजगृहापरनामावसरे पचशैलपुरे । - पृ० ३०४, उक्त०

२९. दक्षिणश्रेण्या किन्नरगीतनामनगरनरेन्द्रेण । - आ० ६, क० ८

१२. कुसुमपुर

पाटलिपुत्र का दूसरा नाम कुसुमपुर था (आ०४) ।

१३. कौशाम्बी

कौशाम्बी का दो बार उल्लेख है ।^{२०} इसकी पहचान इलाहाबाद के पश्चिम में करीब बीस मील दूर जमुना के किनारे स्थित कोसम नामक स्थान से की जाती है । म० टीकाकार ने लिखा है कि कौशाम्बी नगरी वत्स देश में गोपाचल (ग्वालियर) में (४४ गव्यूति) ८८ कोस दूर है ।^{२१}

बौद्ध ग्रन्थों में (महासुदस्सनसुत्तन्त) कौशाम्बी को एक बहुत बड़ी नगरी बताया गया है ।

१४. चम्पा

शिवदेव के अनुसार चम्पा प्राचीन अणदेश की राजधानी थी ।^{२२} बिहार प्रान्त के भागलपुर और मुंगेर जिले के आम-पाम का भाग अग कहलाता था । चम्पा वर्तमान भागलपुर के पाम माना जाता है ।

१५. चुंकार

यशस्विलक में वृद्धशनि की कथा के प्रसंग में चुंकार का उल्लेख आया है ।^{२३} लोचनाजनहर नामक एक बदमाश ने साधुचरित वृद्धम्पति की बदनामी उठा दी । फल यह हुआ कि मिथ्यावाद के कारण वे इन्द्रमन्थ में प्रवेश न पा सके ।

१६. ताम्रलिप्ति

यशस्विलक के अनुसार ताम्रलिप्ति पूर्वदेश के गौडमण्डल में था ।^{२४} वर्तमान ताम्रलुपुत्रों कि बंगाल के मिदनापुर जिले में है, से इसकी पहचान की जाती है ।

१७. पद्मावतीपुर

पद्मावतीपुर को यशस्तिलक के टीकाकार ने उज्जयिनी बताया है।^{३५} एक हस्तलिखित प्रति में भी किनारे पर यही नाम लिखा है। पर यह ठीक नहीं। पद्मावतीपुर वर्तमान पवाया है, जो खालियर जिले में है।

१८. पद्मिनीखेट

पद्मिनीखेट का एक बार उल्लेख है।^{३६} यहाँ के एक वणिक्पुत्र की कथा आयी है। यशस्तिलक से इसके विषय में और अधिक जानकारी प्राप्त नहीं होती।

१९. पाटलिपुत्र

पाटलिपुत्र वर्तमान का पटना है। यहाँ की वारविलासिनियों के उल्लेख आये हैं।^{३७}

एक अन्य पाटलिपुत्र का उल्लेख है।^{३८} यह सौराष्ट्र (काठियावाड) का पालीताना है।

२०. पोदनपुर

अश्मक के प्रसंग में पोदनपुर के विषय में लिखा जा चुका है। यह गोदावरी नदी के किनारे अश्मक की राजधानी थी।^{३९}

२१. पौरव

पौरवपुर को संस्कृत टीकाकार ने अयोध्या कहा है।^{४०}

२२. बलवाहनपुर

एक कथा के प्रसंग में बलवाहनपुर का उल्लेख है।^{४१}

३५ पृ० ५६६

३६. आ० ७, क० २७

३७. पाटलिपुत्रपरयागनाभुजग । - पृ० ३७७।४ हि०

३८. आ० ६, क० १२

३९. रम्यकदेशनिवेशोपेतपोदनपुरनिवेशिनो ।—३५० ८०

४० पृ० ६८,

४१. आ० ६, क० १५

१२ कुसुमपुर

पाटलिपुत्र का दूसरा नाम कुसुमपुर था (आ०४) ।

१३. कौशाम्बी

कौशाम्बी का दो बार उल्लेख है ।^{३०} इसकी पहचान इलाहाबाद के पश्चिम में करीब बीस मील दूर जमुना के किनारे स्थित कोसम नामक स्थान से की जाती है । स० टीकाकार ने लिखा है कि कौशाम्बी नगरी वत्स देश में गोपाचल (ग्वालियर) से (४४ गव्यूति) ८८ कोस दूर है ।^{३१}

बौद्ध ग्रन्थों में (महासुदस्सनसुत्तन्त) कौशाम्बी को एक बहुत बड़ी नगरी बताया गया है ।

१४. चम्पा

सोमदेव के अनुसार चम्पा प्राचीन अगदेश की राजधानी थी ।^{३२} बिहार प्रान्त के भागलपुर और मुंगेर जिले के आस-पास का भाग अग कहलाता था । चम्पा वर्तमान भागलपुर के पास माना जाता है ।

१५. चुंकार

यशस्तिलक में वृद्धस्पति की कथा के प्रसंग में चुंकार का उल्लेख आया है ।^{३३} लोचनाजनहर नामक एक बदमाश ने साधुचरित वृद्धस्पति की बदनामी उठा दी । फल यह हुआ कि मिथ्यावाद के कारण वे इन्द्रसभा में प्रवेश न पा सके ।

१६. ताम्रलिप्ति

यशस्तिलक के अनुसार ताम्रलिप्ति पूर्वदेश के गौडमण्डल में था ।^{३४} वर्तमान ताम्बलुक जो कि बंगाल के मिदनापुर जिले में है, से इसकी पहचान की जाती है ।

१७. पद्मावतीपुर

पद्मावतीपुर को यशस्तिलक के टीकाकार ने उज्जयिनी बताया है।^{३५} एक हस्तलिखित प्रति में भी किनारे पर यही नाम लिखा है। पर यह ठीक नहीं। पद्मावतीपुर वर्तमान पवाया है, जो खालियर जिले में है।

१८. पद्मिनीखेट

पद्मिनीखेट का एक बार उल्लेख है।^{३६} यहाँ के एक वणिक्पुत्र की कथा आयी है। यशस्तिलक से इसके विषय में और अधिक जानकारी प्राप्त नहीं होती।

१९. पाटलिपुत्र

पाटलिपुत्र वर्तमान का पटना है। यहाँ की वारविलासिनियों के उल्लेख आये हैं।^{३७}

एक अन्य पाटलिपुत्र का उल्लेख है।^{३८} यह सौराष्ट्र (काठियावाड) का पालीताना है।

२०. पोदनपुर

अश्मक के प्रसंग में पोदनपुर के विषय में लिखा जा चुका है। यह गोदावरी नदी के किनारे अश्मक की राजधानी थी।^{३९}

२१. पौरव

पौरवपुर को संस्कृत टीकाकार ने अयोध्या कहा है।^{४०}

२२. बलवाहनपुर

एक कथा के प्रसंग में बलवाहनपुर का उल्लेख है।^{४१}

३५ पृ० ५६६

३६. आ० ७, क० २७

३७. पाटलिपुत्रपरयागनाभुजग । - पृ० ३७७।४ हि०

३८ आ० ६, क० १२

३९. रम्यकदेशनिवेशोपेतपोदनपुरनिवेशिनो ।—३५० ८०

४०. पृ० ६८,

४१. आ० ६, क० १५

१२. कुसुमपुर

पाटलिपुत्र का दूसरा नाम कुसुमपुर था (आ०४) ।

१३. कौशाम्बी

कौशाम्बी का दो बार उल्लेख है ।^{३०} इसकी पहचान इलाहाबाद के पश्चिम में करीब बीस मील दूर जमुना के किनारे स्थित कोसम नामक स्थान से की जाती है । स० टीकाकार ने लिखा है कि कौशाम्बी नगरी वत्स देश में गोपाचल (ग्वालियर) से (४४ गव्यूति) ८८ कोस दूर है ।^{३१}

बौद्ध ग्रन्थों में (महासुदस्सनसुत्तन्त) कौशाम्बी को एक बहुत बड़ी नगरी बताया गया है ।

१४. चम्पा

सोमदेव के अनुसार चम्पा प्राचीन अणुदेश की राजधानी थी ।^{३२} बिहार प्रान्त के भागलपुर और मुंगेर जिले के आस-पास का भाग अग कहलाता था । चम्पा वर्तमान भागलपुर के पास माना जाता है ।

१५. चुंकार

यशस्तिलक में बृहस्पति की कथा के प्रसंग में चुंकार का उल्लेख आया है ।^{३३} लोचनाजनहर नामक एक बदमाश ने साधुचरित बृहस्पति की बदनामी उडा दी । फल यह हुआ कि मिथ्यावाद के कारण वे इन्द्रसभा में प्रवेश न पा सके ।

१६. ताम्रलिप्ति

यशस्तिलक के अनुसार ताम्रलिप्ति पूर्वदेश के गौडमण्डल में था ।^{३४} वर्तमान तामलुक जो कि बंगाल के मिदनापुर जिले में है, से इसकी पहचान की जाती है ।

३० पृ० ३७७४, द्वि०, ३२६।६ उक्त०

३१ पृ० ५६८, स० टी०

३२, अणुमण्डलेषु चम्पाया पुरि । — आ० ६, क० ८

३३ पृ० १३८ उक्त०

३४. आ० ६, क० १२

माहिष्मती पूर्व कल्चुरी नरेशो की राजधानी थी। कल्चुरी ने महाराष्ट्र पर आन्ध्रभ्रतय के पतन और चालुक्यों के उत्थान काल में शासन किया।^{४९}

कल्चुरी साम्राज्य के सस्थापक कृष्णराज छठी शताब्दी के मध्य में माहिष्मती में रहे। बाद में राजधानी जबलपुर के पास त्रिपुरी में चली गयी।^{५०}

२६. राजपुर

राजपुर यौधेय की राजधानी थी।^{५१} यौधेय की पहिचान भावलपुर के वर्तमान जोहियों से की जाती है। प्राचीन काल में यह एक बहुत बड़ा प्रदेश था।^{५२} मुल्तान के दक्षिण में बहावलपुर स्टेट (पश्चिमी पाकिस्तान) का राजनपुर ही प्राचीन राजपुर प्रतीत होता है।

३०. राजगृह

विहार प्रान्त का वर्तमान राजगृही। यहाँ की पाँच पहाडियों के कारण यह पचशैलपुर भी कहलाता था।^{५३}

३१. बलभी

बलभी का दो वार उल्लेख है।^{५४} यह सौराष्ट्र के मैतृको की राजधानी थी। भावनगर के उत्तर-पश्चिम में लगभग २० मील पर बला नाम से आज उसके भग्नावशेष पाये जाते हैं।

३२. वाराणसी

वर्तमान वाराणसी। सोमदेव ने वाराणसी को काशी जनपद में बताया है।^{५५}

३३. विजयपुर

यशस्तिलक के अनुमार विजयपुर मध्यप्रदेश में था।^{५६}

४६ भण्डारकर—अरलो डिस्ट्री ऑव् डेक्कन, पृ० ८०, नोट्स पृ० २५१

५० इण्डि० हिस्टॉ० क्वा०, वाल्यूम २१, पृ० ८४

५१ पृ० १३, हि०

५२ रेपसन—इण्डियन क्वाइन्स, पृ० १४

५३. मगधदेशोपु राजगृहापरनामावसरे पचशैलपुरे। - पृ० ३०४ उक्त०

५४. आ० ७, क० २३, ३७७।५ हि०

५५ आ० ७, क० ३१

५६ आ० ६, क० ७

२३. भावपुर

भावपुर का उल्लेख भी एक कथा के प्रसंग में आया है ।^{४२}

२४. भूमितिलकपुर

यशस्तिलक के अनुसार भूमितिलकपुर जनपद नामक प्रदेश की राजधानी थी ।^{४३} जनपद की अभी ठीक पहचान नहीं हो पायी है । यशस्तिलक की कथा से यह कुरुक्षेत्र के आस पास का प्रदेश ज्ञात होता है । भूमितिलकपुर से निष्काषित दो मित्र कुहजागल के हस्तिनापुर में आकर ठहरते हैं ।^{४४}

२५. मथुरा

यशस्तिलक में उत्तर मथुरा (वर्तमान मथुरा) तथा दक्षिण मथुरा (वर्तमान मथुरा) दोनों के उल्लेख हैं ।^{४५}

२६. मायापुरी

मायापुरी इन्द्रकच्छ की राजधानी थी । इसका दूसरा नाम रोरुकपुर भी था ।^{४६}

२७. मिथिलापुर

मिथिलापुर का भी एक कथा के प्रसंग में उल्लेख हुआ है ।^{४७}

२८. माहिष्मती

माहिष्मती का दो बार उल्लेख है । सस्कृत टीकाकार ने इसे यमुनपुर दिशा में बताया है ।^{४८} इन्दौर के पास नर्मदा के किनारे स्थित महेश्वर अथवा मध्य-प्रान्त के निमाड जिले में स्थित मान्धाता से इसकी पहचान करनी चाहिए ।

४२. आ० ६, क० १५

४३. आ० ६, क० ५

४४. आ० ६, क० ५

४५. आ० ६, क० १०

४६. इन्द्रकच्छदेशोपु (रोरुकपुर) मायापुरीत्यपरनामावमरस्य पुरस्य प्रभो. ।

— पृ० २६४ उ०

४७. आ० ६, क० २०

४८. हिमालयमलयमगधमध्यदेशमाहिष्मतीपतिप्रभृतीनामवनिपतीना वलानि । — पृ० ४६८

माहिष्मतीयुवतिरनिबुसुमचाप । — पृ० ५६८

माहिष्मतीनाम नगरी यमुनपुरदिशि पत्तनम् । — स० टी०

माहिष्मती पूर्व कल्चुरी नरेशों को राजधानी थी। कल्चुरी ने महाराष्ट्र पर आन्ध्रभृत्य के पतन और चालुक्यों के उत्थान काल में शासन किया।^{५९}

कल्चुरी साम्राज्य के सस्थापक कृष्णराज छठी शताब्दी के मध्य में माहिष्मती में रहे। बाद में राजधानी जबलपुर के पास त्रिपुरी में चली गयी।^{५०}

२६. राजपुर

राजपुर यौधेय की राजधानी थी।^{५१} यौधेय की पहिचान भावलपुर के वर्तमान जोहियों से की जाती है। प्राचीन काल में यह एक बहुत बड़ा प्रदेश था।^{५२} मुल्तान के दक्षिण में बहावलपुर स्टेट (पश्चिमी पाकिस्तान) का राजनपुर ही प्राचीन राजपुर प्रतीत होता है।

३० राजगृह

विहार प्रान्त का वर्तमान राजगृही। यहाँ की पाँच पहाड़ियों के कारण यह पचशैलपुर भी कहलाता था।^{५३}

३१. बलभी

बलभी का दो बार उल्लेख है।^{५४} यह सौराष्ट्र के मँतृको की राजधानी थी। भावनगर के उत्तर-पश्चिम में लगभग २० मील पर बला नाम से आज उसके भग्नावशेष पाये जाते हैं।

३२ वाराणसी

वर्तमान वाराणसी। सोमदेव ने वाराणसी को काशी जनपद में बताया है।^{५५}

३३. विजयपुर

यशस्तिलक के अनुमार विजयपुर मध्यप्रदेश में था।^{५६}

४६ भण्डारकर—अरली डिस्ट्री ऑव् डेक्कन, पृ० स०, नोट्स पृ० २५१

५०. इण्डि० हिस्टॉ० क्वा०, वाल्यूम २१, पृ० ८४

५१ पृ० १३, डि०

५२ रेपसन—इण्डियन क्वाइन्स, पृ० १४

५३ मगधदेशोपु राजगृहापरनामावसरे पचशैलपुरे। - पृ० ३०४ उक्त०

५४. आ० ७, क० २३, ३७७।५ डि०

५५ आ० ७, क० ३१

५६ आ० ६, क० ७

३४. हस्तिनापुर

यशस्तिलक में हस्तिनापुर का दो बार उल्लेख है। सोमदेव के अनुसार यह नगर कुरुजागल जिले में था।^{५७} कुरुजागल को एक स्थान पर केवल जागलदेश भी कहा है।^{५८} यशोधर के अन्तःपुर में कुरुजागल की कामिनियों का उल्लेख है।^{५९}

३५. हेमपुर

एक कथा के प्रसंग में हेमपुर का उल्लेख है।^{६०}

३६. स्वस्तिमति

सोमदेव ने लिखा है कि स्वस्तिमति डहाल प्रदेश में थी।^{६१} डहाल चेदि राजाओं की राजधानी थी। यशस्तिलक के उल्लेखों से ज्ञात होता है कि वहाँ गन्नो की अच्छी खेती होती थी।^{६२} वहाँ पर अभिचन्द्र, द्वितीय नाम विश्वावसु, नाम का राजा राज करता था।^{६३} उसकी वसुमति नाम की पटरानी थी।^{६४} उनके लडके का नाम वसु तथा पुरोहित का क्षीरकदम्ब था। क्षीरकदम्ब की पत्नी का नाम स्वस्तिमति तथा लडके का नाम पर्वत था।

३७. सोपारपुर

यह मगध प्रान्त का एक नगर था। इसके निकट नाभिगिरि नाम का पर्वत था।^{६५}

३८. श्रीसागरम् (सिरीसागरम्)

यशस्तिलक के अनुसार श्रीसागरम् अवन्ति जनपद में था।^{६६}

५७ कुरुजागलमण्डले हस्तिनागपुरे । - आ० ६, क० २०

५८. आ० ७, क० २८

५९ कुरुजागलललनाकुचतनुत्र । - पृ० ६८७ हि०

६० आ० ६, क० १५

६१ डहालायामस्ति स्वस्तिमती नाम पुरी । - पृ० ३५३ उक्त०

६२ कामकोदण्टकारणकान्ताररिवेनुप्रयावतर्गविराजितमण्डलायाम्।-पृ० ३५३ उक्त०

६३ तस्यामभिचन्द्रापरनामवसुविश्वावसुर्नाम नृपति । - पृ० ३५३ उक्त०

६४. वसुमतिनामाग्रमहिषी । - वही

६५. मगधविषये सोपारपुरपर्यन्तधाग्नि नाभिगिग्निग्निः । - वहीधरे । - आ० ६, क० १५

६६. आ० ७, क० २६

३६. सिंहपुर

यह नगर प्रयाग देश में था।^{६७} युवाग च्वाग ने भी इसका उल्लेख किया है।

४०. शंखपुर

शंखपुर सभदतया अयोध्या के निकट कोई ग्राम था। यशस्तिलक को एक कथा में लिखा है कि अनन्तमती को शंखपुर के निकट स्थित पर्वत के पास में छोड़ा गया और वहाँ से एक वणिक् उसे अयोध्या ले आया।^{६८}



६७ आ० ७, क० २७

६८ आ० ६, क० ८

बृहत्तर भारत

१. नेपाल

नेपाल का दो बार उल्लेख है। सोमदेव ने लिखा है कि नेपाल नरेश कस्तूरी की प्राभृत लेकर यशोधर के दरबार में उपस्थित हुआ।^१ एक अन्य प्रसंग में नेपाल शैल का उल्लेख है तथा उसी के साथ वहाँ पर कस्तूरी प्राप्त होने के तथ्य का भी उल्लेख है।^२

२. सिंहल

सिंहल का तीन बार उल्लेख है। यशस्तिलक के उल्लेखों से ज्ञात होता है कि भारत और सिंहल के अटूट सम्बन्ध थे।^३

३. सुवर्णद्वीप

सुवर्णद्वीप की पहचान सुमात्रा से की जाती है। यशस्तिलक में दो मित्र सुवर्णद्वीप जाते हैं और वहाँ से अपार धन कमाकर लौटते हैं।^४ यहाँ की राजधानी शैलेन्द्र थी। एक ताम्रपत्र भी मिला है।^५

४. विजयार्ध

विजयार्ध का एक बार उल्लेख है।^६ यशस्तिलक से इसके विषय में विशेष जानकारी प्राप्त नहीं होती।

१. क्षितिप, मृगमर्दरेष नेपालपाल .। - पृ० ४७० स० पू०

२. पृ० ५७४, वही

३. सिंहलीपु मुखकमलमकरन्दपानमधुकर । - पृ० ३४, वही

दूता. केरलचोलसिंहल । - पृ० ४६६, वही

मिहलमहिलाननतिलकवही । - पृ० ८८१, वही

४. आ० ७, क० २७

५. डॉ० अत्रवाल- नागरोप्रचारिणी पत्रिका (विक्रमांक)

६. विजयार्धविनीधरस्य विद्याधरविनोदपादपोत्पादचौग्या दक्षिणश्रेण्याम् ।

५. कुलूत

श्रुतदेव ने कुलूत को मरवादेश कहा है।^७ यशस्तिलक के उल्लेख से प्रतीत होता है कि कुलूत देश की कामिनियाँ विशेष सुन्दर होती थीं, उनके कपोलो पर लावण्य झलकता था।^८



७ कुलूतोमरवादेशः । - पृ० ५७४

८ दुःसूतकुलकामिनोः कपोललावण्यधामनि । - वही

वन और पर्वत

१. कालिदासकानन

पाचाल देश में अहिच्छत्र के निकट जलवाहिनी नदी के किनारे आमो का एक बहुत बड़ा बगीचा था, जिसे कालिदासकानन कहते थे ।^१

सोमदेव ने यशस्तिलक में कालिदास का आम के अर्थ में एक अन्य स्थल पर भी प्रयोग किया है ।

२. कैलास

यशस्तिलक में यशोधर को कैलासलाइन कहा गया है ।^२ हिमालय की एक छोटी का नाम अब भी कैलास है ।

३. गन्धमादन

गन्धमादन को श्रुतदेव ने हिमाचल के पास में बताया है । यशस्तिलक के उल्लेखानुसार गन्धमादन में भोजपत्र बहुतायत से होते थे ।^४

४. नाभिगिरि

मगध में सोपारपुर नगर के किनारे नाभिगिरि नाम का पर्वत था ।^५

५. नेपालशैल

यशस्तिलक में नेपाल पर्वत की तराई में कस्तूरी मृग पाये जाने का उल्लेख है ।^६

१ जलवाहिनीनामनदीतटनिकटनिविष्टप्रतनने महति कालिदासकानने ।

— आ० ६, क० १

२. कैलासलाइन. । — पृ० ५६६

३. गन्धमादन नाम वन हिमाचलोपकठे वर्तते । — पृ० ५७४, स० टी०

४ भूर्जवल्कलोन्माथमन्थरे । — वही

५. मगधविषये सोपारपुरपर्यन्तधाम्नि नाभिगिरिनाम्नि महीधरे । — आ० ६, क० १५

६ नेपालशैलमेखलामृगनाभिसौरभनिभरे । — पृ० ५७४

एक अन्य स्थल पर नेपालदेश का भी उल्लेख है ।^७

६. प्रागद्वि

प्रागद्वि या उदयाचल का भी एक बार उल्लेख है ।^८

७. भीमवन

शखपुर के समीप में भीमवन था ।^९ उस प्रदेश में किरातो का राज्य था । भीमनामक किरातराज भीमवन में शिकार खेलने आया ।^{१०}

८. मन्दर

मन्दर का अर्थ टीकाकार ने अस्ताचल किया है ।^{११}

९. मलय

मलय पर्वत का एक बार उल्लेख है । सोमदेव ने लिखा है कि मलयपर्वत की तलहटी में लताएँ अधिक थी ।^{१२}

१०. मुनिमनोहरमेखला

राजपुर के समीप ही एक छोटी-सी पहाड़ी थी जिसे मुनिमनोहरमेखला कहते थे ।^{१३}

११. विन्ध्या

विन्ध्याचल का दो बार उल्लेख है । विन्ध्या में मातंगो की बस्तियाँ थी ।^{१४} विन्ध्या के दक्षिण में श्रीसमृद्ध करहाट नाम का जनपद था ।^{१५}

७. पृ० ४७०

८. पृ० २१३

९. शखपुराभ्यर्षभागिनि भीमवननाम्नि कानने । - पृ० २०३ उक्त०

१०. मृगयाप्रर्णसनमागतेन भीमनाम्नः किरातराजेन । - वही

११. मन्दरश्चास्तपर्वत । - पृ० २१४, स० टी०

१२. मलयमेखलालतानर्तनवृत्तूहलित । - पृ० ५७६

१३. राजपुरस्याविदूरर्वानि मुनिमनोहरमेखल नाम खर्वनर पर्वतम् । - पृ० १३२

१४. पृ० ३२७ उक्त०

१५. विन्ध्यादक्षिणस्या दिशि कर्हाटो नाम जनपदः । - १८२, वही

१२. शिखण्डिताण्डवमण्डन

सुवेला पर्वत से पश्चिम की ओर शिखण्डिताण्डवमण्डन नाम का वन था।^{१६} सोमदेव ने इस वन का विस्तृत एवं आलंकारिक वर्णन किया है, किन्तु उस सम्पूर्ण वर्णन से भी इस वन की पहचान करने में कोई मदद नहीं मिलती।

१३. सुवेला

हिमालय के दक्षिण की ओर सुवेला नामक पर्वत था।^{१७} सोमदेव ने सुवेला पर्वत का विस्तार के साथ आलंकारिक वर्णन किया है।

हिमालय के दक्षिण में शिवालिक पर्वत श्रेणियाँ हैं। सुवेला की पहचान इसी से करना चाहिए। गडक, घाघरा, गंगा, यमुना, गोमती, कोशी आदि नदियाँ यहाँ से होकर निकलती हैं।

१४. सेतुबन्ध

स० टीकाकार ने सेतुबन्ध का अर्थ दक्षिण पर्वत दिया है।^{१८}

१५. हिमालय

यशस्तिलक में हिमालय का कई बार उल्लेख है। हिमालय के शिखरो पर तपस्वियों के आश्रम थे।^{१९} इसकी चोटियाँ बर्फ से ढकी रहती थीं, इसलिए इसका प्रालेयशैल तथा तुषारगिरि नाम पड़ा। तुषारगिरि के झरने हेमन्त ऋतु की ठडी हवा में जमकर निष्पन्द हो जाते थे।^{२०}



१६ सुवेलशैलादपरदिग् शिखण्डिताण्डवमण्डनम् । - पृ० १०३ उक्त०

१७. हिमालयाद्दक्षिणदिक्कपोल शैल सुवेलोऽस्ति लताविलोल. । - पृ० १६७ उक्त०

१८ सेतुबन्धश्चावर्वाक्षपर्वतः । - पृ० २१३, स० पू०

१९ प्रालेयशैलशिखराश्रमतापसानाम् । - पृ० ३२२

२० तुषारगिरिनिर्भरनीहारनिष्पन्दिनि । - पृ० ५७४

सरोवर और नदियाँ

१. मानस

यशस्तिलक में मानस या मानसरोवर तथा उसमें हंसों के निवास का उल्लेख है।^१ विश्वनाथ कविराज ने लिखा है कि कवि-समय में ऐसी प्रसिद्धि है कि वर्षा के आते ही हंस मानसरोवर के लिए चले जाते हैं।^२ कालिदास ने इस तथ्य का उल्लेख किया है।^३

मानसरोवर झील हिमालय पर नेपाल के उत्तर और तिब्बत के दक्षिण में ब्रह्मपुत्र के उद्गम स्थान के समीप कैलास चोटी के निकट दक्षिण में है।

२. गंगा

गंगा के विषय में यशस्तिलक में पर्याप्त जानकारी आयी है।^४ गंगा हिमालय से निकलती है। इसमें एक बार भी स्नान करने से पाप दूर हो जाते हैं।^५ हिमालय के शिखरो पर आश्रम बनाकर रहने वाले तापस लोग गंगा के जल का उपयोग करते थे।^६ गंगा के किनारे-किनारे भी तपस्वियों के आश्रम थे।^७

गंगा का दूसरा नाम भागीरथी था। उस समय भी भागीरथी के विषय में यह प्रसिद्ध था कि महादेव उसे सिर से धारण करते हैं।^८

गंगा का एक नाम जाह्नवी भी था। जाह्नवी में स्नान करने के लिए दूर-दूर से लोग जाते थे।^९ ठंड के दिनों में भी लोग जाह्नवी में स्नान करने से नहीं चूकते थे, भले ही ठंड से अकड़ जायें।^{१०}

१ मानसहसविलासिनि । - पृ० ५७४

२. प्रावृषि, मानस यान्ति हसाः । - साहित्यदर्पण ७।२३

३. आकैलासाद् विपकिसलयाच्छेदपाथेयवन्तः । - मेघदूत पूर्व० १४

४. पृ० ३२७-२७

५. या नाकलोकमुनिमानसकल्मषाणा काश्यं करोति संकृदेव कृताभिषेकम् । - वही

६. प्रालेयगैलशिखराश्रमनापसाना, सेव्य च यस्तव तदम्बु मुटेऽस्तु गांगम् । - वही

७. यास्तोराश्रमवासितापसकुलैः । - वही

८. ऊद्यन्ते शशिमौलिना च शिरसा भागीरथीसम्भवाः । - वही

९. जाह्नवीजलेषु मज्जनाय व्रजन् । - पृ ३२७ उक्त०

१०. जाह्नवीजलमज्जनजातजङ्गभावे । - वही

३. जलवाहिनी

पाचाल देश के वर्णन प्रसंग में जलवाहिनी नामक नदी का उल्लेख है।^{११} इस नदी के किनारे आमो का एक विशाल वन था।^{१२} पाचाल नरेश के पुरोहित की पत्नी को एक बार असमय में आम खाने का दोहद हुआ। पुरोहित आम की तलाश में घूमता हुआ जलवाहिनी के किनारे विशाल आम्रवन में पहुँचा तथा वहीं एक वृक्ष में आम पाकर आम तोड़ा और एक विद्यार्थी के हाथ घर भेज दिया।^{१३}

यमुना, नर्मदा, गोदावरी, चन्द्रभागा, सरस्वती, सरयू, सिंधु और शोण नदी का एक साथ उल्लेख है।^{१४}

४. यमुना

यमुना के लिए दूसरा नाम तरणितोरणी आया है।^{१५} यह नदी हिमालय के यमुनोत्री नामक स्थान से निकल कर प्रयाग में आ कर गंगा में मिली है।

५. नर्मदा

वर्तमान नर्मदा जो विन्ध्याचल की अमरकटक नामक पर्वतश्रेणी से निकल कर पश्चिम में बहती हुई अरबसागर की खमात की खाड़ी में गिरती है।

६. गोदावरी

वर्तमान गोदावरी नदी जो पश्चिमीघाट पर्वत की चन्दौर पहाड़ी से निकल कर पूर्व की ओर बहती हुई बगाल समुद्र की बगाल खाड़ी में गिरी है।

७. चन्द्रभागा

चन्द्रभागा का उल्लेख मिलिन्दपञ्चो (११४) तथा ठाणाव सूत्र (५१४७०) में भी आता है। यह नदी हिमालय से निकलकर किस्थवार के ऊपर दो पहाड़ी झरनों के साथ बहती है। किस्थवार से आगे रिस्थवार तक यह दक्षिण की ओर

११ जलवाहिनीनाम नदी । - पृ० ३०६ उक्त०

१२ महति कालिदासकानने । - वही

१३ अध्याय ६, क० १५

१४ यमुनानर्मदागोदाचन्द्रभागासरस्वती ।

सरयूसिन्धुशोणोत्थैर्जलैर्देवोऽभिषिच्यताम् ॥ - पृ २२२

१५ पृ० ५७५

जाती है। यह जम्मू के निकट बहती है। उससे आगे वितस्ता (झेलम) के साथ दबाव बनाती हुई दक्षिण-पश्चिम की ओर जाती है।^{१६}

द. सरस्वती

सरस्वती नदी का दो बार उल्लेख है। इसके किनारे उदवास करने वाले तापस रहते थे।^{१७}

सरस्वती हिमालय की शिवालिक पहाड़ी से निकलकर यमुना और शतद्रू (सतलज) के बीच दक्षिण की ओर बहती हुई मनु के अनुसार विनाशन में पहुँचकर अदृश्य हो जाती है।^{१८}

६. सरयू

सरयू हिमालय की शिवालिक पहाड़ी से निकलकर गंगा में मिली है।

१०. शोण

यह मैकाल की पहाड़ियों से निकल कर उत्तर-पूर्व की ओर बहती हुई पटना के पूर्व गंगा में मिल जाती है।

११. सिन्धु

हिमालय के कैलासगिरि से निकल कर वर्तमान में पश्चिमी पाकिस्तान में बहती हुई अरबसागर में गिरी है।

१२. सिप्रा

सिप्रा उज्जयिनी नगरी के समीप में बहती थी। रात्रि में सिप्रा की ठंडी ठंडी हवा उज्जयिनी के नागरिकों के भवनों में गवाक्षों (जालमार्ग) से प्रवेश करके उन्हें आनन्दित करती थी।^{१९} पात्रवें आश्वास में सिप्रा का अतिविस्तृत आलंकारिक वर्णन किया गया है। वर्तमान सिप्रा ही प्राचीनकाल में भी सिप्रा कहलाती थी।



१६ बी० सी० ला० - डिस्टॉरिकल ज्योग्राफी ऑव् ऐन्सियट इण्डिया, पृ० ७३

१७ सरस्वतीसलिलोदासतापसे। - पृ० ५७५

१८ बर्ही, पृ० १२१

१९ नक्त सिप्रानिलैयंत्र। पृ० २०५

अध्याय पाँच
यशस्तिलक की शब्द-सम्पत्ति

यशस्तिलक की शब्द-सम्पत्ति

यशस्तिलक सस्कृत के प्राचीन, अप्रसिद्ध, अप्रचलित तथा नवीन शब्दों का एक विशिष्ट कोश है। सोमदेव ने प्रयत्नपूर्वक ऐसे अनेक शब्दों का यशस्तिलक में संग्रह किया है। वैदिक काल के बाद जिन शब्दों का प्रयोग प्रायः समाप्त हो गया था, जो शब्द कोश-ग्रन्थों में तो आये हैं, किन्तु जिनका प्रयोग साहित्य में नहीं हुआ या नहीं के बराबर हुआ, जो शब्द केवल व्याकरण-ग्रन्थों में सीमित थे तथा जिन शब्दों का प्रयोग किन्हीं विशेष विषयों के ग्रन्थों में ही देखा जाता था, ऐसे अनेक शब्दों का संग्रह यशस्तिलक में उपलब्ध होता है। इसके अतिरिक्त यशस्तिलक में ऐसे भी अनेक शब्द हैं, जिनका सस्कृत साहित्य में अन्यत्र प्रयोग नहीं मिलता। बहुत से शब्दों का तो अर्थ और ध्वनि के आधार पर सोमदेव ने स्वयं निर्माण किया है। लगता है सोमदेव ने वैदिक, पौराणिक, दार्शनिक, व्याकरण, कोश, आयुर्वेद, घनुर्वेद, अश्वशास्त्र, गजशास्त्र, ज्योतिष तथा साहित्यिक ग्रन्थों से चुनकर विशिष्ट शब्दों की पृथक्-पृथक् सूचियाँ बना ली थी और यशस्तिलक में यथास्थान उनका उपयोग करते गये। यशस्तिलक की शब्द-सम्पत्तिके विषय में सोमदेव ने स्वयं लिखा है कि काल के कराल व्याल ने जिन शब्दों को चाट डाला उनका मैं उद्धार कर रहा हूँ। शास्त्र-समुद्र के तल में डूबे हुए शब्द-रत्नों को निकालकर मैंने जिस बहुमूल्य आभूषण का निर्माण किया है, उसे सरस्वती देवी धारण करे।^१

प्रस्तुत प्रबन्ध में मैंने ऐसे लगभग एक सहस्र शब्द दिये हैं। आठ सौ शब्द इस अध्याय में हैं तथा दो सौ से भी अधिक शब्द अन्य अध्यायों में यथास्थान दिये हैं। इस अध्याय में शब्दों को वैदिक, पौराणिक, दार्शनिक आदि श्रेणियों में वर्गीकृत न करके अकारादि क्रम से प्रस्तुत किया गया है। शब्दों पर मैंने तीन प्रकार से विचार किया है — १. कुछ शब्द ऐसे हैं, जिन पर विशेष प्रकाश डालना उपयुक्त लगा। ऐसे शब्दों का मूल सदर्भ, अर्थ तथा आवश्यक टिप्पणों

१. अरालकालव्यालेन ये लीढा. साम्प्रत तु ते।

शब्दाः श्रोसोमदेवेन प्रोत्थाप्यन्ते किमद्भुतम् ॥

उद्धृत्य शास्त्रजलधेर्नितले निमग्नैः पर्यागर्तैरिव त्रिरादभिधानरत्नैः ।

या सोमदेवविदुषा विहित्वा विभूषा वाग्देवता वहतु सम्प्रति तामनर्धाम् ॥

दी गयी है। २. सोमदेव के प्रयोग के आधार पर जिन शब्दों के अर्थ पर विशेष प्रकाश पड़ता है, उन शब्दों के पूरे सन्दर्भ दे दिये हैं। ३. जिन शब्दों का केवल अर्थ देना पर्याप्त लगा, उनका सन्दर्भ-संकेत तथा अर्थ दिया है।

शब्दों पर विचार करने का आधार श्रीदेवकृत टिप्पण तथा श्रुतसागर की अपूर्ण सस्कृत टीका तो रहे ही हैं, प्राचीन शब्दकोश तथा मोनियर विलियम्स और प्रो० आस्टे के कोशों का भी उपयोग किया है। स्वयं सोमदेव का प्रयोग भी प्रसंगानुसार शब्दों के अर्थ को खोलता चलता है। श्लिष्ट, क्लिष्ट, अप्रचलित तथा नवीन शब्दों के कारण यशस्तिलक दुर्लभ अवश्य लगता है, किन्तु यदि सावधानीपूर्वक इसका सूक्ष्म अध्ययन किया जाये तो क्रम-क्रम से यशस्तिलक के वर्णन स्वयं ही आगे-पीछे के सन्दर्भों को स्पष्ट करते चलते हैं। इस प्रकार यशस्तिलक की कुजी यशस्तिलक में ही निहित है। सोमदेव की बहुमूल्य सामग्री का उपयोग भविष्य में कोश-ग्रन्थों में किया जाना चाहिए।

अकम् (अकविलोकगणनमपि, १९६।१

उत्त०) : कष्ट

अकल्पः (परिपाकगुणकारिणो क्रिया-
मकल्पस्य, ४३।२) . रोगी

अर्कः (४०५।२) आक का वृक्ष

अर्कनन्दनः (भूयाद्गन्धवहै सार्धमनु-
लोमोर्कनन्दन , ३३४।१) कौआ

अखिलद्वीपदीपः (विद्वरितरजोभि-
रखिलद्वीपदीपैरिव, ९१।३) : सूर्य

सोमदेव ने तात्पर्य के आधार पर यह शब्द स्वयं गढ़ा है। सूर्य सारे ससार को दीपक की तरह प्रकाशित करता है, इसलिए उसे अखिलद्वीपदीप कहा है।

अगमः (अगमवित्पान्तरितवपुषाम्,
९५।१, अगमाग्रपल्लवमरम्, १९९।२

उत्त०) वृक्ष

अगस्ति (४०५।३) अगस्त वृक्ष

अग्निजन्मन् (२०३।८ उत्त०)

कुत्ता

अग्रमहिषी (१२३।१) : पटरानी

अध्यक्षम् (४०६।९) : प्रत्यक्ष

अजिनजेण (२१८।९ उत्त०) . चमड़े
की जीन

अजगवः (अजगवैरिन्द्रायुधस्पर्धिभिः,
५७९।८) . धनुष

अर्जुनः (१९४।५ उत्त०) : मयूर,
अर्जुन वृक्ष

अर्जुनज्योतिः (सदाचारकैरवार्जुन-
ज्योतिषम्, ३०४।४ उत्त०) . सूर्य

अतसी (कुथितातस्यतैलधारावपात-
प्रायम्, ४०४।५) अलसी

अदितिसुतः (अदितिसुतनिकेतनपता-
कामोगाभि, ४५।४) सूर्य

अध्वनय. (३६।२) पथिक

अधोक्षजः (अधोक्षजमिव कामवन्तम्,
२९८।४) नारायण

अन्तर्वेशिकू (२३।९ उत्त०) . अन्तः

पुररक्षक सैनिक

अन्तर्वाणिन् (नर्तकशिरोमणिभिरन्त-
र्वाणिभिः, ४७७।८) शास्त्रवेत्ता,
विद्वान्

अन्धः (विपकलुपितमन्धः कस्य
भोज्याय जातम्, ४१६।१) भोजन
अनन्ता (मूलमिवानन्तालनाया,
२०४।५ उक्त०) : पृथ्वी

अनंगः (ऐरावतकुलकलभैरिवानग-
वनस्य, २।१३, ९।१२) आकाश
अनायतनम् (१४३।७) अनुचित
स्थान

अनाश्वान् (५०।६) अनशनशील
अशन् शब्द से सोमदेव ने अनाश्वान्
कर्ताकारक का रूप बनाया है ।

अनीकस्थः (अनीकस्थेन विनिवेदित-
द्विरदावस्था, ४९५।४) अनीकस्थ
नामक गजसेना का अविकारी

अनुप्रेक्षा (ससारसागरोत्तरणपोत-
पात्रदशा द्वादशाप्यनुप्रेक्षा, २५६।३)
अनुप्रेक्षा जैन सिद्धान्त का एक पारि-
भाषिक शब्द है । ससार से विराग
उत्पन्न करनेवाली भावनाओं का बार-
बार चिन्तन करना अनुप्रेक्षा कह-
लाता है । ये बारह मानी गयी है—
अनित्य, अशरण, समार, एकत्व,
पृथक्त्व, अशुचि, आस्रव, सवर,
निर्जरा, लोक, धर्म और बोधिवुर्लभ ।
सोमदेव ने इनका विस्तार से वर्णन
किया है ।

अनुपदीना (अनवानुपदीनाऽटलसम-
ध्वसम्, ४२।८ उक्त०) जूनी

अनुरुसारथिः (अनुरुसारथिरथोन्माथ,
२७।४) सूर्य (शिशु० १।२)

अण्डजः (उण्डीनं मुहुरण्डजै,
६१५।९) पक्षी

अणकेहितः (अणकेहितचिन्तामणिः,
४५०।११) दुराचारी

अप्रतनम् (अप्रतनरत्नचयनिचित-
काचनकलश, १८।५) नवीन

अभ्रपुष्पम् (आमोदसर्दभिताभ्रपुष्पे,
२००।२) : जल

अभ्रियः (अभ्रियसदर्भनिर्भर नभ इव,
४६४।५) वज्राग्नि

अभीरुः (सुमटानीकमिवाभीरुप्रतिष्ठि-
तम्, १९५।१ उक्त०) भय रहित,
इन्दीवरी

अम्बरिपम् (अम्बरिषमप्यरिभेद-
स्फारकम्, १९५।४ उक्त०) युद्ध

अमरवेनु. (२२०।५) . कामवेनु

अमृता (चन्द्रमिवामृतास्पदम्, १९४।३
उक्त०) गुरुचि नामक वनी-
पधि

अमृतमरोचिः (२०।७ उक्त०) चन्द्र

अमृतरुचिः (१७१।३) चन्द्र

अमृत्तरोचिष् (१७२।५) चन्द्र

अरिभेद. (१९५।४) . खदिर वृक्ष
अलगर्दः (निर्मोदालगर्दगलगुहास्फुग्त्,
४५।३) सर्प

अलावूफलम् (४०४।७) तूँमा

अलिकः (१५९।९) ललाट

अवहारः (अम्बुरुङ्गकुहरविहरदवहार,
२०८।६ उक्त०) : जलव्याल, मगर

- अवक्षेपः** (१००।५ उक्त०) . तिरस्कार
- अवधिः** (अवधिबोधप्रदीपेन, १३६।२)
अवधिज्ञान । जैन दर्शन में ज्ञान के पाँच भेद माने गये हैं—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान, केवलज्ञान । द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा सीमित भूत, भविष्यत् तथा वर्तमान काल के पदार्थों को जानने वाला ज्ञान अवधिज्ञान कहलाता है ।
- अवतोका** (१८६।२ उक्त०) : श्रुत-सागर ने इसका अर्थ सीग रहित या मुण्डो गाय किया है, मो० वि० में इसका अर्थ जिसका गर्भ गिर गया है, किया गया है ।
- अवन्तिसोमम्** (अनन्तराजिकावजि-तावन्तिसोम, ४०६।१) काजी
- अवग्रहणीः** (समुत्सृष्टग्रहावग्रहणी-देशया, २७ ६, प्रतीक्ष्यमाणगृहगृहावग्र-हणी, १८५।४ उक्त०) . देहली
- अवसान** (भारतकथेन धृतराष्ट्राव-साना, २०६।५ उक्त०) : मृत्यु, सीमा, तट
- अविः** (१२।६) भेड
- अवहेलः** (पुरोहितस्यावहेलेन, ४३१। ७) तिरस्कार, उपेक्षा । हिन्दी में अवहेलना शब्द अभी भी इसी अर्थ में प्रचलित है ।
- अवासस्** (१०१।१० उक्त०) निर्ग्रन्थ
- अघडक्षीणः** (२१५।५ उक्त०) मत्स्य

- अष्टापद** (स्वर्धुनीप्रवाहमिव कृताष्टा-पदावतारम्, १९४।२ उक्त०) : कैलास पर्वत । हिमालय की कैलास चोटी से गंगा का उद्गम मानते हुए, यह प्रयोग किया गया है । अष्टापद का दूसरा श्लिष्ट अर्थ शरभ भी यहाँ लेना है । अष्टापद का कैलास अर्थ में प्रयोग महत्त्वपूर्ण है ।
- अष्टौलम्** (कठोराष्टौलपृष्ठकमठ, ६७।५) कछुए के पृष्ठ का मध्यभाग
- अशिश्विदानः** (१४१।८) निर्मल चरित्र
- असंतापम्** (अमृतकान्तिमिवासंतापम् २९९।१) असतापम् का सामान्य अर्थ सताप न देनेवाला है । गजशास्त्र में गज के गुणों में असताप की गणना की जाती है । अस्त्र इत्यादि को सहन करना, विचलित न होना असताप है (अस्त्रादीना च सहनादसताप विदुर्बुधा, - स० टी०) ।
- असहतव्यूहः** (दण्डासहतभोगमण्डल-विधीन्व्यूहान्, ३०४।५) युद्ध में व्यूह रचना के जो अनेक प्रकार थे, उनमें एक असहतव्यूह भी था । इसमें सेना को यहाँ-वहाँ छिट-पुट बिखेर दिया जाता था ।
- असराला** (प्रसारितासरालरसना, ४६।३) लम्बी, दीर्घ
- असितर्तिः** (असितर्तिमिव तेजस्त्रिनम्, २९८।३ उक्त०) अग्नि
- अहिमधामः** (अहिमवामवृष्णि, १९।३) : सूर्य

अहिपति (१६७।११) : सर्पों का स्वामी अर्थात् शेषनाग

अहिवलयित (४१५।१०) सर्पवेष्टित

अहीश्वरः (३४८।१) . सर्पों का ईश्वर अर्थात् शेषनाग

अगजः (सत्त्व तिरोभवति भीतमित्राग-जान्ने, २८२।३) काम

आकर्ष. (आकर्षण शीर्षदेशे दृढदत्त-प्रहारकल., १९७।४ उक्त०) फलक, क्रोडापट्ट

आच्छोदना (जलध्याल इवाच्छोदनाभिरतोऽपि, ४१।४) स्वच्छ जल, शिकार, शिकार या मृगया के अर्थ में आच्छोदना शब्द का प्रयोग साहित्य में कम देखा जाता है ।

आचारान्ध. (दुवसगत्रिदग्गोऽपि कथत्वमद्याचारान्व इवावभाममे, ८८।२ उक्त०) मूर्ख, व्यवहार में अज्ञा अर्थात् मूर्ख । अर्थ को अपेक्षा सोमदेव ने यह शब्द स्वयं बना लिया है ।

आज्यम् (आज्यावीक्षणमेतदस्तु, २५१।८, नासिकात्रलिपेयपरिमलै प्राज्यैराज्यै, ४०१।३) : घृत

आजवकम् (३६।२) : धनुष

आतपनयोगः (आतपनयोगयुतोऽपि, १३७।४, उक्त०) : ग्रीष्मकाल में खुले मैदान में पर्वत आदि पर तपस्या करना आतपनयोग कहलाता है ।

आधोरण (३०।५) : आधोरण नामक गजपरिचारक

आनकः (२१४।१) : आनक नामक अत्रनद्व वाद्य

आनर्त (१७९।४) नाचते हुए

आनायः (तन्नयानायनिक्षेपात्, ३८८।१०, युवजनमृगाणा बन्धनायानाय इव, ५८।५ उक्त०) . जाल

आमलकम् (आमरुकशिश्रुतलमिव स्वच्छकलम्, २०९।७ उक्त०) स्फटिक

आलमकम् (सपि सितामलकमुद्ग-कषाययुक्तम्, ५१८।१) : आँवला

आम्रातकम् (अगस्तित्चूताम्रातक-पिचुमन्द, ४०५।३) आमंडा

आमिक्षा (आमिक्षया च समेधित-महसम्, ३२४।२) : श्रुतसागर ने लिखा है कि उवाले हुए दूध में दही मिलाने से आमिक्षा बनती है (श्रुते क्षीरे दधिक्षिप्तमामिक्षा कथ्यते बुधै, म० टी०) ।

आयःशूलिकः (१४१।३) : कठोर कर्म करनेवाला

आवसथः (पुत्रप्रार्थनमनोरथावसथस्य, २२४।२) गृह, पृष्ठ ७८।६ पर भी इसका प्रयोग हुआ है ।

आवालः (विभर्त्यावालभूमिसु, ९७।६) बयारी । वृक्ष के चारों ओर पानी रोकने के लिए बनायी गयी मिट्टी की मेड । साहित्य में आलवाल का प्रयोग मिलता है (रघु० १५१, शिशु० १३।५०) ।

आपीडः (पिष्टापीडविडम्ब्यमानजरती, २२७।५) समूह

आरेयः (वालेयकारेयजातिभिः, १८६।३ उक्त०) . भेड

आरः (९५।६) मंगल गृह

आरामाः (ब्रह्मवादा इव प्रपंचिता-
रामा., १३।४) अविद्या

आवान (तापसावानवितानित, ५।१
उक्त०) . तपस्त्रियों के गैरिक वस्त्रों
के लिए यहाँ आवान शब्द का प्रयोग
किया है।

आस्तरकः (४०३।५) : शय्या परि-
चारक

आसुतीवलः (पर्युपास्यासुतीवलद्वि-
तीय, ३२४।१) . यज्वा—यज्ञ करने
वाला

आसेचनकः (१७६।३) जिसके
देखने से जी न भरे। अमरकोष में
लिखा है कि जिसके देखने से तृप्ति
न हो उसे आसेचनक कहते हैं
(३।१।५३)।

आश्चर्यित (१८४।४) चकित

आशाकरटिन् (२८।१) . दिग्गज

इत्वरः (३३१।४) शीघ्र गमनशील,
आवारा

इन्दिरानुजः (रत्नाकर इवेन्दिरानुजेन,
२४२।४) चन्द्रमा। इन्दिरा लक्ष्मी
का नाम है। लक्ष्मी और चन्द्रमा
दोनों को उत्पत्ति समुद्र से मानी
जाती है। इस नाते चन्द्रमा लक्ष्मी
का लघुभ्राता हुआ। इस अर्थ साधर्म्य
के आधार पर सोमदेव ने इस शब्द
का गठन किया है।

इन्द्रिन्दिरः (१२१।३) : भ्रमर

इन्दिरामन्दिरम् (१८९।४) :
लक्ष्मीनिवास, विष्णु का एक नाम।

इन्दुमणिः (२०५।५ उक्त०) चन्द्र-
कान्त

इरंमदः (इरमददाहदूषितविटप' पादप
इव, २२७।२ उक्त०) मेघ

इरंमददाहः (२२७।२ उक्त०)
बिजली

ईषा (रविरथेषाडम्बरम्, ३०।३) .

लम्बी लकड़ी जो हल या रथ में
लगायी जाती है। हल की लकड़ी
हलीषा कहलाती है। बुदेलखण्ड में
अभी भी हल की लकड़ी को हरीस
कहते हैं। लागलीषा, हलीषा इत्यादि
प्रयोग व्याकरण ग्रन्थों में मिलते हैं।
साहित्य में इसका प्रयोग कम देखा
जाता है।

उच्छिचलिंगम् (लपनचापलच्युतोच्चि-
लिंग, १९८।१ उक्त०) अनार

उटजम् (२१८।९ उक्त०) : घर

उडुप (तरगवंडिकोडुपसपन्नपरिकरा,
२१७।१ उक्त०) . डोगी

उत्तसः (२४६।२) . कर्णपूर, मुकुट

उत्तायक' (उत्तायकस्य हि पुरुषस्य
हस्तायातमपि कार्यं निधानमिव न
सुखेन जीर्यति, १४३।५ उक्त०) :
उतावला

उत्तायकत्वम् (केवलमत्रोत्तायकत्व
परिहर्तव्यम्, १४३।५ उक्त०)
उतावलापन, जल्दीवाजी

उत्तारः (६१६।६) : उत्कृष्ट
 उत्तानशायः (२३२।६) ऊपर को
 मुँह करके सोना
 उद्भेदः (२२।६ उक्त०) अकुर
 उद्धानम् (२२७।४ उक्त०) अगार
 उदकद्विप (उद्दामोदकद्विपदशनदश्य-
 मान, २०९।३ उक्त०) जलगज
 उदक् और द्विप शब्दों को मिलाकर
 जलहस्ती के अर्थ में सोमदेव ने यह
 एक नया शब्द बना दिया है ।
 उदक्या (३३२।१) रजस्वला स्त्री
 मनु० ४ ५७।५, भाग० ६।१८।४९
 में भी यह शब्द आया है ।
 उदन्या (अनन्यसामान्योदन्यानुद्भुत,
 २००।२ उक्त०) . प्यास
 उदन्तः (मिथ सभाषणकथा प्रावर्त-
 तायमुदन्त, २२४।४) वार्ता
 उदारम् (२।२) अति मनोहर
 उदुम्बर (६६।१ उक्त०) श्रुतसागर-
 ने इसका अर्थ जन्तुफल किया है ।
 जैन साहित्यमें बड, पीपल, ऊमर,
 कठूमर और पाकर इन पाँच फलों को
 उदुम्बर कहा जाता है । इनमें सूक्ष्म
 जीव पाये जाते हैं, इसलिए जैन
 गृहस्थ को इनका खाना त्याज्य है ।
 उन्माथः (४७।६) : हिंसक
 उन्दुरः (उन्दुरमूत्रमितकुषितातस्य तेल,
 ४३।२ उक्त०) मूपक, चूहा
 उप्तम् (लवने यत्र नोप्तस्य, १६।७)
 बोयी हुई फसल

उपकण्ठम् (१८०।३) ग्राम या नगर-
 के बाहर का निकट प्रदेश ।
 उपकार्या (२२१।६) : तम्बू
 उपदंश (ऐव ह्रकोपदशनिकायम्,
 ४०४।७) : चवैना, किसी भी चीज
 को अवकाश के क्षणों में रुचि के लिए
 चबाना (मो० वि०) ।
 उपन्यासः (तथोपन्यासहीनस्य वृथा
 शास्त्रपरिग्रह, ४८१।४) . कथन,
 प्रयोग (मालवि० १।३।८) ।
 उपलम्बा (उपलम्बाप्रलम्बस्तम्बवि-
 लम्बमान, १९८।३ उक्त०) . लता
 उपस्पर्शन : (आचरितोपस्पर्शन,
 ३२३।६) आचमन, मो० वि० में
 उपस्पर्शनम् का अर्थ स्नान दिया हुआ
 है ।
 उमा (अविषमलोचनोऽपि सम्पन्नोमा-
 समागम, ५३।३) . कीर्ति,
 पार्वती
 उपसंव्यानम् (८२।७ उक्त०) :
 अधोवस्त्र
 उरणः (२१९।२ उक्त०) भेड
 उल्लोच (१९।१, ५९५।९) . चन्द्रा-
 तप या चदोवा
 औशीरम् (लयनशिलाश्लाघ्यमेखल
 परिकल्पितशार इव, १३४।२)
 बिस्तर
 एकानसी (एकानसीमनुप्राप्य, २२६।१
 उक्त०) उज्जयिनी
 एकायन (३७२।२) . एकाग्र

एकशृंगमृग* (विपाणविकटमेकशृंग-
मृगमण्डलमिव, ४६१।७) गैडा हाथी
एडः (जड एव एडो वा, १३९।४
उत्त०) : बधिर, बहरा (देशी)
एणायित (१२८।५) मृग के समान
आचरण

ऐकागारिक (परिमुषितनगरनापित-
प्राणद्रविणसर्वस्वमेकमेकागारि कम्,
२४५।१७) चौर

ऐलक (द्वगलाविकैलकसनाथस्य,
२२१।७ उत्त०) भेड । (प्राकृत
एलग दस० ५।१।२२, पन्न० १)
(महा० ३।१४२।३७)

ऐर्वारुकम् (असमस्तसिद्धैर्वारुकोपदश-
निकायै, ४०४।७) कडवी ककडी ।
कडवी कचरिया (अम० २।४।१५६)
औधस्यम् (स्मरसमर्द्धदितोषस्यै,
२४९।३) दुग्ग

औदनम् (जोर्णयावनालौदनादि,
४०४।५) मात

क्वथ्यमान (क्वथ्यमानासु जलदेवता-
नामावमथमरसोपु, ६६।५) उबलना
सभवतया आयुर्वेद का वनाथ (काढा)
शब्द भी इसी से बना है । इस तरह
क्वथ्यमान का अर्थ होगा, काढे की तरह
उबल कर छनकना—कम पड जाना ।
संस्कृत साहित्य में इसका प्रयोग नहीं
मिलता । वास्तव में मूलतः यह वैद्यक-
शास्त्र का ही शब्द ज्ञात होता है ।
अन्यत्र भी सोमदेव ने इसका प्रयोग
किया है (संगुण्यत्परिति क्वथत्तनु-
मिति, ५३४।१) ।

कुकः (१९०।१ उत्त०) गर्दन
कृष्णलेश्या (कृष्णलेश्यापटलैरिव,
२४८।२४ उत्त०) . लेश्या जैन
सिद्धान्त का एक पारिभाषिक शब्द
है । जीव के ऋजु और वक्र आदि
भाव लेश्या कहलाते हैं । इसके छह
भेद हैं—पीत, पत्र, शुक्ल, कृष्ण,
नील, कापोत । सबसे ऋजु परिणाम
वाले जीव की शुक्ल लेश्या मानी
गयी है और सबसे कुटिल परिणाम
वाले की कृष्ण लेश्या ।

कः (१००।५) . वायु

ककुभ. (कुभोरभयभ्राम्यत्ककुभकुहृत्कार
मुखरम्, २०८।५ उत्त०) बाल कुकुट

कजम् (कजकिजत्ककलुषकालिन्दी,
४६४।२, कजकिजत्कपुज, २०७।४
उत्त०) कमल का एक अर्थ पानी भी
कोश ग्रन्थों में है । उसी से 'के जायते
इति कजम्' इस प्रकार कमल अर्थ में
कज का प्रयोग किया है ।

कच्छपः (२०९।३ उत्त०) कछुआ

कटक (४५१।६) : सेना

कटिन् (१६९।३ उत्त०) : जगली
सूअर

कदर्य (कदर्याणा धुरि वर्णनीय,
४०४।१) : मलिन वस्त्रधारी । श्रुत-
सागर ने एक पद्य दिया है—कदर्य-
होनकोनाशकिंचानमितपचा । कृपण
धुल्लक क्षुद्र बलीवा एकार्थवाचका ।
अर्थात् ये शब्द एकार्थवाचक है ।

कदलम् (दवितक्राम्भा कदलम्,
५१२।९) केला

कदलिका (कदलिकाग्रलग्नभुजगाशन-
वर्ह, ४६५।६) • छत्वा

कदली (कदलीप्रवालान्तरगम्, २००।२
उत्त०) : मृग

कन्द. (विपक्विसल्पकन्दा, ५१६।६) :
मूरण

कन्दल (६१३।५) नवाकुर

कन्तु (जन्तु कन्तु निकेतनम्, १।४)
मनोहर

कन्या (मनेन किं मन्दविसन्धिनीना
कन्या त्वजन्कोऽपि निरीक्षितोऽस्ति,
८९।९ उत्त०) दुर्विवकुट्टुम्ब्रेषु जगत्क-
न्यापटञ्चगणि, ५८।५) कपडों को
फिलकन बनाया गया गद्दा । देवी
भाषा में इसे कथरी कहते हैं । श्रुत-
सागर ने कन्या को श्रृण्णिका कहा
है ।

कपिलिका (तर्ग सज्जने ताम्बूलकपि-
लिकायाम्, २५०।८, मृत्तवासताम्बूल
ऋषिलिके, २९।२ उत्त०) : डिब्बा
या डिबिया । इस तरह ताम्बूल-
कपिलिका का अर्थ दृशा पान का
डिब्बा या पानदान ।

कमल (वनस्यलीष्विव सकमलानु,
३९।२) : मृग । साहित्य में कमल का
मृग अर्थ में प्रयोग कम मिलता है ।
सोमदेव के पूर्व बाण ने इसका प्रयोग
किया है ।

कमली (कमलीव दोषागमन्विरपि,
४१।०) • चन्द्रमा । कमल का मृग अर्थ
कोश में आता है । बाण ने मृग अर्थ में

प्रयोग किया है । सोमदेव ने मृग अर्थ
में तो कमल का प्रयोग किया ही है,
“कमलो यन्यास्तीति कमली” बना-
कर चन्द्रमा के अर्थ में कमली का
प्रयोग किया है । जैसे मृग से मृगाक
बनना है, उसी तरह कमल से कमली
बना है ।

कमलानन्दन (५४८।१) : सूर्य

कमलवन्धु (५३०।५) सूर्य

कर्करम् (शिवखण्डित तटनिकटवर्कम्,
२०९।४ उत्त०) शिवा, नदी के
किनारे की पाषाण शिवा । श्रुत-
सागर ने इसे पर्वतदन्त कहा है ।

कर्करम् (ईषत्स्विन्नकर्करिकम्,
४०५।१) कर्लिंग फल, कुम्हडा
(अम०) । छोटा कुम्हडा कर्करि कह-
लाता है (भाव० मिश्र ६।१०।५६) ।

कर्मन्दिन् (कर्मन्दोव न तृप्यति विप-
विपमोल्लेखेषु, ४०८२) • तपस्वी

करक (मेशोद्गीर्णातत्कोरकरका-
सारवम् ७४।६) बोला

करल (सारिकाशावमकुलकुलायकर-
लोपकण्ठ, १०२।३) : वृक्ष । श्रीदेव
ने एक अर्थ मन्त्रकुन्द भी दिया है ।
अर्थात् करल वृक्ष सामान्य अर्थ में भी
प्रयुक्त होता है तथा मन्त्रकुन्द नामक
वृक्ष विशेष के भी अर्थ में ।

करशाखा (१४२।३) . अङ्गुलि

करटी (चन्द्रार्थविद्यतिनखः करटी
जयात्र, ३०१।८) : हस्ती । महा-
भारत (१।२१०।२०) में हस्ती के
लिए करट शब्द आया है ।

करटिरिपु (५६।३) : सिंह
करपत्रम् (१२३।८) . करोत, आरा
करिवैरिन् (२०१।६ उक्त०) सिंह
करंक. (चूर्ण्यमानकरकप्रकारम्,
४८।५) ककाल, मरे हुए पशु के
शरीर का ढांचा ।

कलशी (निरवधिप्रधावप्रारम्भैर्मध्यमान
पयस्या कलशीमिव, २१५।७ उक्त०)
मथानी

कलहित (६१९।८) क्रोधित
कलम् (आमलकशिलातलमिव स्वच्छ-
कलम्, २०९।७ उक्त०) काय, शरीर
कलिः (युगत्रयावसानमिव कलिपरि-
गृहीतम्, १९५।४ उक्त०) हरड का
पेड, कलिकाल

कलाची (मृणालवलयालकृतकलाचो-
देशाभि ५३२।५) कलाई

कवचम् (असमनोकरसमनि रुकवचम्,
१९७३ उक्त०) पर्पट वृक्ष

ककेलक (ककेलकोपलसपादितभित्ति-
भगिकासु, ३८।५) स्फटिक मणि

कचुलिका (देव्या कचुलिका मदन-
मजरिकानामाग्राहि, २१६।४ उक्त०) .

दासी, अन्त पुरकी वृद्ध दासी । जिस
प्रकार अन्त पुर का वृद्ध परिचारक
कचुकी कहलाता है उसी प्रकार वृद्ध
परिचारिका के लिए सोमदेव ने
कचुकि शब्द का प्रयोग किया है ।

कपपट्टिका (३७६।१२) कमौटी ।
यह शब्द श्रुतमागर ने निकेपाश्म के
पर्याय में दिया है ।

कशा (सर्पितकशावशेषकदनकन्दुक-
विनोदविनीताजानेयजूहराणनिवह,
२१४।४) : कोडा । घोड़े को हाकने
वाला चमड़े का कोडा जिसे आजकल
चामकोडा भी कहते हैं ।

कशिपु (३४६।३) भोजन और वस्त्र
कस (३५१६) जाओ

कक्ष (२५०।२) लता
क्रव्यादः (क्रव्यादसमाजसंह्यव्यसनः

११८।७) राक्षस
काकतालीयन्याय (२४९।३) . अस-

भावित सयोग काकतालीयन्याय कह-
लाता है । कौआ ताल पर आकर
बैठा और ताल का फल गिरा । यद्यपि
ताल का फल गिरना ही था, किन्तु
कौआ का आना एक सयोग हुआ ।
कौआ का आना और ताल का गिरना
यह काकतालीयन्याय है ।

काकमाची (गुडपिप्पलिसधुमरिचै
सार्ध सेव्या न काकमाची, ५१२।१०) .

मकोय, वायसी (अम० २।४।१५२)
आयुर्वेद में यह महत्त्वपूर्ण औषधि
माना जाती है (भाव० मिश्र, ६।
४।२४६-४७) ।

काकनन्तिका (काकनन्तिकाफल-
मालोपरचित, ३९८।४) गुजाफल,
गुंमची

काकोल. (उलूकवालकालोकनाकुल-
काकोलकुल १०२।१) कौआ(महा०
उ० ५।१२, याज्ञ० स्मृ० १।१७४,
महा० १।१।६।८) ।

कांचनार (१०६।१) कचनार पुष्प

कातरेक्षणः (कातरेक्षणविषाणक्वाण-
विनिवेदित, ३९९।१) : महिष

काद्रवैय (अक्रमगति कार्द्रवैयेपु, २०२।
४) . मर्ष (गिशुपाल० २०।४३)

काण्ड (केतुकाण्डचित्रै , १८।४) दण्ड,
ध्वजा का डडा या बाँस

कामवन् (अधोऽज्ञमिव कामवन्तम्,
२९८।४) यह गजशास्त्र का एक
पारिभाषिक शब्द है। समस्त प्राणियो
को मारने की इच्छा रखने वाले गज
को कामवत् कहा जाता है। मो०
वि० मे इसका केवल तीव्र इच्छावान्
(डिजायरस) अर्थ दिया है।

कारण्डः (उत्तरलतरतरत्कारण्डोच्च-
ण्डतुण्ड- , २०८।१ उक्त०) चक्रवाक

कारवेलम् (कोहल कारवेलम्, ५१६।
७) : करैला

कालशेयम् (कट्वलकालशेयविशिष्ट ,
४०६।४) तक्र, मट्टा, छाछ

कालागुरु (३६८।५) . कृष्ण अगर
चन्दन

कालिदासः (अकविलोकगणनमपि
सकालिदामम्, १९६।१ उक्त०)

आम्रवृक्ष

कालेय (२४३।४) . केसर

कालेयकलंकः (कालेयकलकपकिला-
चार १६३।३) लोकापवाद

काश्यपी (काश्यपीश्वरेण, १४५।३) .
पृथ्वी (महा० १३।६२।६२, भामिनी
वि० १।६८)

कासर. (मा मृत्वा कमनीयवालधिरमू-

च्छागी पुन कासर, २२५।२ उक्त०)

भैंसा। एक अन्य प्रमग में (४८।५) भी
सोमदेव ने इसका प्रयोग किया है।

काहलः (मिथुनचरपतगप्रलायकाहले,
२४७।६) गम्भीर। सोमदेव ने काहल
नामक वादित्व का भी उल्लेख किया
है।

कांदिशीक (कादिशीक इधानवस्थित-
क्रियोऽपि, ४।१२) भय से भागा हुआ

किंपाक (किंपाकफलमिवापातमवुर,
९७।७ उक्त०) कच्चा अथवा दोष-
पूर्ण पका। रामायण में (२।६६।६)
किंपाक का उल्लेख आया है।

किंपिरि (किंपिरिपर्यन्तस्फुरत्कृगानु-
१९।३) उपरितल, छत

किर्मीर (किर्मीरमणिविनिमितत्रिशर-
कण्ठकम्, ४६२।१) चितकवरा

कीकटः (कीकटानामुदाहरणभूमि,
४०३।६) निर्बन

कीकस (११६।२) . हड्डा

कीर्तिशेष (१९२।२ उक्त०) मृत

कुजः (भूर्जकुजवल्कलदुकूले, २४६।२)
वृक्ष। पृथ्वी का एक नाम कोश ग्रन्थो
में 'कु' भी अता है। उसी से बना-
कर कुज का वृक्ष अर्थ में प्रयोग
किया है।

कुट (पलिताकुरितकुटहारिकाकुन्तल-
कलापै, ५६।२) . घट। पानी भरने
वाली नौकगानियो के लिए सोमदेव
ने कुटहारिका शब्द का प्रयोग
किया है।

कुट्टिमभूमि (यत्र स्वलद्गतैर्वालैः कान्ता. कुट्टिमभूमय, १९७।५).
भागन

कुठ (२०९।१) वृक्ष। श्रुतसागर ने कुठार की व्युत्पत्ति देते हुए लिखा है— कुठान् वृक्षान् इर्याति गच्छतीति कुठार।

कुड्या (स्तबकरचितकुड्या, ५३४।४)

भित्ति, दीवाल

कुण्ठ (१८०।३) मन्द

कुत्कोल (ऋटिकोत्कोर्णक्रीडाकुत्कोलै-
रिव, २१।२) पर्वत। क्रीडाकुत्कोल
अर्थात् क्रीडापर्वत। कुत्कोल का
उल्लेख अन्यत्र भी हुआ है (सर्जार्जुन
विजयिषु कुत्कोलकुजेषु, ५४३।४)।
मो० वि० में कुत्कोल शब्द पर्वत के
लिए आया है।

कुतपिन् (नृताय वृत्तः कुतपीन् भाति
२२९।२ उक्त०) नगाढा बजाने
वाला। कुतप को मो० वि० में एक
प्रकार का वादित्त कहा है। सोमदेव
ने कुतप से ही कुतपिन् बनाया है।

कुतपाकुर (अम्बुजासनशयमिव कुत-
पाकुरालकृतमव्यम्, ३२०।२) दर्भ
या ताजा कुशा। घास

कुन्द (हेमन्त इव पल्लविताश्रितकुन्द-
कन्दलः, २०९।७) : श्रुतसागर ने
इसका अर्थ अवभृथ (यज्ञोपरान्त
स्नान) किया है, जो ठीक नहीं
लगता। कुन्द का अर्थ कोशो में
कमल आता है।

कुथितम् (उन्दुरमूत्रमितकुथितातस्य तैल-
घारावपातप्रायम्, ४०४।६) दुर्गन्ध-
युक्त। कुथितम् कुथ् घातु से बना है।
सोमदेव ने इसका अन्यत्र भी प्रयोग
किया है (कुथ्यत्कलेवरकरकहत-
प्रवार, ११७।६, कुथ्यत् स्नसाजाल-
कम्, १२९।१२)। व्याकरण ग्रन्थो
में ही इसका प्रयोग देखा जाता है।

किंपचः (किंपचाना प्रथमगण्य,
४०३।७) कृपण

कुफणि. (आकुफणिकृतकालायसवलय,
४६२।२) घुटना

कुम्भिन् (२२१।६) हाथी

कुम्भिनी (मितद्रवखुरक्षोमितकुम्भिनी-
भागम्, ४६५।१). पृथ्वी, सोमदेव ने
इसका एकाधिक बार प्रयोग किया है
(३०७।६)।

कुम्भीनस (३७८।२) सर्प

कुम्भीर. (कुम्भीरमयभ्राम्यत्, २०८।५
उक्त०) : नक्र, मगर, (महा०
१३।३।५९)

कुम्पल (पतत्सतानकुम्पल-, ९७।१).
कोपल

कुमुदचक्षुप् (१५।७ उक्त०) : चन्द्र

कुरर (कुररकूजितवहलम्, २०९।६
उक्त०) कुरर पक्षी (रामा० ३।६०।
२१)

कुरल (५६९।३, कुरलालिकुलाव-
लिह्यमानभूलता, ५२५।२). अलक,
घुस्राले वाल

कुरगिका (२०४।५) हरिणी

कुरंगांक (४५.६ उक्त०) : चन्द्र
कुवलीफलम् (कुवलीफलस्यूलत्रापुप-
मणि, ३९८।३) : बदरी फल

कुवलायित (४६५।५) कुवलय सदृश
कूर्चस्थानम् (कूर्चस्थानविनिवेशितप्रसून
समूह, २८६, उक्त०) श्रुतसागर ने
इसका अर्थ समोगोचरण रखने का
स्थान किया है।

कूटपाकल. (करिणा कूटपाकल
इव, १०१।७ उक्त०) हस्ति
वातज्वर।

कूर्पर (४४।१ उक्त०) : कष्टुर् का खोल
केवलम् (यस्योन्मीलित केवले, २।१) .
केवलज्ञान। यह जैन सिद्धान्त का एक
पारिभाषिक शब्द है। जैन धर्म में
ज्ञान के पाच भेद माने गये हैं— मति,
श्रुत, अवधि, मन पर्यय और केवल-
ज्ञान। जो ज्ञान तीन काल के तीनों
लोको के पदार्थों को एक साथ हस्ता-
मलकवत् स्पष्ट जानता है, उसे केवल-
ज्ञान कहा गया है।

केसर (३९।३) केसर

केसर (कान्तावक्रमवूनि वाञ्छति
पुनर्यस्मिन्नयं केसर, ५९०।१०)

वकुल वृक्ष

कैवर्त. (ते च कैवर्तस्तदादेशात्,
२१६।७) मछुआ

कौकुन्दः (करालककोकुन्दोद्गमरम्,
४०६।१) श्रुतसागर ने कौकुन्द का
अर्थ अण्डराणि किया है।

कोण (कोणकोटिकलकन्दुकान्तर,

३२।१) : किनारे पर मुड़ी हुई लाठी,
जैसी बाजकल हाकी बनती है।

कोणप. (कोणपकरालकरविकीर्यमाण,
४८।६) राक्षस

कोथ (कोथप्रदीर्णतनुतुम्बफलोपमेयाम्,
१२२'८) कुष्ठरोग

कोलिक (१२६।४) जुलाहा। देगो
भापा में जुलाहा को अभी भी कोरी
कहा जाता है।

कोशारोपणम् (करिणा कोशारोपणम-
कम्बम्, ५०६।३) दात मटना।

यह गजशास्त्र का एक पारिभाषिक
शब्द है। गज के दातों के किनारों पर
लोहे, चाँदी या स्वर्ण से मटना कोशा-
रोपण कहलाता है।

कोहलिनीफलम् (कोहलिनीफलपुष्प-
योरिव सह भावे, ३१७।३) : कूष्माण्ड,
कुम्हड़ा। कुम्हड़ा का फल और पुष्प
एक साथ ही बेल में लगते हैं। आगे
पुष्प और उसी से लगा हुआ फल
होता है। जिस पुष्प में फल नहीं रहता,
वह बिना फल के ही झड़ जाता है
अर्थात् उसमें बाद में फल नहीं आता।

कौलेयक (१८६।६ उक्त०) कुत्ता
क्षपा (४६४।२) हरदी

क्षिपस्ति (४३।५ उक्त०) . बाहू
क्षुप. (७०।१ हि०) पीवा

क्षुद्र (१४७।९ उक्त०) दुष्ट जानवर।
मो० वि० में क्षुद्र का अर्थ केवल दुष्ट
दिया है।

क्षेत्रज्ञ (१३।३) कृषि विशेषज्ञ या
कृषक

क्षेपणि (३९० ६) : श्रुतसागर ने इसे गोला गोफणि कहा है। देशो भाषा में इसे गुथनिया कहते हैं।

खट्वांकः (४५।२) कौलसम्प्रदाय के साधुओं का एक उपकरण। सोमदेव ने इसका कई बार प्रयोग किया है।

खदिरिका (२६।८ उक्त०) घूर्त स्त्री खरकर (खरकरानुव्रजनपराम्बर, ४।१ उक्त०) सूर्य

खरमयूख (७१।१२) सूर्य

खारपटिकः (आ पापाचार खार-पटिक, ४२७।६) . मु० प्रति का काप-टिक पाठ गलत है। श्रीदेव ने खार-पटिक का अर्थ ठक अर्थात् ठग दिया है।

खाण्डवम् (नेत्रनासारसनानन्दभावे, खाण्डवै, ४०।१४) खाड (देशी), खाण्डव नामक मिष्ठान

खुरली (शस्त्रप्रयोगखुरली खलु क करोतु, ६००।८) सैनिक व्यायाम

खेट (खेवरखेट २३३।१ उक्त०) : नीच

खेयम् (३७८।४) खाई

गृष्टिः (गणतिथिभिर्गृष्टिभि, १८६।१ उक्त०) : एक बार व्याई गाय। कालिदास ने भी प्रयोग किया है (रघु० २।१८) ।

गृध्नुता (२४३।२ उक्त०) लालच कालिदास ने रघु को लिखा है कि वह अगृध्नु होकर अर्थ का उपार्जन करता था।

गजायित (१२२।८) गज के समान आचरण

गन्धर्व (भरतप्रयोग इव सगन्धर्वाः, १२।६) अश्व

गन्धवाहा (१२८।२) . नाक

गणिका (१५९।४ उक्त०) हथिनी

गण्डक (प्रचण्डगण्डकवदनविदार्यमाणा, २००।३ उक्त०) गेंडा

गर्वर (खर्वति गर्वरेषु गर्वे, ६८।२) भैंसा

गल (यमदष्ट्राकोटिकुटिल पपात गलनाले गल, २१७।८) मछली पकड़ने का लोहे का काटा।

गवल (गवलवलयारुण्डन, ३९८।४) : महिपशृग

गायत्री (अवेदवचनमपि गायत्रीसारम्, १९५।५ उक्त०) . खदिर वृक्ष

गिरिक (३०।१) गेंद

गिरिकलीला (गिरिकलीलालुलित-महाशिला, ३०।१) कन्दुकक्रीडा

गुड (गुडपिप्पलमधुमरिचै, ५१२।१०) : गुड,

गुलुंच (२४४।२) . फूले का गुच्छा

गुवाक (गुवाकफलकपायितवदनवृत्ति-मि, ४६६।३) सुपारी का पेड़

गुह्या (गुह्यानिहितमेहन., ३९८।३) लगेट

गोमिनी (गोमिनीपतिश्यालवपुपि, ७७।६) लक्ष्मी

गोसवः (११७।४ उक्त०) गोयज्ञ

गोष्ठम् (१८४।४ उक्त०) गोशाला

गौरखुर (गौरखुराकुलितहस्तै, १४५।

१) श्रुतसागर ने इसका अर्थ गर्दभ के समान पशु किया है। कोशो में गौर को मृग विशेष कहा है।

गौरधामन् (२३१।३) चन्द्रमा। मो० वि० में गौर शब्द चन्द्र के लिए दिया है।

घर्घरमालिका (मुक्त्वा घर्घरमालिका कटितटात्, २३४।५)। काची, करवनी

घड्घा (महाघड्घाघ्रातचित्तस्य, ४४६।९) तृष्णा। निर्णयसागरवाली प्रति का जत्रा पाठ गलत है।

घन (१९४।३ उत्त०) समूह, घनीभूत घटदासी (४३४।१)। नौकरानी

घोटिका (५३।३ उत्त०) घोड़ी

घोरघृणि (६६।३) : सूर्य
चक्रकम् (अवालमालूरमूलकचक्रकोर-
क्रमम् ४०५।१) खट्टे पत्तोवाला
साग। खट्टुआ देशी भाषा में प्रचलित
है।

चक्रिन् (४१३।५) कुम्हार

चण्डभाव (२६९।९) गुस्ता
मो० वि० में चण्ड शब्द आया है।
अत्यन्त क्रोधी स्त्री को चण्डी कहते
हैं (चण्डो त्वत्यन्तकोपना)।

चण्डातकम् (१५०।६) जादिया,
घघरी

चन्द्र (१७३।६) स्वर्ण, कपूर

चन्द्रकापोड (कृतकार्धचन्द्रचुम्बितचन्द्र-
कापोड, ३९७।७)। मयूर की पूँछ
का बना मुकुट

चन्द्रलेखा (धूर्जटिजटाजूटमित्र चन्द्र-
लेखाध्यामितम्, १९५।३) वाकुची।
आयुर्वेदिक ग्रन्थों में इसका उल्लेख
मिलता है।

चमूर (१४४।५) व्याघ्र

चलन. (३४।४) पैर

चार्वी (चार्वी त्रिनोति परिमुचति
चण्डभावम्, २६९।९) बुद्धि

चाप (चापच्छदमूर्च्छन्, २०।२) भास
पक्षी, जलकाक

चिकुर (३८।२) केग

चित्रक (नाटेरमित्र सचित्रकम्,
१९४।२) चीता

चित्रशिखण्डि (चित्रशिखण्डिमण्डली,
९२।४) सप्तपि। मरीचि, अगिरस,
पोलस्त्य, अत्रि, पुलह, क्रतु तथा
वशिष्ठ ये सप्तपि माने जाते हैं
(महा० १२।३३५, २९)।

चिपिट (अनवरतचिपिटचर्दणदीर्ण-
दशनाग्रदेशै, ४६६।३) चिउडा,
चावल का चिउडा

चिर्भटिका (अभृष्टचिर्भटिकाभक्षण,
४०५।१) कचरी, छोटा फूट

चिल्ली (तरगरेखाश्चिल्लीपु १९१।४)
भीह। चिल्ली एक प्रकार का साग
भी होता है, जिसका सोमदेव ने
अन्यत्र उल्लेख किया है (५१६।७)।

चिलीचिम (विलीचिमनिरीक्षणः,
२१३।१) : मत्स्य

चुरी (१९८।६ उत्त०) कच्चा कुर्मा
चुलुकी (२१६।२ उत्त०)। मगरी या
मगरनी

चुलुकीसूनु (तेन चुलुकीसूनुता,
२१६।२ उक्त०) मगर

चूण्डी (चौण्ड्य घनाना पुनः, ५२०।२)
चूरी बिना बघा छोटा कुआँ। हेम-
नाममाला में चूरी और चूण्डी दोनो
शब्द आये हैं, अन्य कोशों में केवल
चूरी शब्द मिलता है। सोमदेव ने
दोनों शब्दों का प्रयोग किया है
(त्रिलातवेल्लिकोच्चुल्लिचितचुरीवारि-
१९८।६ उक्त०)।

चेटक (४२३।६) : परस्त्री-लम्पट
चेतक (१७१।२ उक्त०) हरड का
पेड

चेतोभव (५९१।१) कामदेव
चोलकम् (४३९।७, ४६६।४) चोला,
चागा अर्थात् एक प्रकार का लम्बा
कोट।

छागलधेनु (२२२।५ उक्त०) बकरी
छेक (९०।२) चनुर, होशियार
जगत्स्रष्टा (३८१।८) • महादेव
जरण्ड (१२६।८) पुराना, जीर्ण
जनुपान्धत्वम् (६७।१ उक्त०)
जन्मान्त्रत्व

जनापवाद (१४८।९ उक्त०)
लोकापवाद

जन्बूक (जलनिधिमिव जम्बूकाध्युपि-
तम्, १९४।४ उक्त०) गृगाल, वरण
जरुथम् (पियुगपितजरुथमन्थर-
कपालशकलम्, ४७।६) • गोला मास
जातवेदम् (३६३ हि०) अग्नि
जातिस्मरणम् (तदावर्णनाच्च सजात-
जातिस्मरणो, २६४।२० उक्त०) :

यह जैन सिद्धान्त का एक पारिभाषिक
शब्द है। कर्मों के विशेष क्षयोपशमके
कारण पूर्व जन्म या पूर्व जन्मों के वृत्त
का स्मरण जातिस्मरण कहलाता है।

जानक (जानकोत्रासितहरिण, १९८।३
उक्त०) श्रुतसागरने जानक का अर्थ
आरण्यवृषभ या बानर किया है।
सोमदेव के सन्दर्भ से बानर अर्थ ही
अधिक उपयुक्त लगता है।

जीवन्ती (चिल्ली जीवन्ती, ५१६।७)
राजडोडी

जुहूराणः (विनीताजानेयजुहूराणनि-
वहा, २१४।४) : अश्व

जेमनम् (जेमनावसरेषु स्वहस्तवर्तित-
कायै, १८२।२ उक्त०) जीमनवार
(देशी), भोज

जैवात्रिकमंत्रम् (यायजूकलोकैर्जनित
जैवात्रिकमन्त्रैः, ३२४३) आयुवर्धक
मन्त्र

झिल्लीका (झिल्लीकाझल्लरीस्वर-
सूचित, २४६।५) झिल्ली नामक
कोडा। अभी भी इसे झिल्ली कहते
हैं। यह प्रायः बरसात में अधिक पैदा
होते हैं और सन्ध्या होते ही बोलने
लगते हैं।

टिरिटिल्लितम् (विजहीत घनयौवन-
मदोल्लासितानि टिरिटिल्लितानि,
३७१।४, मिथ्या वपटिरिटिल्लित न
सहते, ३९६।५) व्यर्थ बकवास,
देशी भाषा में जिसे टें टें मचाना कहते
हैं। सोमदेव ने यह शब्द ध्वनि के

आधार पर लोक भाषा से स्वयं निर्मित किया लगता है। कोश ग्रन्थों में इसका प्रयोग नहीं मिलता।

डामरिकः (डामरिकनिकायसायक-विद्ववृद्धवराह, १९८।७ उक्त०) बहे-लिया। श्रुतसागर ने डामरिक का अर्थ चोर किया है पर सोमदेव के प्रयोग से बहेलिया अर्थ अधिक उप-युक्त लगता है।

तण्डुलीयः (वास्तूलस्तण्डुलीय, ५१६।७) श्रुतसागर ने इसे अल्प-मरिचशाक कहा है। इसे आजकल चौलाई कहते हैं।

तपस्विनी (ममर्थस्थानमिव तपस्विनी-प्रचुरम् १९५।२ उक्त०) मुण्डीकह्लार

तमंग (१८१।८) : तमंग, कगूरा

तमोपह (३७२।८) . सूर्य

तमोरातिमंडल (७।६ उक्त०) सूर्य तर्कुंक. (विभवाभिवृद्धिस्तर्कुंकलोकसत-र्पणाय, २६६।३ उक्त०) याचक

तर्ण(तरीतर्णतुवरतरग २१७।१ उक्त०) नदी में तैरने के लिए बनाया गया घास का घोडा।

तर्णक (राजन्ते यत्र गेहानि खैलत्तर्णक-मण्डलै, १९७।३, अन्वर्णतर्णस्व-नाकर्णनोदीपेन, ११।७ उक्त०) वत्स बछडा

तरण्ड(तरीतर्णतुवरतरगतरण्ड, २१७।१ उक्त०) पानी पर तैरनेवाला काठ-का पटिया जिसे फलक कहते हैं।

तरक्षु. (तरक्षुचक्षुर्दुर्लभय, १९८।६ उक्त०) : जगली कुत्ते

तरसम् (तरसरसिकराक्षस, ६।५ उक्त०) कच्चा मास

तरी (तरीतर्णतुवरतरगतरण्ड, २१७।१ उक्त०) . नोका

तल्लः (५२३ ६) : ताल

तलवर. (२४५।१७ उक्त०) अगरक्षक, कोतवाल

तलिका (८३।३) . कडाही

तलिनम् (३०९।५) सूक्ष्म, छोटा

तार. (२०९।६) तारा, नक्षत्र

तारेश्वर (तारेश्वर इव चतुर्दधिमध्य-वर्तिन, २०९।६) : चन्द्रमा। तारा या तारक नक्षत्रों को कहते हैं, उनका ईश्वर तारेश्वर।

तुवरतरंग (तरीतर्णतुवरतरग, २१७।१ उक्त०) पानी पर तैरने वाला काठका पटिया। श्रुतसागर ने इसका अर्थ 'दौधिकफलतरणोपाय' किया है।

तूलिनी (तूलिनीकुसुमकुड्मलाकृति, ३९७।७) सेंमल का पेड

त्रपुः (१८५।७) रागा

त्रिनेत्रम् (१९७।२ उक्त०) नारियल

त्रोटो (२४९।२) . चूंच

दधिमुख. (१६२।५ उक्त०) : गधा

दर्प (२५३।१) कामदेव, मो० वि० में दर्पक शब्द कामदेव के लिए आया है।

दशवत्सः (२०२।२) बुद्ध

दशः (५८७।२) . दाँत

द्रविणोदशम् (समेधितमहस द्रविणो-
दशम्, ३२४।२) अग्नि
द्वयातिग (परिकल्पितौशीर इव द्वया-
तिगानाम्, १३४।२) . रागद्वेषरहित
दन्दशूक (कुपितेनोर्ध्वचलितदृशा दन्द-
शूकेश्वरेण, ६६।४) सर्प। दन्दशूके-
श्वर = शेषनाग
दन्ति (१९४।१ उक्त०) हाथी, पर्वत
दभ्यमान. (अत्रचिद्दम्यमानसागरगण
२४९।२) खेदित। दम् घातु से
दम्यमान बना है।
दर्दरीकम् (१०३।२) अनार
दरद. (दरदद्रवापाटलफलकान्ति,
४६४।४) हिंगु या हींग
दशलोचन (दशम दशलोचनदष्ट्रा-
कुरात्, ४४२।२) यम
दृष्टान्त (२२३।५ उक्त०) मृत्यु
दृति (चर्मकारदृतिद्युतिम्, १२५।२)
चमडे की मसक
दाक्षायणीदेश (अर्चुरितसर्वदाक्षाय-
णीदेशम्, ४६६६) आकाश, हलायुध
कोश में यह शब्द आया है।
दार्वाघाट (अवर्गगर्वदार्वाघाटपेटक,
२०७।५ उक्त०) सारस
दारू (नादते दारव पादपरित्राणम्,
४०८।१) काष्ठ। देवदारुमें दारु शब्द
अब भी मुद्रित है। बुदेलखण्ड में
कही-कही लकड़ी को अभी भी दारु
कहा जाता है।
दाग्नेरक. (दलितदामदासेरार्भक,
१८५।१) . उँट

द्वापर (३७२।८) . सदेह
दिव्यचक्षुस् (१२८।१) अन्धा
द्विजाति. (वसन्त इव समानन्दित
द्विजाति, २१०।२) . कोकिल
द्विजिह्व (३४६।४) दोगला, चुगल-
खोर, सर्प, दुर्जन
द्विप (१९९।२ उक्त०) . हाथी
द्विरदन (द्विरदनकुलेपु, ११।४ उक्त०)
: हाथी। सम्भवतया यहाँ, द्विरद और
नकुल दो पद हैं। श्रुतसागर ने एक
पद माना है और हाथी अर्थ किया
है।
दिनाधिपः (१९७।३ उक्त०) : सूर्य
दिवाकीर्ति (दिवाकीर्ते नप्ता,
४०३।४) नाई
दीदिवि (अतिदीर्घविशदच्छविभि-
र्दीदिभी, ४०१) : मात
दीविन् (उदीर्णदर्पदीवितुमुलकोला-
हल, २०८।७ उक्त०) . जल सर्प
दुमल (बलवद्वलालोन्मीलितदुमला-
कुलकलमप्रचारम्, १९९७ उक्त०) :
वृक्ष
दुर्वर्णम् (दुतदुर्वर्णरसरेखारुचिभिरिव-
मरुमरीचिवीचिभि, ६६।२) . चाँदी।
सोमदेव ने इसका प्रयोग एकाधिक
वार किया है। (१०।८)
दुस्फोट (१४५।१) मूसल
द्रुहिणद्विज. (द्रुहिणद्विजकुलकोलाहले,
२४८६) हम। ब्रह्मा का एक नाम
द्रुहिण भी है। इस उनका वाहन है।
इसी आचार पर सोमदेव ने इस के

लिए द्रुहिणद्विज शब्द का प्रयोग किया है। अन्यत्र ऐसा प्रयोग नहीं मिलता। सोमदेव ने हस के लिए एक स्थान पर द्रुहिणवाहन भी कहा है (द्रुहिण-वाहनस्थितिप्रभेदिषु, ७२।२)।

देवखात (मरुस्थलेष्विव देवखातेषु, ६८।५) : अगाध सरोवर

दैर्घिकेयम् (परिम्लायत्सु दैर्घिकेय-कान्तारेसु, ६७।३) कमल, दीर्घिका में उत्पन्न होने वाला। अर्थ के आधार पर सोमदेव ने यह शब्द स्वयं रच लिया है। कोश ग्रन्थों में इसका प्रयोग नहीं मिलता।

दौलेय (पकिलगर्तगर्वरमिलद्दौलेय-वालै २१७।५ उक्त०) कच्छप, कछुआ

दृसदः (१९८।६) : देव

ध्वजिन् (ध्वजकुलजातस्तात, ४३०।१) तेली

ध्यामत्तम् (निर्ध्यामधूमध्यामलेषु, ६६।१) मलिन

धगद्धगिति (२२७।३ उक्त०) : धगधग होता हुआ, व्यवहार में धधक-धधक कर जलना का प्रयोग होता है।

धनंजय (प्रवर्धमानध्यानधैर्यधनजय-६२।३) अग्नि

धृतराष्ट्रः (२०६।५ उक्त०) धृतराष्ट्र, हस

धृष्णि (अहिमधामधृष्णिसधुक्षित, १९।३) सूर्य-किरण

धान्वन्धरा (धान्वन्धरारन्ध्रेष्विव प्रधिषु, ९८।५) . मरुभूमि

धिष्ण्यम् (घनदधिष्ण्यमिवाप्यस्थानु-परिगतम्, २४६।१) : मन्दिर, कुबेर के मन्दिर को घनदधिष्ण्य कहते थे।

धूमकेतुः (२५४।८) अग्नि धेनु. (१८४।६ उक्त०) : दूध देनेवाली गाय

धेनुप्रिया (४९७।६) : हथिनी

धेनुष्या (११।७ उक्त०) : उत्तम गाय नखायुधः (६८।१) शेर

नन्द्यावर्त (स्वस्तिकनन्द्यावर्तविन्या-साभि, २९७।५) . एक मागलिक उपकरण

नन्दिनी (नन्दिनीनरेन्द्रस्य, १३५।१) . उज्जयिनी

नमतम् (नमताजिनजेणाजीवनोटजा-कुले, २१८।९ उक्त०) : ऊनी नमदे, ऊन को कूटकर जमाया गया मोटा वस्त्र। आज भी कश्मीर में नमदे बनते हैं। निर्णयसागर वाली प्रति का तमत पाठ गलत है।

नरकारि (२९३।७ हि०) : विष्णु

नाकु (अनेकनाकुनिर्गलनिर्मोक, १९८।४ उक्त०) : बल्मीक, साँप का बिल जिसे देशी भाषा में 'बाँबी' कहा जाता है।

नागरंग (९५।५) : नारगी

नाटेर (१९४।२ उक्त०) अभिनेता मो० वि० में नाटेर का अर्थ अभिनेत्री का लडका किया है।

नाड़ीजंघ (१२४।१० उक्त०) : बन्दर

नाथहरि (उन्माथनाथहरियूथयुद्ध-वाध्यमान, १८५।३) . वृषभ

नालीकिनी (आकुलभवन्नालीकिनी-
काननम्, २१७।३) : कमलिनी
नासीरः (तव नासीरोद्धतरेणुराग,
१८५।६) . सेना
निगल (४४०।९) : लोहे की साकल
निगद्यागमम् (निगद्यागममिव गहनाव-
सानम्, १९३।५ उक्त०) गणित शास्त्र
निचिकी (निचिकीनिटलनिक्षिप्यमाण,
१८४।८ उक्त०) . गाय। कलोर या
उत्तम नई गाय
निचुल (निचुलमूलविलनिलीन,
१०१।६) : वृक्ष
नित्यजागरूकसुतः (१८७।३ उक्त०) :
कुत्ता
निप (४९।२) घडा
निपाजीव. (निपाजीव इव स्वामि-
न्स्थिरीकृतनिजासनः, ३९०।७)
कुम्भकार
निलोठनम् (सोपानमार्गेण निलोठितः,
१९०।८ उक्त०) : लुठकाना। लुठ् धातु
से नि उपसर्गपूर्वक निलोठिन् शब्द
बनाया गया है।
निलिम्पकः (१८।२) देव। मो० वि०
में निलिम्प शब्द आया है।
निवर्तनम् (त्रिचतुराणि निवर्तनान्यति-
क्रान्तम् १३९।२) श्रुतसागर ने इसे
क्षेत्रमयमान कहा है। व्यवहार की
भाषा में दो-तीन फर्लांग, इसी तरह
दो-तीन खेत या निवर्तन कहा
गया है।
निशादर्श (८५।३) चन्द्र
नशीथिनी (३५७४) रात्रि

निश्रेणीकम् (असौघतलमपि सनि-
श्रेणीकम् १९७।१ उक्त०) : खजूर वृक्ष
निषद्या (२२५।१ हि०) . शाला, भवन
निष्कुटोद्यानम् (निष्कुटोद्यानपादप,
२०५।३) : गृहवाटिका
नीक (असमनीकरसिकमपि सकवचम्
१९७।३ उक्त०) छोटी नदी, नहर
नेत्र (१६९।५ उक्त०) एक प्रकार-
का मृग
नेत्रम् (३६८।२) एक प्रकार का
महीन वस्त्र
नैकषेय (गोमायुनैकषेयजुष्यमाण,
४९।२) राक्षस
पत्सलम् (भवेत्पत्सलवत्सल, ५०८।८) .
भोजन
पतत्रिन् (२५९।८) . पक्षी
पट्टिशः (प्रासपट्टिशबाणासनम् ४६५।
१) : पट्टिश नामक अस्त्र
पटोलम् (नेत्रचीनचित्रपटीपटोलरल्लि-
का, ३६८।२) गुजरात की पटोल
नामक साडी या पटोल वस्त्र।
पर्पटः (सद्यः सभृष्टा पर्पटा, ५१६।८) .
पापड
परमान्न (शर्करासपर्कसमासन्ने, पर-
मान्ने, ४०२।४) : खीर
परिणयः (८१।६ उक्त०) विवाह
परिधानम् (परिधानेन वृत्तमौलि
पुमानिव, ३८५।८) घोटो, 'परदनिया'
देशी भाषा में आज भी प्रचलित है।
परुपरटिम (५९७।१ उक्त०) : सूर्य
परेष्टुका (पूगतिथिभि परेष्टुकाभि,
१८६।१ उक्त०) बहुत बार व्याई हुई-

गाय (प्रचुरप्रसूता) ।

पल्लवकः (मुनिद्रुमदलेष्विवसकोचनो-
चितेषु पल्लवकलोकसृपाटीपटेसु, ११।२
उत्त०) : विद्वान्

पलाण्डु (पलाण्डुमुण्डिकाडम्बरम्,
४०५।५) • प्याज

पलाशः (४८।३) राक्षस

पलिकनी (सख्यातीताभिः पलिकनीभिः,
१८६।२ उत्त०) गाभिन गाय

पलिगः (पलिशदेशाश्रयिणा तेन,
१८०।२ उत्त०) • जहाँ बैठकर मृग
का शिकार किया जाता है उसे पलिश
कहते हैं ।

पवनाशनः (१९।६) साँप

पवनकन्यका (५३१।४) : चमर ढोरने
वाली कृत्रिम पुत्तलियाँ

पश्यतोहर (२५८।८) देखते-देखते
चुरा लेने वाला चोर, सुनार

पस्त्यम् (पस्त्यभित्तिमणिघोतै, २०६।
१) गृह, सोमदेव ने पस्त्य का एक
से अधिक बार प्रयोग किया है (प्रचेत
पस्त्यमित्राप्यजडाशयम्, ३४५।५) ।

पृपतः (पृपत्तुरखण्ड्यमान, २००।२
उत्त०) • मृग, सेहल

पृषदाज्य (पृषदाज्येनाभिक्षया च समे-
धित महसम्, ३२४।२) ताजा घी

पृषदश्वः (चापलविलास पृषदश्वेषु,
२०२।२) : वायु

पकजातम् (२८१।९) कमल

पंकिलः (१६३।४) : पापी

पकेज (४१६।६) कमल

पंचजना (नगनगरग्रामारण्यजन्मसम-

वायं पचजनै, १४५।४) : मनुष्य,
पच लोग

प्रजापति (२०६।२ उत्त०). राजा
प्रचलाकिन् (उपरितनतलचलत्प्रचा-
लाकिवालक, १९।५) : मयूर । भव-
भूति ने भी प्रचलाकि का प्रयोग किया
है (उत्त० २।२९) ।

प्रत्यंगम् (असत्यता नीतोऽय प्रत्यंगफल-
निर्देशः, १९१।२) सामुद्रिक शास्त्र
प्रत्यवसानम् (१५०।८) भोजन
प्रतारणम् (७२।२ उत्त०) ठगना
प्रघावधरणि (प्रघावधरणिष्विव स्रोत-
स्विनीपु, ६८।५) गजशिक्षा प्रदेश,
नगर के बाहर का वह प्रदेश जहाँ
गजों को शिक्षित किया जाता था या
घुडदौड आदि होती थी । इसका कई
बार प्रयोग हुआ है (प्रघावधरणिपु
करिविनोदविलोकनदोहदम्, ४९५।८) ।
इसे करिविनयभूमि भी कहते थे
(४८२।५) ।

प्रधि (घान्धराररन्ध्रेष्विव प्रधिषु,
६८।५) • कुर्मी

प्रणधि (अवधोरिताधोरणप्रणिधिभिः,
३०।५) अकुश

प्रणालम् (चन्द्रोपलप्रणालाग्रे, २०५।
७) • नाली, परनाला देशों भाषा में
प्रचलित है ।

प्रायोपवेशनम् (प्रायोपवेशनवासिन्यपि
कुट्टिनी, ४२९।३) सन्यास

प्रवहणम् (मदीये निलये प्रवहण
कर्तव्यम्, १५०।२ उत्त०) पवित्र-
भोज

प्रष्ठोही (वाच्यमानप्रष्ठोहीपक्षम् १८५।
३ उक्त०) : कुछ दिन के गर्भ
वाली गाय

प्रसवम् (अनवधिप्रचारप्रसवस्तवक,
४६५।२) पुष्प

प्रसंख्यानम् (पारिरक्षक ह्व प्रसख्या-
नोपदेशेषु, २३६।२) . गणितशास्त्र

प्रस्फोटन (प्रस्फोटनस्फारमास्त-
२२६।५ उक्त०) सूर्य

पाकः (शुकपाक, सोत्कण्ठमुत्कण्ठस्व,
३५१।५) महामत्स्य, श्रुतसागर ने
सहस्रदष्ट् अर्थ किया है।

पाण्डुरपृष्ठा (५६।५ उक्त०) : कुलटा

पाथोनिधि (२५०।४) : समुद्र

पामर. (पामरपुत्री च यस्य जनयित्री,
४३०।१) : नीच

पारणा (उपकल्पितपारणास्विव,
२।१६।१) : उपवास के बाद का
भोजन

पारदरसः (पारदरस ह्व दृन्दपरिगतः
११२।१) पारा

पारिपुंख (पारिपुख इवानात्मीनवृत्ति-
रपि, ४१।१) बौद्ध

पालिन्दः (पालिन्दमन्दिरोदरतार-
तरोच्चार्यमाण, २४७।४) नरेन्द्र,
राजा

पालिन्दी (प्रवलानलान्दोलितपालिन्दी-
सततिभि, १९९।६) : तरंग, लहर

पिचण्ड (कथ नामाय पिचण्ड स्फा-
यताम्, ४०२।९) पेट, त

पिचुमन्दः (पिचुमन्दकान् वनम्,
४०५।३) . नीम। पृ० ७।६ भी

प्रयोग किया है।

पिण्डी (पिण्डीभाण्डशालिनाम् ४२९।
८) खली। तैल निकालने के बाद

शेष बचा तिलहन का छूँछ—सीठी
पित्तम् (उद्विक्तपित्तास्विव, ६६।५) :

आयु
पिप्पलि (गुडपिप्पलिमधुमरिचै,
५१२।१०) पीपल (छोटी पीपल)

पिष्टातक (पिष्टातकचूर्णा, ३३८।४).
पिष्टातक चूर्ण। इसके लिए सोमदेव

ने केवल पिष्ट शब्द का भी प्रयोग
किया है (२२७।५)।

पिथुर. (पिथुरापितजरूथमन्थरकपाल-
शकलम्, ४८।६) . राक्षस

पिंजनम् (२२३।९ उक्त०) रूई
घुनने की पींजन

पितृपति (१५१।३) . यम

प्रियाल (प्रियालमजरीकणकलित,
१०५।६) प्रियाल वृक्ष

पीलुः (मदतिलकितकपोल पीलुकुलश्व
४६१।८) गज

पुटकिनी (पुटकिनीपुटपटलान्तरगम्,
२०७।५ उक्त०) कमलिनी

पुण्यजन (पुण्यजनावासमिवाप्यराक्षस-
भावम्, ३४४।५) यम, सज्जन
व्यक्ति

पुण्ड्रेक्षु (पुण्ड्रेक्षुकाण्डमडपसपादनीभि,
१०३।३) . गण्ड, गण्ड मफेट मोटे

।

पुरुदंशः (पुरुदगोनिशाखरनखर, ४८।६) : विलाव, विल्ली । इसका प्रयोग सोमदेव ने एक से अधिक बार किया है (पुरुदशोदर्शनप्रकाशकेश, १६१।४) ।

पुरधूर्त (मृग्वेषु पुरधूर्तवत्, ४२३।९) : शृगाल

पुष्पंधय (गलन्तीषु पुष्पंधयेषु वृत्तिषु, ६८।२) : भ्रमर

पुष्पदन्तम् (अपहसितपुष्पदन्त कुवलय-कमलावधोवनाद्देव, ३२८।३) : चन्द्रसूर्य

पुष्पगारः (१६०।७) : कामदेव

पुष्पास्त्र (१२४।९) कामदेव

पूतनम् (अराक्षसक्षेत्रमपि सपूतनम्, १९६।३ उक्त०) : राक्षसी

पूतिपुष्पफलम् (पूतिपुष्पफलदुष्टदशा-विदानी वक्षोरुहौ, १२४।५) . कपित्थ, कैथ

पूषन् (द्यौ पूष्णा भोगिलोकी, २३१।४) : सूर्य

पोगण्डः (पोगण्डचाण्डालादिकादृशोक, ३३२।२) . विकलाग

पौत्री (पौत्री च मुस्ताशन, ६१।४) : जगली सुअर

पोताधानम् (कमलमूलनिलीयमान-पोताधानम्, २०८।६ उक्त०) छोटी मछली

पोरोगवः (समस्तमूपशास्त्राधिगमपाट-वाय पोरोगवाय, २२२।४ उक्त०) . रसोद्भवा

फेलाभुक् (फेलाभुक् प्रतिकूल, ५११।३) : जूठनखोर, एक अन्य प्रसंग में फेला को जूठन कहा है (१२८।४) ।

वभुः (वभु. शिखण्डतनयश्च भवेत्प्र-हृष्ट, ५।११।१०) नकुल

वस्तः (१८४।५ उक्त०) वकरा

वृहती (१९५।२ उक्त०) क्षुद्र वार्ताकि

वृहद्भानुः (५८।१) अग्नि

ब्रध्नः (ब्रध्नदीधितिप्रदन्धाभि, ४५।६) : सूर्य

ब्रह्मचारिन् (अप्रथमाश्रममपि ब्रह्म-चारिवद्ब्रह्म, १९६।१ उक्त०) : पलाश, पलाश के लिए केवल ब्रह्म-तप का भी सोमदेव ने उप-योग किया है (३।२, २०१।८ उक्त०) ।

बकोटः (अवाचाटबकोटचेष्टितचकित, २०८।५ उक्त०) : बक, वगुला

बालधिः (बालधिषु च नियुक्तयम-दण्डैरिव, २९।१) पृष्ठ

भण्डनम् (भण्डनोद्भटतरटद्गलान्तरैः, ११५।४, द्वकुलभण्डनाद्भोतम्, ११५।७) . युद्ध, झगडा

भण्डितः (सोऽपि भण्डितः १९१।५) कुत्ता

भल्लूक. (हरिणप्रयाणभयभीत-भल्लूकनिकरम् १९८।४ उक्त०) : श्रुतसागर ने इसका अर्थ शृगाल किया है । देगी भाषा में भालू, रीछ को कहते हैं ।

भविल (भविल इव नादत्ते दारवं पाद-
परित्राणम्, ४०८।१) महामुनि

भ्रमणिका (राजाद्य भ्रमणिकाया
गतस्तरुमूल, १०१।९ उक्त०).
वाटिका, श्रुतसागर ने इसका अर्थ
वनक्रीडा किया है। मुद्रित प्रति का
भूमणिकाया पाठ अशुद्ध है।

भृशायमान (५३।३ उक्त०) : तेज
गतिशील

भाय (४२६।८) बहनोई
भोजप्रबन्ध तथा मो० वि० में भी यह
शब्द आया है।

भुजिष्या (सरस्वती विनोदभुजिष्येव,
२२३।७) गणिका

भूदेवः (८८।९ उक्त०). ब्राह्मण

भोगीन्द्रः (५०४।८) : शेषनाग

मकर. (उन्मत्तमकरकरास्फालनोत्ताल-
लहरिका, २०९।१ उक्त०) : जलगज
मठ (मठस्थानमिद नैव, ३८३।८).
छात्रालय

मण्डल' (१२।५) कुत्ता

मण्डलव्यूह (दण्डासहतभोगमण्डल
विधीन्, ३०४।५) मण्डलाकार व्यूह-
रचना

मण्डूकी (१५३।६ उक्त०) मेंढकी

मध्यस्थ (त्रिविष्टपव्यापारपरायणा-
वस्थे मध्यस्थे, २५०।३) : यम

मधुक (मधुकलोकविहितमगलानि,
२२८।१) वन्दिजन, स्तुतिपाठक

मन्द (स्त्रीवृन्दमिश्र मन्दस्य, ७।२) :
नपुंसक

मन्द (९५।६) शनिश्चर नामक गृह

मन्दीरम् (पुराणतरमन्दोरमेखलालकृत-
३९८।६) : मयानी की रस्सी

मनीषा (गुणेषु ये दोषमनीष-यान्वा,
११।१) बुद्धि

मय (मेषमहिषमयमातग, १४४।१,
मयमुक्तस्फोटफेन, ५२४।३) ऊँट

मयु (मयुमिथुनसगीतकानन्दिनि,
२३०।२) : किन्नर, गन्धर्व

मरालः (मरालकुलकामिनी, २०७।४
उक्त०) : हंस

मराली (२४९।४) हंसी

मरिच (गुडपिप्पलिमधुमरिचै,
५१२।१०). मिर्च

मल्लिकाक्ष. (अनेकमल्लिकाक्षकुटु-
म्बिनी, २०८।२ उक्त०) हंसविशेष

महामण्डल (महामण्डलावगुण्ठितगल-
नाल, ३०९।३) सर्प विशेष

महीन (यस्येत्य तव महिमा महीन) :
पृथ्वीपति, राजा। मही-पृथ्वी उसका
धन — स्वामी महीन।

मृगदंश. (१८६।५ उक्त०) कुत्ता

मृगधूर्त (परव्यसनान्वेषणाय मृगधूर्त-
स्येव मन्दमन्दप्रचार, ४३९।८)

सियार

मृगादनी (वल्लयोऽपि मृगादनीप्राय,
२००।७ उक्त०) एक प्रकार की लता

मृषोद्यम् (७२।१) असत्य वचन

माकन्दः (माकन्दमन्त्रीहृदयगम,
२१३।१, माकन्दमजरीव पुष्पाकरस्य,
२२३।३) : आन्न

मागधी (रघुवशमिव मागधीप्रभवम्,
१९४।३ उक्त०) : पिप्पली

मार्गायुक्. (निसर्गान्मार्गायुक्क्रमश्च, १८६।७ उक्त०) : मृगया कुशल, शिकार करने में चतुर ।

मार्जनीयदेशः (समाश्रित्य मार्जनीयं देशमाचरितोपस्पर्शन, ३२३।५) . हाथ-पैर धोने का स्थान

मातृनन्दनः (अमहानवमीदिनमपि समातृनन्दनम्, १९७।१ उक्त०) करज वृक्ष

मातरिश्चः (विनीयमानात्मनि मातरि-श्चनि, २५०।५) . वायु

मामः (भायसमोऽपि च माम., ४२६।८) श्रुतसागर ने इसका अर्थ मामा, श्वसुर किया है । माँ के भाई को व्यवहार में मामा कहा जाता है ।

मायाकारः (स्वपरजनपरोक्षणमाया-कार मायाकार, १९२।७ उक्त०) . प्रतिहार

मालूरम् (अवालमालूरमूलकः ; ४०५।१) विल्व

माष' (भुजीत मापसूपम्, ५१२।११) . उडद

माहेयी (माहेयीदोहव्याहाराह्वयमान १८५।६ उक्त०) जिस गाय को दुहते समय धर-धर की आवाज होती है ।

मिण्ठः (म्यानायानेतुमीशा पयसि-कृतरतीन् हस्तिनो नैव मिण्ठा ७०।२) : गजपरिचारको का मुखिया, जो गजों को नहलाने-धुलाने आदि का काम करता था । बाण ने भी मेण्ठ का उल्लेख किया है (हर्ष० २०६) ।

हिन्दी में मेठ शब्द मजदूरी करने वाले के नायक के लिए प्रयुक्त होता है । यहाँ भी सम्भवतया छोटे गज-परिचारको के मुखिया जमादार के लिए मेण्ठ आया है ।

मुण्डिका (एरण्डफलपलाण्डुमुण्डिका-डम्बरम्, ४०५।५) शाक विशेष

मितद्रुच' (मितद्रवबुरक्षोभित ...४६५।१) अश्व, सोमदेव ने मितद्रुचः और मितन्द्रव दो शब्दों का प्रयोग किया है (१४४।१) ।

मितंपच (मितपचानामग्रेसर, ४०३।७) . कृपण, कजूस

मिहिर. (दृष्ट्वेम मिहिर. जगत्प्रिय-करम्, ५४४।६) मेघ

मेघराव' (वर्पारात्रमिव धनमेघरावम्, १९४।३ उक्त०) : मयूर, मेघों को देखकर मयूर वोलता है । इसलिए भाव के आधार पर मयूर को मेघराव कहा है ।

मैथुनिक' (मैथुनिकः सवरकस्यास्तर-कस्य ४०३।५) . श्याला, माला पत्नी का भाई । मराठी में साला को 'मेहु-निया' कहा जाता है ।

मोदकम् (मोदकमन्दमठिकावलोकनात् ८८।५ उक्त०) लड्डू

मुग्धमति (प्रतार्यते मुग्धमतिर्न केन, १४।७ उक्त०) : मन्द बुद्धि

मुनिजन (काननश्रीरिव सवरप्रचुरा मुनिजनगोचरा च, २०६।४ उक्त०) तापस पक्षी

मूलक : (कोलाहलावलोकमूकमूकक-
लोकम्, २०८।७ उक्त०) . मडूक,
मैडक

मूर्च्छन्ति (२०।२) : निकलना, प्रकट
होना के अर्थ में इसका प्रयोग हुआ है।

मूढधीश्वर (१।९) : समीक्षक

**मुर्मुः (विनिर्मितमुर्मुरोपहारास्विव,
६५।१) :** अगार

**मूलक (मालूरमूलकचक्रकोपक्रमम्,
४०५।१, भुजीतमाषसूप मूलक सहित
न जातु हितकाम , ५१२।११)** मूली

**मूषा (विताप्यमानमूषाशुषिरेष्विव,
६५।३) :** श्रुतसागर ने इसका अर्थ

स्वर्ण गलाने वाली घरी किया है।

वैसे यहाँ चूहा अर्थ भी सगत बैठ
जाता है।

**मौकुलिः (सतत धवलमौकुलिनाद,
२२९।६) :** कौआ

**यक्षकर्दमम् (२८।२ उक्त०) कंकोल,
अगरु, कर्पूर, वस्तूरी को मिलाकर**

बनायी गयी सुगन्धी। इसे चतुःसम
सुगन्धी भी कहते हैं।

**यजत्रम् (निवर्तितयजत्रकर्मभि, १८५।३
हि०) हवन करना**

**यन्त्रधारागृहम् (३९।१० हि०)
स्नानगृह**

यवागूः (८८।९ उक्त०) लप्सी

यष्टि (३०१।७) लाठी

**यागनागः (२८८।७) पट्टहस्ति,
गजशास्त्र में इसके विशेष गुणों का
वर्णन है। सोमदेव ने भी अन्यत्र गज
प्रसंग में उनका विवरण दिया है।**

यादः (५२३।५) जलजन्तु

यायजूकः (३२।३) हवन करनेवाला

यावकः (५६।३ हि०) : अलक्तक

यावनाल (२५६।५ हि०) जुवार

याष्टीकः (२१४।३ हि०) प्रहरी

**रजनिः (रजनिरसश्चूर्णरजसीव,
४२२।७) . हल्दी**

**रतिचतुरः (रतिचतुरविकरनखमुखाव-
लिख्यमान, ३५।६) कबूतर**

रक्ततुण्डः (१९८।१ उक्त०) तोता

रक्ताक्षः (१८५।२ उक्त०) भैंसा

**रदिन् (मदनरदिमदोद्दीपनपिण्डे, १५।१
उक्त०) हस्ती, रदिन् का कई बार**

प्रयोग हुआ है।

**रल्लकः (२००।५ उक्त०) . रल्लक
नामक जगली बकरा। इसके ऊन से**

बना वस्त्र रल्लिका कहलाता था।

सोमदेव ने रल्लिका का भी उल्लेख
किया है। कोश ग्रन्थों में रल्लक को

एक प्रकार का मृग कहा गया है।

**रल्लिका (३६८।२) रल्लक नामक
जगली बकरे के ऊन से बना वस्त्र।**

**रसवतीगृहम् (तस्मिन्नेव रसवतीगृहे
सकलरसप्रसाधन ., २२२।६ उक्त०) .
रसोई घर**

**रंकुः (२००।३) एक प्रकार का मृग
(नैष० २।८३)।**

राजिका (४०६।१) राई।

**रावणशाकः (९८।७ उक्त०) मास
रिंगिणीफलम् (२५७।२ हि०) : भट-
कटैया, कटकारी**

रुरुः (२००।४) मृग विशेष

रेरिहाणः (रेरिहाणनिवहविहार इव,
 ६०५।७) • महिष, भैसा
 रोदः (२०।५) • आकाश
 लगुडम् (२१६।७ उक्त०) • लकुटदण्ड,
 लट्ट
 लक्ष्मण (२०६।५ उक्त०) लक्ष्मण
 (राम का छोटा भाई), सारस पक्षी
 लतान्तम् (९७।१) • फूल
 लटहः (११३।७) सुन्दर
 लटहगति (१५।४) • ललित गमन
 लयनम् (१३४।१) : श्रुतसागर ने
 इसका अर्थ शिलोत्कीर्ण गृह किया
 है। यहाँ गुफा से तात्पर्य है।
 लम्बस्तनीकम् (१९७।२ उक्त०)
 चिचावृक्ष
 लक्ष्मी (१९५।१ उक्त०) • लक्ष्मी, भर-
 ढशृगी नामक औषध
 लंजिका (४१७।५) वेद्या
 लागली (३।३ उक्त०) • जल पिप्पली
 लालाटिकः (१६४।५) नौकर
 लुलायः (५२३।६) • महिष, भैसा
 लूता (२६३।१०) मकड़ी
 लेखपत्रम् (१९७।२ उक्त०) ताडपत्र
 लेसिक (४५।३ उक्त०) लेसिक नामक
 गज-परिचारक, जो हाथियों को तेल
 लगाने आदि का काम करता था।
 वाण ने हर्षचरित में लेसिक परि-
 चारको का उल्लेख किया है।
 लोम (प्रकामायामलोमचूटैर्गणै,
 ४६६।५) केश, बाल
 लोमचूड़ः (४६६।५) : मुर्गा
 लोहल (विविधवाद्योद्गुर्वानलोहले,

२४७।६) : व्याप्त
 व्यजन (२०५।६) : पंखा
 व्यात्री (२००।७ उक्त०) • लता विशेष
 व्याली (५१।३ उक्त०) : दुष्ट हथिनी
 व्योमकेश (२१।२) शिव
 वत्सलम् (४०२।६, ५०८।८) • भोजन
 वर्धमानम् (१९६।२ उक्त०) • एरड
 वृक्ष
 वनीपक (१८।२) : स्तुतिपाठक
 वनेजम् (२४३।४) • कमल, पानी
 का एक नाम 'वन' भी है। वन
 में उत्पन्न होने के कारण इसे 'वनेज'
 कहा है।
 वत्तः (४३।३) पिता, बीज डालने
 वाला। सभवत्तया 'वाप' इसी से
 बना है।
 वर्वरक (१८४।५ उक्त०) : शिशु
 वर्षधरः (१३३।३) नपुमक
 वराह (१९८।७ उक्त०) : सुअर
 वराहवैरी (१८८।३ उक्त०) : कुत्ता
 वल्लक (उच्छूनोद्वेल्लितवल्लकरालक,
 ४०५।५) : कच्चा
 वल्लवी (१९८।५) गोपी
 वल्ली (२००।७ उक्त०) लता
 वल्लूरम् (स्ववपुर्लूनवल्लूरम्, ४९।५)
 मास
 वलालः (वल वलाल, २१९।२) :
 वायु, पृ० १९९।७ उक्त० में भी
 इसका प्रयोग हुआ है।
 वलीकम् (तुहिनतरुविनिमित्तवलीकान्त-
 रमुक्त्र, २९।२ उक्त०) श्रुतसागर
 ने इसका अर्थ पट्टिका किया है। सभव-

तया उनका अभिप्राय खूटी से है ।
 वषट्कयणी (१८५१४ उक्त०) : बहुत
 दिन को व्याई गाय, 'बकेन' या
 'ठोकरी गाय' देशी भाषा में कहते हैं ।
 वशा (वशया वनगज इव, २७.९
 उक्त०) हस्तिनी
 वसा (१८६१२ उक्त०) . वन्ध्या गाय
 वहित्रम् (३८८१८) : नौका
 वृकः (२१९११) : बकरा
 वृन्ताकम् (५१६१७) : बैंगन
 वृष्णिका (१८४१६ उक्त०) : बूढ़ी
 गाय
 वृषः (२०४१२ उक्त०) मूसा या चूहा
 वागुरा (२५३१२) : जाल, बाघने
 का जाल
 वाजिः (१८६१३ उक्त०) : अश्व
 वाजिन् (३०८१५) : वाज पक्षी
 वार्ताकम् (४०५१४) : बैंगन
 वातूल. (४६१६) : वायु, अषड
 वाध्री (१२२१४) : चमड़े की रस्सी
 वान्तादः (१८८१४ उक्त०) : कुत्ता
 वानरः (१९९१४ उक्त०) बन्दर
 वामना (१९६१२ उक्त०) हथिनी
 वामनम् (१९६१२ उक्त०) मदन
 वृक्ष
 वामलूरः (२०४१४ उक्त०) वल्मीक,
 साप की बीमो
 वारवन्तिता (४११३) वेश्या, चकवी
 वारत्ता (२४३१४, २०९१५ उक्त०)
 हसिनी, कोशो में वरटा शब्द आता
 है ।

वारस्त्री (३२३१३) . वेदया
 वाली (सैकतोल्लोलवालीविहारवाचाल-
 वारलम्, २०९१५ उक्त०) . लहर,
 तरंग
 वालैयकः (१८६१२ उक्त०) गधा
 वास्तुलः (वास्तुलस्तण्डुलीय., ५१६१७)
 वास्तुल शाक, समवतया जिसे आज-
 कल 'बथुआ' कहते हैं ।
 वासनेयी (४६१२ उक्त०) रात्रि
 वासवः (३१५१७) मेघ
 वाहरिका (वीरणप्ररोहवत्पर्यस्त-
 वाहरिकै, ३०१५) . हाथी बांधने का
 खूँटा । श्रोदेव ने हाथी के पीछे के पैर
 को बांधने वाला खूँटा अर्थ किया है ।
 देशी भाषा में इसे 'पिछाही' कहते हैं ।
 वाहा (१९२११) : भुजा, बाँह
 विकर्तनः (७१११०) . सूर्य
 विकृतः (४८६११) : रोगी
 विकिरः (५८८) पक्षी
 विचकिलः (५२८१५, ५३२१३)
 मोगरा पुष्प
 विजया (१९४१४) हरड नामक
 औषधि
 वितर्दिका (९९४) . वेदिका, कोशो
 में वितर्दि का प्रयोग आया है । महा-
 वीरचरित में वितर्दिका भी आया है
 (६१२४) ।
 विधि (२०१४) नर्तन - नाचना
 विनियोगः (१६११७ उक्त०) . अधि-
 कार, राजाज्ञा
 विनेय. (७२१४ उक्त०) . शिष्य,
 विद्यार्थी

विटंकः (२०।१, ५९८।७) : श्रुतसागर
ने इसका अर्थ एक स्थान पर पक्षियों
को बैठने के लिए बाहर निकाले गये
मलगे तथा दूसरे स्थान पर वरण्डक
किया है ।

विरसालः (४०४।५) राजमाप,
उडद की एक जाति

विरैयः (६८।१) तालाव, पोखरा
शब्दार्थ चिन्तामणि में नदी के लिए
विरैफ शब्द आया है ।

विरोचनः (५२।२, ६५।२)
सूर्य, अग्नि

विलातः (१९८।६ उक्त०) : भोल

विलेशयः (वालविलेशयवेण्डितवितप-
भागम् ४६२।३) : सर्प

विश्वकद्रु (११५।५) कुत्ता, सोमदेव
ने इसका कई बार प्रयोग किया है ।
श्रुतसागर ने इसका अर्थ शिकार
करने में कुशल कुत्ता किया है । अभि-
धान चिन्तामणि में भी विश्वकद्रु का
यही अर्थ किया गया है (४।३४७) ।

विश्वद्युति (१५५।१) सूर्य

विशसनम् (२८।६) हिंसा, पशुवध
विष्टि (४२७।४) वेगार लेना, विना
मूल्य दिये मजदूरी कराना ।

विष्वद्रीचिः (६५।१) सर्वत्र, ससार
भर में

विष्वाणम् (१३४।६) भिक्षा द्वारा
भोजन, भोजन (शब्दरत्नाकर ३।६३)

वीरणः (३९०।२) वश, वांस
(महा० १।१३।१७)

वीरुध (२००।७ उक्त०) लता-

विशेष

वेडिका (२१७।१ उक्त०) : छोटी
नाव

वेत्ताल (२१।७) : भूताविष्ट मृतक
शरीर

वेदण्ड (२९१।५) : हाथी

वेल्लिकः (१९८।६ उक्त०) : बालक,
सोमदेव ने भीलो के बालको को
'विलात वेल्लिकाः' कहा है ।

वेत्तावनम् (२२१।४) . समुद्रतट के
वगीचे

वेसरः (१८६।३ उक्त०) . श्रुतसागर
ने इसका अर्थ द्विशरीर किया है ।

वेहा (१८६।२) गर्भ गिर गयी गाय
को 'वेहा' कहते हैं ।

वैकक्ष्यम् (२४।६ उक्त०) दुपट्टा,
ओढने का चादर

वैकक्षकः (३९६।५) दुपट्टा, ओढने
का चादर

वैवडवतः (२१६।६ उक्त०) यम
(रामा, १५।४५)

वैशिकम् (२६।१ उक्त०) . माया,
छल

इवेतपिंगलः (१८६।७ उक्त०) विह
श्यामाक (४०६।४) साँवा (शाकु०-
४।१३) ।

शकुल (४४०।७) . मत्स्य, मछली
सोमदेव ने इसके शकुल और शकुलि
दो रूपों का प्रयोग किया है (२४७।१
उक्त०) ।

शतमखः (३६४।५) इन्द्र (कुमार०-
२।६४, २धु० ९।१३) ।

शर्करिल्ल (५२।९ उक्त०) . रेतीला
प्रदेश

शरमासुतः (१८७।८ उक्त०) कृत्ता
शष्कुलि (५१२।९) . कचौढी
शल्लक (२००।४ उक्त०) : सेही
नामक जंगली पशु । इसके सारे शरीर
में बड़े बड़े काटे होते हैं ।

शम्भली (१८८।७ उक्त०) दासी
शंभुः (३४६।२) : सुख देने वाला
शंसितव्रतः (४०८।६) . श्रुतसागर
ने इसका अर्थ दिग्म्बर किया है ।
मनुस्मृति (१।१०४) में लिखा है कि
उसका अध्ययन करने वाला ब्राह्मण
कहलाता है ।

शिखामणीयमान (४५४।२) . शिर
के मणि की तरह होता हुआ ।

शिपिविष्टः (सहाराविष्ट शिपिविष्ट
इव, १४७।४) महादेव

शिवप्रिय. (१९५।५ उक्त०) घटूरा
वृक्ष

शिशुमारः (२१४।६ उक्त०) : मगर
(महा० १।८५।१६) ।

शुचि (४०८।३) अग्नि

शुनीसूनुः (१९०।८।उक्त०) : कृत्ता

शूर्पकाराति (४१।४) कामदेव,
कामदेव के लिए शूर्पकाराति शब्द
कुषाण युग में प्रचलित हो गया था ।

बुद्धचरित तथा सौन्दरानन्द में शूर्पक
नामक मछुये की कहानी का उल्लेख
है । वह पहले काम से अविजित था
पर बाद में कुमुद्वती नामक राज-
कुमारी की प्रार्थना पर कामदेव ने

अपने वश में करके राजकुमारी को
सौंप दिया ।

शेषा (शेषाया तन्दुला करे, ४१६।८).
आशीर्वाद

श्रायसम् (७०।५ उक्त०) : कल्याणप्रद
(पाणिनि)

श्रीफल (४५९।४) : विल्व वृक्ष

स्तभः (१५०।७) . बकरा

स्थानम् (७०।२) . गजशाला

सकुटीः (सकुटीच्छुटिता घोटिकेव,
५३।३ उक्त०) . अन्नशाला

सत्रम् (१९९।५) : दानशाला

समयः (५२।२) . शास्त्र

समर्थस्थानम् (१९५।२ उक्त०) :
आश्रम

समांसमीना (१८६।१) प्रतिवर्ष
ब्याने वाली गाय ।

सर्वकषः (१४२।६) : यम

सलिलतूलिका (५२९।५) : जलशय्या,
पानी के बीच में बनाया गया
शयनस्थान ।

सवनगृहम् (५०७।४) . स्नानघर

संधिनी (१८६।२) गर्भिणी होने के
बाद वृषभाक्रान्त गौ ।

संवरः (२०६।४ उक्त०) . शृग वृक्ष

संवाहकः (४०३।५) : तेल मालिश
करनेवाला ।

संस्थपति (२८९।१) वास्तु-विद्या
विशेषज्ञ

संस्थित (१५०।६) मृत

संसर्गविद्या (२०२।३) श्रुतसागर
ने इसका अर्थ भरतशास्त्र किया है ।

संस्कृत कोषो में (मो० वि०) समाज विज्ञान अर्थ दिया है ।

सागरः (३४९।२) : अश्व

सामजः (४८५।५) : गज, सोमदेव ने गज के लिए सामज शब्द का प्रयोग कई बार किया है ।

सावित्रः (४६६।१) सूर्य
सारणी (५२५।३) : कृत्रिम नदी, नहर

सारसनम् (१५०।६) करघनी

सारंग (३४९।३) : गज

सालूर (१४४।२) : मँढक

सिचय (१९।१) : वस्त्र

सिताम्बुजम् (२११।९) . सफेद कमल

सिद्धार्थक (२२।९) : पीला सरसो

सिद्धादेशः (२।१०) सिद्ध पुरुष का कथन

सिद्धायः (४२७।४) : कर

सिन्धुरद्विपः (५२४।१) सिंह

सुदर्शना (१९४।५ उक्त०) इस नाम की औषधि

सुवर्णः (५३।३) स्वर्ण, राजकुल

सुव्रता (१८६।२ उक्त०) सहज दुहने वाली गाय ।

सुविदत्रम् (मुविदश्वस्तुव्यस्तहस्तै , ३२४।५) मागलिक वस्तु

सुधा (३५२।८) . जल

सूतिकासद्य (२२६।७) : प्रसूति गृह
सुरवारणः (२४५।८ उक्त०) : ऐरावत हाथी

सुरसुरभिः (१८५।८ उक्त०) : कामवेनु

सूनाकृत (सूनाकृतो गृहमुपेत्य ससार-मेयम्, ४१५।७) . श्रुतसागर ने इसका अर्थ खाटकित् किया है । आजकल खटोक कहते हैं ।

सोभाजन (४०५।४) . सहजन वृक्ष
सोमम् (१९६।३ उक्त०) हरीतिकी नामक औषधि, हरड

सौखशायनिकः (३६६।५) . सुख शयन की बात पूछने वाला ।

सौरभेयः (६८।२) वैल

सौवस्तिकः (४५२।१०) पुरोहित

हरिणः (१८२।३) : स्वर्ग

हरितवाहवाहनः (८५।१) : सूर्य

हरिहस्तिन् (१२।५ उक्त०) ऐरावत (इन्द्रका हाथी)

हल्लः (सोल्लासहल्लानना , २२७।३) : आशीर्वाद देने वाला

हल्लम् (१३।४) मित्र, हल

हल्लम् (२९६।५) पैरो की अँगुलियाँ

हंसायित (१२८।७) . हंस के समान आचरण

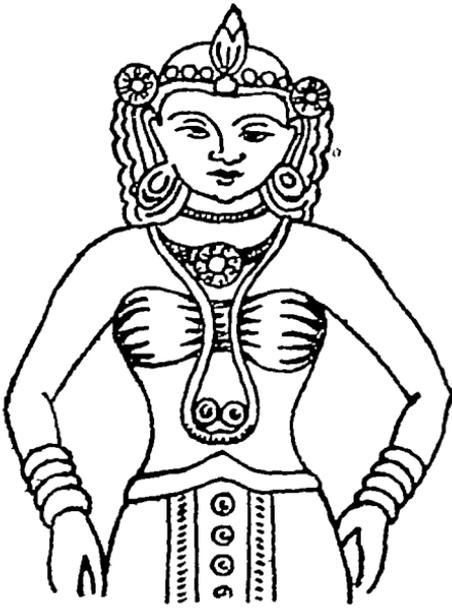
हिंजीरकम् (६१७।१०) . नूपुर

चित्र फलक

फलक 9

चित्र सख्या

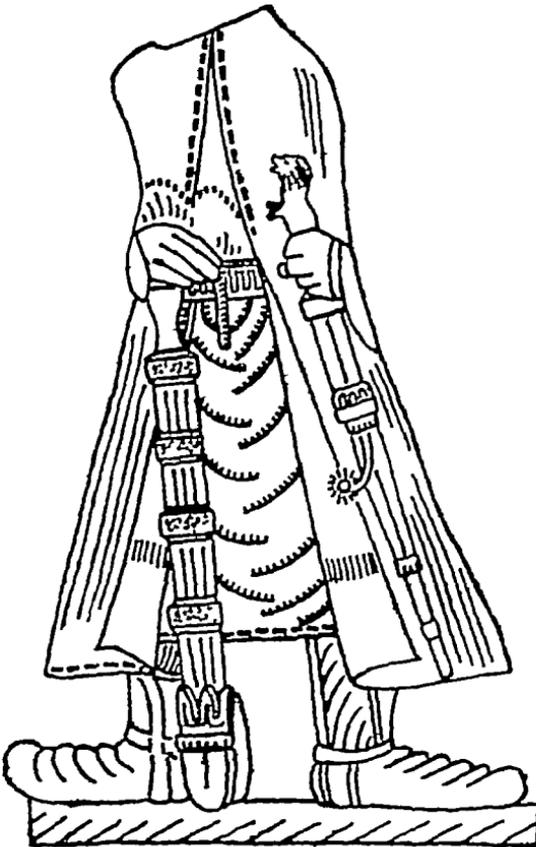
१. कचुक (पृ० १३१) कचुक या चोली पहने श्रीकठ जनपद (धानेश्वर) को स्त्री । (अहिच्छत्रा के खिलौने, सख्या ३०७)
२. चोलक (क) (पृ० १३३) मथुरा से प्राप्त कनिष्क की मूर्ति में खुले गले का चोलक ।
३. चोलक (ख) (पृ० १३३) मथुरा से प्राप्त चण्डन की मूर्ति में तिकोनिया गले का चोलक ।
४. चण्डातक (क) (पृ० १३४) चण्डातक पहने चामरधारणी परिचारिका (औष कृत अजन्ता फलक ७३)
५. चण्डातक (ख) (पृ० १३४) चण्डातक पहने लक्ष्मी । (अमरावती स्कल्पचर्च, फलक ४, चित्र २९)



१ कचुक



३ चोलक (ख)



२ चोलक (क)



४ चण्डातक (क)



५ चण्डातक (ख)

फलक २

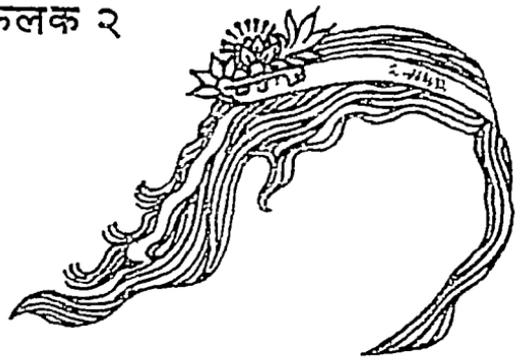
चित्र सख्या

७. उष्णीष . (पृ० १३५) भरहुत, साँची तथा अमरावती की कला में अकित विभिन्न प्रकार के उष्णीष (क से घ तक) । (अमरावती० फलक ७)
- ७ पट्टिका . (पृ० १३५) मस्तक पर अंशुक नामक रेशमी वस्त्र की उष्णीष पट्टिका । (अजन्ता फलक २८)
- ८ कौपीन : (पृ० १३५) कौपीन पहने तापस । (अमरावती० फलक ९, चित्र १)
- ९ चीवर . (पृ० १३६) चीवर पहने बौद्ध भिक्षु । (वही, चित्र १४)
१०. उत्तरीय . (पृ० १३५) तरंगित उत्तरीय । (देवगढ़ गुप्तकालीन मंदिर की मूर्ति से)

फलक २



६ उष्णीष (क)



७ पट्टिका



(ख)



८ कौपीन



९ चीवर



(ग)



१० शशी



(घ)

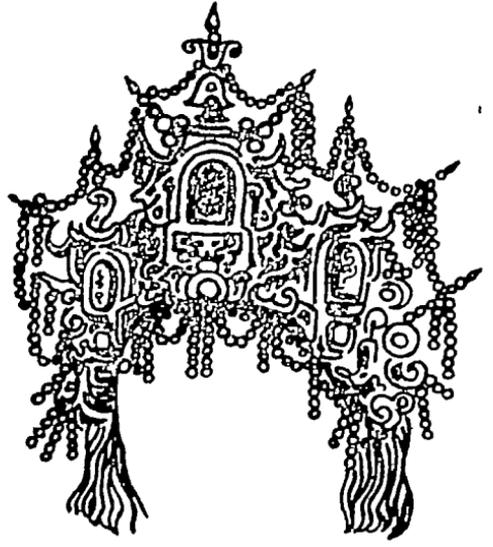
फलक ३

चित्र सख्या

- ११ किरीट (पृ० १४०) किरीट धारण किये इन्द्र । (अमरावती० फलक ७, चित्र ८)
- १२ मुकुट (पृ० १४१) अजन्ता गुफा १ में वज्रपाणि । बोधिसत्त्व के चित्र में अकित मुकुट । (अजन्ता, फलक ७८)
- १३ अवतस (पृ० १४१) नीले कमल का बना अवतस । (अमरावती० फलक ८, चित्र २०)
- १४ कर्णिका (पृ० १४३) पुष्प की पखुडियो को ऊपर की ओर मोडकर बनाये गये अवतस । (वही, फलक ७, चित्र १८)
- १५ कर्णपूर (पृ० १४२) पत्राकुर का कर्णपूर । (अजन्ता फलक ३३)
- १६ कर्णोत्पल . (पृ० १४३) खुली पखुडियो वाला कर्णोत्पल । (वही)
- १७ कुण्डल . (पृ० १४४) गोल आकार का कुण्डल । (वही), दोहरी लडी तथा वाली युक्त कुण्डल । (चित्र १५)
- १८ एकावली (पृ० १४४) अजन्ता गुफा १ में वज्रपाणि बोधिसत्त्व के चित्र में मध्यमणि से युक्त एकावली । (वही, फलक ७८)
१९. कठिका (पृ० १४६) गले में कण्ठी पहने लक्ष्मी । (अमरावती० फलक ४, चित्र २९)



११ किरिट



१२ मुकुट



१३ अवतस



१४ कर्णिका



१५ कर्णपूर



१६ कर्णोत्पल



१७ कुण्डल



१८ एकावली



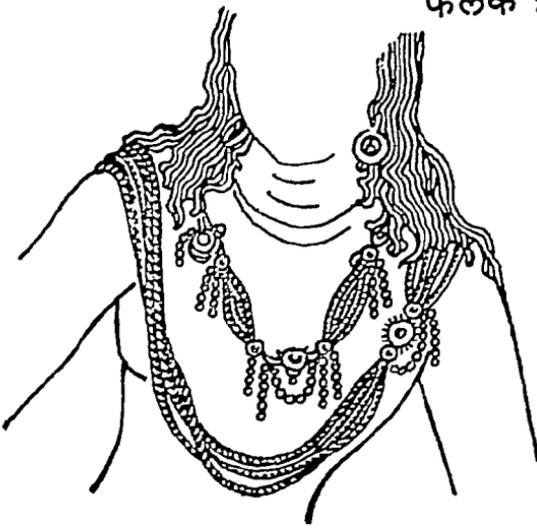
१९ कण्ठिका

फलक ४

चित्र सख्या

- २० हार (पृ० १४६) वज्रपाणि बोधिसत्त्व के चित्र में अंकित हार । (अजन्ता फलक ७८)
२१. हारयष्टि (पृ० १४६) हारयष्टि या इकहरी माला । (अमरावती० फलक ८, चित्र ६)
- २२ अगद और केयूर (पृ० १४७) अगद और केयूर नामक भुजा के आभूषण । वही, चित्र ७-८)
२३. ककण (पृ० १४७) ककण नामक कलाई का आभूषण । (वही, चित्र ९, ११)
- २४ वलय (पृ० १४७) वलय नामक कलाई का आभूषण । (वही, चित्र १५)
२५. मेखला (पृ० १४९) मेखला नामक करघनी जिसे पहनकर चलने से आवाज होती थी । (वही, चित्र २६)
२६. रसना (पृ० १४९) दोहरी लडो की रसना । (वही, चित्र २८)
- २७ काची : (पृ० १४८) इकहरी लडो की ढोली-ढाली करघनी या काची । (वही, चित्र ३४)
- २८ घर्घरमालिका (पृ० १५०) घर्घरमालिका नामक करघनी । (वही, चित्र २७)
- २९ हिंजीरक (पृ० १५०) हिंजीरक नामक आभूषण । (वही, चित्र १७, १८)
- ३० मजीर (पृ० १५०) मंजीर नामक आभूषण जिसमें भीतर चादी के ककड भरे रहते थे जिससे चलते समय आवाज होती थी । (वही, चित्र १९)
- ३१ नूपुर (पृ० १५०) थाली में नूपुर लिये परिचारिका । अलक्तक मण्डन समाप्त हो तो नूपुर पहनाये । (अमरावती० फलक ९, चित्र १८)
- ३२ ह्मक (पृ० १५१) ह्मक नामक पैर का आभूषण । (द्वर्पचरित० फलक ९, चित्र ३८)

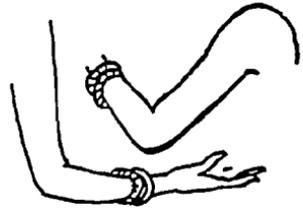
फलक ४



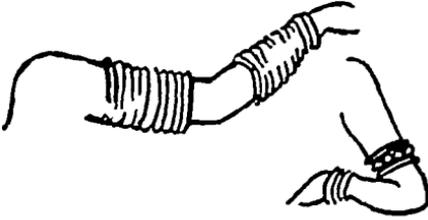
२० हार



२१ हारयष्टि



२३. ककण



२२ अगद और केयूर



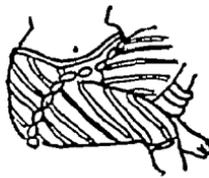
२४. वलय



२५ मेखला



२६. रसना



२७. काची



२८. घर्घरमालिका



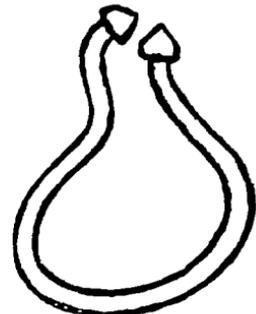
२९ हिजीरक



३० मजीर



३१ तूपुर



३२ हसक

फलक ५

चित्र फलक

- ३३ अलकजाल (पृ० १५३) राजघाट (काशी) से प्राप्त एक मृण्मूर्ति । (कला और सस्कृति पृ० २४७)
- ३४ मौलि (पृ० १५६) चूर्ण विशेष द्वारा घुँघराले बनाये गये वालो की त्रिविभक्त मौलिवद्ध केश रचना । (वही पृ० २५१)
- ३५ केगपाग (पृ० १५४) पत्र और पुष्प मजरी से सजा कर मुकुट की तरह बाँधे गये केश । (वही पृ० २५१)
- ३६ कुन्तलकलाप (पृ० १५३) मोर की पूँछ के अग्रभाग की तरह सँभारे गये कुन्तल । (वही पृ० २४८)
- ३७ वेणिदण्ड (पृ० १५७) वेणिदण्ड या इकहरी चोटी । अमरावती० फलक ८, चित्र २३)
- ३८ जूट (पृ० १५०) जूट या जूडा । (अमरावती० फलक ९, चित्र २)
- ३९ घम्मिल : (पृ० १५५) एक विशेष प्रकार का घम्मिल । (वही, फलक ९, चित्र ३)

फलक ५



३३ अलकजाल



३४ मौलि



३५ केशपाश



३६ कुन्तलकलाप



३७ वैणिदण्ड



३८ जूट



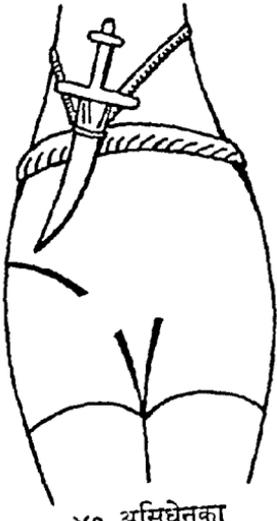
३९ घम्मिल

फलक ६

चित्र सख्या

४०. असिधेनुका (पृ० २०३) कमर की पेटी में खोसी हुई असिधेनुका सहित पदाति युवक । अहिच्छत्रा से प्राप्त गुप्तकालीन मिट्टी की मूर्ति । (हर्षचरित० फलक २ चित्र १२)
- ४१ कर्तरी (पृ० २०४) कर्तरी नामक एक विशेष प्रकार की छोटी छुरी । (अमरावती० फलक १०, चित्र २)
- ४२ कटार . (पृ० २०५) दोनों ओर मुँहवाली नुकीली कटार । (अमरावती० फलक १०, चित्र ६)
- ४३ अशनि (पृ० २०७) इन्द्राणो की मूर्ति के हाथ में स्थित अशनि या वज्र । (भारत कला भवन, वाराणसी)
- ४४ अकुश . (पृ० २०९) गज के मस्तक पर प्रहार किया जाता अकुश ।
- ४५ कोदण्ड (अ) (पृ० २००) लपेटा हुआ कोदण्ड । (अमरावती० फलक १०, चित्र ४)
- ४६ कोदण्ड (ब) . (पृ० २००) चढाया हुआ कोदण्ड । (वही, चित्र ११)
- ४७ गदा (अ) . (पृ० २१३) बड़े आकार की गदा । (वही, चित्र १५)
- ४८ गदा (ब) (पृ० वही) छोटे आकार की गदा । (वही, चित्र १८)
- ४९ त्रिशूल (अ) . (पृ० २१७) प्रहार किया जाता त्रिशूल । (वही, चित्र १४)
- ५० त्रिशूल (ब) (पृ० वही) हाथ में स्थित त्रिशूल । (वही, चित्र १६)
- ५१ दण्ड (पृ० ११४) हाथ में दण्ड या ढण्डा लिये प्यादा । अहिच्छत्रा से प्राप्त मिट्टी की मूर्ति सख्या १९३ । (हर्षचरित० फलक १७ चित्र ६१)
५२. प्रास : (पृ० २११) (अमरावती फलक १०, चित्र १)

फलक ६



४०. असिधेनुका



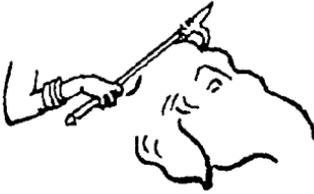
४१ कर्तरी



४२ कटार



४३ अशानि



४४ अकुश



४५ कोदण्ड (अ)



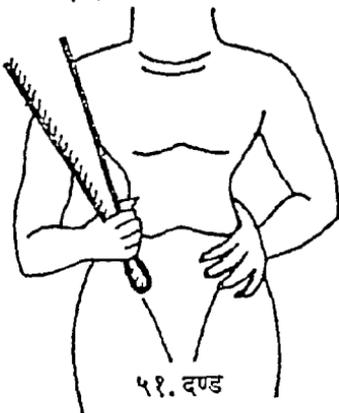
४६. कोदण्ड (ब)



४७ गदा (अ)



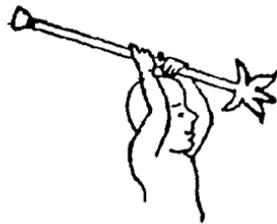
४८ गदा (ब)



५१. दण्ड



५२ प्रास



४९ त्रिशूल (अ)



५० त्रिशूल (ब)

फलक ७

चित्र सख्या

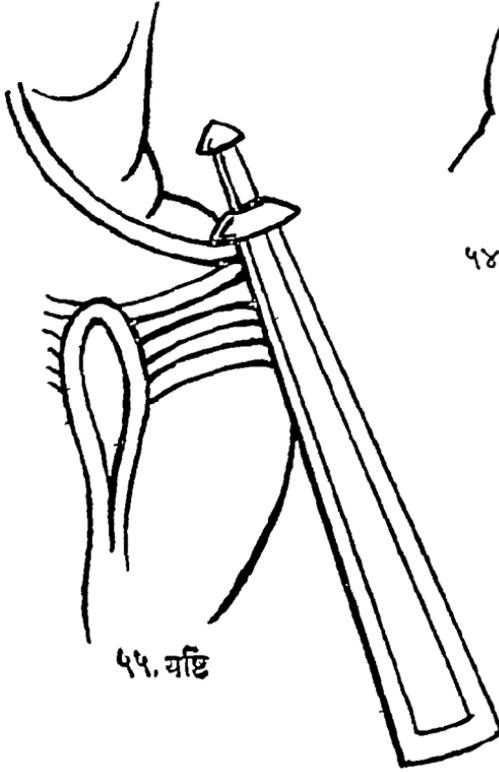
५३. भस्त्रा या नाराचपजर (पृ० २०३) भस्त्रा या घौकनीनुमा तरकश ।
(हर्षचरित० फलक १८, चित्र ३)
- ५४ कुठार . (पृ० २११) कुठार या परशु । (अमरावती० फलक १०, चित्र ३)
- ५५ यष्टि (पृ० २१६) यष्टि या असियष्टि को कमरमें लटकाये हुआ सैनिक ।
(अमरावती० फलक १०, चित्र ८)
- ५६ पाश . (पृ० २१८) श्री जी० एच० खरे कृत मूर्तिविज्ञान, फलक ९४,
चित्र ३०)
- ५७ वागुरा . (पृ० २१८) अहिच्छत्रा से प्राप्त सूर्य मूर्ति पर अकित पार्श्वचर
के हाथ में वागुरा या कमन्द । (चित्र ९७)



५३ भस्त्रा या नाराचपजर



५४. कुठार



५५. यष्टि



५६. पाश



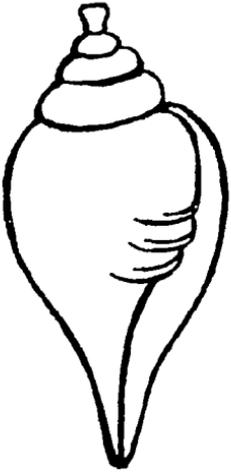
५७ वागुरा

फलक ८

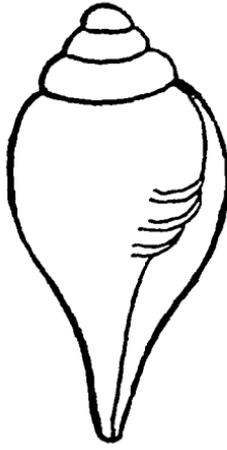
चित्र सख्या

- ५८ शख (क) (पृ० २२५) मुख पर बजाने के लिए कलश लगा हुआ शख ।
(ब्रजमाधुरी फलक १, चित्र ८)
- ५९ शख (ख) . (पृ० २२५) वाद्य योग्य शख । (वही, चित्र १०)
- ६० दुदुभि . (पृ० २२७) दुदुभि नामक अवनद्ध वाद्य । (वही, फलक ३,
चित्र १२)
- ६१ ढक्का (पृ० २२८) ढक्का या ढोल । (वही, चित्र ७)
- ६२ ताल : (पृ० २२९) ताल की जोड़ी । (वही, फलक ४, चित्र १२)
- ६३ डमरुक . (पृ० २६०) डमरुक या डमरू । (वही, फलक ३, चित्र १३)
- ६४ वल्लकी (पृ० २३२) वल्लकी या एक विशेष प्रकार की वीणा । (वही,
फलक १, चित्र १)
६५. डिण्डिम (पृ० २३४) डिण्डिम या डिमडिमी । (वही, फलक ३, चित्र ९)
- ६६ करटा (पृ० २३०) करटा नामक अवनद्ध वाद्य । (वही, फलक ३,
चित्र ६)
- ६७ रुजा . (पृ० २३१) रुजा नामक वाद्य की जोड़ी । (वही, फलक ३,
चित्र १३)

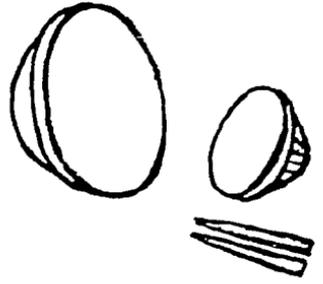
फलक ८



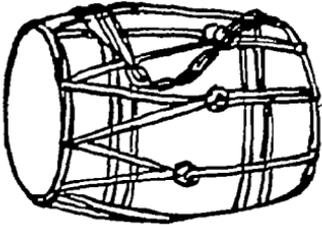
५८. शख (क)



५९. शख (ख)



६०. दुदुभि



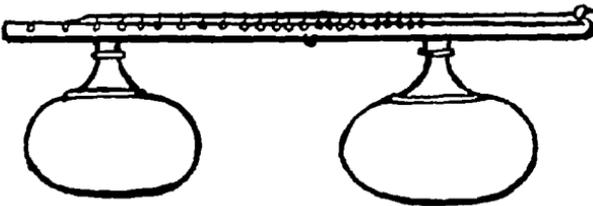
६१. ढोल



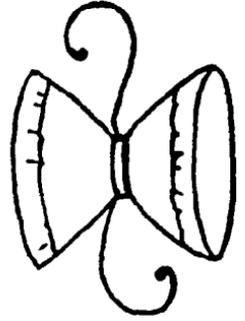
६२. ताल



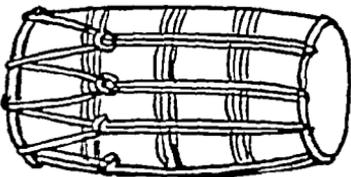
६३. डमरुक



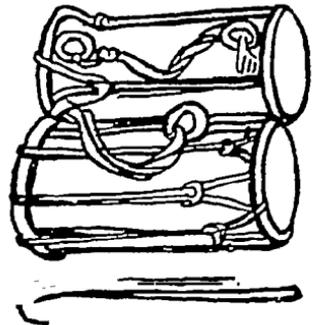
६४. वल्लकी



६५. डिण्डिम



६६. करटा



६७. रजा

फलक ९

चित्र संख्या

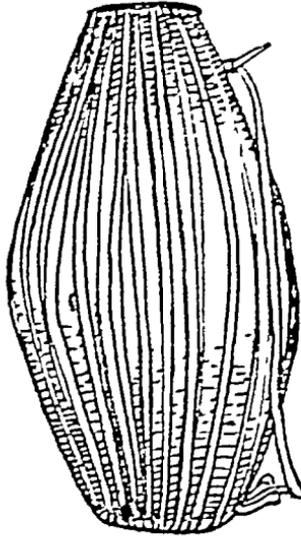
- ६८ वेणु (पृ० २३१) वेणु या वासुरी । (ब्रजमाधुरी, फलक २, चित्र १)
- ६९ तूर (पृ० २३३) तूर या तुरही । (कलकत्ता संग्रहालय, ७६)
- ७० मृदग (पृ० २३३) मृदग या मर्दल । (वही, २७९)
- ७१ घण्टा (अ) (पृ० २३१) बडा घण्टा । (वही, १८५)
७२. घण्टा (ब) (पृ० २३१) छोटा घण्टा । (वही, १८३)
- ७३ आनक (अ) (पृ० २२८) आनक या नगाडा । (वही २०४)
- ७४ आनक (ब) (पृ० २२८) एक अन्य प्रकार का आनक या नौवत ।
(वही २०४)
- ७५ भेरी (पृ० २३३) भेरी नामक अवनद्ध वाद्य । (वही २६६)

चित्रों के रेखाकन के लिए मैं श्री वीरेश्वर बनर्जी तथा श्री कर्णमान सिंह का आभारी हूँ ।





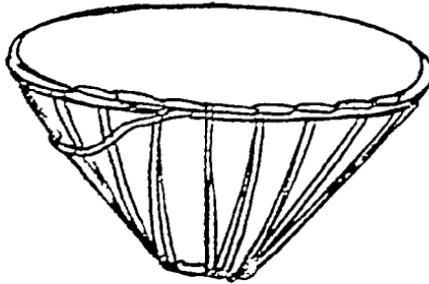
६९ तूर



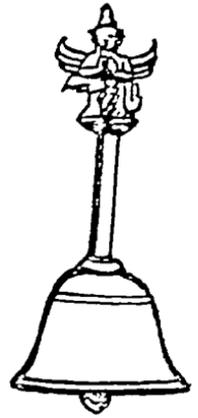
७०. मृदंग



७१. घटा (अ)



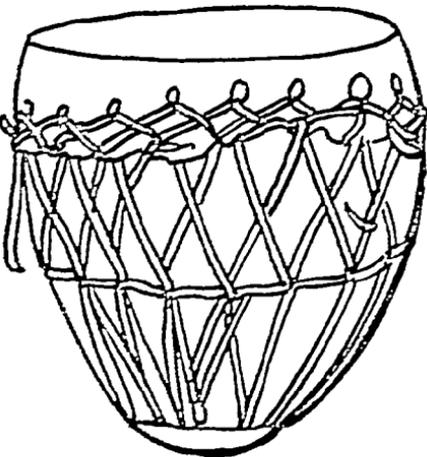
७३ आनक (अ)



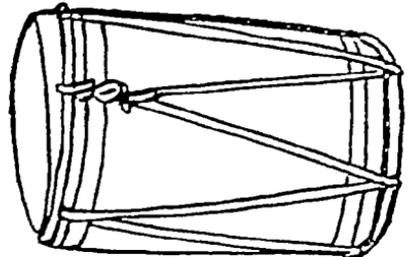
७२ घटा (ब)



६८ वेणु



७४. आनक (ब)



७५ मेरी

सहायक ग्रन्थ-सूची

यशस्तिलक के संस्करण और अध्ययन ग्रन्थ

- [१] यशस्तिलक पूर्व खण्ड, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९०१
 [२] यशस्तिलक उत्तर खण्ड, ,, ,, १९०३
 [३] यशस्तिलक पूर्व खण्ड (द्वि० स०) ,, ,, १९१६
 [४] यशस्तिलक एण्ड हृदयन कलचर (अंगरेजी), जीवराज जैन ग्रन्थमाला,
 सोलापुर, १९४९
 [५] यशस्तिलकचम्पूमहाकान्यम् पूर्वार्ध (संस्कृत-हिन्दी), महावीर जैन ग्रन्थ-
 माला, वाराणसी, १९६०
 [६] उपासकाध्ययन (संस्कृत-हिन्दी), भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, १९६४

पाण्डुलिपियाँ

- [७] यशस्तिलक, भडारकर ओरियंटल रिसर्च इस्टीट्यूट, पूना
 [८] यशस्तिलक, दि० जैन तेरह पथियो का बडा मंदिर, जयपुर
 [९] यशस्तिलक पंजिका, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी द्वारा करायी गयी हस्तलिपि

प्राचीन ग्रन्थ

- [१०] अर्थशास्त्र (संस्कृत) - श्री गणपति शास्त्री की व्याख्या सहित, भावन-
 कोर, १९२१-१९२५ (भाग १-३)
 [११] अन्तःकृतदशा (प्राकृत-हिन्दी) - श्री भमोलक ऋषि द्वारा अनुवादित
 [१२] अनेकार्थं संग्रह (संस्कृत) - चौखम्भा संस्कृत सोरिज, वाराणसी, १९२९
 [१३] अपराजितपृच्छा (संस्कृत) - गायकवाड ओरियंटल सोरिज, बडोदा,
 १९५०
 [१४] अभिधानचिन्तामणि (संस्कृत), भाग १-२ - यशोविजय जैन ग्रन्थमाला,
 भावनगर, वी० नि० स० २४४१, २४४६
 [१५] अभिज्ञानशाकुन्तलम् (संस्कृत) - निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९२६
 [१६] अमरकोष (नामलिङ्गानुशासन) (संस्कृत) - ओरियंटल बुक एजेंसी,
 पूना, १९४१
 [१७] अमरुशतक (संस्कृत) - निर्णयसागर प्रेस, बम्बई १९२९

- [१८] अश्वशास्त्र (संस्कृत) - सरस्वती महल लायब्रेरी, तंजोर, १९५२
- [१९] अष्टाध्यायी (संस्कृत) - चौखम्भा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, १९३०
- [२०] आचारांग (प्राकृत हिन्दी) - श्री अमोलक ऋषि द्वारा अनुवादित
- [२१] आचारांग त्रुणि (प्राकृत) - ऋषभदेव केसरीमल, रतलाम, १९४१
- [२२] उत्तररामचरित (संस्कृत) - निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९३०
- [२३] कल्पसूत्र (प्राकृत) - सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जोधपुर
- [२४] कर्पूरमंजरी (प्राकृत) - कलकत्ता विश्वविद्यालय, कलकत्ता, १९४८
- [२५] कादम्बरी (संस्कृत) - निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, (अष्टम सं०) १९४०
- [२६] कामसूत्र (संस्कृत), भाग १-२ - लक्ष्मी वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बम्बई
वि० संवत् १९२१
- [२७] काव्यप्रकाश (संस्कृत-हिन्दी) - चौखम्भा संस्कृत सीरिज, वाराणसी,
१९५५
- [२८] किरातार्जुनीय (संस्कृत) - चौखम्भा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, वि० सं०
१९९६
- [२९] काव्यादश (संस्कृत-हिन्दी) - ब्रजरत्नदास द्वारा संपादित, वाराणसी,
वि० संवत् १९८८
- [३०] कुमारसंभव (संस्कृत) - निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९३५
- [३१] कुत्रलयमाला (प्राकृत) - भारतीय विद्याभवन, बम्बई, १९५९
- [३२] गजशास्त्र (संस्कृत) - सरस्वती महल लायब्रेरी, तंजोर, १९५८
- [३३] गीतगोविन्द (संस्कृत) - मास्टर खेलाडीलाल एण्ड सन्स, वाराणसी
- [३४] गोम्मटसार, भाग १-२ (प्राकृत) - रायचन्द्रजैन ग्रन्थमाला, बम्बई,
१९२७-२८
- [३५] चरकसंहिता (संस्कृत) - चौखम्भा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, वि० सं०
१९९५
- [३६] जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, भाग १-२ (प्राकृत) - सेठ देवचन्द लालभाई जैन,
बम्बई, १९२०
- [३७] जसहरचरित (अपभ्रंश) - अम्बादास चवरे दि० जैन ग्रन्थमाला कारंजा,
बरार, १९३१
- [३८] तत्त्वानुशासनादिसंग्रह (संस्कृत) - माणिकचन्द्र जैन ग्रन्थमाला, बम्बई
- [३९] दशरूपक (संस्कृत) - निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९२८
- [४०] द्वयाश्रयकाव्य, भाग १-२ (संस्कृत-प्राकृत) - निर्णयसागर प्रेस, बम्बई,
१९१५, १९२१

सहायक ग्रन्थ सूची

- [४१] दीघनिकाय (पाली) - वाम्बे युनिवर्सिटी पब्लिकेसन्स, १९४२
- [४२] नल्लचम्पू (संस्कृत) - चौखम्भा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, १९३२
- [४३] नागानन्द (संस्कृत) - चौखम्भा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, १९३१
- [४४] नाट्यशास्त्र, भाग १-२-३ (संस्कृत) - गायकवाड ओरियंटल सीरिज, बडोदा, १९३४, १९५४, १९५६
- [४५] नाममाला (संस्कृत) - जैन साहित्य प्रसारक कार्यालय, बम्बई, वी० नि० सं० २४६३
- [४६] नायाधम्मकहा (प्राकृत-हिन्दी) - श्री अमोलक ऋषि-द्वारा अनुवादित
- [४७] नीतिवाक्यामृत (संस्कृत) - माणिकचन्द्र जैन ग्रन्थमाला, बम्बई, वि० सं० १९७९
- [४८] नैषधचरित्र (संस्कृत) - निर्णयसागर प्रेस, बम्बई १९३३
- [४९] पद्ममावत (हिन्दी) - साहित्य सदन, चिरगाव (झाँसी), वि० सं० २०१२
- [५०] पद्मपुराण (संस्कृत-हिन्दी), भाग १-२ ३ - भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, १९५८, १९५९
- [५१] प्रश्नव्याकरणसूत्र (प्राकृत) - मुक्तिविमल जैन ग्रन्थमाला, अहमदाबाद, वि० सं० १९९५
- [५२] प्रामादमंडन (संस्कृत) - प० भगवानदास जैन द्वारा संपादित, जयपुर, १९६१
- [५३] भगवतीसूत्र (प्राकृत-हिन्दी) - श्री अमोलक ऋषि द्वारा अनुवादित
- [५४] मष्टिकाव्य (संस्कृत-हिन्दी), भाग १-२ - चौखम्भा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, १९५१
- [५५] भावप्रकाश (संस्कृत-हिन्दी), भाग १-२ - चौखम्भा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, १९३८, १९४१
- [५६] मनुस्मृति (संस्कृत) - चौखम्भा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, १९३५
- [५७] महापुराण (संस्कृत), भाग १-२-३ - भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, १९५१, १९५४
- [५८] महापुराण (अपभ्रंश), भाग १-२-३ - माणिकचन्द्र जैन ग्रन्थमाला, बम्बई, १९३७, १९४०
- [५९] महाभारत (संस्कृत) - चित्रशाला प्रेस, पूना
- [६०] मानसोल्लास (संस्कृत) - दी सेन्ट्रल लायब्रेरी, बडोदा, १९२५
- [६१] मालतीमाधव (संस्कृत) - निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९२६
- [६२] मालविकाग्निमित्र (संस्कृत) - निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९३५

- [६३] मेघदूत (संस्कृत) - चौखम्भा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, १९४०
- [६४] मृच्छकटिक (संस्कृत-हिन्दी) - चौखम्भा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, १९५४
- [६५] याज्ञवल्क्यस्मृति (संस्कृत) - निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९३६
- [६६] रघुवश (संस्कृत) - निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९२५
- [६७] रामायण (वाल्मीकिकृत, संस्कृत) - मद्रास ला जर्नल प्रेस, १९३३--
- [६८] रायसेणियसुत्त (प्राकृत) - श्री अमोलक ऋषि द्वारा अनुवादित
- [६९] वर्णरत्नाकर (मैथिली) - रायल एसियाटिक सोसाइटी ऑफ् बेंगाल, कलकत्ता, १९४०
- [७०] वरागचरित (संस्कृत) - माणिकचन्द्र जैन ग्रन्थमाला, बम्बई, १९३८
- [७१] बृहत्सत्रय भू सत्रोत्र (संस्कृत-हिन्दी) - धीर सेवा मन्दिर, दिल्ली
- [७२] वास्तुसारप्रकरण (संस्कृत) - प० भगवानदास जैन द्वारा सम्पादित, जयपुर, १९३६
- [७३] विक्रमोर्वशीयम् (संस्कृत) - चौखम्भा संस्कृत सीरिज, वाराणसी
- [७४] विश्वलोचनकोष (संस्कृत) - निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९१२
- [७५] समरागण सूत्रधार (संस्कृत) - गायकवाड ओरियंटल सीरिज, बडोदा, १९२४
- [७६] समराइच्चकहा (प्राकृत), भाग १-२ - रायल एसियाटिक सोसायटी ऑफ् बंगाल, १९२६, द्वि० स०
- [७७] संगीत पारिजात - हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, १९६३
- [७८] संगीत रत्नाकर - अडयार लायब्रेरी, १९५१
- [७९] संगीतराज - संगीत कार्यालय, हाथरस, १९४१
- [८०] साहित्यदर्पण - निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९३६
- [८१] सूत्रधारमदन का देवतामूर्तिप्रकरणम् (संस्कृत) - मेट्रोपोलिटन पब्लि० हाउस, कलकत्ता, १९३६
- [८२] सौन्दरानन्द (संस्कृत) - रायल एसियाटिक सोसायटी ऑफ् बेंगाल, १९३९
- [८३] शतपथब्राह्मण (संस्कृत) - अच्युत ग्रन्थमाला कार्यालय, काशी, वि० स० १९९४, १९९७ भाग १-२
- [८४] शब्दरत्नाकर (संस्कृत) - यशोविजय जैन ग्रन्थमाला, वि० नि० स० २४३९
- [८५] शिशुपालवध (संस्कृत) - चौखम्भा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, १९२९
- [८६] शृंगारशतक (शतकत्रयम् के अन्तर्गत) (संस्कृत) - भारतीय विद्याभवन, बम्बई, १९४६

सहायक ग्रन्थ-सूची :

- [८७] हरिवंशपुराण (संस्कृत हिन्दी) - भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, १९६३.
[८८] हस्त्यायुर्वेद (संस्कृत) - आनन्दाश्रम, पूना
[८९] हर्षचरित (संस्कृत) - निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९१२, तृ० सं०
[९०] ऋग्वेद (संस्कृत) स्वाध्याय मण्डल, ऑंध्र, १९४०

आधुनिक ग्रन्थ और शोध-निबन्ध

- [९१] आयने अकधरी, भाग १-३ - रायल एशियाटिक सोसायटी ऑव् बेंगाल,
१९२७, १९४८, १९९४
[९२] गाइड टू द म्यूजिकल इन्स्ट्रूमेन्ट इन द इंडियन म्यूजियम, कलकत्ता,
१९१७
[९३] द एज ऑव् इम्पीरियल कलोज - भारतीय विद्यामवन, १९५५
[९४] वैदिक इन्डेक्स, १-२ - मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, १९५८
[९५] अग्रवाल, वासुदेवशरण - कला और संस्कृति, साहित्य-भवन लि०
इलाहाबाद, १९५२
[९६] ,, काठम्भरी एक सांस्कृतिक अध्ययन - चौखम्भा विद्यामवन,
वाराणसी, १९५८
[९७] ,, पाणिनिकालीन भारतवर्ष - मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी,
वि० सं० २०१२
[९८] ,, हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन - बिहार राष्ट्रभाषा परिषद,
पटना, १९५३
[९९] ,, क्रांतिरूपा - साहित्य सदन, चिरगाँव, छाँसी, १९६३
[१००] अत्रिदेव विद्यालकार - प्राचीन भारत के प्रसाधन - भारतीय ज्ञानपीठ,
वाराणसी
[१०१] अल्तेकर, अनन्त सदाशिव - राष्ट्रकूटाज एण्ड देयर टाइम्स-ओरियण्टल
बुक एजेंसी, पूना, १९३४
[१०२] आष्टे - संस्कृत-अँगरेजी डिक्शनरी (परिवर्धित संस्करण) - प्रसाद
प्रकाशन, पूना
[१०३] ओमप्रकाश - फूड एण्ड ड्रिंक इन ऐशियन्ट इण्डिया - मुशीराम मनो-
हरलाल, दिल्ली, १९६१
[१०४] कनिष्क - ऐशियन्ट ज्योग्राफी ऑव् इण्डिया, कलकत्ता १९२४
[१०५] कासलीवाल, कस्तूरचन्द्र - प्रशस्ति समग्र-अतिशय क्षेत्र, श्री महावीरजी,
जयपुर

- [१०६] कासलीवाल, कस्तूरचन्द्र - राजस्थान के शास्त्र मण्डारों की सूची, भाग १-२-३-४, जयपुर
- [१०७] के० भुजबली शास्त्री - कन्नड प्रान्तीय ताडपत्रीय ग्रन्थसूची, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी
- [१०८] कुलकर्णी, ई० डी० - बोकबुलरी ऑव् यशस्तिलक, बुलेटिन ऑव् द डेकन कालिज रिसर्च इस्टीट्यूट, पूना
- [१०९] चुन्नीलाल शेष - अष्टछाप के वाद्ययन्त्र, ब्रजमाधुरी, ब्रज साहित्य मण्डल, मथुरा, वर्ष १३, अंक ४
- [११०] जगदीशचन्द्र जैन - लाइफ इन ऐशियण्ट इण्डिया ऐज डिपिक्टेड इन द आगमाज, न्यू बुक कम्पनी लिमिटेड, बम्बई १९४७
- [१११] जे० एन० बनर्जी - द डेवलपमेण्ट ऑव् हिन्दू आइकोनोग्राफी, युनिवर्सिटी ऑव् कलकत्ता, १९५६
- [११२] नाथूराम 'प्रेमी' - जैन साहित्य और इतिहास, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, बम्बई
- [११३] ,, - सोमदेवसूरि और महेन्द्रदेव, जैन सिद्धान्त भास्कर, आरा
- [११४] पी० बी० देसाई - जैनिज्म इन साउथ इण्डिया एण्ड सम जैन एपिग्राफ्स, जीवराज जैन ग्रन्थमाला, सोलापुर, १९५९
- [११५] पी० सी० चक्रवर्ती - द आर्ट ऑव् वार इन ऐशियण्ट इण्डिया, द युनिवर्सिटी ऑव् ढाका, रमना ढाका, १९४१
- [११६] वी० सी० ला - हिस्टारिकल ज्योग्राफी ऑव् ऐशियण्ट इण्डिया, सोसायटी ऐशियाटिक डिपेरिस, फ्रान्स
- [११७] ,, - ज्योग्राफी ऑव् अरली बुद्धिज्म, लन्दन, १९३२
- [११८] भगवतशरण उपाध्याय, - कालिदास का भारत, भाग १-२, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, १९५४, १९५८
- [११९] भटशाली - आइकोनोग्राफी ऑव् बुद्धिस्ट एण्ड ब्राह्मेनिकल स्केल्पचर्स इन द ढाका म्यूजियम, ढाका म्यूजियम कमेटी, ढाका, १९२९
- [१२०] मिराशी हिस्टारिकल डेटाज इन दण्डिनाज दशकुमारचरित, एनाल्स ऑव् मण्डारकर, ओ० रि० इ०, भाग २६
- [१२१] मोतीचन्द्र - जैन मिनिष्टर पेंटिंज फ्राम वेस्टर्न इण्डिया, साराभाई मनीलाल नवाब, अहमदाबाद, १९४९
- [१२२] मोतीचन्द्र - भारतीय वेदभूषा, भारती मण्डार, प्रयाग, वि० सं० २००७
- मोतीचन्द्र - सार्थत्राह, विहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, १९५३
- [१२३] मोनियर विलियम्स - संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी

सहायक ग्रन्थ-सूची

- [१२४] मोहनलाल महतो - जातककालीन भारतीय संस्कृति, बिहार राष्ट्र-भाषा परिषद्, पटना, १९५८
- [१२५] आर० एस० त्रिपाठी - हिस्टरी ऑव् डन्नौज, मोतीलाल बनारसीदास, १९५९
- [१२६] राखालदास (अनुवादक, गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा) - प्राचीन मुद्रा, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, वि० स० १९८१
- [१२७] राय कृष्णदास - भारत की चित्रकला, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, १९९६ वि० स०
- [१२८] रे डेविट - बुद्धिस्ट इण्डिया, सुशील गुप्ता लिमिटेड, १९५०
- [१२९] वाटर्स - भान युवानचत्रांग द्रावल्स इन इण्डिया, रायल ऐशियाटिक सोसायटी, लन्दन, १९०४, १९०५ (भाग १-२)
- [१३०] वी० राघवन् - यन्त्राज एण्ड मेकैनिक्ल कण्ट्राह्वन्सेज इन ऐशियण्ट इण्डिया, इण्डियन इस्टीट्यूट ऑव् कल्चर, बेंगलोर, १९५६
- [१३१] वी० राघवन् - नीतिवाक्यामृत आदि के कर्त्ता सोमदेव, जैन सिद्धान्त भास्कर, आरा
- [१३२] वी० वाघवन् - सोमदेव एण्ड किंग भोज, जनरल ऑव् द युनिवर्सिटी ऑव् गोहाटी, भाग ३, १९५२
- [१३३] वी० राघवन् - ग्लीनिंग्ज़ फ्राम सोमदेव सूरीज यशस्तिक्क, गगानाथ झा, रिसर्च इस्टीट्यूट जनरल, भाग २, ३, ४
- [१३४] सरकार - द वाकाटकाज़ एण्ड द अश्मक कन्टरी, इण्डियन हिस्टॉरिकल क्वाटरली, भाग २२
- [१३५] सरकार - द सिटी ऑव् बंगाल, भारतीय विद्या, जिल्द ५
- [१३६] सरकार - स्टडीज़ इन द ज्योग्राफी ऑव् ऐशियण्ट एण्ड मिडि-एवल इण्डिया, मोतीलाल बनारसीदास, १९६०
- [१३७] सालेटोर - द सदर्न अश्मक, जैन एन्टिक्वेरी, भाग ६
- [१३८] सालेटोर - लाइफ इन द गुप्ता एज, पापुलरबुक डिपो, बम्बई, १९४३
- [१३९] सालेटोर - मिडिएवल जैनिज्म, करनाटक पब्लिशिंग हाउस, बम्बई
- [१४०] एस० आर० शर्मा - जैनिज्म एण्ड करनाटक कल्चर, करनाटक हिस्टॉरिकल रिसर्च सोसायटी, धारवार, १९४०
- [१४१] शिवराममूर्ति - अमरावती स्क्ल्पचर्स इन द मद्रास ग० म्यूजियम, मद्रास, १९५६

- [१४२] हीरालाल जैन - जैन शिक्कालेख संग्रह, भाग १, माणिकचन्द्र जैन ग्रन्थमाला, बम्बई
- [१४३] एच० सी० चकलदार - सोशल लाइफ इन ऐंडियन इण्डिया, स्टडीज इन कामसूत्र, ग्रेटर इण्डिया सोसायटीज, कलकत्ता, १९२९

पत्र-पत्रिकाएँ आदि

- [१४४] अनेकान्त, वीरसेवा मन्दिर, सरसावा
- [१४५] इण्डियन हिस्टॉरिकल क्वाटरली, कलकत्ता
- [१४६] इम्पीरियल गजट ऑव् इण्डिया
- [१४७] इण्डियन हिस्ट्री काग्रेस प्रोसीडिंगज
- [१४८] जनरल ऑव् गगानाय झा रिमर्च इस्टीट्यूट, इलाहाबाद
- [१४९] जैन ऐण्टिक्वेरी, आरा
- [१५०] जैन सिद्धान्त भास्कर, आरा
- [१५१] भारतीय विद्या, बम्बई
- [१५२] बुलेटिन ऑव् द डेक्कन कालिज रिसर्च इस्टीट्यूट, पूना
- [१५३] ब्रजमाधुरी, मथुरा
- [१५४] श्रमण, वाराणसी

अनुक्रमणिका

अ	अश १७३
अंकुश १६, २०९	अशुक १०, ११, १२१, १२५, १२९, १३०
अग १४०, १६५, १७९, २५७, २६७, २८६	असुय १३०
अंगद १३, १४७	अकलक १६१, १६५
अगयष्टि २३५	अकलक न्याय १४
अंगरक्षक १३२	अक्षमाला २३५
अगत्रिज्जा ९९	अक्षाश २७०
अगारपाचित ९, १०२	अक्षोल ९८
अगिरा ७७	अखरोट ९८
अंगुली १३, १४०, १४८, २१०	अगरचदन १२३
अगुलीयक १३, १४०, १४८	अगरु १३, १५७, १९०
अगूठी १४८, १९७	अगस्ति ९७, १०३
अंगूर ११०	अगस्त्य ९७, १६६
अगौळा १२	अगहन ९२
अजन १३, १५७, १८४	अग्नि १८, ६३, ९०, ९२, ११३, १७१, २४३
अंडी ९७	अग्निदमन ९, ९७, १०३
अत्त पुर १९, २०, ७४, १३७, २५३, २७०, २९०	अग्निपुराण २१८
अतगढदसाओ १२७	अग्निमान्द्य ११५
अतरास्य १७३, १८३	अग्रवाल (वासुदेवशरण) १२४, १२६
अंताखी नगरी १९३	अधमर्षण ७९
अंत्यज ७, ६१, १०६	अछूत ६६
अध्र २१, २६९	अज ४५
अंभ श्यामाक ९२	अजगव २०२
	अजंता १४३, १४४, १५६

- अजयराज ५४
 अजराज २८१
 अजायबघर १५६
 अजीर्ण १०, ११५, ११६
 अटनि १९, २००, २०३, २४८
 अटारी १५२
 अड्ड १९६
 अड्डमासक १९६
 अतसी १२८
 अतिथि ११४
 अतिमुक्तककुमार ७४
 अत्यशन ११२
 अत्रि ७७
 अदरख ९७, १०२, ११२
 अदिति १७४
 अक्षिपति २८१
 अघोक्षज १७१
 अघोवस्त्र १२७, १३४, १३६
 अध्ययन १, ३, २३
 अर्घ्य १९६
 अध्यशन ११२
 अर्घ्यात्म २९
 अर्घ्यापक १३६
 अर्घ्याय ४, ६, १७, २०, २२, २७,
 ११९, ३०३
 अर्नग ६३
 अनंतमती २९१
 अनगार ८२
 अनाथपिहक १९७
 अनार ९८
 अनाश्वान् ८३
 अनीकस्थ १७९
 अनुवंश १७०, १७३
 अनुवाद ३३
 अनुश्रुति ६९, ७०, १७०, २८२, २८५
 अनुष्टुप् ५२
 अनुष्ठान ४२, ७९
 अनुसधान २८४
 अनूक १७३, १८३, १८५
 अनूचान ८२
 अनेकप १८१
 अपकर्ष ७५
 अपभ्रंश ६, ५०, ५१, २३२
 अपर १७३
 अपरकला १६२, १६८
 अपराजितपृच्छा १९, २४८
 अपवाद ७४
 अपिशाल १४
 अपेय ७६
 अप्रत्याख्यानावरण ७२
 अल्लूर २७९
 अमदय ७६
 अमयमति ८, ४५, ७४
 अमयचि ८, ४५, ७४
 अमिचद्र २७५, २९०
 अमिघानकोश २
 अमिनय १७, २२३, २३५, २३९,
 २५०
 अमिनेता १७, २५०
 अमिरक्षा ६९
 अमिलषितार्थ चिंतामणि २४१
 अमिषादी १८७
 अमोह १०, ११८
 अमोज्य १०, १११

अभ्यगा १०, ११३

अमरकटक २९८

अमरकोप ११९, १३९, २२२, २२४

अमरकोपकार १२५, १२६, १३५,
१३८, १४७, १४९, १५५,
२०४, २२३, २८०

अमरावती १३५, १५०, २११, २१४

अमर्ष ८१

अमलक-देहली १९

अमृत ९५

अमृतगणाधिप १७२

अमृतमति १४, ४३, ४४, ९०, १०४,
१३१, १३७, १६१, १९४,
२६२, २६३

अमृता १०, ११८

अम्ल ९१, १०९

अयोध्या २१, १९५, २८२, २८७,
२९१

अयोमुखपुख २०३

अरजस्त्रला ८, ९०

अरव २८

अरवसागर २७०, २९८, २९९

अरबो १३२

अरमाहक १३२

अरिक्सेसरिन् ५, ३२, ३४

अरिक्सेसरो ५, २७, ३२

अरिभेद १०, ११९

अरुण १६२

अरुणाशुक १२९

अर्क १०, १०३, ११९

अर्काट २८

अर्गला १८०

अर्जुन १०, ९८, ११८, २०१, २०२
अर्थ २२, १८७, ३०३

अर्थवेदिता १७२

अर्थशास्त्र ३३, ३८, १२६, १३१,
१९६, २१०

अर्थ १९६

अर्थकाकणी १९६

अर्थचंद्र १८५

अर्थपण १९६

अर्थमाणक १९६

अर्थमाप १९६

अर्वन्त १८७

अलकार १३, १७, २९, १४०, १६०,
२३६

अलकारशास्त्र १२, १४०

अलक १५२, १५३

अलकजाल १३, १५२, १५३, २५९

अलक्तक १३, १५७, २४१, २८०

अलक्तक-मडन १५०

अलवल्नी ८, ९०

अलवर २७१

अलसी १०३, १२८, १२९

अलावू ९

अल्लेकर २८

अल्पना १८

अवतस १२, १४०, १४१, १५९, २६१

अवतसकुवलय १३, १५९

अवदश ९, १०१, १०२

अवध ४०

अवनद्ध १७, २२५, २२६, २२८

अवन्ति ६, २१, ४३, २६७, २८२,
२८४, २९०

- अजयराज ५४
 अजराज २८१
 अजायबघर १५६
 अजीर्ण १०, ११५, ११६
 अटनि १९, २००, २०३, २४८
 अटारी १५२
 अड्ड १९६
 अड्डमासक १९६
 अतसी १२८
 अतिथि ११४
 अतिमुक्तककुमार ७४
 अत्यशन ११२
 अत्रि ७७
 अदरख ९७, १०२, ११२
 अदिति १७४
 अधिपति २८१
 अधोक्षज १७१
 अधोवस्त्र १२७, १३४, १३६
 अध्ययन १, ३, २३
 अध्यर्घ १९६
 अध्यशन ११२
 अध्यात्म २९
 अध्यापक १३६
 अध्याय ४, ६, १७, २०, २२, २७,
 ११९, ३०३
 अनंग ६३
 अनंतमती २९१
 अनगार ८२
 अनाथपिठक १९७
 अनार ९८
 अनाश्वान् ८३
 अनीकस्थ १७९
 अनुवश १७०, १७३
 अनुवाद ३३
 अनुश्रुति ६९, ७०, १७०, २८२, २८५
 अनुष्टुप् ५२
 अनुष्ठान ४२, ७९
 अनुसंधान २८४
 अनूक १७३, १८३, १८५
 अनूचान ८२
 अनेकप १८१
 अपकर्ष ७५
 अपभ्रंश ६, ५०, ५१, २३२
 अपर १७३
 अपरकला १६२, १६८
 अपराजितपृच्छा १९, २४८
 अपवाद ७४
 अपिशल १४
 अपेय ७६
 अप्रत्याख्यानावरण ७२
 अल्लूर २७९
 अभक्ष्य ७६
 अभयमति ८, ४५, ७४
 अभयरुचि ८, ४५, ७४
 अभिचद्र २७५, २९०
 अभिधानकोश २
 अभिनय १७, २२३, २३५, २३९,
 २५०
 अभिनेता १७, २५०
 अभिरक्षा ६९
 अभिलषितार्थ चिंतामणि २४१
 अभिषादी १८७
 अभोरु १०, ११८
 अभोज्य १०, १११

- अभ्यग १०, ११३
 अमरकटक २९८
 अमरकोष ११९, १३९, २२३, २२४
 अमरकोषकार १२५, १२६, १३५,
 १३८, १४७, १४९, १५५,
 २०४, २२३, २८०
 अमरावती १३५, १५०, २११, २१४
 अमर्ष ८१
 अमलक-द्वेहली १९
 अमृत ९५
 अमृतगणाधिप १७९
 अमृतमति १४, ४३, ४४, ९०, १०४,
 १३१, १३७, १६१, १९४,
 २६२, २६३
 अमृता १०, ११८
 अम्ल ९१, १०९
 अयोध्या २१, १९५, २८२, २८७,
 २९१
 अयोमुखपुख २०३
 अरजस्वला ८, ९०
 अरब २८
 अरवसागर २७०, २९८, २९९
 अरबी १३२
 अरमाहक १३२
 अरिकेसरिन् ५, ३२, ३४
 अरिकेसरी ५, २७, ३२
 अरिभेद १०, ११९
 अरुण १६२
 अरुणाशुक १२९
 अर्क १०, १०३, ११९
 अर्काट २८
 अर्गला १८०
 अर्जुन १०, ९८, ११८, २०१, २०२
 अर्थ २२, १८७, ३०३
 अर्थवेदिता १७२
 अर्थशास्त्र ३३, ३८, १२६, १३१,
 १९६, २१०
 अर्घ १९६
 अर्घकाकणी १९६
 अर्घचंद्र १८५
 अर्घपण १९६
 अर्घमाणक १९६
 अर्घमाष १९६
 अर्वन्त १८७
 अलकार १३, १७, २९, १४०, १६०,
 २३६
 अलकारशास्त्र १२, १४०
 अलक १५२, १५३
 अलकजाल १३, १५२, १५३, २५९
 अलक्तक १३, १५७, २४१, २८०
 अलक्तक-महान १५०
 अलवरुनी ८, ९०
 अलवर २७१
 अलसी १०३, १२८, १२९
 अलाबू ९
 अल्लेकर २८
 अल्पना १८
 अवतस १२, १४०, १४१, १५९, २६१
 अवतसकुवलय १३, १५९
 अवदश ९, १०१, १०२
 अवघ ४०
 अवनद्ध १७, २२५, २२६, २२८
 अवन्ति ६, २१, ४३, २६७, २८२,
 २८४, २९०

अवन्ति-सौम ९, ९६, ११६
 अवस्था १७७
 अवस्थानुकरण १७, २३६
 अव्रतो ७२
 अशनि १६, २०७, २०८
 अशोक १८, १७०, १८४, २४२
 अशोकरोहिणी २४१
 अश्मक २१, २६८, २७७, २८७
 अश्मन्तक २६८
 अश्व १४, २९, १०४, १८२, १८३,
 १८६, १८७
 अश्वघोष ४६
 अश्वचालक १८७
 अश्व-चिकित्सा १६६
 अश्वत्थ ९, ९८
 अश्व-प्रशस्ति १८६
 अश्ववाहक १६६
 अश्वविद्या १६१, १६६, १८२, १८७
 अश्वविद्याविद् १८७
 अश्वविद्या-विशेषज्ञ १८७, १८८
 अश्वशाला १९, २५१
 अश्वशास्त्र १४, २२, १८२, १८३,
 १८६, ३०३
 अष्टभाग १९६
 अष्टवक्र १३१
 अष्टशती १६५
 अष्टागसग्रह १००
 अष्टागहृदय ११९
 अष्टाध्यायी १६४, १९६
 असणि २०८
 असि ६९
 असिर्तति १७१

असिधेनुका १६, २०३, २०४, २०५
 असिपत्र १६, २०७, २७७
 असिपुत्री २०३
 अस्ताचल १३९, २९५
 अस्त्र २११, २१५, २१८
 अस्सक २६८
 अहंकार ८२
 अहिंसा ६, ४७, ४८, ४९, १०३
 अहिच्छत्र २१, २८२, २९४
 अहिच्छत्रा १३२
 अहिच्छेत्र ६१
 अहोबल २३२

आ

आगिक १७, २३५, २३६
 आघ्न १५१
 आघ्नभृत्य २८९
 आंवला ९७, ११०
 आक ११९
 आकाश ११०, २०८
 आगरा ९९
 आगम ७
 आगमाश्रित ६७, ७२
 आगार २५१
 आख्यान २९
 आख्यायिका २८
 आचार २, १६, ६०, ७७, १७२,
 १९८
 आचाराग १२६, १२७, १३०
 आचाराग-चूर्णि ११
 आचार्य ३२, ४५, ११९, १७०, १७७,

- आजीवक ८, ७५
 आज्य ९, ९६, १०२
 आटा ६, ८५
 आटोप ११७
 आतप ११३
 आतोद्य १७, २२४
 आत्मविद्या ८१
 आत्मा ७६, ८३
 आदेशमाला १३, १४४
 आघोरण १७९
 आनक १७, १८४, २२५, २२८
 आनुपूर्वी ३१
 आपण १९१
 आपस्तम्भ ९२
 आपिशाल १६१, १६२, १६३
 आपिशाला १६३
 आपिशालि १६३
 आप्टे २२, २१९, ३०४
 आमरण २४१
 आमूषण १२, १३, २२, २९, ६५,
 ८६, १४०, १४१, १४४,
 १४६, १४७, १४८, १५०
 १९५, ३०३
 आमनाय ८२
 आम ९७, १०९, २९४, २९८
 आमडा ९७
 आमला ९५
 आमलासारकलश २४८
 आमिक्षा ९, १०७
 आमेर ५२, ५३
 आम्र ९, ९७, १०३
 आम्रवन २९८
 आम्रातक ९, ९७, १०३
 आयाम १७२
 आयास ११३
 आयु ७५, ८९, ९४, १७२, १७७,
 १८३
 आयुष २९, २०८, २०९, २१५, २१६
 आयुर्वेद १०, १४, २२, १०१, ११४,
 ३०३
 आयुर्वेदविशेषज्ञ ११९
 आयुर्वेदाचार्य ११९
 आरभी ४८
 आर्द्रक ९, ९७
 आर्थिक १५
 आर्य ३८
 आलानस्तंभ १८०
 आलाप ७७, ७८
 आवर्त १८३, १८५
 आवान ११, १२, १२१, १३६, १३९
 आवास ७७, ७८, २५१
 आवेदिता १७२
 आशाम्बर ८१
 आश्यान १५२
 आश्रम ७३, १७४, २९६, २९७
 आश्रमवासी १२, १३६
 आश्रम-व्यवस्था ७, ७३, ७४
 आश्वास २७, २९, ४२, १४८, २२३,
 २९९
 आसन ९८
 आसनावकाश १७३
 आसाम १२४, १२९
 आस्तरक ७, ६४
 आस्थानमंडप १८, १९, २५१

अवन्ति-सौम ९, ९६, ११६
 अवस्था १७७
 अवस्थानुकरण १७, २३६
 अव्रती ७२
 अवशति १६, २०७, २०८
 अवशोक १८, १७०, १८४, २४२
 अवशोकरोहिणी २४१
 अवशमक २१, २६८, २७७, २८७
 अवशमन्तक २६८
 अवश्व १४, २९, १०४, १८२, १८३,
 १८६, १८७
 अवश्वघोष ४६
 अवश्वचालक १८७
 अवश्व-चिकित्सा १६६
 अवश्वत्थ ९, ९८
 अवश्व-प्रशस्ति १८६
 अवश्ववाहक १६६
 अवश्वविद्या १६१, १६६, १८२, १८७
 अवश्वविद्याविद् १८७
 अवश्वविद्या-विशेषज्ञ १८७, १८८
 अवश्वशाला १९, २५१
 अवश्वशास्त्र १४, २२, १८२, १८३,
 १८६, ३०३
 अष्टभाग १९६
 अष्टवक्र १३१
 अष्टशती १६५
 अष्टागसग्रह १००
 अष्टागहृदय ११९
 अष्टाध्यायी १६४, १९६
 असणि २०८
 असि ६९
 असितर्पित १७१

असिधेनुका १६, २०३, २०४, २०५
 असिपत्र १६, २०७, २७७
 असिपुत्री २०३
 अस्ताचल १३९, २९५
 अस्त्र २११, २१५, २१८
 अस्सक २६८
 अहकार ८२
 अहिंसा ६, ४७, ४८, ४९, १०३
 अहिच्छत्र २१, २८२, २९४
 अहिच्छत्रा १३२
 अहिच्छेत्र ६१
 अहोवल २३२

आ

आगिक १७, २३५, २३६
 आघ्न १५१
 आघ्नभृत्य २८९
 आंवाला ९७, ११०
 आक ११९
 आकाश ११०, २०८
 आगरा ९९
 आगम ७
 आगमाश्रित ६७, ७२
 आगार २५१
 आख्यात २९
 आख्यायिका २८
 आचार २, १६, ६०, ७७, १७२,
 १९८
 आसारोग १२६, १२७, १३०
 आसारोग-सूणि ११
 आसारि १२, ४५, ११९, १७०, १७७,
 १००

- बाजीवक ८, ७५
 बाज्य ९, ९६, १०२
 बाटा ६, ८५
 बाटोप ११७
 बातप ११३
 बातोद्य १७, २२४
 बात्मविद्या ८१
 बात्मा ७६, ८३
 बादेशमाला १३, १४४
 बाघोरण १७९
 बानक १७, १८४, २२५, २२८
 बानुपूर्वो ३१
 बापण १९१
 बापस्तम्भ ९२
 बापिशल १६१, १६२, १६३
 बापिशला १६३
 बापिशलि १६३
 बाप्टे २२, २१९, ३०४
 बाभरण २४१
 बाभूषण १२, १३, २२, २९, ६५,
 ८६, १४०, १४१, १४४,
 १४६, १४७, १४८, १५०
 १९५, ३०३
 बाभ्नाय ८२
 बाभ ९७, १०९, २९४, २९८
 बाभडा ९७
 बाभला ९५
 बाभलासारकलश २४८
 बाभिक्षा ९, १०७
 बाभेर ५२, ५३
 बाभ्र ९, ९७, १०३
 बाभ्रवन २९८
 बाभ्रातक ९, ९७, १०३
 बाभयाम १७२
 बाभयस ११३
 बाभयु ७५, ८९, ९४, १७२, १७७,
 १८३
 बाभयुष २९, २०८, २०९, २१५, २१६
 बाभयुर्वेद १०, १४, २२, १०१, ११४,
 ३०३
 बाभयुर्वेदविशेषज्ञ ११९
 बाभयुर्वेदाचार्य ११९
 बाभरभो ४८
 बाभद्रक ९, ९७
 बाभर्थिक १५
 बाभर्थ ३८
 बाभलानस्तम १८०
 बाभलाप ७७, ७८
 बाभवर्त १८३, १८५
 बाभवान ११, १२, १२१, १३६, १३९
 बाभवास ७७, ७८, २५१
 बाभवेदिता १७२
 बाभशाम्बर ८१
 बाभश्यान १५२
 बाभश्रम ७३, १७४, २९६, २९७
 बाभश्रमवासी १२, १३६
 बाभश्रम-व्यवस्था ७, ७३, ७४
 बाभश्वास २७, २९, ४२, १४८, २२३,
 २९९
 बाभसन ९८
 बाभसनावकाश १७३
 बाभसाम १२४, १२९
 बाभस्तरक ७, ६४
 बाभस्थानमंडप १८, १९, २५१

आहत १९६
 आहार १११
 आहार्य १७, २३५, २३६
 आहुति १०१

इ

इदीवर १८४
 इदुमति २०८
 इंदौर २८८
 इंद्र १२, १४, ३४, ३६, ३८, ३९,
 ११९, १४०, १६२, १७५,
 २०७, २०८, २४५
 इद्रकच्छ २१, २६९, २८८
 इद्रगौमिन् १६३
 इद्रघनुष १२२, २५८
 इद्रनील १४५
 इद्रपुरी २६९
 इक्षु ९६, १०९
 इटालियन ३३
 इतिहास २, २८, २९, ३६, ३९, ४०,
 ९४, २०१, २५०
 इम १८१
 इमचारी १४, १६५, १७८
 इलायची १०२
 इलाहाबाद २८६
 ईडर २०७, २१०
 ईरान ११, १३२
 ईसा १०

उ

उग्रसेन २७२
 उच्छ्वास २४१, २६३

उज्जयिनी २१, ४३, ४५, १३८,
 १९४, २६२, २८२, २८४,
 २८७, २९९

उज्जैन २६७

उडुप ६४

उडद ९४, १०७, १०९, १११

उडीसा २२७

उत्कर्ष ७५

उत्कल २७१

उत्खनन २८४

उत्पत्ति-स्थान १७२

उत्पल १२, १४१, १४२, १५९

उत्सव १४१

उत्सेध १७२

उत्तम २१०

उत्तरकनारा २७२, २७३, २७८

उत्तर प्रदेश ९३, २७६, २८०, २८२,
 २८४, २८५

उत्तर मथुरा २१

उत्तराध्ययन २०८

उत्तरापथ १३५, २०४, २०५, २१०,
 २११, २१५

उत्तरीय ११, १२, ६०, १२१, १२८,
 १३५, १३६, १३७

उत्तुगतोरण २४९

उदम्बर ९

उदयगिरि २७६

उदयन-कथा ६

उदयसुदरी २७३

उदयाचल १४५, २९५

उदर २६३

उदवास २९९

उदारहार १४६

उदासीन ८२
 उदुम्बर ९८
 उद्धत २३९
 उद्यान १४०
 उद्यानतोरण २५७
 उद्योगी ४८
 उद्योतनमूरि ६, १०, ५०, १२२
 उद्वर्तन १०, ११३
 उद्वसित २५०
 उन्माद १४५
 उपचार १७८
 उपदेश १०२
 उपदेश ९
 उपवान १२, १२१, १३७
 उपनिषद् १०८
 उपमा ६५, १२८, १४३, १५६,
 २०७, २१३, २१४
 उपमालंकार १३५
 उपमुद्रा ७६
 उपलेप २४१
 उपवन १४३
 उपशम ७२
 उपसंन्यास ११, १२, १२१, १३६,
 १३७
 उपसर्ग २८२
 उपहार २४९, २७१, २७३, २७४,
 २७६
 उपाध्याय ७, ६०, ७७
 उपासकाध्ययन २, ३१, ४२, ४५
 उवटन ११३
 उमास्वाति १६४
 उरोमणि १७३

उर्दू २५७
 उर्मिका १३, १४०, १४८
 उर्व १५
 उल्लोच १३९
 उवासगदमा ९३
 उष्णीष ११, १२, १२१, १३५, १४१
 उस्ताद २२३

ऊ

ऊट १०७, २७८
 ऊन १२४, १२५
 ऊनी १२
 ऊमर ९८
 ऊरु ७०, २३७, २३८
 ऊर्ध्वात ११७
 ऊर्व १६८
 ऊपर १९०

ऋ

ऋग्वेद ९२, ९४, २०८, २१८, २३६
 ऋतु ८, ९५, १०९, ११४, १२५,
 १४६, २५७, २९६
 ऋतु-चर्या १०९
 ऋषभदेव ६९, ७०, २२४, २४२
 ऋषि ७७, ८१
 ऋषिक १९३

ए

एकचक्रपुर २१, २८३
 एकदेशसयम ७७
 एकपाद २८३
 एकमासक १९६

एकानसी २१, २८४
 एकावली १३, १४०, १४४, १४५
 एकेन्द्रिय ६८
 एण १०५
 एरड ९, ९७, १०३
 एर्वारु ९, ९७
 एशिया ११

ऐ

ऐंद्र १६१, १६२, १६३
 ऐंद्रव्याकरण १६३
 ऐरावत १८, १७२, २४३
 ऐलक ७७

ओ

ओझा ४०
 ओषनिर्युक्ति २०९
 ओदन ९९
 ओमप्रकाश ९४, ९९, १००
 ओष्ठ १८३

औ

औजार १८९
 औदायन २६९
 औरभ १०५
 और्व १६८
 औषधि १०, ११८

क

कंकण १३, १४०, १४७, १४८

ककाहि २१, २८४
 ककोल १३
 कगूरा २१०
 कचुक ११, १२१, १२२, १३१, १३२
 कठ १५, १६८
 कठिका १३, १४०, १४४, १४६
 कठी १३
 कडू ११५
 कद ९, ९७, १०३, १०९, ११०
 कथा १२, १२१, १३७, १३८
 कघरा १७३, १८३
 कबोज २१, २६९, २७०
 कंमलकेयूर १५९
 कसहंसक १५१
 ककडी ९७
 ककुम ९, ९८
 कच १५२
 कचनार १२, १४१, १५९
 कचोडी १११
 कच्छ २६९
 कच्छोटिका १३७
 कछुटिया १२, १३७
 कज्जल १३, १५७
 कटास २३७
 कटार १६, २०५
 कटाहद्वीप १९३
 कटि १३, २०, १४८, १४९, १५९, २६२
 कणय १६, २१०
 कणयकोणप २१०
 कण्व ९२
 कथरी १३८

कथा २, ६, २८, ४२, ४५, १७४, १९७, २११, २७२, २८७, २९१	कमलवापी २६०
कथाकोष ५१	करटा १७, २२५, २३०
कथावस्तु २, ६, २८, ४२, ४६, ४८	करटो १८१
कदंब २७२, २७३	करघनी १३, २०, ८७, १४६, १४९ २६२
कदल ९, ९७	करपत्र १६, २१२
कदलीकानन २५७	करवाल १६, ७६, २०६
कदलीप्रवालमेखला १४, १५९	करहाट २१, २७०, २९५
कनकगिरि २१, २८४	करि १८०, १८१
कनपटो १५४	करिकलाम १७२, १७३
कनफूल १२, १४३, १५९	करि-मिथुन २६०
कनारा ४०	करिविनोदविलोकनदोहद १९, २५३
कनिष्क १३४, २१०	करीमनगर ३२
कनेर १४३	करुण २३१
कन्तुसिद्धान्त १५, १६७	करेला ९७, ११२
कन्नड ६, ५०, ५३	करौत २१३
कन्नडकवि ३३	कर्कार ९
कन्नौज ४, ५, ३४, ३६, ४०	कर्ण १८३, २०१, २०२
कन्या ८, ८९, १७४, १९५	कर्णपर्व २१८
कन्यादान ९०	कर्णपूर १२, १४, १४०, १४१, १४२, १५९
कपाल ७६	कर्णफूल १४, १४३, १५९
कपास १४४	कर्णाट २१, २७०
कपित्थ ९, ९८	कर्णाटक २१, ३८, १४२
कपोल २०, १४१, १७३, २६२	कर्णामरण १४०
कफ १०८, १०९	कर्णभूषण १२, १४१
कवरी १३, १५२, १५७, २०७, २७७	कर्णवर्तिस २०, १४२, १४३
कमठ ९, १०४, २८२	कर्णिका १२, ७६, १४०, १४१, १४३
कमर १४०	कर्णिकार १५७
कमल १४२, १५९, १८४, २१३	कर्णात्पल १२, १४, १४०, १४१, १४३, १५९
कमलकेयूर १३, १५९	कर्तरी १६, २०४
कमलनाल १०९	

- कर्त्रन्वय ७०
 कर्दम १३०
 कर्नाटक २८, १४२
 कर्पट १२१
 कर्पूर १३, १०१, १०२, १५८, २४४, २५४
 कर्म ८२
 कर्मग्रंथ ७
 कर्मद ७५, ७६
 कर्मदी ८, ७५, ७६
 कर्मभूमि ६९
 कर्म १९६
 कलम ९, ९२
 कलमशालि ९३
 कलश १९, १८५
 कलहस ९, १०४
 कला २, १३, २८, २९, ६२, १३५, १४४, १५०, १६७, १८९, २०९, २४१, २४५
 कलाई १३, १४७
 कलाप १५३
 कलापित् १५४
 कलाबत्त १२७
 कलाविनोद २९
 कलि ९, १०, ९६, ११९
 कलिंग २१, ४५, ६३, ९७, १९४, २७०
 कलियुग ६९
 कल्चुरी २७९, २८९
 कल्चुरीविज्जल २७९
 कल्पना १८०
 कल्पनी २०४
 कल्पवृक्ष २६७
 कल्पसूत्र १६२, २०७, २१०, २२६
 कल्याण २७३
 कवि १५, १६१, १६५, १६८
 कविकल्पद्रुम १६२
 कश्मीर २७०, २७२
 कषाय ७२, ९०, १०९
 कसरे शीरी २५७
 कसैला १०१
 कस्तूरी १३०, २५४, २९२
 कस्तूरीमृग २९४
 कस्बा २७८
 कहानी ६
 कहापण १९६
 काकरोली २२६
 काखुर १२९
 काँच १३
 काँचन १८४
 काचिका १४९
 काँची १३, २१ १४०, १४८, २३७, २३८, २७१, २७६
 काचीवरम् २७१, २७६
 काजी ९९, १०३, १११, ११६
 काड २०३
 कासा १५१
 काकणी १९६
 काकदो २१, २८४
 काकमाची ९, ९८, १११
 काठियावाड २८७
 कातन्त्र १६२, १६३
 कात्यायन १३०, १९६

कुंजी २३
 कुंडल १२, ७६, १४०, १४१, १४४
 कुडिनपुर २७४
 कुंत १६, २१२
 कुतल २१, १४१, १५२, १५३, १५४,
 २३७, २७२, २७३
 कुतलकलाप १३, १५३
 कुतलजाल १५३
 कुंभ १८, १७३
 कुभकार ६३
 कुभडा ११२
 कुभी १८१
 कुभीर ९, १०४
 कुमाँ ९५
 कुवकुट ४५
 कुक्षि १७३
 कुच १८७, २६३
 कुटज १५४
 कुठार १६, २११
 कुत्ता ४४, ४६
 कुमार १५, १६८
 कुमारदास १६८
 कुमारपाल २६३
 कुमारश्रमण ८, ७७
 कुमारसभव २०८
 कुमुद १५, १६९
 कुम्हडा ९७
 कुरर १०४
 कुरवक ९, ९८, १६०
 कुरवकमुकुलसक १४, १६०
 कुर २७२

कुरुक्षेत्र २७५, २८८
 कुरुजागल २१, २७२, २७५, २८८,
 २९०
 कुरर ९
 कुरुट ९, १०४
 कुल ६५, १७२, १७७, १८३
 कुलकर्णी (ई० डी०) ३१
 कुलटा ४४
 कुलाचार्य ७६
 कुलिश १८५
 कुलीर ९, १०४
 कुलूत २१, २९३
 कुल्योपकठ २५७
 कुल्लूवेली २७२
 कुल्हाड़ी २११
 कुवलय १४१, १४२, १५९
 कुवलयमाला १०, ५०, १२२, २८०
 कुवलायावतस १४२
 कुवेर १९, २४५
 कुशाग्रपुर २१, २८५
 कुष्ट ११५
 कुसुमदाम १४७
 कुसुमपुर २१, ३८, २८६
 कुसुमावलि ४५, १०५
 कुसुम्भाशुक १२९
 कूप ९
 कूर्चस्थान २०, २५५
 कूर्पासक १३१, १३३
 कूर्म १०५
 कृतयुग ६९
 कृपाण १६, २०५

वृषाणी २०४
 वृषीट १८३
 वृषक १४८
 वृषि १५, ६९, ७०, १८९
 वृषा ६८
 वृषाकान्त हन्दिनी ३, ३०
 वृषाराज २७, ३९, २८९
 वृषावर्णा २७२
 वृषाणा २७०, २७९
 वेंकटा १०४
 वेंचुली १२२
 वेंड २८४, २८५
 वेंकट १५
 केटा १९४
 केतवी २३५
 केतुवाट २४८
 केतुवाटचित्र २४८
 केतूर १३, १४७, १५०, १५९
 केरल २१, २७३, २७४
 केन्ना ९७, १११
 केवलज्ञान २४५
 केश १३, ६५, १५२, १७३
 केश-वृषाणा १५२
 केशपाश १३, १५२, १८४
 केशप्रसाधन १५३, १५४
 केशविन्यास १५२, १५४, १५५
 केसर १५७, १८३, १९०, २५६, २७२
 कैची १६८, २०४
 कैथ ९८
 कैकट १६९
 कैरव १२, १४१, १४२, १५९
 कैलाश २७९

कैलाशचन्द्रमार्गी ३१
 कैलास २१, २०१, २९७
 कैलाशगिरि २९९
 कैलास मालिन २९८
 कैरत ६८
 काग २१
 काँकळ ११०
 काँक ९, १०८
 काँकळ १६७
 काँकळ १, ९८, १०३
 काँक ११, १३१, १३३
 काँकरी १४०
 काँकट २०२
 काँकळिजा २०३
 काँकळानघातुगी २०३
 काँकळ ९२
 काय ११५
 काय ११३
 कायोन १२१
 कायमट्टर २७३
 कायल १११, २२८
 काय्यापुरम् २७५
 कायिक १२६
 कायली १२६
 कायिद ६
 काय २२, ४३, १७३, २०३
 कायल १३०, २८२
 कायकार ११
 काया १३०
 कायी २९६
 काय १९३
 काय २७५, २८४, २८६

कोसम २८६
 कोहना २७०
 कोहल ९, १५, ९७, ११२, १६९
 कोहे विहिस्तून २५७
 कोष्ठा १११
 कौंग २७३
 कौक्षेयक १६, २०६
 कौटिल्य ३३, ६४, १२६, १२८, १३१,
 १३२, १३३, १९६, २१२,
 २१४
 कौपीन ११, १२, १३५
 कौल ८, ९, ४२, ४९, ७६, ७८,
 १०४
 कोलाचार्य २०६
 कौलिक ७, ६३
 कोशल २१, ४०, २७३, २७९
 कोशाम्बी २१, २८६
 कोशेय १०, ११, १२१, १३०, १३१,
 २७४
 क्रतु ७७
 क्रथकैथिक २१
 क्रथकैथिक २७१
 क्रोडा १४१
 क्रोडाकुत्कील २५७
 क्रोडाप्रासाद १९
 क्रोडामयूर २६९
 क्रोडावापी २०, २५५
 क्रोडाशैल २५७
 क्रोडाहस १५१, २५९
 कोच ९
 क्रौंच १११, १०४
 क्विलष्ट २२

क्षणिकचित्र २४४
 क्षत्र ७, ६१
 क्षत्रिय ७, ५९, ६१, ७०, १०४,
 २८२
 क्षपण ८१
 क्षपारस ९, ९६
 क्षमाकल्याण ५२
 क्षय ७२
 क्षयीपशम ७२
 क्षार ९०
 क्षीर १०९
 क्षीरकदंब २७४, २९०
 क्षीरतरगिनी १६८
 क्षीरवृक्ष ९८
 क्षीरसागर (जे० एन०) ३०, १२८
 क्षीरस्वामी ७६, ११९, १३९, १४३,
 १४७, १६८
 क्षुमा १२८, १२९
 क्षुल्लक ७७
 क्षेत्र ७२
 क्षेपणिहस्त १६, २१९
 क्षेमीश्वर ३८
 क्षीम ११, १२८
 क्षीमवस्त्र १२८
 ख
 खमात २९८
 खट्वाग ७६, ७८
 खड्ग १६, २०५
 खड्गयष्टि २०५
 खडाऊ ७८
 खदिर ११९, २१४, २१६, २१७

खरदह २०२
 खर्जूर ९८
 खाड १०१
 खाण्डव ९, १००, १०२
 खानवलय २५७
 खाद्य ८, ९१
 खाद्यनामग्री ९२
 खानपान ९१
 खाल १२४
 खिन्नीना १३२, १५३, १५४
 खीर ११०
 खुनुद्धू २८८
 खुजली ११५
 खुर १८३
 खुरली २०१, २०३
 खुराधान २८१
 खुशालचन्द्र ५४
 खुमरु पर्यवेज २५७
 खेत ६२
 खेरखाना १३२
 खेस १३८

ग

गगकोडा २७५
 गगघारा २७, ३२, ३९
 गगा २१, २८३, २९६, २९७, २९८,
 २९९
 गगाघारा ५
 गगापटी १२२
 गगापुर २७५
 गंजम २७१
 गडक २९६

गण १८१
 गणमान २१, २०८
 गण १८३ २०३, २८०
 गण १ ५५ ५१
 गण २७०
 गणोदात्त २०, २५५
 गण १८, ३१, २०, १३५, १३५,
 १८०, १८३, १८६, १८५,
 २५९
 गणदर्शन १३९
 गण-वर्णना १८, १३०, १७९
 गण १८८
 गणविद्या १५, १६१, १६५, १७०,
 १७९
 गण १३९
 गणनामा ४३, २५१
 गणनामा १८, २०, १७०, १७०,
 १७३, १७६, १७७, १७८,
 १७९, १८०, ३०३
 गणनाम्यप्रियेपत्र १७८
 गणविद्या १४, १७०, १७९
 गणमुकुमार ७४
 गणोत्पत्ति १७३
 गणरिया ६२, १४८, १९७
 गणपति १५, १६९
 गणपतिशास्त्री १२८, २०७, २१०,
 २११, २१२, २१५, २१६
 गणित १४
 गणितशास्त्र १६५
 गणेश १७०, १७९
 गति १७३, १७७
 गदरी १२

कोसम २८६
 कोहना २७०
 कोहल ९, १५, ९७, ११२, १६९
 कोहे विहिस्तून २५७
 कोमा १११
 कौग २७३
 कौक्षेयक १६, २०६
 कौटिल्य ३३, ६४, १२६, १२८, १३१,
 १३२, १३३, १९६, २१२,
 २१४
 कौपीन ११, १२, १३५
 कौल ८, ९, ४२, ४९, ७६, ७८,
 १०४
 कौलाचार्य २०६
 कौलिक ७, ६३
 कौशल २१, ४०, २७३, २७९
 कौशाम्बी २१, २८६
 कौशेय १०, ११, १२१, १३०, १३१,
 २७४
 क्रतु ७७
 क्रयकैथिक २१
 क्रयकैथिक २७१
 क्रोडा १४१
 क्रोडाकुत्कील २५७
 क्रोडाप्रासाद १९
 क्रोडामयूर २६९
 क्रोडावापी २०, २५५
 क्रोडाशैल २५७
 क्रोडाहस १५१, २५९
 कोच ९
 क्रौंच १११, १०४
 किलष्ट २२

क्षणिकचित्र २४४
 क्षत्र ७, ६१
 क्षत्रिय ७, ५९, ६१, ७०, १०४,
 २८२
 क्षपण ८१
 क्षपारस ९, ९६
 क्षमाकल्याण ५२
 क्षय ७२
 क्षयीपशम ७२
 क्षार ९०
 क्षीर १०९
 क्षीरकदम्ब २७४, २९०
 क्षीरतरगिनी १६८
 क्षीरवृक्ष ९८
 क्षीरसागर (जे० एन०) ३०, १२८
 क्षीरस्वामी ७६, ११९, १३९, १४३,
 १४७, १६८
 क्षुमा १२८, १२९
 क्षुल्लक ७७
 क्षेत्र ७२
 क्षेपणिहस्त १६, २१९
 क्षेमीश्वर ३८
 क्षीम ११, १२८
 क्षीमवस्त्र १२८
 ख
 खमात २९८
 खट्वाग ७६, ७८
 खड्ग १६, २०५
 खड्गयष्टि २०५
 खडाऊँ ७८
 खदिर ११९, २१४, २१६, २१७

खरदह २०२
 खर्जूर ९८
 खाह १०१
 खाण्डव ९, १००, १०२
 खातवलय २५७
 खाद्य ८, ९१
 खाद्यसामग्री ९२
 खानपान ९१
 खाल १२४
 खिलौना १३२, १५३, १५४
 खीर ११०
 खुम्बुन्द २८४
 खुजली ११५
 खुर १८३
 खुरली २०१, २०३
 खुराशान २८१
 खुशालचन्द्र ५४
 खुसरू परवेज २५७
 खेत ६२
 खेरखाना १३२
 खेस १३८

ग

गगकोडा २७५
 गगघारा २७, ३२, ३९
 गगा २१, २८३, २९६, २९७, २९८,
 २९९
 गगाघारा ५
 गगापटी १२२
 गगापुर २७५
 गजम २७१
 गंडक २९६

गघ १८४
 गघमादन २१, २९४
 गघर्ष १८७, २२३, २८०
 गघर्ष वज्रि ५१
 गघार २७०
 गगोरक्तुफ २०, २५५
 गज १८, १९, २९, १७४, १७५,
 १८०, १८१, १८४, १८५,
 २५९
 गजदर्शन १७९
 गज-गिनारक्त १४, १७०, १७९
 गजमद १८४
 गजप्रिया १४, १६१, १६५, १७०,
 १७९
 गजवैद्य १७९
 गजशाला ४३, २५१
 गजशास्त्र १४, २२, १७०, १७२,
 १७३, १७६, १७७, १७८,
 १७९, १८०, ३०३
 गजशास्त्रविशेषज्ञ १७८
 गजशिक्षा १४, १७०, १७९
 गजसुकुमार ७४
 गजोत्पत्ति १७३
 गडगिया ६२, १४८, १९७
 गणपति १५, १६९
 गणपतिशास्त्री १२८, २०७, २१०,
 २११, २१२, २१५, २१६
 गणित १४
 गणितशास्त्र १६५
 गणेश १७०, १७९
 गति १७३, १७७
 गदरी १२

गदा १६, २१३, २१५
 गद्य १, ४, २७, २८, ५२
 गङ्गा ९३
 गरुड २०८
 गरुडपुराण १६६
 गर्जक २०६
 गर्भ ८६
 गर्भान्वय ७०
 गर्भिणी ८६
 गल ६४
 गला १४०, १४४
 गवय १२२
 गवाक्ष १८, १५२, २९९
 गव्यण १०५
 गव्यूति २७५, २८६
 गागेय २०२
 गाढीव २०१, २०२
 गाघार २२४
 गाघारी २०९
 गाँव ८०
 गात्र १८३
 गाथियन ११९
 गाय ३७, ९५, १०७, २७८
 गायत्री १०, ११९
 गारवदास ५४
 गिरिकूटपत्तन २१, २७४
 गिरिनार २८१
 गिरिसोपा २७८
 गिलाफ ११, १२८
 गीत ६५, ८६, २२३
 गीतगाधर्वचक्रवर्ती १७
 गीतगोविन्द १२७

गुजा १९६
 गुग्गुलु ८०
 गुजरात ३, ११, १९, ३०, १२४,
 २५१, २७८
 गुजराती ६, ५०
 गुड ९, ९३, ९४, ९६
 गुण १८३, २०३
 गुणस्थान ६९, ७२
 गुणस्थानवर्ती ७२
 गुणस्यूत २०१
 गुणाढ्य १५, १६८
 गुदा ११७
 गुथनिर्या २१९
 गुप्त ५
 गुप्तकाल ९०, १५६
 गुप्तयुग १३, १२७, १४५, १९६
 गुफा २२६
 गुरमानका १३२
 गुह ५, १४, ७३, १६५
 गुरुकुल १४, ७३, १६१
 गुरुचि ११८
 गुर्जर ४, ५, ४०, २०५
 गुर्जर-प्रतिहार ३४
 गुलबर्गा २७३
 गुल्फ १३३, १४६
 गुल्म १०, ११४, ११५, ११७
 गुह्यक १६६, १८८
 गुह्या ११, १२, १३७
 गूलर ९८
 गृह्दीघिका १९ २८३
 गृहवास्तु २५७
 गृहस्य ७२, ८१

गृहस्थधर्म ७१	गोल ४०
गृहोद्यान २८३	गोलघर १६, २१९
गेगर २७८	गोलासन २१९
गेरसोप्या २७८	• गोल्ल ४०
गेरु २४१	गोविंदराम ३१, ३६
गेह २५१	गोशाल ७५
गेहूआं १३१	गोशाला २७०
गेहूँ ९२, ९४, १०९, ११४	गोशोर्षचदन १५८
गोखुर ९, १०४	गोस्वामी २२६
गोत्र ७, ६९	गौड ३३, ४०, १३३
गोत्रकर्म ६८	गौडमडल २८६
गोदान ८, १४, ७३, ८८, १६१	गौडसघ ५, ३३, ४०
गोदावरी २१, २६८, २७०, २७९, २९८	गौतम १४, १६६, ११९
गोघ ७, ६२	गौतमवृद्ध २०८
गोघन २७८	ग्रथ ११९
गोघा २०३	ग्रथिपर्ण १०, ११९, २८१
गोधूम ९, ९२	ग्रलहि १५, १६९
गोप ७, ६२	ग्राम २०, २१, २८२, २९१
गोपाचल २७५, २८६	ग्रामवृद्ध ६
गोपाल ७, ६२	ग्रीवा १७३
गोपिका ६२	ग्रोष्म ९५, १०९, १४६, २५७
गोपी ६२	ग्वाला ६२
गोफणहस्त २१९	ग्वालियर २५४, २७५, २८६, २८७
गोबर २४४	घ
गोमती २९६	घंटा १७, २२५, २३१
गोमास १०७	घन १७, २१४, २२५, २२९
गोम्मटसार ७२	घर्घरमालिका १४८, १५०
गोरखनाथ १०	घर्षण २७२
गोरक्षा ७०	घाघरा २९६
गोरस ९, ९६	घास ३७
गोरोचना १२५	घी ९१, ९४

घुँघुरू २३८
 घुडसवार १८७
 घुडसार २५१
 घूँघर १५३
 घृत ९४, ९५, ९६, १०९, ११०, १८४
 घोडा १२१, २२४, २७८
 घोणा १८३
 घ्राण ६८

च

चडकर्मा १०६
 चडकोशिक ३८
 चडमारो ४२, ४४, ४६, ७६, ७८,
 १०४, १३४, १३९, १५०,
 २००, २०५, २११, २१२,
 २१३, २१४, २१५
 चडरसा २७७
 चडातक ११, १२, १२१, १३४
 चडुपडित १६३
 चदकात १९
 चदन १९०, २५४
 चदेरी २५४
 चदोवा १२, ११०
 चदौर २९८
 चद्र १४, १८, १९, १६१, १६२,
 १६३, २४३
 चद्रकवल १३, १५८
 चद्रकात १४४, २५९, २७९
 चद्रकातमणि २५९
 चद्रगुप्त ३८
 चंद्रगोमिन् १६३
 चद्रातप १२

चद्रद्वीप २७९
 चद्रनवर्णी ५६
 चद्रप्रभ ३४, ३५
 चद्रभागा २१, २९८
 चद्रम ५६
 चद्रमति ४३, ४४, ४५, ४६, ८६, १३५
 चद्रमदिर २५०
 चद्रमा ९५, १४५, १४६
 चद्रलेखा १०, ११८
 चद्रापोड १३३
 चद्रायणीस १६२, १६८
 चपक १२, १४१, १५९,
 चपा २१, १४१, २६७, २८६
 चपापुर १९५
 चँवर २३७, २३८
 चकोर ११०
 चक्र १६, ६२, १८५, २१३, २१५
 चक्रक ९, ९७
 चक्रवर्ती २४२
 चक्रवर्ती (पी० सी०) २१८
 चक्रवाक ११०
 चक्षु ६८
 चटगाँव २७९
 चतुरश्र २३४
 चतुरिन्द्रिय ६८
 चतुर्वर्ण ६०, ६९, ७०
 चत्तारोमासक १९६
 चप्पल ७८
 चमडा २१८, २८४
 चमर ९, १०४
 चमार ६५
 चमूर ९, १०४

- चरक १४ ११०, ११९, १२०, १६७
 चरकसंहिता ११९, १२०
 चर्मकार ७, ६५, १०६
 चर्मप्रसेविका ६५
 चर्वी ११३
 चष्टन १३४
 चष्टनशैली १३४
 चाडाल ७, ६३, ६५, १०६
 चाँदी १६, १९६
 चाद्र १६२
 चाद्रव्याकरण १६३
 चाणक्य ३८
 चाणक्यनीति ३८
 चादर १२, ७७, १३७, १३८
 चाप २०२
 चारायण १४, ११०, ११९, १२०,
 १६७
 चारित्रमोहनीय ७२
 चारुदत्त ६४
 चार्वाक ७८
 चालुक्य ५, ३९, २६८, २७२, २७३,
 २८९
 चावल ९२, ९३, ११०
 चाप २४७
 चिडडा ९३, ९४
 चिंचा १०२
 चिंतामणि १५, १९
 चिकित्सा १४, १७०
 चिकुर १५२, १५५
 चिकुरभग १३, १५२, १५५
 चित्र १८, २०८
 चित्रकर्म १७, १८, २४४
 चित्रकला १४, १५, १७, २९, १६२,
 १६७, २०७, २४१, २४२,
 २४४, २४५
 चित्रपट ११, १२४
 चित्रपटी १०, १२१, १२४, २५१
 चित्रभानुभवन २५०
 चित्रशिगम्टी ८, ७७
 चिपट ९३
 चिपिट ९, ९३
 चिदुरु १८३
 चिभटिका ९, ९७
 चिल्ली ९, ९७, ११२
 चीता २५९
 चीन १०, ११, १२१, १२२, १२३,
 १२४, १२९, १३१, २५१
 चीनाशुक १०, १२३, १२४, १२९,
 १३०
 चीनी १०, ९४, १०९, १९३
 चीवर ११, १२, १२१, १३६
 चीवरकसवक १३६
 चुकार २१, २८६
 चुन्नोलाल शेष २२६, २३२
 चुरी ९५
 चूचुक २०, २६२
 चूर्ण ९४, १०१, १०२, १५२
 चूर्णिकार १२६
 चेदि २१, २७४, २७५, २७९, २९०
 चेनाव २७७
 चेर २७
 चेरम २१
 चैत्यालय १८, २२३, २३६, २४६
 चैत्र २७

चोटी २९६
 चोल २१, २७, २७४, २७५
 चोलक ११, १२१, १३१, १३३
 चोला १३३
 चोली ११, १३१
 चौलकर्म ८८
 चौलमहल १९४
 चौलाई ११२

छ

छद २९
 छकडा १९६
 छवि १७२
 छाँछ १११
 छाग १०५
 छानी २०९
 छाया १७२, १८३, २४१
 छायामंडप २५७
 छुरिका २०३
 छुरी २०३

ज

जंगली ६६
 जंघा १८३
 जबीर ९८
 जंबू ९, ९८
 जंबूक १०, ११८
 जगत्स्थिति २९
 जघन १८३
 जटा १५२
 जटाजूट १३, २३५
 जटासिंहनंदि ६९

जटिल ८, ७७
 जठराग्नि १०, ९५, १०८
 जननी ८, ८८
 जननेता १
 जनपद ६, २०, २१, ४०, ४२, ४३,
 १२४, १४६, १४७, १८९,
 १९४, २६७, २७०, २७१,
 २७४, २७५, २७६, २७८,
 २८०, २८१, २८२, २८४,
 २८८, २८९

जज्ञकवि ५३
 जबलपुर २८९
 जमुना २८६
 जम्मू २९९
 जयघटा २३१
 जयदत्त १६६
 जयपुर ५३, ५४, २७१
 जयसिंह, २७२
 जल ९, ९५
 जलकेलिवापिका २५७
 जलचर १०४
 जलजनु ९
 जलवाहिनी, २१, २९४, २९८
 जलोघ २५८
 जव १७३, १८३
 जसहरचरित्र ६, ५०, ५१
 जहाज १९४, २४७
 जागल २७२, २९०
 जाघ १६०
 जाधिया १३५
 जातक १९५, १९६, २२६
 जातकर्म ८७

झ

झपासिंह २४८
 झल्लरी १७, २२५, २३२
 झालर २३२
 झिल्ली २२६
 झील २०, २१, २९७
 झेलम २९९

ट

टांडा ७, १६, १९२
 टाप १८३
 टिप्पण २२, २९, ३०४
 टिप्पणी २२, ३०३
 टोका २२, २९, ३१, ३३, ३६, ९१,
 १६७, ३०४
 टोटी २५९
 टचूडर २५७

ठ

ठक्कुर फेर २४८
 ठाणाग सूत्र २९८

ड

डडा ६५
 डडी १५१
 डमरु २३०, २३४
 डमरुक १७, २२५, २३०
 डहाल २१, २७४, २७५, २९०
 डिडिम १७, २२५, २३४
 डिमडिमो २३४
 डोढो ९७, ११२
 डोरा २०१
 डोरो २००

ढ

ढक्का १७, २२५, २२८
 ढल्हण ११९
 ढाका २०९, २७९
 ढुलकिया २२८
 ढेंकी ९३
 ढोल २२८, २३२
 ढोलक २३४
 ढोलकी २२८

त

तजोर १८२, २४५
 तजौर १६६, २७५
 तडुभवन २५०
 तडुलीय ९, ९७, ११२
 ततु २२५
 तत्र ८०
 तकिया ११, १२, १२८, १३७
 तक ९, ९५, ९६, ११६
 तक्ष २८०
 तक्षक ७, ६२
 तक्षशिला २८०, २८१
 तडाग ९
 तत १७, २२५, २३१
 तत्त्वचितक १
 तत्त्वज्ञानतरंगिणी ५१
 तत्त्वार्थशास्त्रिक १६५
 तत्त्वार्थसूत्र ४८, १६४
 तनुरुह १८३
 तपम्या ४५, २८२
 तपस्विनी १०, ११८

तपोवन ७३	तारा १४५
तमाल १५५	ताकिक १
तमानदलबूलि १३, १५८	ताकिकचक्रवर्ती ६
तमिल ६, ५०, ५५	ताल १७, ९८, २२५, २२९, २३८
तयोमासक १९६	तालपत्र १४३
तरकस २०३	तालाव ९५, २६७
तरंड ६४	तालु १७३, १८३
तरणितोरणी २९८	तिकोना १२
तरवारि १६, १८५, २०६	तिक्त ९१, १०९
तराई २९४	तिच्चन १९३, २९७
तराजू १५१	तिच्चतो १६३
तरी ६४	तिरहुत ९३, २०५
तरोना १४३	तिर्यग्योनि २३५
तर्क २९	तिर्यचगति ४८
तर्कविद्या १६१	तिल ९९, १०९
तर्कशास्त्र १४	तिलक २६२
तप ६४	तीक्ष्ण ९०, १०८, १०९
तलवर २०६	तीर्थकर १८, २४२, २४४, २४५ २८२, २८५
तलवार ४२, ८३, २०३, २०५	तुगमद्रा २७८
तलहटी २९५	तुरग
तहसील २८	तुरगम १८७
ताडव १७, २२३, २३६, २३९, २४०	तुरही २३३
तांत २१८, २२५	तुकिस्तान १९३
तांवा १९६, २३३	तुलाकोटि १३, १४०, १५०
तावूल १३, १५८	तुवत्तरग ६४
तावूलवाहिनी २०	तुपारगिरि २८१, २९६
तामलुक २८६	तुहिनतर २०, २५५
ताम्रचूड १११, १७१	तूवी २३२
ताम्रपत्र २९२	तूर १७, २२५, २३३
ताम्रलिप्ति १६, २१, १९३, १९४, २८६	तूर्य २३३
तार २१८, २२५, २३२	तेज १७७

तेल ९

तेली ६३

तेलुगु १६४

तैत्तरीयब्राह्मण ९४

तैत्तरीयसंहिता १६३

तेल ९६

तोयश्यामाक ९२

तोरण ८७, १८५, २८२

तोर्यत्रिक २२३

त्रयश्र २३४

त्रयी ६७

त्रस ७२,

त्रापुषमणि १४७

त्रिक ७७, १८३

त्रिकटुक ९९

त्रिचनापल्ली २७५

त्रिदश १५, १६९

त्रिपुरी ३७, २७९, २८९

त्रिभुवनतिलक १८, १९

त्रिभुवनतिलकप्रासाद २४९

त्रिमाष १९६

त्रिवला २३०

त्रिवली २०, २६२

त्रिविला १७, २२५

त्रिविली २३०

त्रिवेदी ७, ६०, ६१

त्रिशूल १६, २१५, २१७

त्रिपट्टिशालाकापूरुपचरित्र २८५

त्रोन्द्रिय ६८

त्रेतायुग ६९

त्वष्टकि १६२

थ

थलचर १०४

थान १२३

थाली १५०

थैला ६५

द

दड १६, ६५, २१४, २१५

दडि २८

दति १८१

दक्षिणमथुरा २१

दक्षिणापथ ३५, २७०

दत्तक १६२, १६७

दधि ९, ९४, ९६, १०९

दधीचि १३२

दक्ष्णापरिप्लुत ९, १०२

दमकलोक १८०

दया ६९, ८३

दरद ९, ९६

दरवार १२५, १३३, २३४, २७७,

२८१

दरवारेआम १९

दर्दरीक ९, ९८

ददुर २२७

दर्शन २८

दर्शनमोहनीयकर्म ७२

दशकुमारचरित ६०

दशन १८३

दशरूपक १७

दशरूपककार २४०

दशा १८३

- दशार्ण २१, १४३, २७५, २७६
 दही ९१, ९४, १०२
 दहेज १२७
 दाक्षिणात्य १३५, १४६, १५७
 दाक्षी १६४
 दाख ९८, ११०
 दाडिम ९८
 दादागुरु ४०
 दान १८०
 दानपत्र ५, २७, ३२, ३३, ३४
 दानशाला २६७
 दार्शनिक १५, २२, ३०, १६९, ३०३
 दाल ९१, ९४
 दासी १५०
 दाह ११३
 दिगम्बर ८०
 दिग्बलयविलोकविलास २५३
 दिवाकर मित्र १४५
 दिवाकीर्ति ७, ६३, ६४
 दीक्षा २७४
 दीक्षान्वय ७०
 दीदिवि ९, ९२, ९९
 दीर्घतप १७५
 दीर्घतपा १७५
 दीर्घनिकाय २६९
 दीर्घिका २०, २५५, २५६, २५७, २६४
 दुदुभि १७, २२५, २२७
 दु ख ७५
 दुकूल १०, ११, १२१, १२५, १३७,
 २३५, २५३
 दुग्ध ९, ९४, ९५, ९६, १०२, १०९,
 १८४
 दुपट्टा १२
 दुर्गा २१७
 दुर्जर १०
 दुर्योधन २१३
 दुर्वासा २४९
 दुस्फोट १६, २१३
 दूत १३७, १४०, २०४, २११, २१७,
 २८०
 दूतिका ८, ८८
 दूध ३७, ८३, ९१, १०७, १०९
 दूधिया १२८
 दृग्मान्य १०, ११५, ११६
 दृति ६५
 दृश्य २३६
 देव ३४, ९०
 देवता १२, ४८, २०७, २०९
 देवनदी १६४
 देवपूजा ११०, ११४
 देवभोगी ७, ६०, ६१
 देवराज ३६
 देवरिया २८४
 देवलोक १७५
 देवविमान १८, २४३,
 देवसघ ४, ५, ३२, ३३
 देवसूरि ५४
 देवात ५, ४०
 देवालय २८३
 देवी १२, २०७, २०९
 देवेन्द्र ३५, ५५
 देश २०, ७२, १७२, १७७
 देशक ८, ७७
 देशयति ८, ७७

देशव्रती ७२, ७७
 देशसयम ७२
 देशी ७
 देहदाह ११५
 देहली २५४, २५७
 दोहद ८६, १०५, २९८
 दोनी १९०
 द्रविड ३३
 द्रविडसघ ३३
 द्रामिल १४३
 द्रुत २३९
 द्रोण ७५, २०२
 द्वापर ६९
 द्विज ७, ६०, ६१, ९०
 द्विदल ९, ९४
 द्विप १८१
 द्विमाप १९६
 द्विरद १८१
 द्वीन्द्रिय ६८
 द्वीप २८३
 द्वैमासक १९६
 द्वयाश्रय २०८

घ

घतूरा ११९, २२६
 घनजय १७, २३६, २४०
 घनदक्षिण्य २५०
 घनु २०२
 घनुर्घर २०२
 घनुर्घरी २०३
 घनुर्वेद २२, २००, २०२, २०३
 घनुष १६, २००, २०१, २०३

घनुष-विद्या २०२, २०३
 घन्वन्तरी १४, ११९, २२३
 घन्वी २०२
 घम्मिल १५५
 घम्मिलविन्यास १३, १५२, १५५
 घरण १६, १९६, २४९
 घरोहर १६, १९८
 घर्म २८, ६७, ६९, ७४, ८२, १७३,
 १८७, १९९
 घर्मघाम २५०
 घर्मशाला २६७, २८३
 घर्मशास्त्र ६७, ८९
 घमख्यान १४, १६१
 घर्मचार्य १
 घवल १२७
 घसान नदी २७६
 घालु २३१, २३३
 घात्री ८, ८७, ८८, ८९
 घात्रीफल ९, ९७
 घान ६२, ९३
 घाम २५१
 घारवाह २८, २७२, २७३
 घारागृह २५७
 घार्मिक ३०
 घारोष्ण ६५
 घिपण १४, ११०, ११९, १२०, १६७
 घिण्य २५१
 घोरप्रशान्त २३६
 घोरोदात्त २३६
 घोरोद्धत्त १७, २३६
 घोरललित २३६

घीवर ७, ६४, १०६
 घूप १५२
 घूपवास १५२
 घूलिचित्र १७, १८, २४३
 घैवत २२४
 धोतो १३६
 धोवो ६३
 ध्यान ७९, ८२
 ध्यानमुद्रा २३५
 ध्वज ६३, १८५, २०८
 ध्वजदंड १९
 ध्वजस्तम्भ १९
 ध्वजस्तम्भस्तम्भिका २४८
 ध्वजिन् ७, ६३
 ध्वनि २२, ३०३

न

नद ३८
 नदीदुर्ग २७३
 नकुल १११
 नख २६२
 नगर २०, २१, ८०, २७६, २८२
 नगरी २७२, २९९
 नगारा २२८
 नग्न ८१
 नजर ११०
 नट ७, ६५
 नदी २१, ४३, २७२, २९७, २९८
 नभचर १०४
 नमक ९३, ९६
 नमकीन १०१, १०९
 नमत १२, १२१, १३८

नमदा १२४ १३८ २८४
 नमस्कार १४०
 नमो ९, ९८
 नर १४, १६६, १७९
 नरक ४८
 नरेन्द्र ३५
 नरेश २७, २८, २२६, २६८
 नर्तकी १०२
 नर्मदा २१, २७८, २८८, २९८
 नल २०२
 नलक ६३
 नवनीत ९, ९५, ९६, १३१
 नव्यान्वयकाव्य १६१
 नहर २०, २५७
 नहरेविहिस्त २५७
 नहुप २०२
 नाई ६३
 नाग १४५, १८०, १८१
 नागनगरदेवता १५५
 नागरग ९, ९८
 नागलोक २११
 नागवल्ली ९८
 नागवृक्ष १३१
 नागानन्द २०८
 नागार्जुन १४५
 नागेशनिवास २५०
 नाटक १४, २८, ३८, २३४
 नाट्य १७, २९, २२३, २३६
 नाट्यमंडप २३४
 नाट्यशाला १७, २२३, २३४, २३५
 नाट्यशास्त्र १५, १६७, २२४, २२७'
 २३२, २४०

नाद २२६
 नाथूराम प्रेमी ३१, ३८, ४०
 नापित ६४
 नामकर्म ६८
 नाभि २०
 नाभिगिरि २१, २६२, २९०, २९४
 नायक १७
 नायिका १७, १४६
 नारद १४, १६६, १७९, २६१, २७४
 नाराच २०३
 नाराचपजर २०३
 नारायण १५, १६८
 नारिकेल ९, ९८
 नारिकेलफलाम ९, ९६
 नारियल ९८, १०९
 नासिका १८३
 नास्तिक ८, ७८
 निदा ८२
 निकाच १८०
 निचल १३८
 निचुल १३९
 निचुलक १३९
 निचोल १२, १२१, १३८, १३९
 निचोलक १३९
 निचोलि १३९
 निजामावाद २६८
 नितव १४६, १८७
 नित्यवर्ष ३८
 निद्रा १११, ११३
 निपाजीव ७, ६३
 निमाह २८८
 निमि १४, ११०, ११९, १६७

नियतिवाद ७५
 नियम ८२
 निरकुश ७३
 निर्णयसागर प्रेस ३०, ११९, १६९
 निर्मम ८२
 निवास २५१
 निशीथ १२६
 निशीथचूर्णि ११
 निषाद १०६, २२४
 निष्क १६, १९५
 नीति ६, २९, ३९
 नीतिप्रकाशिका २१८
 नीतिवाक्यामृत ५, ३३, ३४, ३६,
 ३७, ३८, ३९, ६७, १२०, १९२
 नीतिशतक १६९
 नीतिशास्त्र १४, १६५, २५०
 नीम ९७
 नील ६८
 नीलकठ १७६
 नीलकमल १८४
 नीलगुड प्लेट २७२
 नीलपट १५, १६९
 नीलभट्ट १६९
 नीलमणि १५१
 नीला १५९
 नीलाशुक १२९
 नीहार १०, ११३
 नूपुर १३, १४०, १४७, १५०, १६०
 नृत्त १७, २३६, २३८, २३९, २४०
 नृत्तवृत्तान्तभरत २२३
 नृत्य १७, ८६, २२३, २३४, २३६,
 २३७, २४०

नृत्यकला १७
 नेत १२३
 नेता ७१
 नेत्र १०, २०, १२१, १२२, २५१, २६२
 नेपाल २१, २९२, २९४, २९७
 नेपाल शैल २१, २९४
 नेमिदेव ५, ३२, ३३, ३९
 नेमिनाथ ३३
 नेपाल १६३
 नैषध १६३
 नैषधकार ६३, १६३
 नोनखार २८४
 नीवत २२८
 नीशे ११, १३३
 नीसतरण १५, १८९
 न्यायविनिश्चय १६५
 न्यास १५, १६, १६३, १८९, १९८

प

पखा २६२
 पंचम २२४
 पचमावर्ड १९६
 पचमालिप्ति १४९
 पचरगपाग १३५
 पचशैलपुर २८५, २८९
 पचानिसाधक ८३
 पवाल २७६
 पचेंद्रिय ६८
 पजाब २७२, २७७
 पडित १६१, १९७
 पकवान १०१, ११२
 पक्वान्न ९, १०१, १०१

पक्षी ९
 पगडी १२
 पचूडी १२३
 पटना ३८, २८५, २८७, २९९
 पटरानो १९, २९०
 पटवास १३, १५८
 पटह १७, २२५, २२८, २३४
 पटोल ९, १०, ११, ९७, १२१,
 १२४, २५१
 पटोला ११, १२४
 पट्ट १२, १२४, १४०, १४१
 पट्टकूल १२१, १२४
 पट्टवध १७०
 पट्टिका १२१, १३५
 पट्टिस १६, २१५
 पण १९६
 पणव १७, २२५, २२७, २३२
 पणि १४, १६४
 पणिपुत्र १४, १६१, १६२
 पण्यपुटमेदिनी १९२
 पतजलि १६२, १६४
 पताका १२५, २३८
 पति ८, ४६
 पत्नी ८, ७४
 पत्रच्छेद १६८
 पत्रोर्ण १३१
 पदप्रयोग १६१
 पदमावत १०, १२१, १२३
 पदाति २१०
 पक्षनाथ ५२
 पक्षनाभ ५२, ५४, ५५
 पक्षनिखेट २१

- पद्मसरोवर १८, २४३
 पद्मावतस १४२
 पद्मावतीपुर २१, २८७
 पद्मिनी १९४
 पद्मिनीखेट २८७
 पद्म १, ४, १८, २७, २८, ३५, ३६
 पनवेल ९८
 पनस ९, ९८
 पन्नालाल ५४
 पवघ १४१
 पयसा-विशुष्क ९, १०२
 परदनिया १२, १३६
 परमहंस ८३, ८४
 परमान्न ९, १००, १०२
 परवल ९७, ११०
 परशु १६, २११, २१७
 परशुराम १६२, २११
 पराग १८४, २३५, २५४
 परासर ७८
 परिकर्तन ११७
 परिग्रह ७३, ८१
 परिघ १६, २१४
 परिचर्या १०, १५, १०८, ११५,
 ११६, १६७
 परिच्छेद ६, ७, ८, ९, १०, १२,
 १४, १६, १७, २०
 परिणाह १७२
 परिधान ११, १२, १२१, १३६, १३७
 परिवार ७४, ८५, ८९
 परिव्रजित ७५
 परिव्राजक ८, ७८, २८३
 परिव्राट ७८
 परिहरानंद ५४
 परीक्षित १४, १६५
 पर्दनी १३६
 पर्पट ९, १०२
 पर्भनी ४०, २६८
 पर्याप्तक ६९
 पर्वत २०, २१, २२६, २७४, २८१,
 २९०, २९१, २९४
 पलग ४३, ४४, १३७, २६२ २३३
 पलगपोश ११, १२८
 पलाडु ९, ९८, १०३
 पल्लव १२, २१, १४१, १५२, १५९,
 १९३, २७१, २७६, २८२
 पल्लवावतस १४१
 पवनकन्यका २६२
 पवाया २८७
 पशु ९, ६८
 पशुत्रलि ६
 पशुयोनि ६, ४४, ४५, ४७
 पद्म १२४
 पस्त्य २५१
 पहलवी ११, १३२
 पाचजन्य २२५
 पाचाल २१, ११९, २००, २०४,
 २११, २१६, २७६, २८२,
 २८५, २९४, २९८
 पाडु २१, २०७, २७६
 पाडुलिपि ३०, ५२, ५३, ५५, २४५
 पाड्य २१, २७, १४६, २७६
 पाकविज्ञान २९, ९१
 पाकविद्या ८, ९१

पाकिस्तान २८९, २९९
 पाचूडो १०
 पाटलिपुत्र २१, १९४, २८६, २८७
 पाटली १५६
 पाठीन ९, १०४
 पाणि १४, १६४, २३८
 पाणिग्रहण ४३
 पाणिनि १४, ७५, ९९, १६२, १६३,
 १६४, १९५, १९६
 पाणिनीय १६१
 पाताल १४५
 पाद १९६
 पानक ९, ९६, १०९
 पानी ८३, १०९
 पाप ८२, १९९
 पापड १०२, ११२
 पामर ७, ६१
 पायस १०६
 पारदरस १०, ११९
 पारलौकिक ७, ५९, ६७
 पारा ११९
 पाराशर ८, १४, ७५, १६५
 पाराशर्य ७५
 पारासर ७८
 पारिजात ९, ९८
 पारिरक्षक १६१, १६५
 पारिवारिक ८
 पार्वती ७७, २४०
 पार्श्वनाथ २८२
 पार्श्वनाथचरित ५१
 पार्प १०५

पालकाप्यमुनि १६५, १७४, १७६,
 १७७, १७८, १७९
 पालकाप्यचरित्र १७४, १७५
 पालि २६८, २७८
 पालोताना २८७
 पाश १६, २१८
 पाश्चात्य ११८
 पिठा १९२
 पिचुमद ९, ९७, १०३
 पिता ८८
 पित्त १०८, १०९, ११३
 पिनाक २०२
 पिपली ९, ९६
 पिष्टकुक्कुट ८५, १०४
 पिष्टान १५३
 पिष्टातक १५३, १५८
 पी० एल० वैद्य ६
 पीटरसन ३, ३०
 पीठ १७३
 पीतल २१८, २२६
 पीपल ९६, ९८, ११८
 पुख २०३
 पुखानुपुखक्रम २०३
 पुड्ड १८३, १८५
 पुड्रेक्षु ९, ९८
 पुट्टुकोट्टा २७५
 पुट्टा १८५
 पुण्य ८२
 पुण्यजनावास २५०
 पुत्तलिका २०, २५४
 पुत्र ८, ७४
 पुत्राग १६०

- पुद्गागमाला १४, १६०
 पुद्गाट ३३
 पुद्गाटसष ३३
 पुरदरागार २५०
 पुरंघ्नी १०९
 पुरवृद्ध ७४
 पुराण १४, १६, २९, १९६, २७४
 पुरातत्त्व २, २९, १५२, २३५, २५६
 पुरानी गुजराती ५५
 पुरानी हिन्दी ६, ५०, ५४
 पुराविद् ३८
 पुरुष ११, १२, १४७, १५५
 पुरोहित ७, ६०, ६१, ८७, ८९,
 १९२, २३८, २७२, २७४,
 २९०
 पुष्कर १७, १७३, २२५, २२७
 पुष्करणी २०, २५५, २५६
 पुष्करत्रय २२७
 पुष्कल २८०
 पुष्कलावती २८०
 पुष्प १४१, १५२, १५८, २७२
 पुष्पदत्त ५१, २८५
 पुष्पप्रसाधन १३, १५८
 पुष्पमाला १५२, २०८, २४३
 पुष्पवाटिका २५७
 पुष्पावतस १४१
 पुलस्त्य ७७
 पुलह ७७
 पूंजी १९२
 पूँछ १७३, १८३
 पूग ९८
 पूज्यपाद १६१
 पूर्णकुम्भ १८, २४३
 पूर्णदेव ५३
 पूर्णभद्र ५२
 पूर्णरूप ११७
 पृथुक ९४
 पृथुवश २८२
 पृथ्वी १५, १८, १८९, २०१
 पृथ्वीचंद्रचरित २०५
 पृषदाज्य ९६ १०१
 पृष्ठ १८३
 पृष्ठभूमि ४६
 पेचक १७३
 पेट ११३, १८३
 पेदन १६४
 पेय ८, ७६, ९१
 पेशा ६५, ६६
 पैठास्थान १५, १९१, १९२, १९५
 पैठण २७३
 पैर के आभूषण १४०, १५०
 पोखरा ९५
 पोंडा ९८
 पोदन २६८
 पोदनपुर २१, २६८, २८७
 पोरोगव ९१
 पोशाक १३१
 पौंड्र ११, १२६
 पौंड्रदेश १२८
 पौरव २१, २८७
 पौराणिक १५, २२, ६९, १६९,
 १७०, १७३, ३०३
 पीरोगव ९
 पीप ९२

प्याज ९३, ९८	प्रमाणसंग्रह १६५
प्रकार ११६, १७२	प्रयाग २१, २७१, २७६, २९१, २९८
प्रकृति १८३	प्रवचन २९
प्रचार १७७	प्रवर्षण २५८
प्रचेत पस्त्य २५०	प्रशस्ति ३३, ३४, ३६, ५२, २७१
प्रच्छदपट १३९	प्रशिष्य ३२
प्रजा १८७	प्रसंख्यान १६१, १६५
प्रजापति १६१	प्रसख्यानशास्त्र १४
प्रज्ञा १	प्रसाद २८
प्रज्ञाचक्षु ३६	प्रसाधन १३, २९
प्रज्ञापना २०८	प्रसाधन-सामग्री १५७, १५८
प्रणाल २४७, २४८, २५९	प्रसूति ८६
प्रतिभा १	प्रसूतिगृह ८६
प्रतिष्ठान २७३	प्रसेनजित २८५
प्रतिहार ४, ५	प्रस्तावना ३८
प्रतिहारी २१६	प्रात २८६
प्रतीक २४३	प्राकृत ६, २८, ५०, ५२, १३०, २०८
प्रतीकचित्र १८	प्राक्कथन २७८
प्रदेश २७०, २७२, २७३	प्रागद्वि २१, २९५
प्रदोष २६०	प्राग्ज्योतिषेश्वर १२४
प्रद्युम्न १८, २४१, २४२	प्राभृत २९२
प्रघावधरणि २५३	प्राक्षिपशील २८१, २९६
प्रपा २६७	प्रावरण १३८
प्रबोधचन्द्रोदय ७६	प्रास १६, २११, २१२
प्रभजन ६, ५०, ५१	प्रासाद २५१, २५७
प्रभा १७२	प्रासादपट्ट १४१
प्रभुदयाल २२६	प्रासादमंडन १९, २४८
प्रमदवन १९, २०, १४१, १५५, २५५, २५७	प्रासादशिल्प २५५
प्रमदारति २३८	प्रियदत्त १९५
प्रमाणशास्त्र १४, १६१, १६५	प्रियालमंजरी १५७

प्रेक्षागृह २३४, २३५
 प्रेम १९१
 प्रेमिका १६८
 प्रेमी १६८
 प्रेमी (नाथूराम) ३३, ३६
 प्लक्ष ९, ९८
 प्लास्टर २४१

फ

फणयुवतसर्प २४३
 फतेहपुर सीकरी १९, २५२
 फर्खाबाद २८४, २८५
 फर्श २५४
 फल ७९, ८२, ९७, १७९
 फलश्रुति ७५
 फव्वारा २५९, २६१
 फारसी १३२
 फाल्गुन २८
 फुहार २६०
 फूल १५९, २२६

ब

बग २१, २७९
 बगला १२३
 बगाल १०, २१, ४०, १२३, १२४,
 १२६, १२९, १४२, २३३,
 २७९, २८६, २९८
 बगी २१, २७९
 बदी १७२, १७३, १८२
 बद्क २१९
 बधूक १६०
 बधूकनूपुर १४, १६०
 बंबई ३०, ३३, २७०, २७३

बकरा ११, ४५, ४६, १३६, १४८,
 १९७
 बकरी ४५, ४६, २७८
 बकुल १३१
 बगीचा २६७, २८३, २९४
 बडवा १६६
 बडौदा १९, २०९, २५१
 बयुआ ९७
 बदमाश २८६
 बघीचन्द्र ५४, ५५
 बनवासी २७२
 बनारस ३६
 बनिकट्टपुल ३२
 बमुथु १८०
 बरपानक १३२
 बरवान १३२
 बरछी २१०
 बरार २६८, २७७
 बरेली २८२
 बर्छी २१७
 बर्फ २९६
 बर्बर २१, १९४, २६८, २७७
 बल १७३, १७७, १८३
 बलराम २१३, २१४, २१६
 बलवाहनपुर २१, २८७
 बलि ४२, ७६
 बल्हरा २८
 बहावलपुर २८९
 बहित्रयात्रा १९४
 बांस २१२, २३१
 बांसुरी २३१
 बाकरगज २७९

बाजरा ९२

बाजा ६५

बाजार १५, १९०, १९५

बाण २, १०, ११, १५, २८, ४१,

४२, ९८, १२७, १२८,

१५१, १५५, १६८, १८४,

२०१, २०३, २५९, २६०,

२६४

बाणभट्ट २, ५, ४५, १२२, १२४,

१३०, १३२, १३४, १४८,

१६९, २५६, २५८

बाणासन २०२

बाल ९, ४३, १२४, १५५

बालकवि ३७

बालघि १८३

बाल विवाह ८

बालिन्त २३३

बाली १२, १४४

बाहुबलि १८, २४१, २४२

बिलासपुर ९३

बिहार १९७, २६७, २८५, २८६,
२८९

बीदर २७०, २७३

बुद्धभट्ट १६६

बुदेलखड १२, १३१, १३५, १३६,
१३७, १४४

बुद्ध २०७

बुद्धचरित ४७

बुद्धयुग १९६

बुहलर २७८

बृहत्कला ११,

बृहत्कल्पसूत्र १२४

बृहत्कल्पसूत्र भाष्य १३०

बृहत्तर भारत २०

बृहत्स्पति ७८ ९२, १२०, १४५,

१६५, २२३, २८६

बृहत्संहिता १२, ९९, १४१

बेल ९७

बेलगांव २७२, २७३

बैगन ९७, १०३, ११२

बैल २२४

बोटुडपुल्ल ३२

बोधगया १९७

बोधन २६८

बौद्ध १३६, १६३, १९७, २३६,

२८६

ब्रह्मसीध २५०

ब्रह्म ८३

ब्रह्मचर्य ७, ७३

ब्रह्मचारी ८, ७८, ८३

ब्रह्मजिनदास ५५

ब्रह्मनेमिदत्त ५२

ब्रह्मपुत्र १७९, २९७

ब्रह्मा ७०, १७४, १७५, १७९, २०८

ब्राह्मण ७, ९, ५९, ६०, ६१, ६८,

७०, १०४, २५०

ब्राह्मणकाल ९४

ब्राह्मणो १६३

ब्राह्मी १२३

भ

भंडारकर इस्टीमेट ५२

भमा १७, २२५, २२९

भक्त ९, ९९
 भक्ष्य ७६
 भगन्दर १०, ११३, ११५, ११६,
 ११७
 भगवद्गीता २२५
 भगवती २०८
 भगासनस्थ ७६
 भगिनी ८, ८८
 भटकटैया ९७
 भट्टनारायण १६८
 भट्टारक ३४
 भट्टिकाव्य १२७, २१६
 भडौच २७८
 भद्र १४, १७०, १७५, १७७, १८१
 भद्रमित्र १९४, १९७, १९८
 भरत ७०, ७१, १६२, १६७ २३२,
 २३३, २३६, २४२, २८०
 भरतक्षेत्र ४३
 भरतपदवी २२३
 भरतमुनि २२३, २३४
 भरहुत १३५, १९७
 भरुकच्छ २७८
 भर्तृमोठ १५, १६८
 भर्तृहरि १५, १६८, १६९
 भवन २५१
 भवन-दीघिका २५७
 भवन-मयूर २५९
 भवभूति १५, २८, १६८
 भविल ८, ७८
 भव्य ६९
 भस्त्रा २०३
 भस्म ७६

भाग २१८
 भागलपुर २६७, २८६
 भागीरथी २९७
 भागुरि १४२
 भाग्य ७५
 भादो ९९
 भात १०९
 भारत ३, १०, २८, ४०, ८४, १२५,
 १२९, १९५, २९२
 भारतवर्ष ३, १८, २८, १२५, १२९,
 १३३, १९६, १८९, २२६,
 २४४, २५७
 भारतीय वेश-भूषा १२३, १३२
 भारद्वाज १४, १६५
 भारवि १५, २८, ९३, १६८
 भार्या ८, ८८
 भाल ६६, १०६
 भाला २१७
 भावनगर २८९
 भावपुर २१, २८८
 भावप्रकाश ११६, ११७
 भावलपुर २८९
 भावाश्रित १७
 भास १५, २८, १६८
 भिदिपाल १६, २१२
 भिक्षु ७५, ७६, १४५
 भित्तिचित्र १७, २४१
 भिनमाल २८०
 भिल्लमाल २८०
 भीम १४, १६५, २१३, २९५
 भीमवन २१, २९५
 भीष्म १४, १६५, २०२

अनुक्रमणिका

- भुजा १४०, १४७
 भुसुंडी १६, २०६
 भूकप २०१
 भूगोल ४, २०, २९
 भूदेव ७, ६०, ६१
 भूमितिलकपुर २१, २७५, २८८
 भृग १८४
 भृगु १७५
 भृगुकच्छ २७८
 भृति १९८
 भेड १०७, २७८
 भेद १७५, २३९
 भेरी १७, १८४, २२५, २२६, २३३
 भेरुड ९, १०४
 भैस २७८
 भैसा ४५, १९४
 भैरव ७६
 भोगावलि १४, १६८
 भोज २१, ३७, १६६, २५१, २५८,
 २५९, २६०, २६१, २६३,
 १६४, २७७
 भोजदेव २६२, २६३
 भोजन १०, ११०, १११
 भोजपत्र २९४
 भोजपुरी १०, १२३
 भोजावनी २७७
 भोज्य १०, १११
 भौरा १४१
 भ्रमिल १६, २१५
 म
 मखलिपुत्त ७५
 मगल २२६, २२७
 मजरी १५२
 मजिष्ठा २७४, २७५
 मजीर १३, १४०, १५०
 मडप ४३
 मडलाग्र १६, २०६
 मडी १९१
 मत्र २९, ८०
 मत्रजाप ७९
 मत्री २३८
 मद १४, १०८, १७०, १७६, १७७,
 १८१, २३९
 मदर २१, ९८, २९५
 मदाकिनी १४५, २६३
 मदाग्नि ११२
 मदिर ४२, ४४, ६१, ७८, १३९,
 २५१
 मकडी २२६
 मकर ९, १०४
 मकरध्वजाराधनवेदिका २५७
 मकरी २६०
 मकोय १११
 मक्खन ९९
 मगघ २१, ९३, २७७, २८५, २९०,
 २९४
 मगर ४५, ४६, १०५
 मछली ४५, ६४
 मट्टा ९४, १०२
 मणि २५५
 मणिकिकणी १४९
 मणिकुडला २८१
 मतगज १८१
 मत्सर ८२

- मत्स्य १०५
 मत्स्यपुराण २१२
 मत्स्ययुगल १८, २४३
 मथानी १४९, १५०
 मथुरा ३३, १३२, १३४, २८१, २८८
 मथुरासम्राज्य १३३, १३४
 मद ८१, ८२, १८०
 मदनमदविनोद २५७
 मदावस्था १७८
 मदुरा २१, २८८
 मद्य ६६, ७७, १०४
 मद्र २१, २७७
 मधु ९, ९६, १०१, १८४
 मधुमाधवी २४४
 मधुर ९१, ९६, १०९, २३९
 मध्य एशिया १२३, १३४
 मध्यदेश २७४
 मध्यप्रदेश ९३, २८९
 मध्यप्रात २८८
 मध्यम २१०, २२४, २३९
 मध्यमणि १४४
 मन सिल १३, १५८
 मनसिजविलासहसननिवासतामरस २५३
 मनु १०५, २९९
 मनुष्य ६८
 मनुस्मृति १६, ६३, ६५, १०५, १९५,
 १९६
 मनोहरदास ५५
 ममता ८२
 मय ९, १०४, १०७
 मयूर १५, १११, १५३, १५४, १६८,
 २३९, २८३
 मयूरपिच्छ १५४
 मरकत २४४, २५४
 मरकतपराग १९
 मरंडशृंगी ११८
 मराठा २७३
 मरिच ९, ९६
 मरीचि ८७, २६१
 मरुद्भव १०, ११८
 मरुभूमि १३४
 मरवादेश २९३
 मरवा १५९
 मर्कटी २४८
 मर्दल २२७, २३३
 मल १०
 मलखेट २७३
 मलखेड २७३
 मलय २१, २७७, २९५
 मलयाचल २७३
 मलावरोध ११७
 मल्लिका १५४, २५२
 मल्लिकामोद २७२
 मल्लिनाथ १३२
 मल्लिभूषण ५२
 मसक ६५
 मसाल ९६
 मसाला ९
 मसि ६९
 मस्तक १७३
 महर्षि १७४, १९४
 महल २५७
 महाकवि १५, ३७, ४६, १६८
 महाकाली २०९

अनुक्रमणिका

महाकाव्य ४, २८, ४६, ४७, २०८	महिषमर्दिनी २०९
महागोविन्द सुक्त २६९	महिस १२२
महाजनपद २७४	महीपालदेव ३८
महाज्वाला २०९	महेन्द्र ३४, ३६
महात्मा ४३	महेन्द्रदेव ५, ३५, ३६, ३९, ४०
महादेव १४०, २०१ २०२, २१७, २४०, २९७	महेन्द्रपर्वत २७१
महादेवी २५४	महेन्द्रपालदेव ५, ३६, ३७, ३८
महानवमी ४२	महेन्द्रमातलिसजल्प ५, ३३, ३६
महानसकी ८, ८८	महेश्वर २८८
महापुराण ७०	माग १५६, १५७
महाबोधि १९७	मास ६६, ७७, ७८
महाभागभवन १८	मासाहार ९, १०३, १०४, १०६, १०७
महाभारत १९५, १००, २०८, २१४, २२७, २२८	मागधी १०, ११८,
महाभाष्य १६३	माघ १५, ९३, १६८, १६९
महामात्र १७९	माडवार १५०
महामुनि ७८	माणक १९६
महाराज २७	माणिक्यचन्द्र ३३
महारानी १४, ७४, १३७	माणिक्यसूरि ५२
महाराष्ट्र २८९	मातंग ७, ९, ६६, १०४, १७४, १७५, १८०, १८१, २९५
महावश २७८	मातंगचारी १७९
महावग ९९, १३६	मातंगलीला १७९
महावत ४३, ४४, २१०	मातलि ३६
महावादी ५	माता ७४, ८५
महावीर ७५	माथा १५६
महावीरचरित २०१	माथुरसंघ ३३
महान्वती ८, ७८	माधुर्य २८
महासामन्त १२	मान ८१, ८२
महासाहसिक ८, ७८	मानस २१, २९७
महामुदस्सनसुत्तन्त २८६	मानसरोवर २१, २९७
महिष ९, १०४	

मानसार १५४, १५५	मिथ्यात्व ७२
मानसी २०९	मिरच ९६
मानसोल्लास १८, १०२, २४१	मिराशी २६९
मानघाता २८८	मिर्च ९३
मान्यखेट २७३	मिलिन्दपञ्चो २९८
मामा १२४	मील २८४
माया ८१	मुगेर २६७, २८६
मायापुरी २१, २८८	मुडिका १०३
मायामेष २०, २५८	मुडोकल्लार ११८
मारिदत्त २, ४२, ४३, ४५, ७६, १४२, १६१, १७०, २०५, २२३, २५७, २६९	मुडीर २०७, २७७
मार्कण्डेयपुराण १६६, १८८	मुकुट १२, १४०, १४१
मार्गणमल्ल २०३	मुक्ताफल १४६, १८४, २५९
मालती १२२, १८४, २५४	मुगल १९
मालव २६७	मुगलकाल २५१
मालवा २५४, २७५	मुद्ग ९, ९४, १०७
माला १५५, १५९	मुद्गर १६, २१४
मालाकार ७, ६२	मुद्रा १६, १९५
माली ६२, १९०	मुद्राषट्क ७६
मालूर ९, ९७	मुनि ८, ४०, ७७, ७८, ८१
माष ९, १०७, १९६	मुनिकुमार १४४
माषा १६, ९४	मुनिघर्म ७१
माहात्म्य ४६	मुनिमनोहर १४०, १५५
माहिष १०५	मुनिमनोहरमेखला २१, २९५
माहिष्मती २१, २८८, २८९	मुनिसघ ३३
मितद्रव १८७	मुमुक्षु ८, ७८, ७९, ८२
मितंद्रु ९, १०५	मुर्गा ६, ४४, ४५, ८५, १११
मित्र २७५, २९२	मुर्गी ४५, ४६
मिदनापुर २८६	मुल्तान २८९
मिथिलापुर २१, २८८	मुसल १६
मिथुन १६८	मुहम्मदशाह २५४
	मूर्हत ८६, १३५
	मूग ९४, ९५, ११०

मूज २१८
 मूत्र १०
 मूर्ति १३२
 मूलक ९, ९७
 मूलगुड १६२
 मूली ९७, १११
 मूसल ९३, २१४, २१६
 मृग १४, १२५, १७०, १७६, १७७,
 १८१

मृगमद १३, १५८
 मृणाल १३०, १४८, २५६
 मृणालवलय १४, १५९
 मृण्मूर्ति ११, १३
 मृत २१८
 मृद्ग १७, १८४, २२५, २२७, २३३
 मृद्धीका ९, ९८
 मेकडानल २३६
 मेखला १३, १४०, १४८, १४९, १५९
 मेघ १३९, १८४, १८६, २२८, २७६
 मेघचद्र १६४
 मेघदूत २२८, २७६
 मेघपुरन्धि २६२
 मेढक १०४
 मेदनी ३५
 मेमना १२४
 मेप ९, १०४, १०७
 मेलपाटी २७, २८
 मेलाडी २८
 मैकाल २९९
 मैतृक २८९
 मैसूर २२६, २४२, २७२, २७३

मोंगरा १६०
 मोक्ष २९, ७४, ७६, ७८, १८७
 मोगरक १४७
 मोती १४४
 मोतीचद्र १०, १२३, १३५, २४२
 मोदक ९, १००
 मोनियरविलियम्स २२, ३०४
 मोम २२६
 मोर ४६
 मोक्तकदाम १३, १४०, १४४, १४७
 मोची २०१, २०३
 मोलि १२, १३, १४०, १५६
 मोलिवव १५२
 मोहूर्तिक ७, ६०, ६१

य

यत्रगज २५९
 यत्रजलघर २०, २५८
 यत्रदेवता २६१
 यत्रघारागृह १९, २०, २४१, १४२,
 १४७, १४८, २३९, २५७,
 २५८, २६१, २६३, २६४
 यत्रपक्षी २५६, २५८
 यत्रपर्यंक २६३
 यत्रपशु २५६, २५८
 यत्रपुत्तलिका २०, २५६, २५८, २६२
 यत्रमकर २६०
 यत्रमानव २५८
 यत्रमेघ २५८
 यत्रवानर २६१
 यत्रवृक्ष २०, २५६, २५८, २६१
 यत्रव्याल २५८, २५९

यत्रशिल्प २०, २९, २५६, २५८,
२६४

यंत्रस्त्री २०, १४२, २५८, २६२,
२६३

यत्रहस २५९

यक्ष १८

यक्षकर्म १३, १५८, २५४

यक्षमिथुन २४१, २४३

यक्षणी १७४

यजुर्वेद ९२, ९९

यजुर्वेदसहिता १०१

यज्ञ ९, ७९, १९७

यज्ञोपवीत ७६

यति ८, ७९, ८१, १६५

यम १९

यमराज २४९, २०६

यमूनपुर २८८

यमुना २१, २९६, २९८, २९९

यमुनोत्री २९८

यव ९, ९२

यवद्वीप १९३

यवन २१, १९३, १९४, २८१

यवनाल ९, ९३, १०३

यवनी २८१

यवागू ९, ९९

यशस्तिलक एण्ड इडियन कल्चर ३०

यशस्तिलक चद्रिका २९

यशस्तिलक पत्रिका ४, २९

यशोदेव ३२, ३३, ४०

यशोधरकथा ५३

यशोधरकथाचतुष्पदी ५५

यशोधरचरित्र ६, ५०, ५१, ५२, ५४,
५६

यशोधर-जयमाल ५५

यशोधररास ५४, ५५

यशोमति ४४, १०५, २०२

यशोध्वज १९४

यशोर्ष ४३, ४५, ८५, ८६,

यष्टि १६, २१६

यागज्ञ ८, ७९

यागनाग १७७

याज्ञवल्क्य १४, १६६, १७८

याज्ञवल्क्य स्मृति ६३, ६५

यान ११३

युक्तिकल्पतरु १६६

युक्तिचिन्तामणिस्तव ३३

युद्ध २२५, २३१

युद्धमल २६८

युद्धविद्या १४

युवराज ७४, १४१

युवराजदेव ३७

युवागच्याग ११, १२५, २९१

युवानच्याग २८५

युवानच्याग २७८

योगी ८, ७९, ८३

योद्धा १४०, २०१, २११, २१५

यौधेय २१, ४२, ४६, १४३, १४७,

१४८, १८९, १९४, २७८

र

रग ६८

रगघोषणा १६८

रगपूजा १७, २३५

रगावली १८, २४३	रसना १३, ६८, १४०, १४८, १४९
रगोली १८, २५४	रससिद्धि १४५
रक्षागृह १२३	रसाल ९, १०१
रक्त-शालि ९३	रसाश्रित १७
रक्ताशुक १२९	रसोद्घ्या ९१
रघु १३२, २८२	रसोईन ८८
रघुवंश १०, २०८, २२८ २५६, २७७, २८२	रस्सी १४९, २१९
रजक ७, ६३	राई ९६, १०३
रजकी ६३	राकव १२४
रजत-वातायन १९	राघवन् (डा० वी०) ३१
रजस्वला ८९	राजगिरि २८५
रजाई १२	राजगृह २१, २७७, २८५, २८९
रतनपुर २७९	राजगृही २७७, २८९
रतनसेन १२३	राजघाट १५३, १५४, १५६
रति ८६, २३८	राजतपुराण १६, १६६
रति-रहस्य १६७	राजधानी ५, ३२, ४२, ४३, २६७, २६८, २७१, २७३, २७५, २७६, २७९, २८५, २८९
रत्ती १६, १९५	राजनपुर २८९
रत्न २४३, २८३	राजनीति ५, १४, ३३, ३६, १६१
रत्नद्वीपटीका १६७	राजनीतिज्ञ १
रत्नपरीक्षा १४, १६२, १६६	राजनीतिशास्त्र १६५
रत्नावतस १४१, १४२	राजपय १५७
रथ १४	राजपुत्र १४, १३, १६६, १७९
रथविद्या १६२	राजपुर २१, ४२, १२५, १३९, १४०, १४१, १४६, १४७, २४९, २८९, २९५
रदिनि १८१	राजप्रसाद १८
रनिवास २५३	राजभवन १९
रम्यक २६८	राजमदिर १८
रल्लक ११, १२५	राजमहिषी १४, १४१
रल्लिका १०, ११, १२१, १२५, २५१	राजमाता ४४
रविपेणाचार्य ७०	
रसचित्र १८, २४४	

राजमार्ग १९१	रिंगणोफल ९, ९७, १०३
राजमाष ९४, १०३	रिस्थवार २९८
राजमिस्त्री ६२	रीढ १७०, १७३
राजशेखर १५, ३७, १६८	रुजा १७, २२५, २३१
राजश्यामाक ९२	रुचक ७६
राजसभा ४४	रुद्र २०८
राजस्तुतिविद्या १६८	रुहेलखंड २७६, २८२
राजस्थान ३, ३०, ५२, २८०	रुई १२६
राजस्थानी ६	रूप १७, १७३, १७७, २३६
राजा १८, १४१	रूपक १७, २८, २३६
राजादन ९८	रूपगुणनिका २४२
राजिका ९, ६६	रैंड ९७
राज्यतन्त्र ५, ४१	रैंडी ९७
राज्यश्री १२२	रेशम ११, १२४
राज्यश्रेष्ठी ७, ६१	रेशमी १२३, १२४
राज्याभिषेक ४३, ४४, १२५, १३५, १७७, २३३, २४३	रेशा १२९
रात्रिशयन ११३	रैवत १६६, १८८
रानी १८, ४३	रैवतक १८८
राम २०२	रैवत १४, १६१, १६६, १८७
रामनगर २८२	रैवत-स्तोत्र १६६, १८८
रामायण १००, २०८	रोग १०, १५, १०८, ११५, १६७
रायगढ़ ९३	रोमक १९३
रायपसेणियमुत्त २२९	रोमपाद १४, १६१, १६५, १७९
रायपुर ९३	रोमराशि १८३
रालक ९, ९८	रोरव १०५
रालका १०३	रोरुक २६९
रालवृक्ष ९८	रोरुकपुर २६९, २८८
रावी २७७	रोहिणी १८, २४२
राष्ट्रकूट ५, २७, २८, ३८, ३९, ४०, २७३	ल
राष्ट्रकूटयुग ९०	लंका २०८
	लगत १२, १३७

अनुक्रमणिका

- लगोटी ७७
 लकडो ७८, २१७, २३१
 लक्षण ११७, १७२, १७५, १७६,
 १७७
 लक्ष्मी १०, १८, ३५, ११८, १५४,
 २४३, २७०
 लक्ष्मीवाम ५५
 लक्ष्मीमति २६७
 लक्ष्मीविलास २५१
 लक्ष्मीविलासतामरस १८
 लक्ष्य २०३
 लखनऊ १५६
 लगान १८९
 लगुड ६४
 लड्डू १००
 लघीयस्त्रय १६५
 लघुशका ११३
 लघ्वशन ११२
 लतागृह २६१
 लप्सी ९९, ११०
 लम्पाक २१, २७८
 लय १७, २३८
 लवण ९, ९६
 लवन १९०
 लवली ९८
 ललाट १८३
 ललितकला १७, २२३
 लहसुन ९८
 लाइट २४१
 लागल १६, २१६
 लागवाटर २५७
 लाघमन २७८
 लाट २१, २७८
 लानपो २७८
 लाप १३४
 लालकिला २५७
 लावण्यरत्न ५५
 लास्य १७, २३६, २३९
 लिक्चु १३१
 लिपजिग १६३
 लुनाई १९०
 लोकगीत १०, १२३
 लोकधर्म ७
 लोकभाषा १२
 लोकाश्रित ६७
 लोचन १८३
 लोचना जनहर २८६
 लोहा २१७
 लौकिक ५९, ६७
 लोकी २३२
 व
 वश १८०
 वकुल २५२
 वक्ष १८३
 वज्र १८५, २०७, २०८
 वज्रतारा २०७
 वज्राकुशी २०९
 वट ९, ९८, १३१
 वडवा १८८
 वणिक ७, ६१, १९२, २९१
 वत्स २८६
 वत्सराज ५१
 वदन १८३

- वहिग २७, ३२
 वद्यग ५, २७, ३९
 वधू १४८
 वन २०, २१, २९४, २९६
 वनदेवताभवन २५७
 वनवास २७०, २७८
 वनवासी २१, २७८
 वनस्पति २९, ७९
 वनेचर ७, ६६, १०६
 वमन १०, ११५, ११६
 वय १७३, १८३
 वरदमुद्रा २३५
 वरदा २७८
 वरमाला ८९
 वररुचि १५, १६९
 वराग २२९
 वराह ९, १०४, १७०
 वरुण १९, १७५, २१८
 वरुणगृह २५०
 वर्ण ७, ६८, ६९, १७२, १८३, १८४
 वर्ण-चतुष्टय ६९
 वर्ण-रत्नाकर १०, १२२, २०४, २०८, २०९
 वर्ण-न्यवस्था ७, ५९, ६७, ६९, ७०
 वर्णाश्रम ६५
 वर्षा ९३, १०९, ११०
 वलमी २८९
 वलय १३ १४०, १४७, १४८
 वला २८९
 वलाका २५८
 वलोक २०, २५५
 वल्लक ९, ९८, १०३
 वल्लकी १७, २२५, २३२
 वल्लभदेव १६८
 वल्लभराज २८
 वल्लमी २१
 वल्लरी १४१
 वल्लिका १८०
 वशिष्ठ ७७
 वसत ९५, १०९
 वसतमति २८०
 वसतिका १००
 वसति २८३
 वसु २९०
 वसुधरा १५, १८९
 वसुमति २९०
 वसुवर्धन २६७
 वस्ति २९५
 वस्तु १९७
 वस्त्र २९, १२१, १९२, २४१, २७४
 वादिवास २८
 वाकुची ११८
 वागुरा १६, २१८
 वाग्भट ११९
 वाग्युद्ध ५
 वाचयम ८२
 वाचिक १७, २३५, २३६
 वाजि १८७
 वाजित्रिनोदमकरद १८२, १८३
 वाडव ७, ६०, ६१
 वाणिज्य १५, २९, ६९, ७०, १८९, १९०
 वात १०८, १०९
 वातोदवसित २५०

वात्स्यायन ११९, १६७, १६८

वाद २९

वादित्र ८७, २२९

वादिराज ५१, ५५

वादीभषचानन ६, ३२

वाद्धलि १४, १६६, १७८

वाद्य २२३, २२४

वाद्य-यत्र १७

वाद्यत्रिद्या २२३

वाद्यविद्यावृहस्पति २२३

वानप्रस्थ ७२, ८१

वानर ९, १०४, १८५

वानरमिथुन २६१

वापी ९, २८३

वाभ्रव्य ११९

वामन १८१

वारण १८१

वारवाण ११, १२१, १३१, १३२

वारविलासिनी १५१, १९१, २३८,
२८७

वाराणसी २१, ३०, १५३, १५६,
२७१, २८९

वाराह १०५

वारिगृह २५८

वारियंत्र २६४

वार्धीण १०६

वाल ९७

वालधि १७३

वालारुण १८४

वाल्हीक २६९

वाम-मवन १९

वासवसेन ५०, ५१

वासुकि १४५

वासुदेवधारण अग्रवाल १०, १२१,
१५३, १९३, २५७

वास्तु १९

वास्तुकला २५७, २५८

वास्तुशिला १८, १९, २०, २९,
२४६, २४८, २६०, २६४

वास्तुसार १९, २४८

वास्तूल ९, ९७, ११२

वाहन १४, ११३, १८६

वाहरिका १८०

वाहलि १४, १६६, १७९

वाहा १८७

वाह्लीक ११, १२४

विटर्गनित्त ३

विद्य २१, २७१

विद्या २९५

विद्याचल २७०, २९५, २९८

विद्याटवी ६६, २८३

विकृष्ट २३४

विक्रमाकदेवचरित २७८

विक्षोभकटक १७३

विगाढना १९०

विचकिलहारयष्टि १४, १६०

विचार ७७

विजय २२७

विजयकीर्ति ५३

विजयपुर २१, २८९

विजयमकरध्वज ४३

विजयवैनतेय १८२, १८३

विजया १०, ११८

विजयार्ध २१, २९२

चिटक २४७, २४८, २४९	विशिख २०३
चिट्खदिर ११९	विश्व २७४
चितान ११०, १२१, १३९, २५४	विश्वदेव २७४
चितस्ता २९९	विश्वनाथ २९७
चिदर २७०	विश्वामसु २७५, २९०
चिदर्भ २७१, २७७	विष ९५, ९७, १०९
चिदाहि १०	विषम १०८
चिदिशा २७६	विष्णु १७१, २०१, २०२, २१३, २१५
चिदेशी ७	विष्णुघर्मोत्तर २४२
चिदेहराज ११९	विस ९
चिद्या ६९, ७३, ७४, २३५	विहार ८०, ८१
चिद्याघर ४२, ७६, २०६	विहारघरा २५७
चिद्याध्ययन १६१	वीणा १७, २२४, २२५, २३१
चिद्यापति २५७	वीत १८०
चिद्यार्थी १६१	वीर २३७
चिधि १७, ११२, २३६	वीरभैरव ४२
चिनायक १७०	वृक ९, १०४
चिनाशन २९९	वृती १०, ११८
चिनिमय १५, १८९, १९५, १९७	वृत्तविधान २८
चिप्र ७, ६०, ६१, ६५	वृत्ति १८५
चिभीतक ११९	वृन्ताक ९, ९७
चिरसाल ९, ९४	वृषभ १८, १८४, २४३
चिराट ४०, २७१	वृष्ण २२५
चिरुद २८	वृहलीवार्ताक ९, ९७
चिरुदावली १६८	वेंगी २७९
चिरोषी ४८	वेग १७७, १८३
चिलासदर्पण २७७	वेडिका ६४
चिलासपुर २७९	वेणिदह १३, १५२, १५७
चिवाह ८, ८५, ८९, १२२, १२४	वेणीसहार १६८
चिवेकराज ५५	वेणु १७, २०९, २२५, २३१
चिगापति ६१	वेयवती २७६
चिगालाक्ष १४, १६५	वेद २९, ५९, ६७, ७१

वेदड १८१
 वेदी २६०
 वेश-भूषा १०, ११, २९
 वेश्या १९५
 वेष-भूषा १२१
 वैकथ्यक १२१
 वैखानस ८, ७९, १३५
 वैजयंती १२५, २१२
 वैतालिक १४६, २५०
 वैदिक १६, २२, ५९, ६८, ७१, ७२,
 ७९, १९५, २३६, ३०३
 वैदिक माइथोलॉजी २३६
 वैदिक युग ९४
 वैद्य (पी० एल०) ५०
 वैद्य ९१, ९४
 वैद्यक १४, २९, १६६
 वैद्यकशास्त्र ११७
 वैयाकरण १६२
 वैशपायन २, ४२
 वैशाख ३२
 वैश्य ७ ५६, ६१, ७०
 वोपदव १६२
 वोस १५, १६२
 व्यजन ८, १०२, १७२
 व्यतर २८२
 व्यक्तिचित्र १८, २४२
 व्यवहार १६, १९८, २८४
 व्याकरण १४, २२, १६१, १६२, ३०३
 व्याकरणाचार्य १६४
 व्याघ्र २५९
 व्यापार १५, ६१, १८९, १९०, १९३,
 २८४

व्यापारी १२३
 व्यायाम १०, १५
 व्याल २५९
 व्यास १५, १६८
 व्यूहरचना १६२
 व्रजपाल ७, ६२
 व्रजभूषणलाल २२६
 व्रत ६७, ८२
 व्रती ७२

श

शकर १५, १६९, २११
 शकु १६, २१७
 शख १७, १४८, २१३, २२५, २२६
 शंखनक १०२, १३७, १४४, १४६,
 १४७, १४८ १४९, १५१
 शखपुर १९५, २९१, २९४
 शसितव्रत ८, ८०, ८२
 शक ११, १९३
 शकल १३०
 शकुतला २५४
 शकुन २९
 शक्कर ९५
 शक्ति १६, २१७
 शक्तिकान्तिकेय २१७
 शक्र १२७
 शतद्रू २९९
 शतपथब्राह्मण १०१
 शतावरी ११८
 शत्रु २१०
 शफ १८३
 शफरी २६०

- शबर ७, १०६
 शब्दनिघट्ट २९
 शब्दरत्नाकर १३९
 शब्दवेधी २०२
 शब्दशास्त्र १४, १६१
 शब्दसपत्ति ३०३
 शब्दानुशासन १६२
 शयन ११०
 शयनागार १२३
 शय्या १३९, २६३
 शरकुरली २०३
 शरण २५१
 शरद ९३, ९५, १०९, ११०
 शरव्य २०३
 शराब २८१
 शराभ्यासभूमि २०२
 शरासन २०२
 शरीर ११५
 शरीरोपचार १६२, १६६
 शर्करा ९, ९६, १००
 शर्कराद्वय ९६
 शर्कराद्वयपय ९
 शवर ६६
 शवरी ६६
 शश १०५
 शष्कुली ९, ९९
 शस्त्र २१७
 शस्त्रविद्या १४, १६२
 शस्त्रास्त्र १६, २००
 शस्त्री २०३, २०५
 शहतूत १३०
 शाकुतल १०, ९२
 शाकुनि १०५
 शाखा २७९
 शाप १७४, १७५, १९९
 शाङ्ग २०१, २०२
 शार्दूल १८५
 शास्त्र २२, ८२
 शास्त्रभण्डार ६, ३०, ५०, ५२, ५३, २०९
 शालभजिका २६३
 शालि ९, ९२, ११०
 शालिहोत्र १५, १६६, १८२ १८८
 शासन ५, ६३
 शाही ११, २५८
 शिकार ६६
 शिकारपुर १६३
 शिक्षा १४ २९, १६१, १६५, १७९,
 २००, २७४
 शिखण्डिताण्डव २१
 शिखण्डिताण्डवमण्डन २९६
 शिखर २९६
 शिखरणो १०१
 शिखा ८३
 शिखामणी ७६
 शिखोच्छेदी ८३
 शिता ९
 शिप्रा ४३, ४५
 शिबिर २७
 शिर १८३
 शिरीष १५४, १६०
 शिरोषकुमुदाम १४, १६०
 शिरोषजघालकार १४, १६०

अनुक्रमणिका

- शिरोभूषण १४०
 शिलालेख ४०, १६२, १६४, २६८,
 २७३, २७९
 शिल्प ११, १३, ६९, १९७, २०७,
 २०८, २०९, २११, २४५
 शिल्पविज्ञान १७
 शिल्पशास्त्र १५, १६७
 शिव ७६, ७७
 शिवप्रिय १०, ११९
 शिव-स्तुति १६९
 शिवभारत २१६
 शिवालिक २९६, २९९
 शिशिर १०९
 शिशिरगिरि २८१
 शिष्य ३२, ५१, ७५, ७७, १३६
 शील १७२
 शीलाकाचार्य १२६
 शूडाल १८१
 शुक २, ४२, १८४, २५५
 शुकनास १५, १६२, १६६
 शुक्र १४, १६५
 शुक्रनीति २१८
 शुक्राचार्य १९२
 शुचि ८२
 शुनक ७५
 शुभचन्द्र ५६
 शुभघामजिनालय ३२
 शुल्क १९२
 शुल्क-स्थान १९२
 शूद्र ७, ५९, ६१, ६९, ७०
 शूद्रक २, २८, ४२, १२७
 शूल ११७, २११
 शृंगाटक १५६
 शृंगार २३७
 शृंगारक्षतक १६९
 शोड २४१
 शैलूप ७, ६५
 शैलेन्द्र २६२
 शैव ७६, ७७, ७८
 शोण २१, २९८, २९९
 शोभा १७२
 शोलापुर ३, ३०
 शौच ११३
 शौनक ७५
 श्यामाक ९, ९२, १०३
 श्यामाशुक १२९
 श्रमण ८, ७७, ८०, ८१, २४४
 श्रमणवेलगोला ४०
 श्रमणसघ ७७
 श्रवणवेलगोल १६४, २४२
 श्राद्ध ९, ६०, १००, १०५
 श्रावक ७०, ७५, ७७
 श्रावकाचार ४५
 श्रावस्ती १९७
 श्रीचन्द्र २१, २७९
 श्रीदेव ४, २२, २९, ३१, १६४, १६५
 १६६, १६७, ३०४
 श्रीनाथ १६४
 श्रीभूति १९२, १९८
 श्रीमाल २१, २८०
 श्रीसरस्वतीविलासकमलाकर १८
 श्रीसागरम् २१, २९०
 श्रीहर्ष १२४

श्रुत नर
 श्रुतदेव ६३, ७३, ७८, ८०, १३१,
 २५९, २८१, २९३, २९४
 श्रुतमूनि ५६, १६४
 श्रुतनागर ३, २२, २९, ३०, ३१,
 ३५, ५१, ५२, ६५, ६६, ९१,
 १०१, ११९, १२०, १२१, १२३,
 १२५, १३३, १४९, १५०, १६४,
 १६५, १६६, १६७, १८९, २२७,
 २२८, २२९, २३०, २४४, २४८,
 २५४, ३०४

श्रुति ५९, ६३, ७४
 श्रेष्ठी ७, ६१, १९५
 श्रोत्रिण १३३
 श्रोत्र ६८
 श्रोत्रिण ७, ६०, ६१
 श्रोत्रस्मार्त ३, ६९, ७०
 शिल्प २२
 श्लोक २७२
 श्वेतान्धर १८
 श्वेतान्धर-परंपरा २४३

घ

घड्ड २०४
 घड्डस ९१
 घणवतिप्रकरण ५, ३३
 घाडव १०१

च

चक्रयौ २१४
 चकली ४८

चक्रोर्ण १४, १७०, १७३, १८१
 चंगमरुत १३०, २४९
 चंगीत १४, १३, २०३, २३९
 चंगीतक १६२
 चंगीतवारिजात २०६, २३४
 चंगीतरत्नाकर २०६, २२९, २३०,
 २३२, २३३
 चंगीतरत्नाकरकर २२७
 चंगीतराज २०९, २३२
 चंगीतवास १७, २२५, २३१
 चंगहाल २६०
 चक्र ३३, ४०, ५२, ८०, १९३, १९७
 चक्रगति १९३
 चक्रवर्ही १९३
 चक्रवो १९३
 चक्रो ५४
 चक्रिणी २५३
 चक्रस्त ७३, ७५
 चक्र्यास ४३, ७३, ७४
 चक्र्यासी १६५
 चक्र्याद ३१
 चक्र्याय ८, ९, ४९, ७५, ७६, १६३
 चक्र्यन नर
 चक्र्योग ७४
 चक्र्याहक ७, ६४
 चक्र्याविद्या १५, १६७
 चक्र्या ७५
 चक्रिद वल १५
 चक्र्या ४३
 चक्र्या १, २, ६, ११, २०, २७, २८,
 ५०, ५१, ५२, १३२, १९३,
 २१३, ३०३

- सस्कृति २३६
सस्थान १७२, १७७, १८३
सकलकीर्ति ५१
सक्तू ९, ९४
सचिव २७२
सज्जन ९१
सत्तलज २९९
सतारा २७०
सत्तू १०९, १११
सत्र २८३
सत्व ७५, १७३, १७७, १८३
सद्विकृतकर्णामृत १६९
सन २१८
सपादलक्ष २६८
सप्तच्छद १५५
सप्तषि ७७, २६१
सप्तार्णव २२८
सब्जी ९, ७९, ९७
सभंग २७४, २७५
सभा १८
सभामडप १३६, २३८, २४५
सभ्यता ६९
सम १०८
समयमुन्दरगणि १६२
समराइच्चकहा ६, ५०
समरागणसूत्रघार २०, २६०
समवसरण १८, २४५, २५०
समशन २१२
समा ९२
समाजशास्त्री १
समिता ९
समिध ९, ९९
- समुद्र १८, १४५, १४९, १८५, २२८, २४३
समुद्रगुप्त २७१
समूर १२४
सम्यक्त्व ६७, ७२
सम्यग्दृष्टि ७२
सम्राट् २७९, २८०, २८१
सरकार २६९
सरगुजा ९३
सरयू २१, २९८, २९९
सरसी ९५
सरस्वती २१, २२, १५४, १५५, २२४, २३५, २९८, २९९, ३०३, सरस्वतीविलासकमलाकर २५३
सरित्सारणी २५७
सरोवर २१, २९७
सर्प १८, १०७, २३९, २५९
सर्पिषिस्नात ९, १०२
सर्वार्थसिद्धि १६४
सहचरी ८, ८८
सहजन ९७
सहालाप ७५, ७९
सहावास ७५, ७९
सह्य २७१
साँकल २१८
साँची १३५
साँप ४५, ४६, ८८
साँवाँ ९२
सास्कृतिक ४, ६, ४६
साग ९, ९७
सागरदत्त २८४
साडी १२४, १२८

श्रुत ८२

श्रुतदेव ६३, ७७, ७८, ८०, १३१,
२५९, २८१, २९३, २९४

श्रुतमुनि ५६, १६४

श्रुतसागर ३, २२, २९, ३०, ३१,
३५, ५१, ५२, ६५, ६६, ९१,
१०१, ११९, १२०, १२१, १२३,
१२५, १३७, १४९, १५०, १६४,
१६५, १६६, १६७, १८९, २२७,
२२८, २२९, २३०, २४४, २४८,
२५४, ३०४

श्रुति ५९, ६७, ७४

श्रेष्ठी ७, ६१, १९५

श्रोणिफलक १७३

श्रोत्र ६८

श्रोत्रिय ७, ६०, ६१

श्रीत-स्मार्त ७, ६९, ७०

श्लिष्ट २२

श्लोक २७२

श्वेताम्बर १८

श्वेताम्बर-परपरा २४३

ष

षड्ज २२४

षड्रस ९१

षण्वतिप्रकरण ५, ३३

षाडव १०१

स

सकपण २१४

सकल्पी ४८

सकीर्ण १४, १७०, १७७, १८१

सगमरमर १३२, २४९

सगीत १४, १७, २२३, २३९

सगीतक १६२

सगीतपारिजात २२६, २३४

सगीतरत्नाकर २२६, २२९, २३०,
२३२, २३३

सगीतरत्नाकरकार २२७

सगीतराज २२९, २३२

सगीतशास्त्र १७, २२५, २३१

सग्रहालय २६०

सघ ३३, ४०, ५२, ८०, १९३, १९७

सघपति १९३

सघवई १९३

सघवी १९३

सघी ५४

सधिविग्रही २५३

सन्यस्त ७३, ७५

सन्यास ४३, ७३, ७४

सन्यासी १६५

सपादक ३१

सप्रदाय ८, ९, ४९, ७५, ७६, १६३

सयम ८२

सयोग ७५

सवाहक ७, ६४

ससर्गविद्या १५, १६७

ससार ७५

ससिद्ध जल ९५

सस्कार ४३

सस्कृत १, २, ६, ११, २२, २७, २८

५०, ५१, ५२, १३२, १९३,

२१३, ३०३

सस्कृति २३६	समुद्र १८, १४५, १४९, १८५, २२८, २४३
सस्थान १७२, १७७, १८३	
सकलकीर्ति ५१	समुद्रगुप्त २७१
सक्तू ९, ९४	समूर १२४
सचित्र २७२	सम्यक्त्व ६७, ७२
सज्जन ९१	सम्यग्दृष्टि ७२
सतलज २९९	सम्राट् २७९, २८०, २८१
सतारा २७०	सरकार २६९
सत्तू १०९, १११	सरगुजा ९३
सत्र २८३	सरयू २१, २९८, २९९
सत्त्व ७५, १७३, १७७, १८३	सरसी ९५
सद्व्यक्तकणमृत १६९	सरस्वती २१, २२, १५४, १५५, २२४, २३५, २९८, २९९, ३०३,
सन २१८	सरस्वतीविलासकमलाकर २५३
सपादलक्ष २६८	सरित्सारणी २५७
सप्तच्छद १५५	सरोवर २१, २९७
सप्तर्षि ७७, २६१	सर्प १८, १०७, २३९, २५९
सप्तार्णव २२८	सर्पिषिस्नात ९, १०२
सवजी ९, ७९, ९७	सर्वार्थसिद्धि १६४
सभंग २७४, २७५	सहचरो ८, ८८
सभा १८	सहजन ९७
सभामंडप १३६, २३८, २४५	सहालाप ७५, ७९
सभ्यता ६९	सहावास ७५, ७९
सम १०८	सह्य २७१
समयमुन्दरगणि १६२	सौकल २१८
समराइच्चकहा ६, ५०	सौची १३५
समरागणसूत्रघार २०, २६०	साँप ४५, ४६, ८८
समवसरण १८, २४५, २५०	साँवाँ ९२
समशन २१२	सांस्कृतिक ४, ६, ४६
समा ९२	साग ९, ९७
समाजशास्त्री १	सागरदत्त २८४
समिता ९	साडी १२४, १२८
समिघ ९, ९९	

- सातवाहन १४५
 सात्विक १७, २३५, २३६
 साथ १९२
 साधक ८, ८०
 साधन १९५
 साधना ७६, ७७
 साधु १, ५, ८, ३९, ४०, ४४, ७४,
 ७७, ७८, ८०
 साधुसभ ५
 साधुसुन्दरगणि १२८
 सामगायन १७४
 सामज १८१
 सामत २७
 सामवेद १७४
 सामवेद १७९
 सामाजिक ६
 सामिता ९९
 सामुद्रिक ज्ञान २९
 सायक २०३
 सारग १८१
 सारथी ३६
 सारनाथ २६०
 सारसना १३, १४०, १४८, १५०
 सारस्वत ९४
 सारिका २५५
 सार्थ १६, १९५
 सार्थपायिव १९२
 सार्थवाह ७, १५, २९, ६१, १८९,
 १९२, १९३, १९४
 सार्थनोक १९२
 सालनक १०३
 सालूर १०४
 सालेम २७३
 सावन ९९, २३९
 सावित्री १४८, १५५
 सासानी ११, १३२
 साह लोहट ५४
 साहित्य २, १४, २२, २८, २९, ६९-
 १३५, १५२, १६१, १८९,
 १९५, १९७, २०८, २२६,
 २६८, ३०३
 साहित्यकार १
 साहित्यिक ४
 सिंघाढा १५६
 सिंदवार १४९
 सिंदुर १३, १५२, १५७, १५८
 सिंघी १९३
 सिंघु २१, २८०, २९८, २९९
 सिंघुर १८१
 सिंघुवार १५९
 सिंह १८, १०४, १८४, १८५, २३९,
 २४३, २५९
 सिंहपुर २१, २७६, २९१
 सिंहल २१, २७, २९२
 सिंहसेन २७६
 सिंहासन १८, ६३, २४३
 सिक्का १६, १९५, १९६, २१५
 सिचयोल्लोच १२
 मितशिवत १०, ११५, ११८
 मिता ९५, ९६
 मितायुक १२९

- सिद्धान्त ६, २९, १७३
सिद्धान्तकौमुदी २०८
सिद्धिविनिश्चय १६५
सिप्रा २१, २४९, २८३, २९९
सिर २०, १७३
सिरमौर १५६
सिरीसागरम् २९०
सींग १३, १४८
सीमंत १५६, १५७
सीमतसतति १३, १५२, १५६
सीरिया १३२, १९३
सुदरलाल शास्त्री ३०, ३३, १३८
सुख ७५
सुत्तनिपात २६८
सुदत्त ४२, ४५, १६१, १७१
सुदर्शन २१५
सुदर्शना १०, ११८
सुपारी ९८
सुपार्श्व १८, २४१, २४२
सुपार्श्वगत २४२
सुमात्रा २९२
सुवन्वु २८
सुभाषित २९
सुभाषितावलि १६८
सुरतविलास २८०
सुरपादप २६७
सुरा ६३
सुवर्ण १६, १९५, १९६, १९७
सुवर्णकुड्या ११, १२६
सुवर्णगिरि २८४
सुवर्णद्वीप १६, २१, ६१, १९४, १९७, १९२
- सुवीर १९४
सुवेला २१, २९६
सुश्रुत ९३, ९९
सुश्रुतसहिता ११९
सुपिर १७, २२५, २२९, २३३
सूप ९, ९९
सूपशास्त्र ९
सूरन ९७
सूरसेन २१, २८०, २८१
सूरि ८, ८०
सूर्य १८, १९, ९५, १३२, १६६, १७४, १८८, १९४, २४३
सूर्यकान्त २४७, २४८
सृक १८३
सृष्व १७३
सृणि १८०
सेठ १९४
सेतुबंध २१, २९६
सेना २७, २०५, २११, २२८
सेनापति १४१, २३८
सेवा ७७, ७९
सेही ४६, १२५
सैधव २८०
सैनिक ९३, १३५, १४३
सोंठ १०१
सोना १४३, २२६
सोनार गाँव २७९
सोपारपुर २१, २९०, २९४
सोभाजन ९, ९७, १०३
सोम १० ६३, ११८, १४५, २१८
सोमकीर्ति ५१, ५४

सोमदत्तसूरि ५५

सोमदेव १, २, ३, ४, ५, ७, ८, १०,
 ११, १२, १३, १४, १५, १६,
 १७, १९, २०, २१, २२, २७,
 २९, ३०, ३१, ३२, ३३, ३४,
 ३५, ३८, ३९, ४७, ४८, ५१,
 ५९, ६२, ६३, ६६, ६७, ७१,
 ७२, ७५, ७६, ७८, ८०,
 ८६, ८९, ९३, ९९, १०३,
 १०६, ११०, ११२, ११६,
 ११९, १२३, १२६, १३४,
 १३६, १३९, १४०, १४२,
 १४३, १४५, १४९, १५२,
 १५५, १५६, १५८, १६१,
 १६२, १६६, १७९, १८३,
 १८७, २००, २०५, २०८,
 २२३, २३०, २३३, २४०,
 २५७, २६३, २७०, २७२,
 २७६, २८१, २८२, २८५,
 २९०, २९५, ३०४, ३०३

सोलापुर ३०, ३१

सींदरानद ४६

सीघ २५१

सीराष्ट्र २१, २८१, २८७, २८९

सीवीर २६९

स्कंदकार्तिकेय २१७

स्त्रघ १८३

स्टेट २८९

स्टेशन २८४

स्त्रवेगम १८१

स्त्रंबिका १९

स्तन २०, २६२

स्तुति ८२

स्तूप १९७, २४८

स्त्री ११, १२, १४७, १५५,

स्थापना १८०

स्थावर ७२

स्नान १०, ७९, ११४

स्निग्ध ९६

स्पर्शन ६८

स्पोर्ट्सस्टेडियम १९

स्मिथ २३६

स्मृति ८, २९, ५९, ६७, ७१

स्याद्वादेश्वर १६१

स्याद्वादीपनिपद् ३४

स्यालकोट २७७

स्रगजीवी १९१

स्त्रघ्न ४४

स्त्रयवर ८, ८९

स्त्र १७३, १८३, २३९

स्त्रर्ग १४५, २६७, २७०

स्त्रर्ण १६, २७८

स्त्रस्तमति २१, २७५, २९०

स्त्रास्थ्य १०, १०८, १६७

ह

हृदिकी (कृष्णकान्त) ३, ५, १५,
 ३०, ३१, ४०, १६९, २१०,
 २७९

हम १११, १८५, २९७

हमक १३, १४०, १५०, १५१

हमतूलिका १२, १२१, १३७

हममिथुन ११, १८७

- हथिनी १७४
हथियार २०७, २०९
हनु १८३
हनुमान २०८
हय १८७
हरढ ११८
हरि ९, १०४
हरिगेह २५०
हरिण ९, १०४
हरिवल ३३
हरिमद्र ६, ५०, ५१, ५२
हरिरोहण १३, १५८
हरिवशपुराण ७०
हरिपेण ५१
हर्ष ४१, १२२, १३३, १४५, २५६
हर्षचरित . एक सास्कृतिक अध्ययन
१२१
हर्षचरित ५, १०, १२६, १५१, २०४,
२५६
हल ६२, १८५
हलजीवी १८९
हलदी ९६
हलायुधजीवी ७, ६२
हस्त १८०
हस्तिनापुर २१, २७२, २७५, २८८,
२९०
हस्तिपक १७, १७९, २२३
हस्तिश्यामाक ९२
हस्ती १८०, १८१
हस्त्यायुर्वेद १६५, १७९, १८१
हाट १५
- हाय २०
हाथी १८, २३९, २७१
हायोखाना २५१
हाथी-दांत १३
हार १३, ६५, १४४, १४६, २३५,
२७६
हारयष्टि १३, १४०, १४४, १४६
१४७, १४९, १६०
हारिण १०५
हारु रशीद २५७
हिगु १९२
हिजीरक १३, १४०, १५०
हिंदी ३०, ३१, ५४, १९३
हिमा ६, ४७, ४८, ७२, १०६
हित्त २५९
हिमगृह २६०
हिमाचल २८१, २८४
हिमालय २१, १७५, २८१, २८२,
२९४, २९६, २९७, २९८,
२९९
हिरण ४५
हिरण्य १६, १९६
हींग ९६, १०२
हीरालाल ५२
हूण १९३
हृदय १७३
हेनरी २५७
हेमत्त १०९, १२५, २९६
हेमकन्यका २०, २५४
हेमकुजर ५३

हेमचन्द्र १३७, २०४, २५३, २५८,
२६०, २६३, २६४, २८५

हेमचन्द्राचार्य १२८

हेमनाममाला ३५

हेमपुर २१, २९०

हेम्पटन कोर्ट २५७

हैदराबाद २८, ३२, २६८, २६९,
२७०, २७३

होलालो १२५

ह्लेषित १८४

